स्वामी रामतीर्थजी

के

(हिन्दी-उर्दू और अँगरेज़ी के)

लेख व उपदेश

(हिन्दी-भाषा में)

जिल्द तीसरी



प्रकाशक—

श्रीरामतीर्थ-पब्लिकेशन लीग

लखनऊ

र] द्वितीयावृत्ति [१९३५

मूल्य

ारण संस्करण १) विशेष संस्करण १॥)

शुभ समाचार

यों तो श्रीरामतीर्थ-पब्लिकेशन लीग, लखनऊ, समय-समय पर अधिकारी सज्जनों व धार्मिक पुस्तकालयों को यथाशक्ति अपनी पुस्तकें बिना दाम अथवा आधे दाम पर बाँटती ही है, किंतु धार्मिक सज्जनों को इस धर्म-कार्य में हाथ बँटाने का शुभ अवसर देने के लिए लीग ने यह तय (निश्चय) किया है कि जो सज्जन इस शुभ उद्देश्य से स्थायी रूप से जितनी रक़म लीग के पास जमा कर देंगे, लीग उसके ब्याज से जो अधिक से अधिक ।।) प्रति सैकड़ा तक होगा प्रतिवर्ष उनके नाम से पुस्तकें बिना दाम लिए अधिकारी सज्जनों व सार्वजनिक पुस्तकालयों को निरंतर वितरण करती रहेगी। आशा है, दानी सज्जन प्रसन्नता-पूर्वक इस शुभ कार्य में योग देंगे और इस रीति से यश व पुण्य दोनों के भागी होंगे।

मंत्री
श्रीरामतीर्थ-पब्लिकेशन लीग,
लखनऊ

मुद्रक—
पं० श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस, लखनऊ

श्रीरामतीर्थ-पब्लिकेशन लीग के ग्रंथ

हिंदी में

नं०	नाम पुस्तक	सा० सं०	वि० सं०
१.	श्रीरामतीर्थ-ग्रंथावली २८ भाग में, पूरा सेट ...	१०)	१[illegible])
	फुटकर भाग	॥)	।॥)
२.	उक्त ग्रंथावली की संशोधित आवृत्ति के पहले १८ भाग, छे जिल्दों में। प्रति जिल्द ...	१)	१॥)
३.	दशादेश (राम बादशाह के १० हुक्मनामे)		१)
४.	राम-वर्षा भाग १-२	१)	१॥)
५.	राम-पत्र (गुरुजी के नाम राम के पत्र) ...	१)	१॥)
६.	बृहत् राम-जीवनी (उर्दू कुल्लियाते-राम, जिल्द २ का अनुवाद), पृष्ठ ६७२	२॥)	३)
७.	संक्षिप्त राम-जीवनी, पृष्ठ ६४ ...	।)	
८.	श्रीमद्भगवद्गीता, श्री० आर० एस० नारायण स्वामी-कृत व्याख्या सहित, दो जिल्दों में, पृष्ठ लगभग २०००	४)	६)
	प्रति जिल्द	२)	३)

आत्मदर्शी बाबा नगीनासिंह वेदी-कृत

९.	वेदानुवचन, पृष्ठ लगभग ५५० प्रथम आवृत्ति	१॥)	१।॥)
	,, द्वितीय आवृत्ति पृष्ठ-लगभग ७१५	२॥)	३)
१०.	आत्मसाक्षात्कार की कसौटी, पृष्ठ १७२ ...	॥)	।॥)
११.	रिसाला अजायबुल-इल्म अर्थात् भगवत्-ज्ञान के विचित्र रहस्य, पृष्ठ १६० ...	॥)	।॥)

उर्दू में

१.	कुल्लियाते-राम जिल्द १ (रिसाला अलिफ़ के एक वर्ष के १२ अंक), पृष्ठ लगभग ५०० ...	१॥)	२)
२.	कुल्लियाते-राम जिल्द २ (अर्थात् स्वामी राम की सविस्तर जीवनी), पृष्ठ लगभग ५०० ...	१॥)	२)
३.	राम-वर्षा, दोनों भाग, पृष्ठ लगभग ५२५ ...	१)	१॥)

नं०	नाम पुस्तक	सा० सं०	वि० सं०
४.	ख़तूते-राम (गुरुजी के नाम राम के ख़त) पृष्ठ १०८	॥)	॥।)
५.	संक्षिप्त जीवनी, पृष्ठ लगभग ३३० ...	॥।)	१)
	आत्मदर्शी बाबा नगीनासिंह वेदी-कृत		
६.	वेदानुवचन, पृष्ठ लगभग ५२० ...	१॥)	२)
७.	मियारुल मिकाशफ़ा पृष्ठ लगभग १७० ...	॥)	१)
८.	रिसाला अजायबुल-इल्म, पृष्ठ लगभग १२०	।=)	॥।)
९.	जगजीत-प्रश्न (ईशावास्योपनिषद् की शांकर भाष्यानुसार व्याख्या, पृष्ठ लगभग १०० ...	।=)	॥।)
	अँगरेज़ी में		
१.	स्वामी राम के समग्र अँगरेज़ी उपदेश व लेख, आठ जिल्दों में, पूरा सेट ...	७)	१४)
	प्रति जिल्द .	१)	२)
२.	पैरेबल्स ऑफ़ राम (उक्त उपदेशों में स्वामी राम से वर्णित समग्र कहानियाँ), पृष्ठ लगभग ५००	२)	३)
३.	स्वामी राम की नोटबुक्स, दो जिल्दों में	२)	४)
	प्रति जिल्द	१॥)	३)
४.	सरदार पूर्णसिंह कृत स्टोरी ऑफ़ स्वामी राम द्वितीयावृत्ति पृष्ठ लगभग ३२५ ...	२॥)	३)
५.	पं० ब्रजनाथशर्मा कृत स्वामी राम की जीवनी व उपदेशसार पृष्ठ लगभग ८०० दो जिल्दों में	४)	५)
	प्रति जिल्द	२॥)	३)
६.	हार्ट ऑफ़ राम	॥)	
७.	पोइम्स ऑफ़ राम	॥)	१)
८.	संक्षिप्त राम-जीवनी सहित गणित पर व्याख्यान के	॥)	
९.	प्रैक्टीकल गीता (बा० नारायणस्वरूप-कृत)	।=)	

स्वामी राम के छपे चित्र भिन्न-भिन्न आकृति में

प्रति चित्र सादा)॥ तिरंगा बड़ा =) छोटा -)

मैनेजर—श्रीरामतीर्थ-पब्लिकेशन लीग, लखनऊ

निवेदन

कुछ वर्ष हुए, स्वामी रामतीर्थ के लेखोपदेश की पहली जिल्द में हम यह सूचना दे चुके हैं कि राम की हिन्दी-ग्रन्थावली के २८ भाग ज्यों-ज्यों खतम होते जायँगे, त्यों-त्यों वे दूसरी आवृत्ति के समय बड़ी-बड़ी जिल्दों में विभक्त करके प्रकाशित किये जायँगे। तदनुसार ग्रन्थावली के प्रथम ६ भाग (तीन-तीन भागों को एक-एक जिल्द में सम्मिलित करके) तीन जिल्दों में उत्तम आकार में शनैः-शनैः प्रकाशित किये गये। प्रथम की दो जिल्दों के पूर्वार्द्ध में स्वामी राम के अँगरेज़ी भाषा में दिये हुए उपदेशों की पहली व दूसरी जिल्द के समग्र व्याख्यानों का हिन्दी अनुवाद दिया गया है, और उनके उत्तरार्द्ध में कुछ उर्दू उपदेशों का हिन्दी-अनुवाद भी दिया गया है। इनके अतिरिक्त ग्रन्थावली के ७, ८, ९ भाग (जिनमें रामवर्षा का पहला व दूसरा भाग प्रकाशित था) एक जिल्द में संपूर्ण रामवर्षा के नाम से प्रकाशित किये जा चुके हैं। आज हमें यह लिखते प्रसन्नता हो रही है कि अँगरेज़ी जिल्द तीसरी के समग्र व्याख्यानों व लेखों का भी हिंदी-अनुवाद हम ग्रन्थावली के अनेक भागों से निकालकर एक ही जिल्द में प्रकाशित करने में सफल हुए हैं। यद्यपि इस जिल्द के उत्तरार्द्ध में पूर्व जिल्दों के समान उर्दू के कई एक लेखों व उपदेशों का हिन्दी-अनुवाद भी दिया गया है, तथापि इसका पूर्वार्द्ध अँगरेज़ी की तीसरी जिल्द का प्रतिरूप होने से इस जिल्द का नाम भी हिन्दी की तीसरी जिल्द रक्खा गया है। इस जिल्द के व्याख्यान व लेख प्रायः ग्रन्थावली के

१० से १६ भागों में पहले प्रकाशित थे। इनसे इतर उर्दू खुम खाना-ए-राम जिल्द पहली के जो लेख व उपदेश उन्हीं (१० से १६) भागों में दर्ज थे, वे सबके सब पृथक् करके अब हिन्दी खुम-खाना-ए-राम के नाम से प्रकाशित किये जाने लगे हैं, जो आशा है दो-चार मास के भीतर-भीतर उत्तम आकार में जनता की भेंट होंगे। इसके बाद ग्रन्थावली का १७वाँ और १८वाँ भाग जो राम-पत्र के नाम से एक जिल्द में पहले प्रकाशित हुआ था, इसकी पुनरावृत्ति में अँग्रेज़ी जिल्दों में प्रकाशित स्वामी राम के अनेक पत्रों का हिन्दी-अनुवाद भी दिया जायगा, जिससे यह जिल्द भी अन्य जिल्दों के समान मोटी और उत्तम आकार में यथासम्भव शीघ्र निकाली जायगी। इस प्रकार ग्रन्थावली के पहले १८ भाग हिन्दी की छः जिल्दों में प्रकाशित हो जायँगे। और ज्यों-ज्यों राम-प्यारों से सहायता-रूप में उत्साह मिलता जायगा, त्यों-त्यों आशा है कि लीग उक्त जिल्दों के शीघ्र प्रकाशित करने में अवश्य सफल हो सकेगी। इसलिये राम-प्यारों से बार-बार यही प्रार्थना है कि वे लीग को हृदय से अपनायें, और सर्व प्रकार की सहानुभूति से उसके कार्य कर्त्ताओं का उत्साह बढ़ायें जिससे लीग अपने उद्देश्य की पूर्ति में कृतकार्य हो।

मंत्री

श्रीरामतीर्थ पब्लिकेशन लीग,

लखनऊ

विषय-सूची

पूर्वार्द्ध

उत्तरार्द्ध

भाग तीसरा

पूर्वार्द्ध

स्वामी रामतीर्थजी

के

अँगरेज़ी के लेख व उपदेश।

श्रीपूर्णसिंहजी-लिखित स्वामी राम का

संक्षिप्त जीवन-चरित

(जो अंग्रेज़ी जिल्द दूसरी के आरंभ में भूमिका के रूप में दिया हुआ है)

"I cannot die, though for ever death
Weave back and fro in the warp of me,
I was never born, yet my births of breath
Are as many as waves on the sleepless Sea."

"The body dissolved is cast to winds,
Well doth Infinity me enshrine,
All ears my ears, all eyes my eyes,
All hands my hands, all minds my minds,
I swallowed up death, all difference I drank up."

मृत्यु बहु बार भी बाना बने, ताना मम की नित्य ही।
हमें तथापि न मार सकती, बात यह है सत्य ही॥
जनम हमारा कभी हुआ नहिं, पुनि संख्या साँस-जनम की।
वैसे ही अगणित है जैसे, अनिद्र सिन्धु की नवलहरी॥

फेंक दो मृत देह को पर कुछ बिगड़ता क्या कभी।
फूँक दो चाहे इसे पर नष्ट होता क्या कभी॥
है अनन्तता मन्दिर मेरी सान्त होती नहिं कभी।
ज्योति हूँ उस अग्नि की जो बुझ नहीं सकती कभी॥

सब नेत्र मेरे नेत्र हैं, हैं कान भी मेरे सभी।
विश्व में जितने हैं मन, क्या पृथक हो सकते कभी॥

यमराज से डरता नहीं मैं, काल मेरा ग्रास है।
लोक की बहुरूपता मम प्यास की नित आस है॥

अपने पूर्व आश्रम अर्थात् गृहस्थाश्रम में स्वामी रामतीर्थ गोसाईं तीर्थराम एम्० ए० के नाम से विख्यात थे। इनका जन्म पंजाब प्रान्त के गुजरान्वाला ज़िले के मुरालीवाला ग्राम में दीपमालिका के दूसरे दिन सन् १८७३ ई० अर्थात् कार्त्तिक शुक्ल १ संवत् १९३० में हुआ था। गोसाइयों के वंश में उनका जन्म होने के कारण हिन्दी रामायण के सुप्रसिद्ध रचयिता गोसाईं तुलसीदासजी के वे वंशधर माने जाते थे*। ये कुछ ही दिनों के थे जब कि इनकी माता का देहान्त हो गया, और इनकी बड़ी बहिन तीर्थदेवी तथा इनकी बूढ़ी फ़ूफी धर्मकौर ने इन्हें पाला। ज्योतिषियों की भविष्यवाणी थी कि यह विचित्र बालक अपने वंश में अलौकिक बुद्धिशाली पुरुष होगा। महाभारत और भागवत आदि पुराणों की कथा सुनने में इनका मन बहुत लगता था। सुनी हुई कथाओं पर बालप्रौढ़ मति से ये मनन किया करते थे, और जो शंकायें उठती थीं, उनका उचित समाधान करते थे। इनके गाँववाले इनकी असाधारण बुद्धि, मननशील स्वभाव और एकान्त प्रेम के साक्षी हैं। ये बड़े तेज़ विद्यार्थी थे। एन्ट्रेंस (मैट्रिक) से लगाकर ऊपर तक विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में सदा ही इन्होंने अति उच्च स्थान प्राप्त किया। बी० ए० में ये प्रथम हुए। गणित में तो विशेषतः प्रवीण थे, और इसी विषय में बहुत अधिक नम्बरों से एम्० ए० उत्तीर्ण हुए। लाहौर फ़ोरमैन

* अब बड़ी जाँच करने के बाद पता चला है कि जिन तुलसीदासजी के वंश से तीर्थरामजी थे, वह रामायण के रचयिता नहीं, किन्तु पंजाब प्रान्त के सुप्रसिद्ध योगी थे, जिनकी गद्दी सीमाप्रान्त में चित्राल के समीप सवात नगर में थी। पूरी जाँच पहले न होने के कारण तब भूल से वे रामायण के रचयिता समझकर लिखे गये।

क्रिश्चियन कालेज में इसी विषय के अध्यापक नियुक्त हुए और दो वर्ष तक काम करते रहे। कुछ समय तक लाहौर ओरियंटल कालेज में भी रीडर का काम किया। अपने सब शिक्षकों के ये स्नेहपात्र थे और वे सदा इन पर बड़ी कृपा करते थे। सरकारी कालेज के प्रिन्सिपल (प्रधानाध्यापक) मि० डबल्यू० बैल इनकी विशेष योग्यताओं के कारण इन्हें अति श्रेष्ठ मानते थे और चाहते थे कि ये प्रान्तीय सिविल सर्विस की परीक्षा में बैठें। किन्तु गोसाईं तीर्थराम की निज इच्छा गणितविद्या पढ़ाने की थी, जिसका अध्ययन इन्होंने असीम परिश्रम से किया था। उन दिनों राजकीय छात्रवृत्ति लेकर (जिसके वे उस वर्ष अधिकारी थे) "ब्लू रिबन" (Blue Ribbon) प्राप्त करने की इच्छा से इन्होंने कैम्ब्रिज जाने का भी विचार किया था। किन्तु एक "सीनियर रैंगलर" (Senior Wrangler) मात्र होने की अपेक्षा किसी दूसरी ही लाइन में कहीं अधिक महापुरुष होना इनके भाग्य में था, इसलिये छात्रवृत्ति एक मुसलमान युवक को मिल गई। अस्तु। जुलाई १६०० में इन्होंने वनगमन किया और एक वर्ष के भीतर ही संन्यास ले लिया।

स्वामी राम के देह त्याग से भारतीय प्रतिभा का एक अत्यन्त उज्ज्वल रत्न लोप हो गया। भारत की प्राचीन स्वर्णमयी कान्ति के साथ उनका चरित्र चमक रहा था और उसके अपूर्व भावी गौरव की सूचना दे रहा था। उनके पुण्यदर्शन से मनुष्य में नव-जीवन का संचार होता था। उनको देखकर समस्त परिच्छिन्नता और लघुता दूर हो जाती थी, तथा मानवीय बुद्धि तुरन्त गगनभेदी दिव्य सीमा तक पहुँच जाती थी। उनके दर्शनमात्र से लोगों में नये विचार उदय हो जाते थे और नवीन भावनाएँ उठकर हृदय में लहराने लगती थीं। लोग अपनी सहानुभूति वा प्रेम का क्षेत्र बढ़ा हुआ पाते थे और उनके मनों को ऐसा

अनुभव होता था कि मानो शीतल मन्द पवन के झकोरे उनकी ओर आ रहे हैं और अपने साथ अटल अक्षोभ, स्वर्गीय सुख, अथाह शान्ति और आनंद ला रहे हैं, जिससे मनुष्य के आत्मा के विरुद्ध सब संशय व कुतर्क ऐसी निद्रा में सो जाते हैं कि जिसके बाद वे आत्मा की उस पारलौकिक सत्ता में जिसका कि स्वामी राम उपदेश करते थे, अचल निश्चय और अटल विश्वास के रूप में ही बदल जाते हैं।

स्वामी राम सदा प्रफुल्लित रहते थे। जिस प्रफुल्लता को कोई क्षीण नहीं कर सकता था, वह उनके बाँटे पड़ी थी। अमेरिका की 'ग्रेट पैसिफ़िक रेलरोड कम्पनी' के मैनेजर ने उन्हें 'पुलमैन कार' में स्थान देते हुए कहा था कि "उनकी मुस्कियाँ अनिवार्य हैं।" सेंट लुई की प्रदर्शिनी में धार्मिक संघ (Religious League) के महान् समारोह के सम्बन्ध में स्थानीय समाचार पत्र ने लिखा था कि समारोह में एकमात्र चमत्कार-पूर्ण व्यक्ति स्वामी राम थे। परस्पर बातचीत में शंकाओं और प्रश्नों का उत्तर देते हुए वे देर तक बराबर हँसा करते थे, जिससे मानो यह सिद्ध होता था कि ईश्वर और मनुष्य-सम्बन्धी यावत् प्रश्नों के उत्तर में उनका केवल मनोहर व्यक्तित्व और सुन्दर चित्त ही यथेष्ट हैं। उनकी मुस्कराहट बिजली का प्रभाव रखती थी। वे लोगों में रोमांच पैदा कर देते थे। वे राम बादशाह कहलाते थे, क्योंकि अपने उल्लास-पूर्ण जीवन से उन्होंने सांसारिक सम्राटों की सजधज वस्तुतः उपहास्य बना दी थी। एक बार उन्होंने लिखा था, "मैं बादशाह राम हूँ, जिसका सिंहासन तुम्हारा हृदय है। जब मैंने वेदों के द्वारा प्रचार किया था, जब मैंने कुरुक्षेत्र, जेरूसलम और मक्का में उपदेश दिया था, तब लोग मुझे नहीं समझे थे। अब फिर मैं अपनी आवाज़ उठाता हूँ। मेरी आवाज़ तुम्हारी आवाज़ है 'तत् त्वम् असि'। जो कुछ

तुम देखते हो सब तुम्हीं हो। कोई शक्ति इसे रोक नहीं सकती, कोई राजा, प्रेत या देव इसके सामने ठहर नहीं सकता। सत्य की आज्ञा अटल है। क्षीणचित्त मत हो। मेरा शिर तुम्हारा शिर है, इच्छा हो तो काट लो, किन्तु इसके स्थान पर सहस्रों और निकल आवेंगे।"

वे पूर्ण प्रेम थे। अति छोटे पदवाले से भी उनका व्यवहार अत्यन्त कोमल होता था। वे अपनी पुस्तकों, क़लमों, पेंसिलों, छुरियों और आरियों तक को जीवधारियों की भाँति सम्बोधन करते थे, और अनेक बार मैंने उनको उन्हें चुमकारते, पुचकारते तथा बड़े स्नेह से बातचीत करते देखा है। उनके शब्द और विचार प्रत्येक वस्तु को ऊँचा बना देते थे। उनके लिये कोई ऊँचा-नीचा, जानदार या बेजान नहीं था। प्रत्येक वस्तु उनके लिये अपने बाह्य रूप से कुछ अधिक थी, अर्थात् परमेश्वर थी। जिस किसी से उनकी भेंट होती थी, उससे वे 'एकता' की हृदय और अन्तःकरण से चेष्टा करते थे, और उससे अपने आपकी सम्पूर्ण अभिन्नता का अनुभव करते थे। और इस प्रकार पहले उसके हृदय को वशीभूत करके फिर अप्रत्यक्ष संकेतों से सत्य के नाम में वे उसकी बुद्धि पर प्रभाव डाल देते थे। नेत्र बन्द कर, गहरी और निर्मल सच्चाई के गम्भीर स्वरों से, वे उर्दू और फ़ारसी के अपने कतिपय प्रिय पद्यों का जब पाठ करते थे, तब उनके गुलाबी गालों पर आनन्दाश्रु बहने लगते थे। उन पद्यों का ऐसा प्रभाव उन पर होता था कि प्रत्येक उपस्थित व्यक्ति को प्रत्यक्ष हो जाता था कि राम उनमें बिलकुल डूब गये हैं। घंटों उनकी यह दशा रहती थी। जनसमाज में व्याख्यान देते समय वे अपने पवित्र मंत्र ॐ ॐ को दोहराते हुए अपनी दशा को इतना भूल जाते थे कि उनके अमेरिकन प्रेमियों ने कहा कि शरीर-केन्द्र में वे बहुत ही कम रहते थे, अर्थात् देहाध्यास उनका बहुत

कम था, उनका निवास सदा ब्रह्म में रहता था। कुछ वर्ष हुए अमेरिका के कुछ मनोविज्ञान-शास्त्रियों ने भविष्यवाणी की थी कि स्वामी राम जैसा उच्च आध्यात्मिक विचारों में पूर्णतया लीन और देहाध्यास को नितान्त भूला हुआ पुरुष जो दिन-रात निरन्तर ब्रह्मभाव में निमग्न रहता है, इस देह-बन्धन में अधिक काल तक ठहर नहीं सकता। वे वस्तुतः अपने को भूल गये थे, अथवा देह-सम्बन्धीय स्मृति उनकी शायद बहुत ही थोड़ी रह गई थी। अपना शरीर राम के लिये उच्चतर जीवन का वाहनमात्र था, जैसा कि ईसा के शरीर के सम्बन्ध में उन्होंने कहा था। अमेरिका में राम ने कहा था कि "Life is but the fluttering of the eagle's wings encaged in the body." "जीवन इस शरीर रूपी पिंजरे में बन्द पक्षी के पंखों की फड़फड़ाहट मात्र है।" कोई भी शब्द उनकी मोहिनी आकृति का चित्र नहीं खींच सकता। उनकी दृष्टि आपका उनके प्रति सम्पूर्ण भीतरी प्रेम आकृष्ट कर लेती थी। उनका स्पर्शमात्र शुष्क हृदयों में भी कवियों की सी उमंगें उत्पन्न कर देता था, और मनुष्य के मन-बुद्धि को ब्रह्मानन्द की सुगंधित हरियाली से सुसज्जित कर देता था। सभी महात्माओं के जीवन का यही लक्षण रहा है। पौराणिकों ने अपने काव्यमय वर्णन में इसका मनोहर उल्लेख कैसा उत्तम किया है कि अमुक के आगमन से सूखे वृक्षों में नई पत्तियाँ और कलियाँ निकल आईं, अंगूरों के बाग़ हरे-भरे हो गये, और सूखे सोते मानो हर्षोन्माद में स्फटिक जल की धारा बहाने लगे।

समुद्र-यात्रा में स्वामी राम को उनके अमेरिकन सहयात्रियों ने अमेरिकावासी समझा था। जापानी उनसे ऐसा स्नेह करते थे कि मानो वे उन्हीं के देश के हैं। जब वे उनके देश से अमेरिका को चल दिये थे, तब उनके अनेक परिचित जापानियों ने कहा

था कि अब भी हमें अपने कमरों में उनकी विद्युत् मुसक्यान के दर्शन होते हैं। उनके ललाट की चमत्कारिणी विशुद्धता अब भी हमें अपने प्रिय फुजीयामा हिम-शिखर की भाँति याद है। उनका भगवे वस्त्रधारी आकृति, जो वहाँ व्याख्यान दिया करती थी, जापानी चित्रकार को अग्निस्तम्भ प्रतीत हुई, जो श्रोताओं में शब्दों की नहीं, किन्तु जीवनस्फुलिङ्गों की वर्षा कर रही थी। कैलिफ़ोर्निया में ब्रह्मज्ञान की मशाल व हिमालय पर्वत का बुद्धिमान् पुरुष कहकर उनका अभिनन्दन किया गया था, जिनके अनुभव के सामने सभ्यता के प्राचीन क्रम का उलट जाना अनिवार्य था। वे अमेरिका की सब रियासतों में घूमे और उतने ही व्याख्यान दिये, जितने दिन कि वे कोलम्बिया में ठहरे। उन्होंने कहा—"मैं बनाने आया हूँ, बिगाड़ने नहीं।" ईसाई गिरजों में उन्होंने व्याख्यान दिये। उनके व्याख्यान वैसे ही नवीन होते थे, जैसे व्याख्यानों के अपूर्व नाम। डेनर में बड़े दिन की संध्या को उनके व्याख्यान का विषय था, "Every day a New year's day and every night Xmas night." "प्रत्येक दिन नये वर्ष का दिन है और प्रत्येक रात बड़े दिन की रात है।" एक अमेरिकन ने उनके व्याख्यानों का संक्षिप्त वर्गीकरण निम्नलिखित नाम देकर किया है:—

(१) तुम क्या हो? (२) आनन्द की कथा और घर। (३) पाप का निदान, कारण और उपाय। (४) प्रकाश वा अनुभव। (५) आत्मविकास। (६) ज्योतिषां ज्योति। (७) दृष्टि-सृष्टिवाद और वस्तुस्वातंत्र्यवाद का समन्वय। (८) प्रेम व भक्ति द्वारा ईश्वर-साक्षात्कार। (९) व्यावहारिक वेदान्त। (१०) भारत।

और अमेरिका में दिये हुए अपने उपदेशों का सार स्वयं राम ने इस प्रकार दिया है:—

(१) मनुष्य ब्रह्म है।

(२) संसार उसकी सहकारिता करने को बाध्य है, जो सम्पूर्ण संसार से अपनी एकता अनुभव करता है।

(३) शरीर को उद्योग में और मन को प्रेम तथा शान्ति में रखने का ही अर्थ है यहीं अर्थात् इसी जीवन में पाप और दुःख से मुक्ति।

(४) सबसे एकता (At-one-ment) प्रत्यक्ष अनुभव से हमें निश्चल निश्चिन्तता का जीवन प्राप्त होता है।

(५) सकल संसार के धर्मग्रन्थों को हमें उसी भाव से ग्रहण करना चाहिये, जिस भाव से हम रसायनशास्त्र का अध्ययन करते हैं और अपने अनुभव को अन्तिम प्रमाण भी मानते हैं।

दो वर्ष से भी कम में उन्होंने अमेरिका में कितना कार्य किया, अथवा जिन अमेरिकनों को उनका संसर्ग हुआ उन पर कैसे प्रभाव पड़े, इसका सविस्तर वर्णन मैं यहाँ नहीं कर सकता। किन्तु अमेरिका से भारत को लौटते समय बिदाई की सभा में कुछ अमेरिकनों ने निम्नलिखित जो कविता पढ़ी थी, उसे बिना उद्धृत किये मैं नहीं रह सकता—

Like Golden Oriole neath the pines
Rama chants to us his blessed lines.
Rich freighted with the Orient's lore,
He spreads it on our western shore.
A bird of passage on the wing,
He brings a message from the King.
And this his clear resounding call—
All, all for God, and God for all!
His message given he flits afar
Like swiftly coursing meteor.

But leaves of heavenly fire a trace,
A new born love for all his race.
Adieu, Sweet Rama, thy radiant smile,
A Soul in Hades would beguile.
And though we may not meet again
Upon this changing earthly plain,
We know to thee all good must be
For thou art in God and God in thee.

डाल रसाल पै बैठी सो कोयल "राम" हमें नित गाय सुनावत।
शीरीं भरी पंडिताई से बातें हैं पूरब की जो विशेष कहावत॥
देश हमारे प्रतीची कृपा करि हैं उनको विस्तार बढ़ावत।
मारग के तो पंछी हू बने ये संदेश सुरेश को पूरो हैं लावत॥

घनघोर पुकार यों गूँजति है सुन लेइ जो चाहत याहि सुनो।
"है ईश की वस्तु सभी जग की पुनि ईश सभी के सदा ही गुनो"॥
समुझाय संदेश यों दूरि भजे द्रुत तारा है टूटत रात मनो।
पै स्वर्ग की ज्योति को लेश सो छोड़ि चले हेतु स्वजाति के प्रेमदुनो॥

प्रिय राम हमारो है अन्त प्रणाम करू जिमि औरहु बूझि परे।
मृदु हाँसी तुम्हारी अनोखी बड़ी जो निर्जीवहु में नव शक्ति भरे॥
यहि लोक में फेर चहे न मिलें पर दिव्य प्रभा न कभौ बिसरे।
तेरो भलो है सदा ही घनो, हरि राजे तुव में तू हरि में बिहरे॥

मिस्र में मुसलमानों ने उनका हार्दिक स्वागत किया था। वहाँ मसजिद में उनको राम ने फ़ारसी में एक व्याख्यान दिया। दूसरे दिन समाचारपत्रों ने लिखा कि स्वामी राम एक अलौकिक बुद्धिशाली हिन्दू हैं और उनसे मिलना बड़े ही गौरव की बात है। टोकियो के राजकीय विश्वविद्यालय के संस्कृत कालेज के अध्यापक टका कुट्सू ने कहा था कि राम ऐसे किसी

अन्य सच्चे भारतीय तत्त्ववेत्ता के दर्शन मुझे आज तक नहीं हुए। ऐसा उनका प्रेम था। भारत लौटने पर मथुरा में उनके कुछ भक्तों ने एक नया समाज चलाने की प्रार्थना की थी। इस पर··राम ने कोरा जवाब दिया और कहा कि भारत में जितनी सभायें काम कर रही हैं, वे सब मेरी ही हैं और मैं उनके द्वारा काम करूँगा। इस समय उन्होंने हर्षोन्मत्त होकर नेत्र मूँद लिये, प्रेममय आलिंगन के चिह्नस्वरूप अपने हाथ फैलायें, और अश्रुपात करते हुए नीचे लिखे शब्द कहे, जो उनके महान विश्वव्यापी प्रेम तथा महान् आत्मिक मौनता पर बड़ा प्रकाश डालते हैं:—"ईसाई, हिन्दू, पारसी, आर्यसमाजी, सिख, मुसलमान और वे सभी जिनकी नसें, अस्थियाँ, रक्त और मस्तिष्क की रचना मेरे प्रिय इष्टदेव भारत भूमि का अन्न और नमक खाकर हुई है, वे सब मेरे भाई हैं, नहीं नहीं, मेरे ही प्राण हैं। कह दो उनसे मैं उनका हूँ। मैं सबको आलिंगन करता हूँ। मैं किसी को परे नहीं करता। मैं प्रेम हूँ। प्रकाश की भाँति प्रेम प्रत्येक वस्तु को प्रकाश के चमत्कार से आच्छादित करता है। ठीक ठीक मैं प्रेम की कान्ति और प्रवाह के अतिरिक्त और कुछ नहीं हूँ। मैं सबसे समान प्रेम करता हूँ।"

"I shall shower oceans of love
And bathe the world in joy !
If any dare oppose, welcome ! come !
For I shall shower oceans of love.
All societies are mine ! mine welcome ! come !
For I shall pour out floods of love.
Every force is mine, small or great, welcome ! come !
O ! I shall shower floods of love
Peace ! Peace !!"

बनि घनघोर मेघ घेरि के गगनमंडल, बड़े-बड़े बूँदन सों प्रेम बरसावेंगे।
साहस बढ़ाय के करि है प्रतिरोध कोऊ, बाँह धरि वाको वाही प्रेम में न्हवावेंगे॥
सभायें बड़ी औ भारत समुदाय जेते, उन सों कदापि नाहीं बिलग बनावेंगे।
शक्तियाँ हैं जौन स्वागत सभी को आज, शान्ति सुख प्रेम की बहिया बहावेंगे॥

राम विचित्र पुरुष थे। वे वर्तमान और भावी मानव-जाति की विश्वव्यापी एकता में हृदय और चित्त से अपने को विलीन कर देना चाहते थे। जो अद्भुत अभेदता उनकी अंग्रेज़ी कविता में कुछ स्पष्ट हुई है, वह उनके इस लोकयात्रा के अल्पकाल का महान् कार्य है। पूर्ण आत्मानुभव की प्राप्ति-निमित्त उन्होंने दिन-रात प्रयत्न किया। जहाँ कहीं उनकी दृष्टि पड़ी, उन्हें सब कुछ ईश्वरमय दिखाई दिया। वे अनुभवी योगी थे। उनमें बुद्धि और भाव का अत्यन्त अनुशीलन मिश्रित रूप से था। रावी नदी के तट पर उनकी अनेक रात्रियाँ योगाभ्यास में बीतीं। अनेक रातों वे इतना रोये कि सवेरे बिछौने की चद्दर भीगी मिलती थी। कहा जाता है कि अपने पूर्वाश्रम में जब वे कट्टर ब्राह्मण थे और उनका हृदय प्रेम वा भक्ति के संस्कारों से परिपूर्ण था, उन दिनों सनातनधर्म-सभाओं में भक्ति या कृष्ण पर व्याख्यान देते समय उनके मुख से जितने शब्द निकलते थे, सभी आँसुओं में तरबतर निकलते थे। अपनी इस आध्यात्मिक उन्नति की अवस्था में वे कहा करते थे कि अनेक बार जाग्रत् दशा में खुले नेत्रों से मैंने मेघवर्ण कृष्ण को कालीनाग के मस्तक पर नाचते और वंशी बजाते देखा है। बाद को उन्होंने यों कहा था कि "यह मन की एकाग्रता की विशेष अवस्था थी, मेरी ही कल्पना के प्रत्यक्ष रूप का मेरे ही मन के उतावलेपन के सिवाय यह और कुछ भी न था।"

वे जन्म से साधु थे। छात्रावस्था में भी उनका जीवन घोर दीनता और अति भयंकर परिश्रमों एवं निःशब्द यातनाओं,

कठोर तथा दुस्सह कायक्लेशों में बीता। यहाँ तक कि कभी कई-कई दिन तक लगातार उन्हें भोजन भी नसीब नहीं होता था। आहार की कमी के होते हुए भी वे आधी-आधी रात तक पढ़ने में परिश्रम करते थे, और प्रायः गणित के प्रश्नों में ऐसे तन्मय हो जाते थे कि उन्हें घंटों का बीतना जान ही नहीं पड़ता था और सवेरा हो जाता था। ऐसा जान पड़ता है कि भविष्य में उन्हें जैसा जीवन व्यतीत करना था, वे जान-बूझकर उसके लिये अपने को तैयार कर रहे थे। अध्यापक होने के पूर्व ही असोम स्वावलम्बन, जिसे वे बाद में निश्चल निश्चिंतता कहते थे, प्रौढ़ विश्वास, कुछ गम्भीर निश्चय और महान् प्रण-शक्ति वे अपने में उत्पन्न कर चुके थे। और ऐसे ही उन्होंने गणितशास्त्रीय मन का विकास भी अपने में कर लिया था कि जो अनुभवसिद्ध तथ्यों की मालूमात के लिखने में यथार्थ, अपनी तर्क-शैली (युक्ति) व विश्लेषण में ठीक और ऐसे ही परिणामों के निकालने में नितान्त स्पष्ट और असंदिग्ध उतरता था। उन्हें पदार्थविज्ञान से प्रेम था और रसायन तथा वनस्पतिशास्त्र का शौक़ था। तत्त्वविज्ञानशास्त्र में विकासवाद उनका विशेष विषय था। उन्होंने समस्त पश्चिमीय और पूर्वीय दर्शन-शास्त्रों का अपने ढंग से पूरा-पूरा अध्ययन किया था। उन्होंने शंकर, कणाद, कपिल, गौतम, पतञ्जलि, जैमिनि, व्यास और कृष्ण के ग्रन्थों के साथ-साथ कांट, हेगल, गेटे, फ़िक्टे, स्पाईनोज़ा, कोम्टे, स्पेंसर, डार्विन, हैकल, टिंडल, हक्सले, स्टार जार्डन और प्रोफ़ेसर जेम्स के ग्रन्थों में भी पारदर्शिता प्राप्त की थी। फ़ारसी, अंग्रेज़ी, हिन्दी, उर्दू और संस्कृत-साहित्यों में वे दक्ष थे। सन् १६०६ ई० में उन्होंने चारों वेदों का अध्ययन किया था और प्रत्येक मंत्र के पूर्ण पंडित थे। वैदिक ऋचाओं के प्रत्येक शब्द का विश्लेषण वे शब्दशास्त्र की

शुद्धता से करते थे। इस प्रकार उन्होंने अपने को विलक्षण विद्वान् बना लिया था। ऐसा प्रतीत होता है कि अपनी आयु के तेंतीस वर्षों के प्रत्येक क्षण का उन्होंने अत्यन्त सदुपयोग किया था। अपने अन्त समय तक वे कठोर परिश्रम करते रहे। अमेरिका में दो वर्ष के प्रवासकाल में, सार्वजनिक कार्यों में घोर श्रम करते हुए भी, प्रायः समस्त अमेरिकन साहित्य उन्होंने पढ़ डाला।

संसार के सब ग्रन्थकारों, अवतारों वा महात्माओं, कवियों और योगियों के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करते समय वे एक अद्भुत रसिकता का परिचय देते थे। उनकी अनोखी तथा निष्पक्ष आलोचना में किसी प्रकार का पाण्डित्य प्रदर्शन, बनावटी अभिमान की नाममात्र छाया, अथवा कोई निस्सार बात नहीं होती थी। बातचीत करते समय वेद से लगाकर किसी नवीन से नवीन मौलिक पंक्ति तक का जो विचार उनके दिल पर चुभ जाता था, वह यथायोग्य उनके विचारों के समर्थन में सहायक ही होता था तथा उन्हीं का अनुभव-सिद्ध सत्य उसे प्रकट करना पड़ता था। वे अत्युच्च कोटि के विद्वान्, तत्त्वज्ञ और ब्रह्मवादी थे। बुद्धि की उन्नति के साथ-साथ वे अपनी आध्यात्मिक उन्नति को भी बड़े ऊँचे शिखर तक पहुँचा सके थे। लाहौर की घनी बस्ती अब उनकी आत्मोन्नति अधिक कर सकने में असमर्थ थी। जो कुछ समय उन्हें मिलता था, वे उसे उपनिषदों और प्राचीन आर्य-ब्रह्मविद्या के रहस्यों के विचार में हिमालय की पहाड़ियों तथा जंगलों में बिताते थे।

हृषीकेश के निकट, ब्रह्मपुरी के घने वन में स्वामी राम का अभीष्ट सिद्ध हुआ था—अर्थात् उन्हें आत्मा का साक्षात्कार हुआ था। यही वह स्थान है कि जहाँ उन्हें मन की उस भयातीत आनन्दमय एकता की प्राप्ति हुई थी कि जिसमें न खेद है और

न भ्रम। "विश्वात्मा को ही जब कोई अपनी आत्मा समझने लगता है, तब अखिल विश्व उसके शरीर का काम देता है।" अपने इस महान् नियम के निरूपणार्थ उसके तथ्यों का संग्रह उन्होंने यहीं किया था। न केवल समस्त प्राचीन दार्शनिकों और योगियों के वे सच्चे सम्राट् और आत्मनिष्ठ (तत्त्ववेत्ता) थे, किन्तु शारीरिक व्यायाम के बड़े भारी पक्षपाती भी थे।

वे स्वयं एक विश्व ब्रह्माण्ड थे, जिसके नगर उनकी ज्योति से बने हुए थे। जिनकी गलियों में बुद्ध भगवान् अब भी अपना भिक्षा-पात्र लिये घूमते थे और हज़रत ईसा अब तक सत्य का प्रचार करते थे। राम के हृदय-आकाश से कोई महापुरुष नहीं लुप्त हो सका। वे ऐसे अमरप्राण स्वरूप थे कि मृतक भी वहाँ पहुँचकर जी उठते थे। इस तेजोमय मन के आकाश में सत्य का प्रकाश स्पष्ट था। उनके प्रकाश की दमक के प्रभाव से जो कोई मनुष्य अपने बड़प्पन, शक्ति तथा बुद्धि-चमत्कार का मिथ्याभिमान भी करता था, उसके हाथ अपनी योग्यता से अतिरिक्त और कुछ भी नहीं लगता था। श्रुतियाँ और स्मृतियाँ, पद्य और गीत, विचार और विषय, तत्वज्ञान और धर्म तथा राजनीति और समाज की समस्यायें ये सब एक साथ ही उनके दिव्य प्रकाश में परस्पर संघर्ष करते थे और राम के अनुभव-ज्ञान के वस्त्र पहनकर सुखप्रद सौंदर्य के साथ वे बाहर निकलते थे। वायुमण्डल, अड़ोस-पड़ोस और समाज पर पूरा प्रभाव पड़ता था, यहाँ तक कि मनुष्य की आकृति तक बदल जाती थी। जल-वायु का प्रभाव पड़ने पर उसके मुखमण्डल की ज्योति तक में स्पष्ट अन्तर पड़ जाता था। कोई भी भावना, कोई भी समस्या, कोई भी साधारण विचार, राम को स्पर्श करते ही, राम की अन्तरात्मा के रहस्यमय प्रभावों से परिवर्तित होकर नये स्वरूप में प्रकट होते थे। जब वे ब्रह्मचर्य पर व्याख्यान देते

थे, तब उस विषय का उपदेश एक ऐसे नये ढंग से होता था, जैसे पहाड़ सूर्य-उदय के समय दिखाई पड़ता है। यज्ञ, प्रेम वा भक्ति, धर्म, आत्मानुभव और आत्मविकास पर उनके लेख पढ़िये, हमें विदित होता है कि जैसी व्याख्या उन्होंने की है, वैसी न तो दूसरे किसी ने की है और न कर ही सकता था। देशभक्ति और उसके सिद्धांत का क्या उन्होंने अनोखा सम्पादन नहीं किया है? मैं शपथ खा सकता हूँ कि वे सूर्य या चन्द्रमा के प्रकाश से तुमको, मुझको, उसको या इसको कदापि नहीं देखते थे। वास्तव में, न सूर्य को और न चन्द्र को ही वे उनके प्रकाश से देखते थे। वे वस्तुओं को अपने आत्मा की ज्योति से देखते थे, अतएव उनके लिये अपने से पृथक् कोई भी पदार्थ नहीं था। वे स्पष्ट कहते थे "सूर्य की लाल किरणें मेरी नसें हैं।" कोई भी वस्तु उनकी दृष्टिगोचर हुई कि उन्होंने परमात्मा का रूप उसे पहनाया और फिर उनको परमात्मा से अतिरिक्त और कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता था। उन्होंने प्रकृति से एक विचित्र नाता जोड़ रक्खा था। उनका मुस्कयाना वर्षाऋतु में धूपवत् था और रोना गरमी की ठीक दोपहर में जलवृष्टिवत् था। मेघ उनके शिर पर छाया रखते थे, छतरी की उन्हें आवश्यकता नहीं थी। वे घने वनों में रहते थे, आधी रात मार्ग-शून्य कन्दराओं में विचरते थे और वहाँ पदार्थों के भीतर इस सुगमता से घुसते थे, जैसे पक्षी हवा में उड़ते हैं।

वे कवियों के भी कवि थे। पहाड़ी नदी का नाद उनके लिये यथेष्ट समागम था। उनके लिये पक्षी वृक्षों की छाया के नीचे प्रकृति के रहस्यों का वर्णन करते थे। विश्व-संगीत उन्हें सुनाई देता था। और उनके परमप्रिय कृष्ण ही इस विश्व-नृत्य और विश्व-समाधि में मूर्तिमान् थे। समुद्र की थिरकती हुई लहरों में, वनों के (वृक्षों के) डोलने में जंगल तथा वनों में उन्हें सार्वभौम सौन्दर्य

दिखाई देता था। प्रकृति के आत्मा (असली स्वरूप) से एक होना ही वे अपना वास्तविक आचरण समझते थे। किसी मनुष्य को इस केन्द्र में डाल दो और फिर उसे वहाँ अकेला छोड़ दो अर्थात् अकेला विचरने दो, तो मनुष्य और सदाचार के सर्वोत्तम हितों को उसके पास आप सुरक्षित समझिये। मनुष्य वहीं गढ़े जा सकते हैं, न कि विद्वत्ता और पाण्डित्य के पुतलीघरों में। वहाँ मनुष्य को बैठकर अपने स्वरूप अर्थात् अपने आत्मा के दर्शन भर कर लेने दीजिये, फिर निश्चय रखिये कि वह अपनी अचल और दुर्जय स्वरूप चट्टान पर खड़ा होगा। "कोई बाहरी चट्टान मुझे आघात नहीं पहुँचा सकती," आत्म-साक्षात्कार ही धर्म है। आत्मशक्ति का यह साक्षात्कार कि "मेरा आत्मा ही वह शक्ति है, जो अखिल विश्व को अनुप्राणित करता है, और जड़ तथा चेतन की प्रत्येक नस की गुप्त शक्ति है," प्रत्येक सर्वसाधारण मनुष्य को भी उन महाविजयों के राजमार्ग पर डाल देता है कि जो मनुष्ययोनि में कठिन से कठिन है। मनुष्य की सर्वसफलताओं का यही मूल-मंत्र है। व्यावहारिक ब्रह्मविद्या के मंदिर के उपासकों के सिवाय और किसी का भी हृदय शुद्ध, मुखमण्डल प्रभा-पूर्ण और स्वभाव हँसमुख नहीं हो सकता। मेरी ब्रह्मविद्या कोई मत नहीं है, न पंथ वा संप्रदाय ही है, बल्कि जीवन के शाश्वत अनुभव से श्रेष्ठ बुद्धिमानों द्वारा सिद्ध किये हुए परिणामों का समूह है।

सर्वोत्तम मानवीय काव्य उन्होंने प्रकृति में ही पढ़ा था, और सविस्तर शीतल हिम और पहाड़ी दृश्यों के सिवाय उनके हृदयाग्नि को कौन बुझा सकता था। किसी एक घर में रहना उन्हें अच्छा नहीं लगता था। सबसे अधिक सुखी वे तभी होते थे, जब हिमालय के बनों में नेत्रों को अर्ध बन्द किये वे विचरते थे और महान् पर्वतराज की ओर कनखियों से देखते थे।

वे अपने समय के वेदान्त के एक बहुत बड़े आचार्य थे। वे समस्त हिन्दू धर्मग्रंथों के प्रत्यक्ष प्रमाण थे। विश्वात्मा से अभेदता रखनेवाले श्रेष्ठ हिन्दुओं के वे आदर्श गौरव थे। बुद्ध-धर्म (Law) के वे महान व्याख्याता थे। पूर्ण सदाचार, पूर्ण संयम और धर्माचरण के वे पक्षपाती वा प्रचारक थे, और मनोविज्ञान को मानव-चरित्र का पथ-प्रदर्शक बताते थे। उच्च कोटि का परोपकार उनके चित्त का साधारण स्वभाव था। वे दिन-रात कार्य और श्रम में लगे रहते थे, किन्तु अन्य लोगों की तरह अपना एक क्षण भी हिन्दू जनता की दशा सुधारने में नष्ट नहीं करते थे। उनका कथन था:—"केवल एक रोग है और एक दवा। राष्ट्र केवल दैवी विधानानुकूल से नीरोग और स्वाधीन किये जा सकते हैं। इसीसे लोग ऋषि और देवों से बढ़कर बनाये जा सकते हैं। ईश्वर में स्थित हो; बस सब ठीक है; दूसरों को ईश्वर में स्थित करो, और सब ठीक हो जायगा; इस सत्य में विश्वास करो, तुम्हारी रक्षा होगी; इसका विरोध करो, तुम कष्ट पाओगे।" वे अपने श्रम के लिये कोई पुरस्कार नहीं चाहते थे। अमेरिका से लौटते समय उन्होंने वहाँ के अपने काय-प्रशंसात्मक पत्रों की गठरी समुद्र में फेंक दी थी। अपनी मातृ-भूमि की ओर से अमेरिका में जो कार्य उनसे हुआ था, उसका ब्योरा केवल एक बार अमेरिका जाने ही से प्रकट होगा। अन्त में यह कहा जा सकता है कि ऐसे अलौकिक बुद्धिमानों का आगमन इस संसार में अल्प काल के ही लिये होता है। वे अपनी कल्पना को पूरा करने को नहीं, किंतु दूसरों को राह सुझाने के लिये आते हैं। बिजली की चमक की तरह उनका कार्य केवल संकेतात्मक होता है, पूर्ति करने द्वारा कदापि नहीं। वे मनुष्य को राह दिखानेवाले कुछ सूत्र बताकर चंपत हो जाते हैं। इस प्रकार का प्रत्येक महापुरुष अपने जन्म-काल में

कुछ आवश्यक निर्माणात्मक शक्तियों का केन्द्र होता है। वे अपने विचित्र ढंग से मनुष्यों का प्रेम अपनी ओर खींच लेते हैं और जब लोग उन पर निर्भर करने लगते हैं, तब वे लोगों को बड़ी ही व्याकुलता की दशा में छोड़कर चल बसते हैं, ताकि लोग सावधान हों और अपने पैरों पर खड़े हों।

मनुष्य की आन्तरिक एकतावाला स्वामी राम का सिद्धांत, इस भारतरूपी छोटे से संसार के समस्त परस्पर विरोधी धर्मों और सम्प्रदायों का निस्संदेह एक बड़ा अपूर्व समन्वय है। उनकी प्रेम की शिक्षा राष्ट्रीय और व्यक्तिगत उद्योगशक्ति के अपव्यय रोकने की दवा है, जिससे कार्य और कार्यशीलता की मात्रा बढ़ती है। पदार्थ-विज्ञान और धर्म के बिखरे हुए समस्त तथ्यों का संयोग-रूप उनका चरित्र मानवीय आचरण के लिये नित्य आदर्श है। उनका एकमात्र सार्वजनिक कार्य जनता को उनको अपनी अनभिज्ञता और दासता से मुक्ति कराना था। उनका व्यक्तित्व मनुष्य-मात्र के लिए स्वाधीनता और स्वतंत्रता का आकाशी दीपक था। क्योंकि उनका गान इस प्रकार था—

1

No, no one can tone me,
Say, who could have injured,
And who could atone me?
No, no one can tone me.

2

The world turns aside
To make room for me;
I come Blazing Light!
And the shadows must flee.

3

I come, O you ocean!
Divide up and part;
Or parched up, & scorched up,
Be dried up, depart.

4

O mountains, Beware!
Come not in my way;
Your ribs will be shattered
And tattered to-day.

5

O Kings and Commanders
My fanciful toys !
Here's a Deluge of Fire,
Line clear ! my boys !

6

Advisers and Counsellors
Pray, waste not your breath,
Yes, take up my orders,
Devour up, ye Death.

7

Go, howl on, O winds,
O my dogs ! howl free,
Beat, beat, Storms !
O my Bugles ! blow free.

8

I ride on the Tempests,
Astride on the Gale,
My Gun is the Lightning,
My shots never fail.

9

I chase as an huntsman,
I eat as I seize,
The hearts of the mountains,
The lands and the seas.

10

I hitch to my chariot
The Fates and the Gods,
With thunder of cannons
Proclaim it abroad.

11

Shake ! shake off Delusion,
Wake ! Wake up ! Be free.
Liberty ! Liberty !
Liberty ! Om."

सकहि हमहिं को क्षति पहुँचाई, करे पूर्ति अस नहिं क्षमताई।
सके मनाय हमें को भाई, कुपित करे नहिं यह मनसाई ॥ १ ॥
हटत देख मोहि जग एक ओरा, छोड़न हित शुभ मारग मोरा।
जगमग ज्योति हमारे आवत, सगरी छाया आप परावत ॥ २ ॥
सुन सागर अब मोर अवाई, बीच फाटि करु मारग भाई।
अथवा जर भुनि बन जा छारा, भगे बिना नहिं तव निस्तारा ॥ ३ ॥
सुनहु कान दे भूधर मोरी, मारग त्यागि हटहु एक ओरी।
कुशल नहीं नतु तुमरी आजू, गरद मिलहि सब अस्थि-समाजू ॥ ४ ॥

सेनानायक नृपति सब मम क्रीड़ा के लाल।
बहिया है यह वह्नि की भाग बचहु बेहाल ॥ ५ ॥
पारिषद हु अरु सचिव समाजा, बकहु व्यर्थ कृपया नहीं आजा।
अवशि करहु मम आज्ञा पालन, काल करहु भक्षण दुहुँ गालन ॥ ६ ॥
पवन जाइ गरजहु अति घोरा, कूकर मम भूकहु बरजोरा।
आँधी चलहु भयंकर भारी, भोरि दुंदुभी बजहु सुधारी ॥ ७ ॥
पवन प्रचण्ड हमारो वाहन, अन्धड़ चढ़े चलत हम राहन।
है बिजली बन्दूक हमारी, लक्ष्य न चूकत हौं गुणधारी ॥ ८ ॥
मनो अहेरी पाछे धावत, करत कौर ज्यों ही धरि पावत।
गिरिवरगण के हृदय महन्ता, भूमि खण्ड औ जलधि अनन्ता ॥ ९ ॥
तोप शब्द घोषित करहु दूरि-दूरि सब जाय।
भाग्य और देवन सबहिं रथ निज लेहुँ झुलाय ॥१०॥
उठहु जगहु हे मीत ! त्यागि देहु माया सबल।
ॐ स्वाराज्य पुनीत जपहु सदा मानस विमल ॥११॥

अपने ही तत्त्वज्ञान (वेदान्त) पर उनकी अन्तिम घोषणा इस प्रकार है —

Pushing, marching labour and no stagnant
Indolence;
Enjoyment of work as against tedious
drudgery;
Peace of mind and no canker of Suspicion;
Organisation and no disaggregation;
Appropriate reform and no conservative custom;
Solid real feeling as against flowery talk;
The poetry of facts as against speculative fiction;
The logic of events as against authority of
departed authors;

Living realization and no mere dead quotations,
Constitute Practical Vedanta.

जड़ आलस को काम कह चलत बढ़त श्रम नेम ।
बेमन की तजि चाकरी सुघर काज सों प्रेम ॥
शंक के कीट भगाय के दूरि सुशान्त अलापन में मन रावें ।
नित छोड़ि विघातन को बद रंग सुधारु सवारन को रस चाखें ॥
हैं साँचे सुधारन के मद भीजे औ लोक की रीति को नाँव न भाखें ।
बनावें नहीं मुख सों बतियाँ लहरें गहरी हियरे अभिलाखें ॥
साँची बातें जोरिके काव्य करे नव रंग ।
त्यागि कल्पना-डोरि को सेवत तथ्य पतंग ॥
हम देते नहिं मृतन के ग्रंथन केर प्रमाण ।
तरकावलि घटनान की सकल शास्त्र को प्राण ॥
जीवित अनुभव घनघटा बरसौ तरक सुनीर ।
करों किनारे बाँधके अवतरणन बेहीर ॥

किसी व्यक्तित्व और दलबंदी से व्याकुल व क्षुभित न होकर जो महावाक्य अर्थात् अहं ब्रह्मास्मि पर निरन्तर मनन से एकाग्रता और समाधि होती है, वह स्वतः ही शक्ति, स्वतंत्रता और प्रेम में परिणत हो जाती है। यह असीम ब्रह्मत्व जो देह के प्रत्येक रोम में फड़क रहा है, यह शक्तिशाली अद्वैत, यह प्रबल भक्ति, यह प्रज्वलित ज्योति ही है, जिसे शास्त्र अचूक ब्रह्मशर कहते हैं।

हे डगमग, चंचल, संशयात्मक चित्तो! उत्साह-शून्य धर्मपरायणता और विभ्रमपरायणता को अब छोड़ो। सब प्रकार का सन्देह और 'अगर मगर' निकाल डालो, सब मत-मतान्तर तुम्हारी ही सृष्टि हैं। सूर्य चाहे पारे की थाली सिद्ध हो जाय, पृथ्वी उदराकार या खोखला मण्डल भले ही प्रमाणित हो जाय, वेद सम्भव है, पौरुषेय ठहराये जा सकें, किन्तु तुम ईश्वर के

सिवाय और कुछ नहीं हो सकते, और कुछ नहीं हो सकते। तुम्हारी ईश्वरी भावना से निकला हुआ एक भी स्वर वा शब्द घास की पत्तियों, बालू के कणों, धूलि के बिन्दुओं, हवा के झकोरों, वर्षा की बूँदों, पक्षियों, पशुओं, देवताओं और मनुष्यों को ग्रहण करना पड़ेगा। गुफाओं और वनों पर वह गर्जेगा, झोपड़ियों और गाँवों में घनघनायगा। बस्तियों और गलियों में गूँजेगा, नगरों से नगरों में जायगा, तथा समस्त संसार को परिपूर्ण और रोमाञ्च कर देगा। वाह री स्वाधीनता! स्वतंत्रता!

किसी नदी के पहाड़ी सोतों को सुमेरु के विपुल खज़ानों से भर दो, फिर उस नदी की सब शाखायें, धारायें और नहरें खेतों को समृद्धिशाली करने के लिए खूब सींचती हुई भरपूर बहेंगी। जीवन के सोते, प्रेम के मूल अर्थात् उद्गम स्थान और प्रकाश व सुख के झरने, अनन्त शक्ति, पवित्रता और ईश्वरभावना, इन सबको परिच्छिन्नात्मा का आलिंगन करने दो, और उसे स्थानच्युत करने दो, उसके भावों को तरबतर करने दो, मन को परिपूर्ण करने दो, फिर हाथ, पैर, नेत्र, नहीं-नहीं, शरीर की प्रत्येक स्नायु, वरन् अड़ोस-पड़ोस तक एकस्वरता वा एकता का स्वर्ग सभी अवश्य उत्पन्न करेंगे और शक्ति की बाढ़ को जगमगा देंगे।

राजसिंहासन पर नरेश की उपस्थिति-मात्र से दरबार में व्यवस्था स्थापित हो जाती है। इसी प्रकार से मनुष्य के अपने ईश्वरत्व का, अपनी निजी महिमा का आश्रय लेते ही समस्त जाति में यथाक्रम और जीवन का सञ्चार हो जाता है।

ऐ अल्प विश्वासियो! जागो! अपने पुण्य प्रताप में जागो! और तुम्हारी निजी राजकीय तटस्थता की एक दृष्टि, तुम्हारी दिव्य निश्चितता का एक कटाक्ष रौरव नरकों को मनोहर स्वर्गों में बदल देने में पर्याप्त होगा।

Come home,
O wanderer, home! Om! Om!!

घर आ घर ! ओ, परिव्राजक ! घर आ घर ! ॐ ! ॐ !!

ऐ मन्दस्पन्द वायु ! चलो, ऐ पवनो ! इन शब्दों के साथ बहो, जिनका उद्देश्य वही है, जो तुम्हारा।

"O laughter! laughter!
Inextinguishable joy and laughter"

आहा ! आनन्द ! आनन्द !! अमिट प्रसन्नता और आनन्द !

स्वामी राम से जापान में किसी ने पूछा, "आपका धम क्या है ?" उन्होंने कवि गेटे (Goethe) के शब्दों में उत्तर दियाः—

"Let me tell you, what is man's suprema vocation
Before Me was no world, 'tis my creation;
It was I who raised the Sun from out the Sea
The moon began her changeful course with me."

घंग्रों कहा नर को शुभ श्रेष्ठ बतावत बात सुनो यह साची।
लोक पताल हुते नहिं एकहु सृष्टि जिती हम ही यह राची॥
ऐंचि समुद्र सों ऊँचो कियो तब ज्योति दिवाकर की जग नाची।
थे द्विजराज अपाहिज दीन वै भये गतिशील हमें पुनि जाँची॥

तो क्या सचमुच राम की मृत्यु हो गई ? वह राम, जिन्होंने अपने शरीर के विसर्जन के कुछ ही क्षणों पूर्व लिखा था किः—

"ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, गंगा, भारत, इत्यादि !

ऐ मौत ! बेशक उड़ा दे मेरे इस एक जिस्म (तन) को। मेरे और अजसाम (तन) ही मुझे कम नहीं। सिर्फ़ चाँद की किरणें चाँदी की तारें पहन कर चैन से काट सकता हूँ। पहाड़ी नदी-नालों के भेस (वेष) में गीत गाता फिरूँगा। बहरे-मव्वाज (समुद्र की तरंगों) के लिबास (वस्त्रों) में मैं ही लहराता फिरूँगा।

मैं ही बादे-ख़ुश-ख़राम (मन्दस्पन्द वायु) नसीमे-मस्तानागाम (मस्त चाल पवन) हूँ। मेरी यह सूरतें-सैलानी (भ्रमणशील मूर्त्ति) हर वक़ रवानी (गति) में रहती है। इस रूप में पहाड़ों से उतरा; मुरझाते पौदों को ताज़ा किया। गुलों (पुष्पों) को हँसाया, बुलबुल को रुलाया, दरवाज़ों को खटखटाया, सोतों को जगाया, किसी का आँसू पोंछा, किसी का घूँघट उड़ाया। इसको छेड़, उसको छेड़, तुझको छेड़। वह गया, वह गया। न कुछ साथ रक्खा, न किसी के हाथ आया।"*

* यह लेख मूल उर्दू में लिखा है, किन्तु यहाँ यथाशब्द इसलिये रक्खा है कि उर्दू से परिचित हिन्दी-भाषा-भाषी इसका मूल भाषा से आनन्द ले सकें। अन्य पाठकों को हिन्दी-शब्दों की टिप्पणी से अर्थ स्पष्ट हो जायगा। इस अन्तिम लेख की फ़ैक्समिली अर्थात् फ़ोटो भी लीग के दफ़्तर से मिल सकती है।

आत्मानुभव के साधन

(Aids to Realisation)

श्री स्वामी रामतीर्थ ।



SHRI SWAMI RAMA TIRTHA

DEHRADUN

1905.

Shukla Press, Lucknow.

स्वामी रामतीर्थ

नित्य-जीवन का विधान

(देह-त्याग से कुछ ही मास पहले स्वामी राम से कुछ एक पत्र अंग्रेज़ी भाषा में श्रीस्वामी नारायण को लिखे गये थे, जिनको तत्पश्चात् स्वयं स्वामी राम ने प्रकाशनार्थ एक उत्तम शृंखला में विस्तार देकर संपादित कर दिया था, और जो फिर पाँचवों आवृत्ति की अंग्रेज़ी जिल्द तीसरी के आरम्भ में उक्त नाम से प्रकाशित हुए)

1. The dear ones part,
The foes depart,
Relatives die,
*Get Snapped all ties.
Our systems gay
May have their day
And pass away.
The trees decay.
Birds merrily play
But fall a prey.
The flowers fade,

* (Get snapped the ties) alternate reading.

Light turns to shade,
Our loves are changed,
Beauties deranged,
Names, fames do wane,
All glory is vain!
Fickle, transient is all
This show, it palls.
All objects sweet
Attract but cheat.
They treat, deceive, defeat.

II. Any thing the best.
We choose for rest;
The last, the first,
That we choose to trust
When it feels our toes,
Lo ! down it goes.
No sooner we love
Than things dissolve,
Of confiding we think
And in foam we sink.

III. Is all at last
A dream of past ?
Is nothing true,
He, I, or you ?
Is all a myth,
This kin and kith ?
Oh ! where shall I turn ?
To whom return?

१ बिछुड़ते हैं प्रियजन, अलग होते दुश्मन।
मरे जाते हैं बन्धु, मिटते हैं बन्धन॥
हमारी प्रणाली जो सुन्दर बनी हैं।
भले ही रहें वा बिगड़ जावें इक दिन॥
नसेंगे ये कदंब; औ कलरव मचाते।
ये पक्षी भी दुनिया से उठ जायँ इक छन॥
मुरझा जायँगे फूल, फूले हैं जो आज।
छाया से ज्योति का होता परिवर्तन॥
बदलतीं हमारी प्रणय प्रीतियाँ भी।
वो सुन्दर स्वरूपों का होता विमर्दन॥
नाम सम्मान होते दुनिया के हैं नष्ट।
सब दिखावट, विभव, हाट हैं व्यर्थ अरु भ्रष्ट॥
क्षणिक हैं सभी, है न इनमें कोई बल।
है दुनिया तमाशा जो लेती हमें छल॥
ये सुन्दर मोहक वस्तु सभी, प्यारी जो मन को लगती हैं।
पहले अपना मन हाथ में कर, छल से फिर मार गिराती हैं॥

२ चाहे सर्वोत्तम कुछ होवे, जिसको आधार बनाते हैं,
होवे वह प्रथम चाहे अन्तिम जिस पर विश्वास बढ़ाते हैं।
जैसे ही करते स्पर्श चरण वे झट ही क्षीण हो जाते हैं,
हम जैसे प्यार लगे करने, प्रिय पात्र तुरत भग जाते हैं॥
हम सोचा करते मन ही मन, विश्वास करें इन पर हम जब,
इतने में बुल्ला फूट पड़े, फिर डूब चलें झग में हम सब॥

३ क्या सचमुच में जो कुछ भी है—
वह सब अतीत का स्वप्ना है?
क्या 'मैं', 'तुम', 'वह' का भेद सभी,
कुछ भी नहीं किञ्चित् ही सत्य है?

The heart that burns,
The breast that yearns ?
Oh ! unrequitted Love !
Oh ! innocent stricken Dove !

IV. See, in this scene of changing shows
There is a changeless One that glows,
In seeming death, decay and pain,
It changes dress but comes again.
Love That, nor dress ; love Him, nor things,
He changes the dress and flings ;
Old garments gone,
Fresh forms puts on.
He is neat and clean
And whenever seen.
New forms He wears
Unthought of, rare.
One order passed, another came,
In both is He, the same.
How sweet is loss, privation !
He bears Himself, 'tis Revelation.
How sweet His stripping grace !
Still sweeter the new face !
The sky, the breeze, the river, rose
Such veils of gauze for self He chose.
Hide as Thou mayst, I feel Thee.
Covers don't conceal but reveal Thee.
The forms are chased by one another
That we may see the One they cover.

क्या प्रिय परिजन भी सब मिथ्या हैं?
हा दैव! किधर तब मैं जाऊँ?
यह व्याकुल वत्त, हृदय विदग्ध—
किसे समर्पित कर आऊँ?
दुनिया में है प्रेम निरर्थक; कोई न प्रतिफल हाय!
'हंस' बिचारा दोष बिना ही यों ही मारा जाय!!

४ दुनिया के सब नज़ारे कैसे बदल रहे हैं;
पै इनमें एक अविकल देखो चमक रहा है।
इन भासमान मृत्यु, दुःख और दर्द में वह
पोशाक भर बदल कर फिर फिर प्रकट रहा है॥
उस पर ही प्रेम रक्खो न कि वस्तु, आवरण पर
नित आवरण बदल कर वह दूर कर रहा है॥
प्राचीन वस्त्र छूटे; नित्य स्वच्छ सुन्दर पहने
देखो अचिन्त्य अनुपम नव रूप धर रहा है॥
पहले प्रपंच टूटे, नूतन प्रकट हुए हैं,
दोनों ही वस्तुओं में, वह एक सा बसा है॥
दुःख, हानियों में कैसी माधुर्य्य की घटा है,
इनमें ही व्यक्त होता, यों ही वह खुल रहा है॥
उसकी यह नग्नता की शोभा मनोहर क्या!
पर नव-वदन-छटा तो उससे मधुरतरा है॥
पर्दा उसने चुना है निज मुख ढकने को यह झिझरीदार।
मन्द पवन औ गगन, नदी औ कुसुम आदि का सब विस्तार॥
चाहो जैसे छिपो भले ही, मुझसे छिपना है दुश्वार।
पर्दे तुम्हें नहीं छिपाते, उल्टे करते ख़ूब उघार॥
एक रूप के बाद दूसरे इसीलिये बस आते हैं—
देख सकें हम उसको जिसको वे इस तरह छिपाते हैं॥

V.

O what a rosary !
This world, I see,
One bead is told,
You say it dies ;
Another passes and another
and another,
Yet the thread survives.
That thread Divine
Is mine, is mine !
The golden thread I cherish ;
Let pass the *forms* or perish.

VI.

These fleeting forms—
Mere morning charms !
They dawn and die—
Mayavic lies !
These things that seem
Are nothing but dreams,
Of That Eternal Sun,
The Changeless One.

VII.

On foes and friends
I won't depend.
I won't recline
On *shows* divine.
For bodily health,
Or earthly wealth,
What care I ?
My Love and I !
To the seeming things
I will not cling.
These forms of dress—
Mere pawns of chess,
I'll see them all
Not moved at all.
There, that and this
I will not miss.
My Love is found,
It's all around.
Oh ! Him I trust,
Love Him I must.
The One in plurality,
The only Reality !
My all in all
On Him I call !
My friend so true
My *chela*, *Guru*,
My father, child,
My fire-side !
My husband, wife,
My self, my life,
My only right.
The Light of lights
My storm, my calm,
My balm, my Rama.
Om !

५ अहा संसार एक माला है, भरा जिसमें अनेक दाना है ॥
इक दाने को देख तुम नसते, "नहीं कोई तत्त्व इनमें" कहते ॥
एक के बाद इक बिगड़ता है किन्तु धागा कभी न घटता है ॥
कैसा सुन्दर दिव्य धागा है, हमारा है, वही हमारा है ॥
है स्वर्ण सूत्र पै मेरा दिल—क्यों न 'रूप' जायँ मिट्टी मिल ॥

६ प्रभातकालीन माधुरी ज्यों क्षणिक सदा 'नाम रूप' ही त्यों ।
प्रपंच माया यह झूठा रचती—अभी बनो है, अभी बिगड़ती ॥
अनन्त है जो रवि तेजवाला, है जो कभी न बदलनेवाला ।
उस एक के ये स्वप्न भर हैं, पदार्थ जो सर्व भासते हैं ॥

७ दोस्त दुश्मनों पै रक्खूँगा मैं हरगिज़ विश्वास नहीं ।
दिव्य दर्शनों पर भी होगा हरगिज़ मुझे भरोसा नहीं ॥
शारीरिक नैरोग्य तथा पाने को पार्थिव वैभव भी ।
मैं पर्वाह भला क्या करता ? मैं और मेरा प्यारा भी ॥
जो हैं भासमान दुनिया में, उन पै कभी न भूलूँगा ।
इन शतरंज पियादों, गुड़ियों को निर्मम होकर मैं देखूँगा ॥
मेरा प्यारा मिला मुझे, अब उसको कहीं न खोऊँगा ;
है सब ओर, उसे मानूँ मैं, प्रेम मैं उसको देऊँगा ॥
अनेकता में है 'एक' तत्त्व जो, केवल है जो सत्य वही ।
है सर्वस्व हमारा वैभव, टेर रहा हूँ उसको ही ॥
ऐसा पक्का दोस्त वही है, चेला औ गुरू भी मेरा,
जनक हमारा, प्यारा बच्चा, वही-वही घर भी मेरा ॥
प्राण-वल्लभा, अथवा पति मम, स्वयं, और जीवन मेरा *
वही दीप्ति की दीप्ति अहो ! है केवल-मात्र स्वत्व मेरा ॥
झंझानिल और शान्ति हमारी, जीवन-मूरि हमारा 'राम'
अनेकता में है 'एक' तत्त्व जो वही, वही है जो सतनाम ॥

---

* (अथवा पाठान्तर से)—मैं औ जीवन-धन मेरा ।

राम किसी मिशन (mission, खुदाई पैग़ाम वा पंथ इत्यादि) का दावा नहीं करता। यह काम सब परमात्मा का है। हमें भगवान् बुद्ध तथा अन्य लोगों के आदर्श और उदाहरणों से क्या करना है ? हमारे मनों को तो दैवी विधान (Law) की प्रत्यक्ष आज्ञाओं का पालन करना चाहिये। किन्तु भगवान् बुद्ध और ईसा मसीह भी अपने अनुयायियों और मित्रों से त्यागे गये। इस प्रकार वनवास के सात वर्षों में से पिछले दो वर्ष बुद्ध भगवान् ने नितान्त एकान्त में व्यतीत किये, और तब एक दीप्तिमान् ज्योति प्राप्त हुई (अनुभव हुई), जिसके बाद शिष्य लोग बुद्ध भगवान् के पास एकत्र होने लगे, और बुद्ध भगवान् ने भी आनन्द से उन्हें अपने पास आने दिया। प्यारे! सदाशयवान् (शुभेच्छु) माननीय सम्मतिदाताओं के मत और विचारों से प्रभावित मत हो। यदि इनके विचार ईश्वरीय नियमानुकूल होते, तो आज तक इन्होंने हज़ारों बुद्ध भगवान् उत्पन्न कर दिये होते।

धीरे-धीरे किन्तु दृढ़ता-पूर्वक जिस प्रकार मधु में फँसी हुई मक्खी अपनी टाँगें मधु से निकाल लेती है, इसी प्रकार रूप और व्यक्तिगत आसक्ति के एक-एक कण को हमें अवश्य दूर करना होगा। सब सम्बन्ध एक दूसरे के बाद छिन्न-भिन्न करने होंगे, सब बन्धन चट से तोड़ने होंगे ताकि अन्तिम ईश्वरकृपा इससे पहले मृत्यु के रूप में आकर सारे अनिच्छित त्यागों की पूर्णाहुति न कर दे।

दैवी विधान (Law) का चक्र बड़ी निर्दयता से घूमता फिरता है। जो इस विधान (नियम) को आचरण में लाता है, वही उस पर आरूढ़ होता है, अर्थात् वही उस पर अनुशासन रखता है। और जो अपनी इच्छा को दैवेच्छा (अर्थात् दैवी विधान) के विरुद्ध खड़ा करता है, वह अवश्य कुचला जाता

है, और दारुण पीड़ाएँ (Promethean tortures) झेलता है।

दैवी विधान त्रिशूल है, यह क्षुद्र अहंकार (अहंभाव) को छेद देता है। जो जान-बूझकर इस त्रिशूल रूपी सूली पर चढ़ता है, उसके लिये यह जगत् स्वर्गवाटिका हो जाता है। अन्य सबके लिये यह (जगत्) हरित स्वर्ग (Paradise lost) है। यह दैवी विधान अग्नि है, जो सबके सांसारिक स्नेह को भस्म कर देती है, मूढ़ मन को झुलसा देती है, और इससे बढ़कर अन्तःकरण को शुद्ध करती तथा आध्यात्मिक रोग के सर्व प्रकार के कीड़ों को नष्ट कर देती है।

. धर्म इतना विश्वव्यापक (सार्वलौकिक) है और हमारे जीवन से इतना मार्मिक सम्बन्ध रखता है, जितना कि भोजन-क्रिया। सफल नास्तिक मनुष्य मानो अपने ही भीतर की इस पाचन विधि को नहीं जानता है। दैवी विधान हमें छुरे की नोक के जोर से धार्मिक बनाता है, कोड़े लगाकर हमें जगाता है। इस विधान से निस्तारा (छुटकारा) नहीं। दैवी विधान सत्य है और अन्य सब मिथ्या है। समस्त रूप और व्यक्तियाँ दैवी विधान के सागर में केवल बुलबुले-से हैं। सत्य की व्याख्या ऐसे की गई है कि "सत्य वह है, जो (एकरूप, एकरस) निरन्तर रहे, अथवा रहने का आग्रह करे।" अब इस नाम-रूपमय संसार में ये सब सम्बन्ध, देहें वा पदार्थ, संस्थायें और सभायें कोई भी ऐसी नहीं, जो इस त्रिशूल के विधान के समान सदा एकरस रह सकें।

ये मूढ़ और अदूरदर्शी जीव इस आदर्श रूप विधान की अपेक्षा बाह्य रूपों (व्यक्तियों) को क्यों अधिक प्यार करते हैं? इसलिये कि अज्ञान के कारण उनको ये व्यक्तियाँ वा बाह्य रूप निरन्तर एकरस रहनेवाले सत्य पदार्थ दिखाई देते हैं, और दैवी विधान एक अस्पर्श्य क्षणिक मेघ (intangible evanescent cloud) भान होता है।

कठोर प्रहार और कष्टप्रद धक्कों से लोग बचाये जा सकते हैं, यदि वे उस पाठ को पढ़ने लग पड़ें कि जो प्रकृति माता उन्हें पढ़ाना चाहती है; अर्थात् "त्रिशूल (cross, सूली) या त्रिशूली (शिव) ही केवल सत्य है, और अन्य सब व्यक्तियाँ व प्रीति के पदार्थ क्षणिक आभास रूप, छाया-मात्र तथा मिथ्या प्रेत हैं। ये बाह्य प्रिय-अप्रिय, मधुर-कटु रस, भासमान सौंदर्य और अद्भुतता तो केवल नक़ाब (बुर्क़ा व ऊपर के पर्दे) हैं, जिन्हें विहारीजी (विलासी स्वरूप) ने हमारी आँखों को अन्ततः अपनी महिमा दर्शाने के लिये अपने मुख पर डाल रक्खा है।"

जब शत्रु-मित्र के रूपों को हम सत्य मानते हैं, तब वे हमें धोखा देते और ठगते वा विश्वासघात करते हैं। किन्तु जब हम उनसे बदला लेना शुरू करते हैं, तथा उनमें नीच स्वभाव और निकृष्ट प्रयोजन (उद्देश) आरोपित करते हैं, तब हम दशा को पहिले से भी अधिक बिगाड़ देते हैं। जो सत्यता केवल परमात्मा में है, उसे जब हम मोह के कारण अपने मित्रों में आरोपित करते हैं, तो यह उनके प्रथम विश्वासघात का कारण होता है। फिर जब हम क्रुद्ध होते हैं, तो इस घृणा से हम उन (शत्रु-मित्रों के) रूपों में और अधिक सत्यता आरोपित करते हैं, जिससे अपनी पहिली भूल को हम और भी दृढ़ कर लेते हैं, और इस प्रकार अधिक दुःखों को अपने ऊपर बुला लेते हैं। ख़बरदार (सावधान)! यह त्रिशूल (संपूर्ण त्याग, शिव) जीवन का अन्तिम उद्देश्य वा ध्येय है। यह जीती-जागती सच्चाई है, पत्थरों (स्थूल पदार्थों) से भी अधिक ठोस (concrete, प्रत्यक्ष वस्तु) है, और बहुत ठीक ही यह पाषाणलिंग से निरूपित वा प्रतिपादित की जा सकती है। प्रमादी मन को सुधारने के लिये यह (त्रिशूल) पत्थर से भी कठोरतर चोट लगाता है। इसलिये इसे निरन्तर स्मरण रखना नितान्त आवश्यक है।

मुसलमान और ईसाई जब इस दैवी विधान वा परमात्मा को 'ग़य्यूर' (ईर्षालु, Jealous, غیور) और क़हार (क्रूर वा कराल, Terrible, قہار) कहते हैं, तो कोई ग़लती नहीं करते। निःसन्देह यह नियम किसी व्यक्ति विशेष का पक्ष करनेवाला (वा लिहाज़ करनेवाला) नहीं है। किसी मनुष्य को संसार की किसी वस्तु से चित्त लगाने दो और त्रिशूल रूपी प्रकृति का अनिवार्य्यतः क्रोध उस पर अवश्य ही घटित होगा। यदि लोग इस 'सत्य' के ग्रहण करने में सुस्त हैं, तो वे इसलिये हैं कि उनमें ठीक-ठीक अवलोकन की शक्ति नहीं। वे प्रायः अपने व्यक्तित्व-सम्बन्धी बातों में कारण को उसी घटना में ढूँढ़ना पसन्द नहीं करते, बल्कि अपने दोषों के लिये दूसरों को दोष झट-पट देने लग जाते हैं, और एक निष्पक्ष साक्षी की भाँति अपनी कोपवृत्तियों और भावनाओं तथा उनसे उत्पन्न होनेवाले परिणामों पर विचार-पूर्वक दृष्टि डालना जानते ही नहीं। धोखा हमें अवश्य मिलेगा, जब हम इन बाह्य रूपों पर विश्वास करेंगे, या जब हम अपने अन्तर्हृदय में इन मिथ्या पदार्थों और व्यक्तियों को वह स्थान देंगे, जो केवल एकमात्र सत्य के लिये उपयोगी है, या जब ईश्वर के स्थान पर हम मूर्त्तियों (बुतों, idols) को अपने हृदय-सिंहासन पर बिठलायेंगे। अन्वयव्यतिरेक का नियम (Method of agreement and difference) तो अनात्मा की असत्यता के नियम को विना किसी उपेक्षा के स्थिर करता है।

कितनी बार ऐसा नहीं होता कि हम पूर्ण भद्र पुरुषों के वाक्यों पर चित्त लगाने से और उनमें ईश्वर से भी बढ़कर विश्वास रखने से उनको उनके वाक्यों के समान भी भद्र नहीं बने रहने देते ? कितनी बार हम दैवी विधान को भुला देने-वाला मोह अपने बच्चों के साथ करके उनकी मृत्यु वा नाश को

निमन्त्रित नहीं करते? कितनी बार हम अन्तर्हृदयस्थ श्रद्धा को जो केवल ईश्वर (ईर्षालु, दैवी विधान) के अर्पण करने योग्य है, अपने मित्रों के शरीरों में अर्पण करके और उन (मित्रों) पर ही आश्रित होते हुए उन्हें विश्वासघातक नहीं बना देते? जहाँ दैवी विधान यह चाहता है कि प्रभात से पहिले (before the cock crows)* हम तीन बार से भी अधिक अपने गुरुओं को (ईश्वर से अतिरिक्त अन्य किसी ऊँच-नीच सम्बन्ध से) अंगीकार न करें, वहाँ उनको अपने पर और (उनमें) अपनी श्रद्धा पर भरोसा दिलाकर कितनी बार हम अपने जीवित गुरुओं को आध्यात्मिक उन्नति के शिखर से नीचे नहीं गिरा देते?

कितनी बार अपनी स्त्रियों पर हमारी हृदयासक्ति (heart-dependence) गृह-कलह और उससे भी बुरे-बुरे दृश्यों का कारण नहीं होती? किसी भी वस्तु को आप ईश्वर से अधिक सत्य (महान्, serious) मानिये, और बस, दिव्य प्रेम (ईश्वर-भक्ति) अपने तीक्ष्ण कटाक्ष से आपको वेध देगा।

निन्दनीय (अनुचित, unworthy) प्रेम की बात तो अलग रही, उन गोपिकाओं का दृष्टान्त लीजिये, जिन्होंने अवतरित भगवान् की मोहिनी आकृति पर अपना हृदय निछावर कर दिया था, किन्तु इतने पर भी उन्हें अपनी भूल निमित्त खून के भारी आँसू बहाने पड़े। शुद्ध प्रेम की मूर्त्ति सीताजी ने भगवान् राम के तेजस्वी रूप की सत्यता में निश्चय किया, तो उन्हें भी, अरे सीताजी को भी, अपनी भूल के लिये, अपने स्वामी (ईर्षालु, अमूर्त भगवान् राम, अर्थात् सत्य राम, सबके प्रभु) द्वारा घोर कानन में भटकाये जाकर प्रायश्चित्त करना पड़ा।

---

* सेंट ल्यूकस की गोस्पल का अध्याय २२ देखो, जिसमें शिष्य की गुरु के प्रति विश्वासघातता है।

ब्रह्म तं परादाद्योऽन्यत्राऽऽत्मनो ब्रह्म वेद ।
क्षत्रं तं परादाद्योऽन्यत्राऽऽत्मनः क्षत्रं वेद ।
लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्राऽऽत्मनो लोकान् वेद ।
देवास्तं परादुर्योऽन्यत्राऽऽत्मनो देवान् वेद ।
वेदास्तं परादुर्योऽन्यत्राऽऽत्मनो वेदान् वेद ।
भूतानि तं परादुर्योऽन्यत्राऽऽत्मनो भूतानि वेद ।
सर्वं तं परादाद्योऽन्यत्राऽऽत्मनः सर्वं वेद ।
इदं ब्रह्म, इदं क्षत्रम्, इमे लोकाः, इमे देवाः, इमे वेदाः,
इमानि भूतानि, इदं सर्वम्, यदयमात्मा ॥ ७ ॥

(बृह० उप० अ० ४, ब्रा० ५, खं० ७)

अर्थः—ब्राह्मणत्व उसको परे हटा देता है, जो आत्मा से अन्यत्र (किसी दूसरे के आश्रय) ब्राह्मणत्व को समझता है। क्षत्रियत्व उसे परे हटा देता है, जो आत्मा से अन्यत्र क्षत्रियत्व को देखता है। लोक उसको परे हटा देते हैं, जो आत्मा से अन्यत्र लोकों को जानता है। देवता उसको परे हटा देते हैं, जो आत्मा से अन्यत्र देवताओं को जानता है। वेद उसको परे हटा देते हैं, जो आत्मा से अन्यत्र वेदों को जानता है। प्राणधारी उसको परे हटा देते हैं, जो प्राणियों को आत्मा से अन्यत्र देखता है। प्रत्येक वस्तु उसको परे हटा देती है, जो वस्तु को आत्मा से अन्यत्र जानता है। यह ब्राह्मणत्व, यह क्षत्रियत्व, ये लोक, ये देव, ये वेद, ये प्राणधारी, यह प्रत्येक वस्तु, जो है, यह सब आत्मा ही है। (श्रुति)

ये भासमान पदार्थ जो भोले प्राणियों को आकर्षण करते हैं, देखने में तो भगवान् कृष्ण की भोली मूर्त्ति के समान हैं, मन रूपी सर्प उनको झट निगलता जाता है; परन्तु भीतर पहुँचते ही वे पदार्थ अन्दर से छुरा चुभो देते हैं, मन रूपी सर्प के उदर को फाड़ डालते हैं; और तब लोग चिल्लाते

हैं—"अरे! मेरा कलेजा फट गया! मैं मरा, मैं मरा! मेरा सर्वनाश हो गया!!!" पर आपने अपने को नाम-रूपों से ठगा जाने क्यों दिया? आप केवल सत्य को प्यार (अंगीकार) कीजिये, केवल ईश्वर से लग्न लगाइये, भीतर (रोम-रोम में) उसे खूब धसाइये, ईश्वर को अपनाइये, ईश्वर के साथ ही रमण कीजिये, ईश्वर स्वयं हो जाइये, ईश्वर-जैसा व्यवहार कीजिये। यही जीवन है। जो कुछ विश्वासिता (faithfulness) और प्रेम इस संसार की वस्तुओं में है, उसे तब तक आप देख नहीं सकते, जब तक उन्हें त्याग नहीं चुकते। ऐ मेरे प्यारो! निश्चय करो कि एक मात्र ईश्वर सत्य है और अन्य सब मिथ्या है।

"ला इलह इल लिल्लाह।"

यह ठीक है कि मुहम्मद को लोगों ने ग़लत समझा है, और प्रायः उसका अनुसरण भी ग़लत किया है। किन्तु जो कोई सत्य (तत्त्व) को देख लेता है, वह सम्मान-पूर्वक इस मत के आगे अवश्य सिर झुकाता है। यद्यपि यह मत एक-पक्षी है, क्योंकि जो लोग इस सत्य में कि "ईश्वर से अतिरिक्त और कोई सत्य वस्तु नहीं" पक्का निश्चय न रखने के कारण सिसक-सिसक कर मर रहे हैं; उनकी चिरस्थायी (चिरकालीन) और दुस्साध्य व्यथाओं का वह एकदम (तलवार से) अन्त कर देता है। वास्तव में हज़रत ईसामसीह भी यही शिक्षा देते हैं, बुद्ध भगवान् भी यही सिखलाते हैं, और निस्सन्देह हमारा अपना प्रत्येक ऋषि एक न एक रूप में इसी वस्तु का उपदेश करता है। परन्तु इससे क्या? उनकी शिक्षा और उपदेश अभी तक भी जीते न रहते, यदि वे श्रोतागण के निज अनुभव में आकर उनका हार्दिक समर्थन न पाते, और यदि सब युगों में ज्ञान के अनुरागियों, निष्कपट, सच्चे वा शुद्धात्माओं ने समय-समय पर अपने अनुभव में लाकर उनकी साक्षी

न दी होती, वा उनका स्पष्टीकरण और समर्थन न किया होता।

त्याग का नियम (विधान) एक पक्की सचाई है। कोई सार-हीन (क्षणिक) कल्पना (flimsy phantom) नहीं। राष्ट्रों के राष्ट्र इन पैग़म्बरों, अवतारों और नेताओं के केवल काल्पनिक भ्रमों से मोहित नहीं हो सकते थे। शताब्दियों की शताब्दियाँ बेचारे बुद्धि-भ्रष्टों की केवल कल्पना से ही नहीं बीत सकती थीं।

अपने दुःखों के असली कारण को न जान कर (जो कि दैवी विधान के प्रतिकूल चलना है) लोग अपने रोग के बाह्य लक्षणों को अर्थात् बाह्य दशाओं को दोषी ठहराने लग जाते हैं। जिस प्रकार अस्पष्ट स्वप्न (misty dreams) विस्मृति के अर्पण कर दिये जाते हैं, अर्थात् नितान्त भुला दिये जाते हैं, उसी प्रकार लोगों के अच्छे-बुरे आचरणों और सँवादों (शब्दों) को अपने चित्त से नितान्त धो डालना चाहिये। स्वप्न चाहे भयंकर हो, चाहे मधुर, हम उसके साथ लड़ने या उसके समाधान करने का यत्न नहीं करते, बल्कि उल्टे हम अपने पेट को ही पीड़ित करते हैं। इसी प्रकार अच्छे-बुरे लोग जो भी मिलें, उनकी हमें पूर्ण उपेक्षा करनी चाहिये, और अपनी आध्यात्मिक दशा उन्नत करनी चाहिये। अपने और ईश्वर के बीच में इन भासमान अनिष्टों वा भाग्यों को खड़ा न होने दीजिये। कोई अपमान और दोष इतने भारी नहीं कि जिनको क्षमा प्रदान करने से मुझे संतोष मिले।

किसी वस्तु को ईश्वर से बढ़कर मत समझो, ईश्वर के बराबर भी किसी का मूल्य मत करो। निन्दा-स्तुति और व्याधि सब के सब एक समान घातक हैं, यदि हम अपने को इनके अधीन समझें। अपने को ईश्वर भान (निश्चय) करो,

और अपने ईश्वर भाव में आनन्द के गीत गाओ। निन्दा स्तुति दोनों को इस प्रकार देखो, जिस प्रकार राम अपने शारीरिक रोगों को ईश्वर के दरबार के केवल किंकर समझता है, जो (किंकर) सर्वोच्च शासन के अधिकार से कहते हैं "इस घर (देहाध्यास) से एकदम बाहर निकल जाओ।" वे (किंकर) हमारी आज्ञा पालन करते हैं, जब हम निज स्वरूप के राजसिंहासन पर बैठते हैं; और वे कोड़े लगाते व पेट में छुरा भोंकते हैं, जब हम इस अन्ध-कूप (देहाध्यास) में प्रवेश करते हैं।

अनेक शासन भी जिनके नाम-मात्र के नियम (क़ानून) त्रिशूल (सूली) के ईश्वरीय नियम के अनुकूल नहीं हैं, अपना नाश कर लेते हैं। शाइलौक (Shylock) के समान व्यक्तिगत अधिकार पर जोर देना, इस वा उस पदार्थ को अपना समझना, स्वत्व वा अधिकार का भाव रखना, "क़ानून हमें यह दिलाता है" (the law grants it) ऐसा कहकर उस दैवी विधान (ईश्वरीय नियम) के विरुद्ध चलना है कि जिसके अनुसार जो कुछ हक़ (अधिकार) हम लोगों का है, वह, केवल 'सत्य' (ईश्वर) है, और अन्य सर्व अधिकार असत्य (wrong) हैं। यदि कोई अन्य व्यक्ति इस सिद्धान्त (principle) को नहीं मानता है, तो कम से कम संन्यासी को तो अवश्य इसे अपने आचरण में लाना चाहिये।

दैवी विधान (ईश्वरीय नियम) सर्वव्यापी है, प्रत्येक का परम आत्मा है, और इस अर्थ में राम है। तथापि यह लघु आत्मा (व्यक्तित्व) को अवश्य ठोकरें मार कर निकाल देता और नष्ट कर देता है। यह (विधान) बड़ा निर्दयी है, परन्तु इसकी निर्दयता प्रेम का सार है, क्योंकि इस लघु आत्मा (तुच्छ अहंकार) की मृत्यु में ही असली अपने आप (परमात्मा) का और नित्य-जीवन का पुनरुत्थान है। जो कोई तुच्छ अहंकार को रखकर निज स्वरूप (King Self, परमात्मा) के विशेष

अधिकारों को चाहता है, वह मानो वृथाभिमान (vanity) के शिखर पर गिद्धों का भक्ष्य हो जाता है। वेदान्त की स्वतंत्रता (मुक्ति) कुछ इस परिच्छिन्न देहात्मा (व्यक्तित्व और देह) के लिये दैवी विधान से छुटकारा नहीं है। यह तो God (ईश्वर) को ठीक उलट देना, अर्थात् dog (श्वान) बनाना है।* लाखों प्राणी इस भूल के कारण प्रति घड़ी नाश होते हैं। इस दैवी विधान के क्रम को मूर्खता-पूर्वक उलट देने से हजारों मस्तिष्क निराशा में डूब रहे हैं और लाखों हृदय प्रत्येक मिनट टुकड़े-टुकड़े हो रहे हैं। स्वयं दैवी विधान ही हो जाने से विधान से छुटकारा मिलता है, यही शिवोऽहं का अनुभव (साक्षात्कार) है।

जो बाह्य रूपों (आकारों) की नींव पर विश्राम करता और घटनाओं तथा अलंकारों (facts and figures) के भरोसे रहता है, ऐसा मूढ़मति फेन पर घर बनाता है, और स्वयं उसके साथ डूबता है। पर वह व्यक्ति उस अचल शिला (पर्वत) पर अपना स्थान बनाता है, जिसके हृदय की तह में जमा पड़ा है कि "ब्रह्म सत्यं, जगन्मिथ्या (ब्रह्म सत्य है, पर जगत् मिथ्या है) और दैवी विधान एक जीती-जागती शक्ति है।"

लोग इस शरीर को पौलिसीबाज़, स्वार्थी, गर्व-पूर्ण, मदोन्मत्त अथवा अन्य जो कुछ चाहें आनन्द से कहें; चाहे जिसे लोग अपमानित, पद-दलित और मृतक हुआ कहते हैं, वैसा इसको कह दें, मुझ (सर्व के आत्मा) को इससे क्या ?

I am Truth, the inevitable,
I am Law, the inexorable;

---

* GOD (गॉड) का अर्थ है ईश्वर। इस अंग्रेज़ी शब्द के अक्षरों का क्रम उलट देने से शब्द DOG (डॉग) बन जाता है, जिसका अर्थ है कुत्ता, कूकर वा श्वान।

To know Me is to obey Me,
To obey Me is to prosper.
Oppose Me, it will not annoy Me.
Ignore Me, I cannot be anxious,
But will calmly destroy him who slights.

मैं अनिवार्य सत्य हूँ,
मैं अनम्र (कठोर चित्त) विधान हूँ,
मुझे जानना मेरी आज्ञा का पालना है,
मेरी आज्ञा का पालना समृद्धि-द्वार है,
मेरा विरोध करो, मैं क्षुब्ध न हूँगा,
मेरी उपेक्षा करो, मैं उत्कंठित न हूँगा,
किन्तु शान्ति से अपमानकारी का नाश कर दूँगा,
यह ख़ाली धमकी (गीदड़-भभकी) नहीं है। यह अत्यंत भयंकर (भीषण) सत्य है।

हमें कम से कम उतना ख़याल और सत्कार तो सत्य (ईश्वर, ईश्वरीय नियम, God, Law) के लिये अवश्य रखना चाहिये, जितना कि हम लोगों के भावों वा विचारों के लिये रखते हैं। यदि दैवी विधान के प्रति विश्वसनीय सच्ची और निष्कपट भक्ति के कारण लोगों के हृदय टूटते (चोट खाते) हैं, तो इसके लिये हम ज़िम्मेवार नहीं हो सकते। हमारे लिये तो सर्व प्रकार से ईश्वरीय नियम का भंग न करना कई गुणा अधिक चिन्तनीय होना चाहिये। जिनको हम अपना घनिष्ठ सम्बन्धी वा प्यारा कहते हैं, उन लोगों के भ्रम के अधीन होकर दैवी विधान के विरुद्ध होना अपने और उनके सिर पर आफ़त बुलाना है। ईश्वर से अधिक निकटतर कोई वस्तु नहीं है, और ईश्वर (सत्य, दैवी विधान) से बढ़कर प्रिय कोई होना न चाहिये।

त्वंᳯ सोमव्रते तव मनस्तनुषु बिभ्रतः (यजु० वेद) अनुवाद

For Thee, for Thee alone. O Lord!
O Law! I was keeping the mind in my body.

तव हेतु, एकमात्र तव हेतु—हे भगवान्, हे विधान !!
इस निज मन को मैं निज शरीर में रखता हूँ।

वैदिक काल में विशेष अवसरों पर, कुमारियाँ प्रज्वलित अग्नि के चारों ओर कर जोड़े एकत्र होकर प्रदक्षिणा करती हुई यह गीत गाया करती थीं—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्।
उर्वा रुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः॥

अनुवाद—उस सुगन्धिमय, सर्वद्रष्टा, पति-वेदन (पति को जाननेवाले) की पूजा में आओ हम सब निमग्न हों। भूसी के (भीतर से) दाने की तरह हम लोग यहाँ के बन्धन (पितृ-गृह) से मुक्त हों, किन्तु वहाँ (पति-गृह) से कभी न (मुक्त हों)।

बिछुड़ती दुल्हन वतन से है जब।
खड़े हैं रोम और गला रुके है॥
कि फिर न आने की है कोई ढब।
खड़े हैं रोम और गला रुके है॥

प्राचीन आर्य-कुमारियों की वह प्रार्थना राम के हृदय-पटल से गम्भीरता-पूर्वक निकल रही है, और उसके साथ अश्रु, अरे अश्रु, झड़ी बाँधे बह रहे हैं।

हे भगवान्! हे दैवी विधान! हे सत्यस्वरूप! हमारे इस हृदय और मस्तिष्क (दिल और दिमाग़) में आपसे अतिरिक्त यदि कोई सम्बन्ध घर करता हो, तो इन दोनों (दिल और दिमाग़) को तत्क्षण विदीर्ण कर दो। यदि आपसे इतर कोई और भाव

(ख़याल) इन नसों और नाड़ियों में प्रवाहित होता हो, तो उसी क्षण रुधिर को वहीं जम जाने दो।

अन्य श्रुति—अहम् जानि गर्भधमा । त्वम् जासि गर्भ धम् ॥

भावार्थ—"हे भगवान्! स्त्री जैसे पुरुष का ज्ञान प्राप्त करती है, वैसे मैं ज्ञान प्राप्त करूँगा, मैं आपको अधिकतर निकट आकर्षित करूँगा, मैं आपके शरीर (तन) का गुह्य रस (Secret juice) और आपका अधर पान करूँगा। ऐ स्वतंत्रते! ऐ दैवी विधान!! मैं आपको अपने भीतर ख़ूब धारण करूँगा।"

क्या राम का विवाह त्रिशूल, सत्य (तत्त्व) और दैवी विधान से नहीं हो चुका, जो उससे वेश्या के समान अन्य सम्बन्धों और स्नेहों की आशा की जाती है?

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई।

यह कोई अन्ध वेग (आवेश) नहीं है, और न किसी को हानि पहुँचाने की स्वार्थमयी पौलिसी (नीति) है। क्यों? भला निर्दोष राम ने क्या बिगाड़ा है, जो तुम उसे व्यक्तिगत सम्बन्धों की परिच्छिन्न सीमा के भीतर खींचना चाहते हो? उसे छोड़ दो, कृपया छोड़ दो (Spare him), अपने कुशल के लिये उसे छोड़ दो, उसे अकेला रहने दो (Leave him alone)। इसी में तुम्हारे देश का और मानव-जाति का कल्याण है। क्या तुम यह अनुमान करते हो कि राम के शरीर की यदि तुम आदर-पूर्वक हिफ़ाज़त (रक्षा) न करोगे, तो वह एकान्त में मृत्यु को प्राप्त हो जायगा? नहीं, ईश्वर सत्य है, और ईश्वर में निमग्न जीवन (life in God) कोई कष्ट भान नहीं करता; और यह शरीर जब तक ईश्वर का कार्य पूरा न कर लेगा, तब तक इसका पात नहीं हो सकता।

किसी के पवित्र व्रत में छेड़-छाड़ (हस्तक्षेप) करना अच्छा नहीं है। वह अपने और अपने व्रत (मनोभाव, ideal) के बीच

किसी को, नहीं-नहीं, बल्कि मृत्यु तक को भी नहीं खड़ा होने देगा। नास्तिकता की दृष्टि से अतीत इतिहास द्वारा प्राप्त भये भावों वा विचारों (notions) के अनुसार कोई उस (राम) के चरित्र को खींचने वा घटाने का यत्न न करे। इस भासमान राम के प्रति अपने सत्कार, सम्मान और प्रीति (भक्ति) को परे रक्खो। इनसे असली राम (जो सबका अपना आप वा आत्मा है) का अपमान है। परे हटो। नाम-रूपों के स्वप्न से जागो। जिस प्रकार दैवी विधानानुसार जीवन द्वारा राम ने उदर के अजीर्ण (dyspepsia) को दूर कर दिया है, इसी प्रकार देह-अध्यास और व्यक्तित्व के भ्रम को दूर करो। निज स्वरूप के तीक्ष्ण तेज को विषयासक्ति (इन्द्रियानुराग) पर केन्द्रीभूत (focus, एकत्र) करके उसको जला डालो। अपने चित्त में सांसारिक संस्कारों को किञ्चित् जगह मत दो ; और उसे सदा असली राम से पूर्ण रक्खो।

वर हरचिः जुज़ दिल्बर बुवद।
अज़ शहरे-दिल बेरूँ कुनम॥

अर्थः—और अपने प्यारे के सिवा जो भी कोई खयाल होता है, उसे मैं अपने दिल के नगर से बाहर करता हूँ।

क्या ईश्वर कम से कम उतना मधुर नहीं, जितना कि विषय-भोग (इन्द्रिय-विषय) ?

लोग ईश्वर से प्रेम करने में हिचकते हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि संसार की प्रीति के झूठे पदार्थों के समान ईश्वर से (प्रेम का) कोई उत्तर प्राप्त नहीं होता। यही मूर्खता भरा अज्ञान है, जो उन्हें भ्रम में डालता है। ऐ प्यारे ! तत्क्षण ही, नहीं-नहीं, तुम्हारी छाती के साथ-साथ ही उस (परमात्मा) की छाती प्रति-संवेदन में (in responsive impulse) धड़कती है।

इन बाहिर के शत्रु-मित्रों में उनके आचरण का कारण मत ढूँढो। वास्तविक कारण तो एकमात्र तुम्हारे निज स्वरूप के आश्रित है (अर्थात् ठीक-ठीक कारण उसका तुम्हारे भीतर होता है)। वहाँ देखो।

जिस प्रकार एक नन्हा पक्षी, जो अभी उड़ना सीख ही रहा हो, एक पत्थर वा टहनी को छोड़कर दूसरे वैसे ही आधार पर जा बैठता है, फिर उसे भी छोड़ तीसरे पर, तीसरे से चौथे पर जा टिकता है, किन्तु भूमि के इन पदार्थों (आश्रयों) को नितान्त त्याग कर ऊँची वायु में उड़ता नहीं है। इसी प्रकार ब्रह्मज्ञान में नव-प्रवृत्त पुरुष (नवीन जिज्ञासु) जब अपने चित्त को एक वस्तु से निरासक्त, या किसी व्यक्ति विशेष से उपराम करता है, तो तत्काल किसी दूसरी वस्तु के आश्रित हो जाता है, उसके बाद किसी अन्य वैसी ही वस्तु में आसक्त हो जाता है, किन्तु कोमल काई और तिनका (क्षणभंगुर पदार्थों) का आश्रय वह नहीं छोड़ता, और अपने हृदय से सारे संसार का त्याग नहीं करता है। अनुभवी ज्ञानी किसी सांसारिक पदार्थ की प्रत्यक्ष बेवफ़ाई (निस्सारता, विश्वास-भंग) को अपने अनन्त स्वरूप में कूद पड़ने का सोपान-शिला बना लेता है। बाह्य अनुभव के प्रत्येक अंश को अनन्त स्वरूप में कूद जाने का अवसर बनाना ही धर्म की निपुणता (कौशल, साधन, art) है। ये भासमान पदार्थ सभी एक ही प्रकार के हैं, इस कारण जहाँ वह एक पदार्थ का बाहर से त्याग करता है, वहाँ तो उस त्याग को वह सब पदार्थों के आन्तरिक त्याग का चिह्न वा संकेत बना लेता है।

शोचनीय और वज्रवत् मूढ़ वह अवश्य होगा, जो हृदय-वेधी तत्त्व को ऐसा नहीं पहचानता कि त्रिशूल—स्वार्थपरता व्यक्तित्व की मृत्यु ही—एकमात्र जीवन का नियम (नित्य

जीता रहने का विधान) है । त्रिशूल सब व्यक्तित्व को परे हटा देता है । व्यक्तित्व (अहंकार) का दूर करना ही नित्य-जीवन का पुनरुत्थान (प्रादुर्भाव) है । चिरञ्जीव रहो, आशीर्वाद ।

जीवन में मृत्यु

जब राम लाहौर से चला, उन दिनों विष्णु-पुराण, जो अद्वैत वेदान्त का एक बड़ा ही सुस्पष्ट ग्रंथ है, उसका फ़ारसी भाषान्तर वह पढ़ रहा था । विष्णु-पुराण के इसी फ़ारसी भाषान्तर का लैटिन अनुवाद है, जिसका उल्लेख एमर्सन (Emerson), थोरो (Thoreau) और उनके ही जोड़ तथा प्रवृत्ति के अन्य लोगों ने अपने लेखों वा ग्रन्थों में भारी उत्साह के साथ किया है । पञ्जाबी विष्णु-पुराण भी इसी फ़ारसी रचना का भाषान्तर है । बाबा काली कम्बलीवाले का अनुभव-प्रकाश भी इसी पञ्जाबी विष्णु-पुराण का संशोधन वा परिवर्द्धन है । यह वह ग्रंथ है, जो स्पष्ट करता है कि मनुष्य कितने-कितने उच्च शिखरों पर रहा करता था । और इसके पृष्ठों में हम उस (बाबा काली कम्बलीवाले, पुस्तककर्त्ता) के आन्तर जीवन की भी झलक पाते हैं । यह उन करोड़ों दामवाले कामों का रहस्य है कि जो काम आज उस एक के नाम से चुपचाप हो रहे हैं, जिसके समस्त वस्त्र और घर केवल एक काला कम्बल था, जो न तो बड़ा पण्डित (विद्वान्) ही था, और जो इस डर से कि मैं किसी एक परिवार पर भारू न जान पड़ूँ, द्वार-द्वार से मधुकरी माँग कर खाया करता था । आज बाबा काली कम्बलीवाले के नाम पर प्रचण्ड वेगवाली (tempestuous) नदियों के ऊपर पुल बाँधे जा रहे हैं, सड़कें निकाली जा रही हैं, धर्मशालायें बनाई जा रही हैं, अन्न और बस्त्र बाँटे जा रहे हैं, विद्या-दान दिया जा रहा है, और मैदानों

की जलती-भुनती बालू पर तथा हिमालय के ऊँचे शिखरों पर बेकारों को काम दिया जा रहा है।

मनसूबों और पौलसियों (plans & policies, युक्तियों व कल्पनाओं) से धुंध और धुएँ से बढ़कर और कुछ नहीं सिद्ध होता। सच्चा काम सांसारिक उपायों (व चिन्ताओं) से नहीं होता; ईश्वरीय जीवन द्वारा ही होता है। कुछ लोगों के लिये भीड़ के बीच अति प्रवृत्त जीवन दिव्य जीवन बनाने का अज्ञात (unconscious) सहायक होता है। कुछ के लिये एकान्त-सेवन ज्ञात (conscious) साहाय्य (साधन) है; कुछ के लिये विपत्तियाँ बड़ी सामयिक आशीर्वादवत् होती हैं; कुछ सज्जनों का हृदय पुस्तकें लिखते समय प्रभु की लेखनी से प्रभावित होता है (व हृदय पर प्रभु की लेखनी चुटकी भरने लग जाती है); कुछ लोग व्याख्यान देते-देते अपनी भीतरी अस्वच्छता (कालुष्य) को खो देते हैं, और प्रभु का प्रकाश उनके भीतर से चमकने लगता है; कुछ लोग घमासान-युद्ध में जुटे अपनी छाती को गोलियों का निशाना बनाते हुए देह-अध्यास त्याग देते हैं, और संसार में वीर पुरुष प्रसिद्ध होते हैं; कुछ लोग कला-कौशल में निरत हो अक्षय सौन्दर्य को प्राप्त होते हैं। यहाँ तक कि चोर भी घर में सेंध लगाते समय यदि सफल होता है, तो याद रक्खो, उसे जितनी कुछ सफलता मिलती है, वह सब उसके उसी कम्पायमान करनेवाले अकथ्य, शब्द-विहीन (wordless) और बिना विचारे आत्मसमर्पण की अवस्था को प्राप्त होने से और ऐसे ही अज्ञाततः अनन्त स्वरूप में पूर्ण निष्ठा और स्थिति पाने के कारण से ही मिलती है। और जो उसके कर्म की दुष्टता है, अर्थात् भासमान सम्पत्ति को जो सत्य मानना है, ऐसे दुस्साहस के लिये वह अवश्य अपने शिर पर दैवी विधान का कोप बुलाता है।

जिस परिमाण से हम जीवित हैं, अर्थात् सर्वरूप (परमात्मा) में मृतक (निमग्न, dead in the all) हैं, उसी परिमाण से कार्य पूर्ण होता है। यह जीवन अर्थात् तुच्छ अहंकार की मृत्यु ही काम पूर्ण करती है, न कि हमारा एकान्त सेवन, समाज, उपाय और युक्ति। मूर्ख जीवनी-लेखक (biographers) बाह्य विशेषणों व आडम्बरों को ही देखते हैं, और सफलता के असली तत्त्व (मूल-कारण) की उपेक्षा करके पूर्णकार्य (निष्पत्ति) का श्रेय कभी लेखन-शैली को देते हैं, तो कभी अनुयायियों की संख्या को, मानो जिस वृक्ष के तले बैठे मैं लिख रहा हूँ, उस पर जो-जो पक्षी बैठे हैं, उनके अधीन मेरे कार्य की सफलता वा असफलता है। हमारे सुअवसर और स्थितियाँ कोई चीज़ नहीं हैं। वह प्राचीन ऋषि ठीक देखता है, जब योद्धा की विजय का कारण केवल आन्तर (इन्द्र) और बाह्य (वरुण) देवता को बतलाता है।

सुदा समिन्द्रा वरुणवंसावतम् । (ऋग्वेद, मंडल ७.)

प्रतिदिन हम अपनी आँखों के सामने इसे देखते हैं, जैसा कि बुल्लाशाह ने कहा है कि "चिड़ियाँ बाज़ों को निगलती हैं" (Sparrows vanpuishing eagles), अर्थात् हमारे अतिप्रिय और होनहार (आशा-जनक) बुद्बुदे (असार आडम्बर) फटते हैं, और हज़रत ईसा के शब्दों में, हमारी फेंकी हुई (rejected) ईंटें विशाल भवनों (उच्च महलों) की नींव के पत्थर की जगह सुशोभित (glorified) होती हैं। भासमान परिस्थिति पर किसी प्रकार की निर्भरता या सांसारिक बुद्धि (चतुरता) हमारी सफलता (विजयों) में किञ्चित् भी कारण नहीं होती। हमारे समस्त सम्बन्ध, मित्रतायें, सम्पत्तियाँ, आशायें, प्रतिज्ञायें और अन्य साधन (अर्थात् मानो हमारा जगत्) केवल कोरा धोखा और मिथ्या गूढ़ाभिमान-मात्र है। उनके तुच्छ (अकिञ्चन)

दर्शाने के लिये श्री सुरेश्वराचार्य्य या श्री शंकराचार्य्य की-सी सूक्ष्म बुद्धि की आवश्यकता नहीं। जिनके नेत्र हैं, उनके लिये प्रत्येक थोड़ा-सा अनुभव भी भयंकर तोप के समान वेदान्त की गर्जना में यों गर्जता है—

> तत्त्वमस्यादिवाक्यानां स्वतःसिद्धार्थबोधनात्
>
> अर्थान्तरं न संद्रष्टु शक्यते त्रिदशैरपि ॥

अर्थः—तत्त्वमसि आदि वाक्यों के जो स्वतः सिद्ध अर्थ हैं, उनके बोधन से अतिरिक्त अन्य अर्थ देवता लोग भी नहीं कर सकते। अर्थात् यदि देवता लोग भी अपने स्वार्थ में आकर तत्त्वमसि आदि वाक्यों के अर्थ मोड़-तोड़ से कुछ का कुछ करना चाहें, तो वह नहीं हो सकता; क्योंकि इन वाक्यों के अर्थ स्वतः-सिद्ध हैं।

हमारे महात्मापन, सुधारकपन, सम्मान, पद, सम्बन्ध, सब के सब गत रात्रि के स्वप्नों, बीते हुए जन्मों, मेघाकारों, संध्या के प्रेतों और रोगी मस्तिष्क के विचारों के वेताल (कल्पित भूत-पिशाच) से अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैं। जब हम राम (ईश्वर) से प्रतिकूल (Out of tune, विच्छिन्न) हो जाते हैं, तब हमें कोई मार्ग नहीं दीखता, हम दैवी विधान से च्युत होते हैं, और हमें तब दुःख उठाना ही पड़ता है। जब हम ईश्वर में तन्मय होते हैं, तब ठीक उपाय, ठीक प्रवृत्ति, ठीक प्रवाह आप ही आप हमारे हृदय में उठते हैं. और हमें धन-संपत्ति भूप्रदेशों (landscapes), पर्वत के दृश्यों, शान्ति, समृद्धि और पवित्रता के निर्झरों (स्रोतों) के पास पहुँचाते हैं। अथवा (यों कहना चाहिए कि) हमारे भीतर आनन्दमय तेज (ज्ञान-प्रकाश) जीवन और प्रेम को हमारी ओर स्वयमेव

यह अहंकार की बलि का पाठ वैदिक काल की जटिल, भव्य और प्रभावशाली यज्ञ-विधियों की तह में छिपा हुआ है। मृत्यु

में जीवन का विधान (The Law of Life in Death) मुझे इतना ही कठोर और ठोस (संसार) सत्य जान पड़ता है, जितना कि प्राचीन ऋषियों को रुद्र। इसकी तनिक उपेक्षा करो कि घायल करनेवाले तीर तुम्हारी बग़लों और छाती में जा चुभते हैं।

नमस्ते रुद्रमन्यव उतोत इषवेनमः। बाहुभ्यां उत ते नमः॥

अर्थः—हे रुद्र (अर्थात् दैवी विधान)! प्रणाम है तुम्हारे कोप (रोष) को; प्रणाम है तुम्हारे अमोघ बाणों को; प्रणाम है तुम्हारी अथक बाहुओं को।

हम लोगों के प्रत्येक छोटे-छोटे अनुभव में सारा इतिहास छिपा पड़ा है। हम लोग उसे पढ़ते नहीं। यदि हम उचित मूल्य दें, अर्थात् देहाभिमान (local self) को दूर करके साक्षात् ईश्वर को अपने शरीर के भीतर से कार्य करने दें, तो बुद्ध भगवान् या हज़रत ईसा हो जाना उतना ही सहल है, जितना कि निर्धन पाल (Paul) बने रहना। एक ही कोष (म्यान) में दो तलवार हम नहीं रख सकते। यदि हम लोग बाहर से प्राप्त भये निन्दा-स्तुति में विश्वास न करने की शक्ति अपने भीतर उपार्जित कर लें, यदि हम कार्य करने के ज्वर से मुक्त हो जायँ, यदि जीतना व विजय प्राप्त करना हमारा उद्देश्य न हो, यदि सत्य के उपदेश की अपेक्षा स्वयं सत्य बनने में हम अपनी शक्ति अधिक लगायें, यदि हम (अपने कार्यों के बीच) उतना ही न्यून श्रेय लेकर कार्य किया करें, जितना कि सूर्य सर्वदा चमकने में लेता है, तो ईश्वरों के भी अधीश्वर (स्वामियों के भी परम स्वामी) हम हो सकते हैं। जिस क्षण हम लोग अपने विषय में दूसरों की बातों पर विश्वास करना आरम्भ करते हैं, उसी क्षण सब कुछ (कर्म, क्रिया इत्यादि) निष्पन्द रूप हो जाता है। दुनिया नहीं है। संसार नहीं है। और सांसारिक

जीवों की बातें भी कुछ नहीं हैं। ईश्वर ही एकमात्र सत्य है।

कोई-कोई समझते हैं कि दुःख-दर्द (Pains) चारित्रोन्नति (अर्थात् चित्त-शुद्धि) के लिये ऐसे ही आवश्यक हैं, जैसे कि आग स्वर्ण की शुद्धि के लिये। विना प्रयास के प्रकृति आगे बढ़ने नहीं देती। शायद आज पर्यन्त बराबर ऐसा ही होता आया है। परन्तु क्या यह भी कोई युक्ति (कारण) है कि इसी से सदा ऐसा ही होता रहे। यह सत्य है कि कोई भी रसायन (chemical) नवजात अवस्था (Nascent state) में से गुज़रे के विना कार्य नहीं कर सकता। बीज अपने तत्त्व में परिघटित (through reduction into the substance) होने से उगता है। द्रव-दशा (melting point) में प्रवेश कर चुकने पर ही धातुओं को पीटकर जोड़ा जा सकता है। बाहरी दिखावट और भावों से युक्त मनुष्य प्रत्यक्ष आशाओं और उज्ज्वल भविष्य (प्रत्याशाओं, prospects) से उत्तेजित होकर व्यक्तिगत रूपों में अपना विश्वास जमाता आगे बढ़ता तो है, किन्तु तुरन्त ही वह अपने सिर पर कड़ी चोट या माथे पर भारी मुक्का (घूँसा) खाता है। चोट उसके चित्त को पिघला कर उसे पूर्व आरम्भिक अवस्था पर पहुँचा देती है, और इस प्रकार जीवन की शर्तें पूरी हो जाने पर सफलता उसके चरण छूने आ जाती है। चाहे रिपोर्टें (पुस्तकों में वर्णन) कुछ ही क्यों न हों, यदि दैवी विधान वास्तव में दैवी विधान है, तो विना ईश्वरादर्श को किसी प्रकार भूले या 'जीवन में मृत्यु' के मार्ग से च्युत हुए हज़रत ईसा को कदापि कष्ट उठाना नहीं पड़ सकता था। हाँ, पीड़ा भरे अत्याचार ने उसे तुरन्त सावधान कर दिया, और प्रत्यक्ष शूली पर चढ़ने से पहले कुछ घंटों तक कालावच्छिन्न स्वरूप (Timeless All) में अहंभाव के विलीन (self-crucifiction) रहने ने उसे सदा के लिये

जीवित (अमर) बना दिया । परन्तु यह ज़रूरी नहीं कि उक्त पीड़न और दुःख के अनन्तर सफलता और आनन्द का आगमन ही हो; प्रायः केवल एक दुःख ही विपत्तियों की पंक्ति (ट्रेन) के आने की घोषणा दे देता है, और इसी से कहते हैं कि कोई दुःख अकेले नहीं आता (misfortunes never come singly) । अगर एक ही विपत्ति की चेतावनी से हम शुभ अवस्था में चेत जायँ, अर्थात् जग पड़ें, तो जीवन और ज्योति का प्रकाश (उजाला) तत्काल हम पर आ पड़ता है ; किन्तु यदि प्रारम्भिक दुःख की सर्दी हमारे नियम-भंग (विधान-प्रतिकूलता) को और भी बढ़ा दे, तो हम कठोरतर विपत्तियों को बुला लेते हैं । अत्यन्त कठोर, एवं संभवतः गुह्य दैवी विधान के न समझे जाने व पालन होने से यह कलह अवश्य जारी रहता है, और हमारे शिरों पर मुक्के और चोटें खूब बरसाता है । इन चोटों से केवल वेही बच निकलते हैं, जो योग्यता की एकमात्र शर्त "अकथनीय प्रारम्भिक अवस्था (nascent state)" - में से खूब गुज़र जाते हैं । किसी समय इंजिनों में नियामक यन्त्र (governors) नहीं हुआ करते थे, और वाष्प का वेग अपने वश के बाहर था । परन्तु अब जब इंजिनों के लिये नियामक यन्त्र निर्मित हो चुके हैं, तब शक्ति का व्यर्थ दुर्व्यय क्यों हो ? इसी प्रकार जीवन-विधान-रूपी नियामक (governor) के पा लेने पर कोई कारण नहीं दीखता कि पीड़ा और कलह पशुओं के समान मनुष्यों पर क्यों राज्य करने पायें ।

इस भौतिक व्यक्तित्व में आसक्त होकर कार्य करना परिच्छिन्न सांसारिक शासनों की दृष्टि में तो कोई पाप नहीं, परन्तु विश्व के सर्वोच्च शासन के सामने यही एकमात्र पाप है, और दूसरे दोष तो इस पाप की विभिन्न शाखायें-मात्र हैं । संसार में

केवल एक रोग और उसकी केवल एक ही दवा है। "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" इस वेदान्तिक नियम का भंग ही सब व्याधियों की जड़ है, जो कभी एक दुःख का रूप धारण करती है और कभी दूसरे का। और इसकी औषधि है अपने वास्तविक ईश्वरत्व को प्राप्त करना। एक बार अपने आपको धोखा देना अर्थात् निज स्वरूप को भूलकर दूसरे को अपना आत्मा मान लेना ही अन्य सब धोखों को आप से आप दिन-प्रतिदिन अधिक उत्पन्न कर लेना है।

क्या राम का कथन एक एकान्त-सेवी की केवल भावना-मात्र (reverie, कल्पना-मात्र) है, और समाज के लोगों के किसी काम का नहीं ? जलाशय के पानी के आस-पास कोई हरियाली नहीं होती, किन्तु क्या यह भी कोई युक्ति हो सकती है, जिसके आधार पर खेत अपने में पैदावार पैदा करने के लिये उस जल से सींचा जाना इनकार करें ? राम केवल दैवी विधान बतलाता है, जो प्रत्येक का निजी जीवन वा प्राण है। संसार के जितने नियम हैं, रासायनिक, जीव-संबंधी, मानसिक और ऐसे ही अन्य सब, उनको मैं इस एक दैवी विधान (उपर्युक्त नियमों के नियम) के विशेष उदाहरण (सूचक) पाता हूँ; इससे इतर और कुछ नहीं। कार्य-कारण का नियम (Law of Causation—कारणतावाद), सांसारिक सम्बन्ध, आशायें और कर्तव्य, ये सब के सब केवल परिवर्तनशील चिह्न (transition points), विचार का तात्कालिक प्रमाण (passing standards of judgment), पथिकाश्रम (रास्ते की सरायें), बालिकाओं की गुड़ियें (खिलौने) और जल-हीन अरब देश का यतम्मम (yatammum) हैं। एक बार जहाँ हमारी चेतना के मंडल अर्थात् विज्ञान-कोष में (आत्मदेव का) सूर्य चमका, एक बार जहाँ हम पदार्थों की वास्तविक अवस्था से परिचित हो गये,

वहाँ सब कारण और नियम हमारे चारों ओर ग्रहों (planets) तथा उपग्रहों (satellities) की भाँति घूमने लग जाते हैं; नहीं-नहीं, वे हमारे निकट इस प्रकार आते हैं, जैसे भोजन के समय बालिका अपनी माता के समीप।

यथेह क्षुधिता बाला मातरं पर्युपासते ॥ (साम वेद)

जिस प्रकार बच्चे को चलना सीखना होता है, ठीक उसी प्रकार सरलता और स्वाभाविकता-पूर्वक मनुष्य को मरना सीखना होता है। इस मृत्यु से अभिप्राय वह अवस्था है कि जहाँ सेवक व्यक्तिगत सेवक नहीं रहता, शिष्य शिष्य नहीं, राजा राजा नहीं, मित्र मित्र नहीं, शत्रु शत्रु नहीं, लोगों के वचन (promises) वचन नहीं, धमकियाँ धमकियाँ नहीं, सामान सामान नहीं, अधिकार अधिकार नहीं रहते, बल्कि जहाँ सब ईश्वर रूप ही हो जाता है। वहाँ केवल एकमात्र सत्य है। जब हृदय इस (सचाई) के साथ स्पन्दित होता वा धड़कता है, तब सारा संसार उस हृदय के साथ स्पन्दित होता वा धड़कता है। जब मन इस (सत्य) से विच्छिन्न होता है (अथवा जब मन इस दैवी विधान के साथ तालबद्ध नहीं होता), अर्थात् जब मन बाह्य दृश्य वा नाम-रूपों पर ही आश्रय करता है, तब सारा संसार उस मन से विरुद्ध स्पन्दित वा अनुकम्पित होता है। जब तक हम लोगों में अपने देह की रक्षा करने और अपने व्यक्तित्व की ओर से "शठे शाठ्यम्" वत् बदला लेने की भावना जान पड़ती वा महसूस होती है, तब तक समझ लो कि हम मृतक वा गतप्राण हैं। क्लेशकारी व दर्पहारी तथा अपमानकारी शब्दों को बिना ध्यान दिये छोड़ देने की शक्ति से बढ़कर उत्तम प्रमाण (निजी) महत्ता का कोई नहीं है।

जब कोई सज्जन वकील के स्थान से जज की कुरसी पर जा बैठता है, तब सारी कचहरी का भाव उसकी ओर बदल जाता

है। इसी प्रकार जब हम वकील के स्थान से ऊपर उठकर निष्पक्ष ईश्वरीय ज्योति की स्थिति में आते हैं, तब सारे संसार को हमारे साथ अपने संबंध पुनर्निरधारित करने पड़ते हैं. और जिस प्रकार जहाज़ की गति के अनुसार दिग्दर्शक-यंत्र (Compass) की सुई अपनी नोक को हटा लेती है, उसी प्रकार हमारे साथ उनके व्यवहार का ढंग भी बदलना ज़रूरी हो जाता है। क्या लोग आपको ठगते हैं ? तो इसलिये कि आपने अपने में से ईश्वर को ठगकर निकाल बाहर किया है। प्रोफ़ेसर (अध्यापक) जेम्स ने बहुत ही ठीक यह अवलोकन किया है:—
"जीवन इसी बात पर अवलंबित है कि प्रत्यक्ष भौतिक संवेदनों का प्रभाव हमारे कार्यों पर दूरस्थ बातों की भावनाओं के प्रभाव (ideas of remoter facts) की अपेक्षा क्षीणतर पड़े। पशु केवल भौतिक संवेदनाओं द्वारा ही संचलित वा प्रेरित होते हैं। किन्तु मनुष्य की दिव्यता (ईश्वरत्व) का पुनरुद्धार तब होता है, जब अदृष्ट नियम-समूह (laws), नहीं-नहीं, वह दैवी विधान, जो पाशविक मनुष्य के लिये अन्धकार में ढका है, मनुष्य के लिये एक ठोस और कठोरतर तत्त्व हो जाता है; और दूसरी ओर भासमान, क्षणभंगुर रूप, नाम-मात्र प्रत्यक्ष मुद्रा (hard cash) इत्यादि, जो मूर्खों के मार्ग-दर्शक-रूप नक्षत्र हैं, उसके लिये भगवत्-उपस्थिति के प्रकाश में विलुप्त हो जाते हैं।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥

(भगवद्गीता अ० २, श्लोक ६९)

अर्थः—जो सब प्राणियों के लिये रात्रि है, उसी में संयमी पुरुष जागता है, और जिसमें सब प्राणी जागते हैं, वही ज्ञाननेत्र-युक्त मुनि की रात्रि है।

———०———

उत्कृष्ट शिष्टाचार—दैवी विधान

ख़लील आँ रोज़ बा आतिश हमे गुफ़्त,
अगर मूए-ज़ मन बाक़ीस्त दर सोज़।
बदो मे गुफ़्त आँ आतिश कि ऐ शाह!
बपेशत मन बमीरम तु दर अफ़रोज़॥

भावार्थः अब्राहीम जब जीते जी जलाया जाने लगा, तो उसने अग्निदेवता से प्रार्थना की कि यदि मेरा देह-अभ्यास (व्यक्तिगत अहंकार) बाल बराबर भी इस देह में धसा हुआ हो, तो मेरी निरन्तर यही विनय है कि 'कृपया इसे कदापि न छोड़ो, अवश्य जला डालो।' आग बुझ गई, मानो उसने भक्तिपूर्वक वा सत्कार-पूर्वक यह उत्तर दिया कि 'ऐ मेरे स्वामी! आप जीते रहिये और मुझे आपके चरणों पर मर मिटने दीजिये।"

ऐसा दैवी विधान है। शिष्टाचार में, विनय में, ईश्वर किसी से हारनेवाला नहीं।

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन्।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन् वशे॥ (यजु० संहिता)
सर्वाण्येनं भूतान्यभिक्षरन्ति॥ (बृहदारण्यक उप०)
सर्वेऽस्मै देवा बलिमावहन्ति॥ (तै० उप०)

अर्थः—आदि में ही सृष्टि-उत्पादक देवों ने ब्रह्म में रुचि रखनेवालों से बोलाः—"हे ब्रह्म से अभिन्न ब्राह्मणो! जो कोई भी इस प्रकार ब्रह्म को जान लेगा, उसकी सेवा में हम देवताओं को आज्ञाकारी अनुचर की भाँति उपस्थित रहना होगा।"

"उसके सिंहासन के आगे भूतमात्र उपहार ला अर्पित करते हैं।

उसकी वेदी पर सब विधान (देव) भेंट चढ़ाते हैं।

वेदान्त पर एक भारी आक्षेप

वेदान्त हृदय के भावों को मार डालता है, और सौन्दर्य्यावलोकन की शक्ति को नष्ट कर डालता है; यह निठुरता (दया वा प्रेम-भाव की शून्यता) और जड़-प्रकृति के समान अटल वा सीधा (घृणास्पद) आचरण सिखलाता है, और संबंधियों का किंचित् ख़याल तक नहीं कराता है।

हाँ, यह (वेदान्त) ऐसा करता है। इसके सच्चे भक्त के लिये सत्य अर्थात् वास्तविक तत्त्व का इतना भारी विस्तार तो अवश्य हो जाना चाहिये कि जिसके सामने पदार्थ, व्यक्तियाँ, कार्य-कारणत्व, और लोक-मत लुप्तप्राय (Vanishing quantities) हो जायँ। परन्तु यदि मानव वा अधिकतर पाशव भावनायें सब धुलकर साफ़ हो जायँ, तो उनके स्थान पर दिव्य भावनायें (विचार) ज़ोर से प्रवाहित होने लगती हैं। नक़ली ज्योतियों के स्थान पर हास्यमुख (प्रफुल्लित) सूर्यज्योति आ जाती है, जो यद्यपि किसी व्यक्ति विशेष का पक्ष वा सत्कार तो नहीं करती, तथापि इर्द गिर्द सबको प्रसन्नता में भिगो डालती है।

एक बहुत बड़ा आध्यात्मिक अनुभवी अंग्रेज़ कहता है कि "पहले मैं भी कभी नहीं मान सकता था, किन्तु अब इस सब को मैं स्वयं देख रहा अर्थात् अनुभव कर रहा हूँ कि जब अपने (व्यक्तित्व के) विषय में सोचना नितान्त त्याग दिया जाय, तो इसके समान कोई सुख नहीं, इसके समान कोई अवस्था नहीं। परन्तु आपको यह पूर्ण रूप से करना चाहिये। क्योंकि जब तक अहंकार (देहाध्यास) का किञ्चित् लेश (अणु) बना रहेगा, तब तक यह सबको नष्ट-भ्रष्ट कर देगा। आपको यह सब

(देहाध्यास) पीछे छोड़ना होगा, और अपने व्यक्तित्व (अहंकार) और मन के साथ उतनी ही सहानुभूति रखनी होगी, जितनी कि किसी अज्ञात पुरुष के प्रति रक्खी जाती है, इससे न किञ्चित् न्यून, न अधिक।"

वर्षों के अपने विचारों और मन्तव्यों (plans and purposes) को छोड़कर यश, कीर्ति एवं चिर-परिचित स्वरों के नाद को त्याग दो; आलिंगन करनेवाली प्यारी भुजाओं के आलिंगन से वियुक्त होकर अपने इस लालन-पालन किये हुए अहंकार को इस प्रकार परे रख दो, जैसे हम अपने दस्तानों को खींचकर उतार देते हैं; रोग-भय को किनारे करके और "लोग हमारे मूल्य को समझेंगे" इस भावना की आशा (hopes of appreciation) को निकाल बाहर कर दो; अपने आपसे अशरीरी बन बाहर हो जाओ; दीर्घ काल से रचित आवरण अर्थात् बाहरी कोष को भूसीवत् छोड़ दो; वैराग्य के द्वार से प्रभुत्व के प्रासाद में प्रवेश करो; ज्ञान के द्वार से मुक्ति के खुले उपवन में आओ; सबका त्याग कर दो; जो कुछ अपना है, उससे मन को निरासक्त कर दो; निर्धन और निःस्वत्व बन जाओ; फिर देखो, तुम सर्व वस्तुओं के प्रभु और अधिराज हो जाते हो कि नहीं।

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे
नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणामुं (यजु०)

अर्थः—जय (श्री) और समृद्धि तुम्हारी दासियाँ हैं। दिन और रात तुम्हारे दक्षिण और वाम भाग (पार्श्व) हैं। नक्षत्रों में शोभा (कान्ति) तुम्हारी दृष्टि (दर्शन) है। स्वर्ग, मर्त्य (पृथ्वी और आकाश) तुम्हारे खिले हुए (अलग-अलग) अधर (ओष्ठ) हैं।" यदि किसी वस्तु की तुम्हें इच्छा करनी है, तो यह इच्छा करो।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

निश्चल चित्त

(क्लास लैक्चर, फ़रवरी १४, सन् १६०३)

उस दिन प्रश्न किया गया था कि "क्या कोई मनुष्य इस युग में वेदान्त-तत्त्व का अनुभव कर सकता है ?" और उस पर किसी ने यह सुझाया था कि वेदान्त-तत्त्व के अनुभव करने के लिये मनुष्य को अमुक-अमुक पदार्थ का त्याग करना ज़रूरी है, और इसके लिये उसे अवश्य हिमालय के जंगलों में जाना चाहिये। किन्तु राम कहता है, नहीं-नहीं, आपको इस निमित्त जंगलों में जाने की कुछ ज़रूरत नहीं।

आजकल प्रायः समयाभाव की शिकायत बहुत सुनी जाती है। लोग कहते हैं:—"हमारे पास (ईश्वर-भजन-निमित्त) कोई समय नहीं है। हमको तरह-तरह के काम देखने पड़ते हैं; हमारे बंधु-मित्र हमारा समय ले लेते हैं।" एक प्रार्थना है कि "हे ईश्वर ! मुझे अपने शत्रुओं से बचा", किन्तु आधुनिक काल के मनुष्यों को जो प्रार्थना करना चाहिये, वह ठीक यह होगी—"हे प्रभु ! मुझे अपने मित्रों से बचा।" मित्रगण हमारा सारा समय छीन लेते हैं; उधर चिन्ता, शोक और दुःख हमारा समय ले लेते हैं। हमें अपने बाल-बच्चों और सहकारियों की भी देख-भाल करनी पड़ती है, मिलनेवालों का स्वागत करना और दूसरों से मिलने जाना पड़ता है, कुछ पढ़ना भी तो पड़ता है, ऐसी दशा में हम किस तरह आध्यात्मिक उन्नति के लिये समय निकाल सकते हैं ? ओह, कर्त्तव्य (फ़र्ज़,

duties) ! तुम हमारा समय ले लेते हो । आराम से भोजन करने का समय भी तो हमें इनसे नहीं मिलता। (इस प्रकार) कर्त्तव्य के नाम आपकी सारी ज़िन्दगी क्षीण होती जा रही है। परन्तु हमें यह अपने से पूछना चाहिये कि ये कर्त्तव्य (duties) कहाँ से आते हैं ? कौन हम पर यह कर्त्तव्य आ डालता है ? हम स्वयं । वास्तव में आप हो, जो अपने कर्त्तव्य निर्माण कर लेते हो। क्रूर स्वामी के समान इन कर्त्तव्यों को आप पर न आ पड़ना चाहिये । दफ़्तर के काम की देख-भाल करना आप अपना कर्त्तव्य समझते हैं, पर दफ़्तर का काम आप पर कौन डालता है ? आप स्वयं । इस प्रकार यदि आप कर्त्तव्यों के स्वरूप को अन्ततः विचारोगे या देखोगे, तो आपको पता लग जायगा कि आप अपने स्वामी आप हो, और ये सब कर्त्तव्य जो आपको पूर्ण अपना गुलाम (दास) बनाये हुए हैं, आपने स्वयं रचे हैं । यदि एक बार भी आप ऐसा भान वा निश्चय कर लें कि "संसार में कोई पदार्थ नहीं, जो मुझे बाँध सके, प्रत्येक वस्तु वास्तव में मुझसे उत्पन्न होती है," तो आप बड़े सुखी हो सकते हैं, अपनी स्थिति को बड़े मज़े से आप ठीक कर सकते हैं ।

डॉक्टर जोह्नसन के पास एक मनुष्य आकर बोलाः— "डाक्टर ! डॉक्टर !! मैं नाश हुआ, मैं गया गुज़रा, मैं किसी काम के योग्य नहीं रहा, मैं कुछ भी नहीं कर सकता । इस दुनिया में मनुष्य क्या कर सकता है ?' डॉक्टर जोह्नसन ने उससे पूछा कि क्या हुआ, मामला क्या है ? अपनी शिकायत के लिये सबब (कारण) तो बताने चाहिये ? वह मनुष्य इस प्रकार अपनी दलीलें पेश करने लगाः—"मनुष्य इस संसार में अधिक से अधिक सौ वर्ष जीता है । और इस अपार व अनन्त काल के सामने भला सौ वर्ष क्या हैं ? इस पर आधी

आयु तो निद्रा में बीत जाती है । आप जानते हो कि हम लोग प्रतिदिन सोते हैं, हमारा बाल्य-काल एक लम्बी निद्रा है। और हमारी वृद्धावस्था का काल भी शिथिलता (debility) और असमर्थता का काल है जबकि हम कुछ भी नहीं कर सकते; फिर हमारा यौवन-काल दुर्विचारों, भाँति-भाँति के प्रलोभनों में और दुरुपयोग में खर्च हो जाता है । इससे जो कुछ समय बच निकलता है, वह क्रीड़ा-कलोल में खर्च हो जाता है, हम लोग बहुत खेलते हैं; इससे जो कुछ समय बच निकलता है, वह शौच-क्रिया करने में, खाने-पीने इत्यादि में नष्ट हो जाता है; और उससे जो कुछ बच निकलता है, वह समय क्रोध, ईर्ष्या, शोक, चिन्ता, दु:ख और पीड़ा में चला जाता है । यह सब हरएक मनुष्य के लिये स्वाभाविक ही है । इससे भी जो बचा रहता है, जो किञ्चित् सा समय इसके बाद हमें मिलता है, वह बाल-बच्चों, मित्रों और बन्धुओं के मिलने-मिलाने वा देख-भाल में चला जाता है । (ऐसी दशा में) मनुष्य इस संसार में भला क्या कर सकता है ? जो मरते हैं, उनके लिये हमें रोना-पीटना पड़ता है, और नवागतों के जन्म पर ख़ुशी मनानी पड़ती है । इस प्रकार हमारा सारा समय नष्ट जाता है, और (ऐसी हालत में) मनुष्य कोई पक्का और यथार्थ काम भला कैसे कर सकता है ? अपने ईश्वरत्व को अनुभव करने के लिये मनुष्य कैसे समय निकाल सकता है ? हम तो निकाल नहीं सकते । परे हटाओ इन गिरजाघरों को; दूर करो इन धार्मिक गुरुओं और उपदेशकों को, इनसे कह दो कि लोग धर्म (ईश्वर-भजन) के लिये कोई समय नहीं निकाल सकते, अपने ईश्वरत्व को अनुभव करने के लिये उनके पास कोई समय नहीं है । यह हम लोगों के सामर्थ्य से बाहर है।" डॉक्टर जोह्नसन इन शब्दों पर हँसा नहीं, उसने इस आदमी को

तिरस्कारा व धिक्कारा नहीं, वह केवल रोने लग पड़ा, और उसके साथ सहानुभूति करते हुए बोलाः—"मनुष्यों को आत्मघात कर लेना चाहिये, क्योंकि उनके पास परमार्थ के लिये कोई समय नहीं। भाई! आपकी इस शिकायत के साथ मुझे एक और शिकायत है, मुझे इससे भी बुरी शिकायत करनी है।" इस मनुष्य ने डॉक्टर जोह्नसन से कहा कि आप अपनी शिकायत कहिये। डॉक्टर जोह्नसन रोने लगा, दिखावटी रुदन करते हुए बोला—"यह देखो, मेरे लिये कोई ज़मीन वा भूमि नहीं रही, कोई ऐसी भूमि बची नहीं, जो मेरे खाने-भर को अन्न उत्पन्न कर सके, मैं तो गया-गुज़रा और मरा।" वह (आदमी) बोला—"अजी डॉक्टर साहब! यह हो कैसे सकता है? मैंने माना कि आप बहुत अधिक खाते हैं, दस मनुष्यों जितना खाते हैं, फिर भी इस पृथ्वी पर इतनी भूमि है कि जो आपके उदर के लिये अन्न उपजा सके; आपके शरीर के लिये अन्न या शाक (तरकारी) उत्पन्न करने को काफ़ी भूमि है। आप शिकायत क्यों करते हैं?" डॉक्टर जोह्नसन ने उत्तर दियाः—"अरे देखो तो, आपकी यह पृथ्वी ही क्या चीज़ है? यह भूमि कुछ चीज़ नहीं। ज्योतिर्गणित में यह पृथिवी एक विन्दु-मात्र मानी जाती है! जब हम तारों और सूर्यों के अन्तर का हिसाब लगाने बैठते हैं, तो इस पृथिवी को कुछ भी नहीं अर्थात् शून्यवत् मानते हैं; फिर इस शून्य रूप पृथिवी की तीन चौथाई तो जल से परिपूर्ण है, और इस पर बचता ही क्या है? ज़रा ध्यान दो! एक बहुत बड़ा भाग तो ऊसर बालू से भरा पड़ा है; एक बड़ा भाग ऊसर पर्वतों और पत्थरों ने ले रक्खा है; एक बड़ा भाग तो झील और नदियों ने दबा रक्खा है, फिर इस भूमि का बहुत सा भाग लन्दन जैसे बड़े-बड़े नगरों से घिरा पड़ा है; उस पर सड़कें, रेलें, गली-कूचे इस पृथिवी का एक बहुत बड़ा भाग ले लेते हैं। अब

बतलाइये, इस पृथिवी का कौन-सा भाग मनुष्य के लिये छूट रहा है ? (अर्थात् कोई नहीं) । तो भी हम मान लेते हैं कि इन सबसे कुछ अवश्य मनुष्य के लिये बचा है। परन्तु कितने ऐसे प्राणी हैं, जो इस बचे हुए तुच्छ पृथिवी-तल से लाभ उठाना चाहते हैं ? इसमें बहुत-से पक्षी, बहुत-से कीड़े-मकोड़े और बहुत-से हाथी-घोड़े हैं, जो सब के सब इस बचे हुए उपजाऊ भूमि के भाग पर अपने को जीते रखना चाहते हैं, निर्वाह करना चाहते हैं; बहुत ही थोड़ा भाग मनुष्य के हिस्से में आता है। फिर संसार में मनुष्य भी कितने हैं ? एक लन्दन को देखो, लाखों-करोड़ों आदमी भरे पड़े हैं, जरा इस भारी जन-संख्या को तो देखो, ये सबके सब इस संसार वा बड़े शून्य (बिन्दु) के तुच्छ (अत्यन्त अल्प) भाग पर निर्वाह करना चाहते हैं। तब मेरी तृप्ति के लिये भूमि कैसे (व कहाँ से) अन्न उपजा सकती है ? मेरा तर्क तो मुझे इस निराशा और शोक भरे निष्कर्ष पर पहुँचाता है कि मुझे मर जाना उचित है, क्योंकि मेरी उदर-पूर्त्ति-निमित्त अन्न उपजाने योग्य भूमि मुझे नहीं मिल सकती।" इस पर वह मनुष्य बोला—"डॉक्टर साहब ! आपकी दलील (युक्ति) ठीक नहीं, आपका तर्क तो ठीक जान पड़ता है, परन्तु आप के इस तर्क के होते हुए भी यह पृथिवी आपको जीवित रख सकती है।" तब डॉक्टर जोहसन ने उत्तर दिया—"अजी महाराज ! यदि मेरी यह शिकायत बेबुनियाद वा युक्ति-हीन है, तो आपकी शिकायत भी कि आध्यात्मिक आहार पाने के लिये समय नहीं मिलता—युक्ति-हीन है। यदि मुझे भौतिक भोजन देने को यह भूमि काफ़ी (पर्याप्त) है, तो आपके मन्तव्य के लिये समय भी पर्य्याप्त है, यह आपको आध्यात्मिक भोजन भी दे सकता है।" इस प्रकार राम भी इस प्रश्न का कि "वर्तमान सभ्यता हमें कोई आध्यात्मिक भोजन पाने का समय नहीं देती।" यही उत्तर देता

है। इस प्रश्न का उत्तर राम उसी प्रकार देता है, जिस प्रकार वर्षों पहिले डॉक्टर जोह्नसन ने दिया था। और वर्तमान दशा में भी आध्यात्मिक उन्नति करने को काफ़ी समय आपके पास है। आपके पास काफ़ी समय है, यदि आप उसका ठीक उपयोग करें।

एक बार (भारतवर्ष में) एक आदमी घोड़े पर सवार कहीं दूर जा रहा था। मार्ग में उसे एक राहट (Persian wheel) मिला। आप जानते हैं कि भारतवर्ष में पृथिवी से पानी निकालने के लिये एक प्रकार की रहट होती है, जिसे हम परशियन व्हील (Persian wheel) कहते हैं। जब रहट द्वारा पानी कुआँ से निकाला जाता है, तब एक प्रकार का शब्द होता है। जब रहट द्वारा पानी कुएँ से निकल रहा था, तब यह मनुष्य अपना घोड़ा वहाँ पानी पिलाने को ले गया। घोड़े को उस प्रकार के शब्द सुनने का अभ्यास न था, इसलिये वह उसे सुनकर चमका और उसने पानी न पिया। जो किसान उस रहट को चला रहे थे, उनसे उस घुड़सवार ने वह शब्द बन्द करने को कहा। किसानों ने रहट को बन्द कर शब्द बन्द कर दिया। शब्द तो बन्द हो गया, पर शब्द बन्द होने के साथ-साथ जल का आना भी बन्द हो गया। अब पीने को घोड़े के लिये जल ही न था। घोड़ा पानी के कुंड की ओर बढ़ा, पर वहाँ पानी बिलकुल था ही नहीं। इस पर यह घुड़सवार उन किसानों से यों मुख़ातिब होकर बोला—"ऐ विचित्र किसानो! तुम अ़जीब आदमी हो! मैंने तो तुम्हें शब्द बन्द करने को कहा था, पानी बन्द करने को नहीं, तुम लोग परदेशी पर इतनी कृपा भी नहीं करते, जिससे वह अपने घोड़े को पानी पिला सके?" किसान बोलेः—"महाराज! हम लोग हृदय से आपकी सेवा-सुश्रूषा करना चाहते हैं, और आपके घोड़े को पानी देना चाहते हैं, किन्तु आपका कहना

मानना हमारे सामर्थ्य से बाहर है। हम आपका कहना कर नहीं सकते। यदि आप पानी चाहते हैं, यदि आप अपने घोड़े को पानी पिलाया चाहते हैं, तो शब्द के होते हुए ही आप अपने घोड़े को पानी पीने को पुचकारिये, क्योंकि जब हम शब्द बन्द करते हैं, तो पानी भी वहीं रुक जाता है, अर्थात् पानी भी प्राप्त होने से रह जाता है, पानी तो नित्य इस शब्द के साथ-साथ ही आता है।" इसी प्रकार राम कहता है कि अगर आप वेदान्त का अनुभव करना चाहते हैं, तो सर्व प्रकार के शब्दों (कोलाहल) के बीच में, भाँति-भाँति के कष्टों (झंझटों) के बीच में ही उसे कीजिये। इस जगत् में आप कभी ऐसी स्थिति में अपने को नहीं पा सकते, जहाँ बाहर से कोई शब्द (खटखट) या दुःख-झंझट न हों। चाहे आप हिमालय के शिखरों पर जाकर रहें, वहाँ भी अपने गिर्द आप झंझटें पायेंगे। चाहे आप अशिष्ट (जंगली) पुरुषों के समान रहें, वहाँ भी अपने गिर्द आप झंझटें पायेंगे। जहाँ जी चाहे आप जायँ, दुःख-झंझट आपको नहीं छोड़ेंगे, ये आपका पीछा कभी नहीं छोड़ेंगे, ये सदा आपके साथ होंगे। यदि आप वेदान्त का अनुभव करना चाहते हैं, तो जब आपके इर्द-गिर्द झंझट-रूपी रहट का शब्द खूब जारी हो रहा हो, तभी उसे करिये। जितने महापुरुष हुए हैं, वे सब के सब अपमानकारी (वा तुच्छ निराशा-जनक) परिस्थिति और दशा के होते हुए ही हुए हैं; वास्तव में जितनी अधिक कष्ट भरी दशा होती है और जितनी अधिक कठिन (वा कष्ट-साध्य) परिस्थिति होती है, उतने ही प्रबल मनुष्य और उतने ही अधिक बलवान् लोग हो जाते हैं, जो उन अवस्थाओं में से निकलते हैं। अतः इन बाह्य दुःखों और चिन्ताओं को आनन्द से आने दो। ऐसे अड़ोस-पड़ोस में ही वेदान्त को व्यवहार में लाओ। और जब वेदान्त-तत्त्व में

रहने लगोगे, अर्थात् जब वेदान्त आपके आचरण में आ जावेगा, तो आप देखोगे कि ये अड़ोस-पड़ोस और अवस्थायें आपसे हार मानेंगी, आपके आगे सिर झुकायेंगी, आपके अधीन हो जायँगी, और आप उनके स्वामी बन जाओगे। क्या यह समाज है, जो हमें नीचे गिराता है? क्या यह दुनिया है, जो हमें नीचे दबाए रखती है? नहीं, आप तो इस दुनिया में रहते ही नहीं। प्रत्येक व्यक्ति तो अपनी ही रचित क्षुद्र दुनिया में रहता है। कितने थोड़े ऐसे पुरुष हैं, जो इस संसार में रहते हैं? इस विशाल संसार में बहुत ही थोड़े मनुष्य रहते हैं; आप तो अपनी रचित छोटी सी दुनिया में रहते हैं। आप लोगों ने अपनी-अपनी क्षुद्र व्यक्ति के चारों ओर अपनी-अपनी दुनिया बना ली है। कितने ऐसे लोग हैं, जो छोटे से घरेलू वृत्त से परे कुछ नहीं जानते। कितने ऐसे लोग हैं, जो अपनी जाति की सृष्टि के बाहर कुछ नहीं जानते। कितने ऐसे लोग हैं, जिनको अपने पति-पत्नी या बाल-बच्चों की रचित छोटी सृष्टि के बाहर कुछ मालूम नहीं। कम से कम आप इस विशाल संसार में तो रहिये इन छोटी सी तुच्छ दुनियाओं से तो ऊपर उठिये। यह विशाल (विस्तृत) सृष्टि तो आपको नीचे नहीं दबाए रखती; ये आपकी अपनी ही रचित छोटी-छोटी सृष्टियाँ हैं, जो आपको नीचे दबाए रखती हैं; यदि आप इस (छोटी सृष्टि) से ऊपर उठ सकें, तो सारी दुनिया आपके अधीन हो जायगी आपके आगे हार मान लेगी।

वस्तुतः कर्म क्या है, इसको विचारने से हमारे निज निर्मित क्षुद्र संसार का उदाहरण मिल जायगा। आप कहते हैं कि हम अति प्रवृत्त रहते हैं, और राम ने इस देश में लोगों को समयाभाव की शिकायत करते देखा है, यद्यपि राम को यह देखकर हँसी मालूम हो रही है कि लोग अपनी सारी जिन्दगी तो समय का

खून करते (वक़् काटते) फिरते हैं, और तिस पर समयाभाव की शिकायत करते हैं। उन्हें वक़् तो इतना काफ़ी मिलता है कि उनके सिर-भुजा पर वह भारू हो जाता है, और फिर भी वे कहते हैं—"हमारे पास समय नहीं।" आप अपने संकल्पों से समय खो रहे हैं, आप समय नष्ट कर रहे हैं, और फिर भी कहते हैं कि "समय नहीं है।" यह कैसी बात है? कर्म के रूप के विषय में जो भ्रम आपको हो रहा है, वही आपकी शिकायत का कारण है। आप 'कर्म' उसको कहते हो, जो वास्तव में 'कर्म' नहीं है। भिन्न-भिन्न लोग कर्म की भिन्न-भिन्न परिभाषा करते हैं। विज्ञान या यन्त्र-विद्या (Mechanics) के लेखक कर्म की एक प्रकार परिभाषा करते हैं, और हम लोग दूसरी प्रकार। उनके मतानुसार आप यदि सम धरातल (मैदान) पर चल रहे हो, तो कोई कर्म (वास्तव में) नहीं कर रहे; अथवा गेंद यदि चिकनी (साफ़) समतल भूमि पर लुढ़क रहा हो, तो वह (वास्तव में) कोई कर्म नहीं कर रहा है। आप जभी कर्म करते हो, जब चढ़ाई पर ऊपर चढ़ते हो; जब आप सम धरातल पर चलते हो, तब कोई कर्म (वास्तव में) नहीं करते हो, यह विचित्र ढंग कर्म की परिभाषा करने का है। अध्यात्म-शास्त्र कर्म की परिभाषा दूसरी रीति से करता है। अध्यात्म-शास्त्र के अनुसार आप तभी कर्म करते होते हो, जब आपका मन उस कर्म में प्रवृत्त है; पर यदि आप कोई कर्म (हाथ से तो) कर रहे हो और आपका मन उसमें लगा नहीं है, तो आप वास्तव में कर्म नहीं कर रहे। आप श्वास लेते हो, किन्तु अध्यात्म-शास्त्रानुसार श्वास लेना कोई कर्म नहीं है; खून आपकी नाड़ियों में बह रहा है, यह एक हिसाब से तो कर्म है, किन्तु अध्यात्म-शास्त्रज्ञों के मतानुसार यह कर्म नहीं। अध्यात्म-शास्त्रवेत्ता "कर्म वास्तव में क्या है" इसके दिखलाने के लिये एक बड़े मार्के का उदाहरण देते हैं:—

एक पुराना अभ्यासवृद्ध योद्धा था, जो सैनिक शिक्षा और क़वायद में इतना अभ्यस्त था कि ड्रिल (क़वायद) की क्रियाएँ उसके लिये स्वाभाविक हो गई थीं, अर्थात् वह क़वायद की क्रियाएँ यन्त्रवत् किया करता था। दूध का भारी मटका या कुछ और खाद्य वस्तुएँ हाथ में लिये यह (योद्धा) बाज़ार में जा रहा था। वह अपने हाथों में या कन्धों पर भारी घड़ा (दूध का) ले जा रहा था। वहाँ बाज़ार में एक पक्का मसख़रा आ पहुँचा। उसने चाहा कि यह सब दूध या अन्य स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ (उसके हाथ वा कंधे पर से) नाली (मोरी) में गिर जायँ। अतः वह मनुष्य एक किनारे खड़ा हो गया, और वहीं बोल उठा "अटेनशन ! अटेनशन !! (attention, attention सावधान हो ! सावधान हो !!)।" आपको मालूम है कि जब हम अटेनशन (attention) कहते हैं, तो हाथों को नीचे गिर जाना चाहिये। इस अभ्यासवृद्ध योद्धा ने ज्यों ही कि वह शब्द 'अटेनशन' सुना, त्यों ही उसके हाथ स्वतः नीचे गिर गये, और सब दूध या अन्य वस्तुएँ, जो उसके पास थीं, नाली में गिर गईं। बाज़ार में सभी राही और दुकानदार इससे पेट भर हँसे। आप देखते हैं कि जब उसने अटेनशन (सावधान) का शब्द सुना, तत्काल उसने हाथ नीचे गिरा दिये। परन्तु अध्यात्म-शास्त्र के कथनानुसार उसने कुछ काम नहीं किया, ऐसा कर्म तो स्वाभाविक कर्म (reflex action) कहलाता है। स्वाभाविक कर्म कोई कर्म नहीं है, क्योंकि मन उसमें नहीं लगा होता।

अब राम आपसे केवल पूछता है कि "कृपा करके बताइये, आप चौबीस घंटे में कितना 'काम' करते हैं ?" जब आप खाना खाते हैं, तो क्या यह 'कर्म' है ? नहीं। जब आप और बीसियों काम करते हैं, तो जिस अर्थ में अध्यात्म-शास्त्र कर्म की परिभाषा करता है, आप उसी अर्थ में क्या 'कर्म' करते हैं ? जब आप

टहल रहे हैं, तो क्या 'कम' कर रहे हैं ? और भी अनेक काम, जिनके नाम लेने की राम को आवश्यकता नहीं, जब आप करते हैं, तो क्या आप 'कर्म' करते हैं ? नहीं, कदापि नहीं। आपका मन वा ध्यान (उस काम में) लगा नहीं था। जो काम आपके हाथ में है, यदि आपका मन वा ध्यान उसमें नहीं है, तो आप कर्म नहीं कर रहे। आप केवल आलस्य में समय काट रहे हैं। क्या आप उस समय को नहीं बचा सकते ? क्या आप उसका उपयोग नहीं कर सकते ? किन्हीं कामों में हमारा मन पूर्ण लग जाता है, और कुछ काम करते समय हमारा मन आधा लगता है। जिस काम में आपका मन वा ध्यान आधा लगता है, आप आधा कर्म कर रहे हैं, अपना बाक़ी आधा ध्यान आप उपयोग में ला सकते हैं; और जब आपका ध्यान नितान्त अप्रवृत्त (कर्म-कार्य-शून्य) है, तब आप अपने पूर्ण ध्यान को काम में लगा सकते हैं। इस प्रकार अपने मन के ध्यान (अर्थात् चित्तवृत्ति) का उपयोग कर आप अपने जीवन की उन्नति कर सकते हैं। अपने अप्रवृत्त (unengaged) ध्यान का उपयोग न कर जितना काम आप दिन भर में कर सकते हैं, उसकी अपेक्षा अधिक कर्म (आप ध्यान के उपयोग से) कर सकते हैं।

इसे अब एक दूसरे उदाहरण से स्पष्ट किया जाता है।

दो लड़के, जो आपस में मित्र थे, एक बार रास्ते में परस्पर मिले। एक ने अपने मित्र से आग्रह किया कि वह उसके साथ चर्च (गिरजाघर) चले, और वहाँ उपदेश अर्थात् कोई गान अथवा अन्य कुछ सुने। दूसरे ने खेलने का इस प्रकार अनुरोध किया कि "गिरजाघर जाने और वहाँ शुष्क स्वर भरा उपदेश सुनने में समय नष्ट करने की क्या आवश्यकता ? हम लोगों के लिये खेलना कहीं अच्छा होगा।" वे दोनों सहमत न हुए, इसलिये एक तो गिरजे को चला गया, और दूसरा खेलने को

धुन में निकला। परन्तु जो लड़का गिरजाघर को गया; जब पादरी साहब के सामने उपस्थित हुआ, और पादरी साहब का उपदेश न समझ सका, उस उपदेश के एक वाक्य से भी आनन्द न उठा सका, तब वह गिरजे में आने से पछताया, और क्षीण-चित्त हुआ; तब वह खेल-भूमि की याद करने लगा कि दूसरे लड़के के साथ कितने लड़के खेल में शामिल हुए होंगे, और खेल रहे होंगे। पूरे दो घंटे वह गिरजे में रहा, परंतु बराबर उसका मन खेल-भूमि (play-ground) में ही लगा रहा। उधर दूसरा लड़का जो खेल-भूमि को गया, उसे अपने मन के लायक़ (अपनी रुचि का) साथी न मिला, कोई ऐसा लड़का उसे न मिला, जो उसके साथ खेल सके। वह अकेला रह गया, इससे उदास हो गया। वह गिरजा जाने को सोचने लगा। फिर चित्त में सोचने लगा कि गिरजा जाने का अब समय नहीं रहा। वह (चाहे शरीर से) खेल-भूमि में था, किन्तु उसका मन बराबर गिरजाघर में लगा था, (इसलिये चित्त से) वह उतने समय बराबर गिरजाघर में रहा। दो घंटे के बाद दोनों लड़के परस्पर रास्ते में पुनः मिले। एक ने कहा "मुझे गिरजा न जाने का अफ़सोस है", दूसरे ने कहा "मुझे खेल-भूमि में न जाने का खेद है।" यही प्रतिदिन हर जगह मनुष्यों के साथ होता है। जहाँ आपका शरीर होता है, वहाँ आपका मन नहीं रहता। कितने ऐसे लोग यहाँ हैं, जिन्होंने आज व्याख्यान सुना है? बहुत ही थोड़े अपने आपको (चित्त से) इस हाल (कमरे) में रख सकते हैं; मन तो उड़ भागता है; मन या तो बच्चे के साथ या किसी अन्य मित्रों के साथ होता है; मन एक जगह से दूसरी जगह, एक विषय से दूसरे विषय में भटकता फिरता है। अध्यात्म-शास्त्र के अनुसार आप जभी काम करते हो, जब मन उसे करता है। किसी समय आपका शरीर तो कोई कार्य विशेष करता होता है, पर आप

उसे नहीं करते होते। अक्सर जब आपका तन तो गिरजाघर में होता है, जब आप (मुँह से तो) प्रार्थना करते होते हैं, जब आप (कानों से तो) व्याख्यान सुनते होते हैं, पर (वास्तव में) न आप व्याख्यान सुनते हैं, न प्रार्थना करते हैं और न गिरजे में ही रहते हैं। अक्सर ऐसा होता है कि आप शरीर से तो बाज़ार में हैं, आप शरीर से तो टहल रहे हैं, पर (चित्त से) वास्तव में आप ईश्वर से युक्त हो रहे हैं। आपका मन ईश्वर के साथ होता है। अक्सर ऐसा हुआ है कि जो लोग दुष्कर्म और पाप (अपराधों) के अपराधी ठहराये गये, वे वास्तव में धार्मिक (ईश्वर-भक्त) और पवित्रात्मा थे, उनका मन ईश्वर से तन्मय था। अक्सर ऐसा होता है कि जो लोग पवित्रात्मा और शुद्ध (साधु) समझे जाते हैं, उनके मन मलीन होते हैं। अक्सर हम दुष्टों की उन्नति होते देखते हैं। वेदान्त कहता है कि उन लोगों की यह दुष्टता नहीं है जो उनकी उन्नति वा वृद्धि कराती है, किन्तु वे चित्त से ईश्वर में वास किये होते हैं। इसलिये लोगों के केवल बाह्य कर्मों से आप कोई परिणाम मत निकालें। यदि कोई मनुष्य चोरी वा ख़ून करता है, तो उसे आपको घृणा की दृष्टि से नहीं देखना चाहिये।

राम अब आपको भारतवर्ष के एक बड़े नामी चोर की अपने मुख से कही कहानी सुनाता है। राम उस समय निरा बच्चा था, और उसने उस नामी चोर को अपने मित्रों से यह कहानी कहते सुना था, किन्तु राम उस मौक़े पर वहाँ स्वयं मौजूद था, राम उस समय अपने ग्राम के जंगल में था, वह स्व. बहुत छोटा सा था। छोटे लड़के को कुछ न समझकर चोर ने इस छोटे बालक की मौजूदगी में (अपने मित्र से कहने में) कुछ न छिपाया, और खुले दिल से सारी कहानी कह डाली।

इस कहानी से आप पर इस सारे विषय का रहस्य खुल जायगा। जिस प्रकार एक बार वह धनिक के घर में घुसा और वहाँ से जवाहिरात चुराकर भागा था, उसे उस चोर ने वर्णन किया। चोर ने कहा कि "जो जवाहिरात उस धनिक ने हाल ही में लाकर अपने घर में रक्खे थे, उसका किसी प्रकार से मुझको पता लग गया। उसके घर में मैं घुसने को तो चला, किन्तु इसका कोई उपाय वा तरीक़ा न सूझ पड़ा। बार-बार सोचने पर मैंने राह निकाल ली। मैंने देखा कि घर के पास ही एक बड़ा भारी वृक्ष है, और वह वृक्ष घर की तीसरी मंज़िल की खिड़की के ठीक सामने है, तब मैंने रात को अँधेरे के समय उस पेड़ पर एक झूला डालने की युक्ति सोची, उस पेड़ की चोटी पर एक रस्सा डाला, और एक प्रकार का झूला बना लिया, और उस झूले पर मैं झूलने लगा, इस प्रकार उस गरम देश में मैं कुछ काल तक लगातार झूलता गया। गरमी की ऋतु थी, और यह मुझे मालूम था कि घर के लोग पाँचवीं छत पर सोये हुए हैं, वे तीसरी छत पर नहीं हैं। जब झूला (झूलते-झूलते) खिड़की के पास पहुँचा, तो मैंने चटाक एक लात मारी, फिर दूसरी लात मारी, और तीसरी लात पर खिड़की के किवाड़ फट से खुल गये। इस प्रकार सातवें, आठवें प्रयत्न के बाद जब खिड़की के किवाड़ खुलकर पीछे गिर गये, तब मैं घर में जा घुसा। मेरे पास वहाँ कुछ रस्से थे, मैंने उन रस्सों को नीचे लटकाकर अपने दो या तीन साथियों को ऊपर खींच लिया। तब मैं अपने चित्त में सोचने लगा कि कहाँ जवाहिरात के मिलने की संभावना हो सकती है। मैंने मन को एकाग्र किया; उस एकाग्रता में मेरा मन नितान्त निमग्न हो गया। उस समय मैंने मन में कहा कि लोग अपने जवाहिरात ऐसी जगह पर नहीं रखते, जहाँ चोरों को उसके मिल जाने की सम्भावना हो सके। लोग जवाहिरात को

ऐसे स्थान पर रखते हैं, जहाँ से दूसरों को उन्हें पा सकने की किञ्चित् सम्भावना न हो सके। वहाँ मैं एक ऐसी जगह खोदने लगा, जहाँ उनके पा लेने की किञ्चित् संभावना थी। जवाहिरात ज़मीन में गड़े थे। उन दिनों भारतवर्ष में यही तरीक़ा था और कुछ लोग आजकल भी वहाँ ऐसा ही करते हैं, परंतु अब बहुत अपने रुपये को बंकों में रखने लग पड़े हैं। लोग अपने धन को भूमि में गाड़े रखते थे। मैंने वह द्रव्य पा लिया और तब मैंने सीढ़ियों से एक आवाज़ सुनी।" उस समय अपने मन की हालत का वर्णन जो चोर ने किया, वह राम भूल नहीं सकता। चोर ने कहा कि "जब मैं और मेरे साथियों ने धन पाते ही आवाज़ सुनी, तो उस आवाज़ ने हमारे शरीर में एक कँपकँपी सी डाल दी। हम लोगों की सारी देह काँपती, थरथराती, भयभीत होती चूर-चूर हुई जाती थी; हम लोग सिर से पैर तक थरथरा रहे थे। तब मैंने कहा कि (जान पड़ता है) शायद यह मृत्यु की घड़ी है। हमने अपने आपको मृतवत् पाया, और उस समय हम कह रहे थे कि अब एक नन्हा सा मूसा आकर भी हमारा ख़ातमा कर सकता है।" वह आवाज़ वास्तव में केवल मूसों की आवाज़ थी। तब चोर ने कहा कि "मैं उस समय पछताया, ईश्वर से प्रार्थना की, और अपने शरीर का ध्यान छोड़ ईश्वर के आगे नितान्त आत्म-समर्पण कर दिया। तब मैंने आत्म-समर्पण किया, पश्चात्ताप कर ईश्वर से क्षमा-प्रार्थना की, और उस समय मैं समाधि-अवस्था में था, जहाँ मन मन नहीं था, जहाँ सब स्वार्थ दूर हो गये थे। उस समय मैं और मेरे साथी एक अति विचित्र और बहुत आश्चर्य-जनक मानसिक स्थिति में थे। उस समय मैंने प्रार्थना की कि 'हे भगवान्! मेरी रक्षा करो, मैं योगी हो जाऊँगा, मैं संन्यास ले लूँगा, मैं साधु बन जाऊँगा, मैं अपना सारा जीवन

आपकी सेवा में अर्पण कर दूँगा, हे प्रभो ! मुझे बचाओ, मेरी रक्षा करो।' यह बड़ी ही उत्सुकता-पूर्ण मार्मिक प्रार्थना थी, बड़ी ही सच्ची विनय थी, जो मेरे हृदय की तह और अन्तः-करण से निकल रही थी। वह प्रार्थना मेरे सारे तन के भीतर से वा रोम-रोम के भीतर से गूँज रही थी, मैं उस समय ईश्वर-ध्यान में निमग्न था, फल क्या हुआ ? सब आवाज़ ठण्डी पड़ गई, अर्थात् सब शब्द बन्द हो गया, और मैं और मेरे साथी घर से साफ़ बाहिर निकल आये, और घर से सकुशल बाहिर आ गये।" अब ध्यान दीजिये, बाह्य कर्मों से ही किसी के विषय में विचार मत स्थिर कीजिये; मनुष्य वह नहीं है, जो उसके बाह्य कर्म हैं, मनुष्य वह है, जो उसके भीतर विचार हैं। यह सम्भव है कि वेश्या के घर में रहनेवाला मनुष्य भी भीतर से साधु हो। हम जानते हैं कि भगवान् बुद्ध एक वेश्या के घर में रहे थे, किन्तु वे निष्पाप थे। हम जानते हैं कि हज़रत ईसा मेरीमैग्डलेन के घर रहे थे, जिस स्त्री को लोग पत्थर से मारने जा रहे थे, किन्तु हज़रत ईसा ईश्वर थे। हमें मालूम है कि भारत में भी क्राइस्ट के समान लोक-उद्धारक बहुत से हुए हैं, वे निन्दित जनों के साथ रहे थे; पर वास्तव में वे ईश्वर-स्वरूप थे। आदमी को उसकी संगत से मत जानिये, किसी मनुष्य पर केवल उसके कर्मों से ही अपना निर्णय मत दीजिये। किसी पर अपना विचार स्थिर (शीघ्र) मत करें। मनुष्य वह है, जो उसके विचार हैं। अक्सर जेल में रहनेवाले लोग स्वर्ग में रहते हैं। बनियन (Bunyan) ने जेल में ही अपनी पुस्तक (Pilgrim of Progress) लिखी; मिल्टन (milton) जब जेल में था और अन्धा हो गया था, तब उसकी महती रचना निकली; डेनीयल डी फ़ो (Daniel De Foe) ने जेल में ही रौबिन्सन क्रूसो (Robinion Crusoe) लिखा; सर वाल्टर

रेली (Sir Walter Raleigh) ने जेल में ही अपने संसार के इतिहास (The History of the World) की रचना की। हम चाहते हैं कि हमारा अड़ोस-पड़ोस अमुक-अमुक प्रकार का हो, पर हम रहते वहाँ हैं, जहाँ हमारे ख़्याल रहते हैं। अब हम मृत्यु अर्थात् जीवन में मृत्यु की कथा की व्याख्या करते हैं। ध्यान से सुनिये। राम कहता है कि आपको सफलता आपकी सबसे अभेदता का फल-स्वरूप प्राप्त होती है। सफलता सदा आपके सद्गुणों का फल है, परमात्मा में लीन और निमग्न होने का परिणाम है। यही बराबर होता है। चोर भी जब उस अवस्था को प्राप्त हुआ, तो सफल हुआ। (इस प्रकार) आप लोग भी सफल होंगे। उस चोर की सफलता उसकी वास्तविक, सच्ची और हार्दिक विनय-सम्पन्न स्थिति (वृत्ति) का परिणाम थी, जिस स्थिति में कि वह उस समय था। परमात्मदेव वा सर्वरूप में लीन व निमग्न होने से उसने जान लिया था कि धन कहाँ है। चोर सफल हुआ। पर चोर की सफलता भी वेदान्त को व्यवहार में लाने के कारण से हुई। इससे प्रत्येक मनुष्य की सफलता सदा उसी कारण से होती है। हम लोग देखते हैं कि वह चोर था, उसने चोरी की, जो बहुत बुरा था, क्योंकि दूसरों को लूटना पाप है, दूसरों को लूटना निःसन्देह समय पर उसे दण्ड देगा, उसके ऊपर आफ़त लायगा; और जो धन कि वह चोरी से पाता है, और जो पाप कर्म कि वह करता है, जो आध्यात्मिक समता (harmony) कि वह तोड़ता है, वह सब के सब अवश्य उस का नाश करेंगे; परन्तु हम देखते हैं कि चोर की भी सफलता सर्व-रूप के साथ एकता और अभेदता तथा परमात्मदेव में उस की लीनता का ही परिणाम है, अर्थात् अपने शरीर-भाव के त्यागने का, क्षण भर के लिये शरीर से ऊपर उठने का,

देह-अध्यास छोड़ने का, शरीर को सूली पर चढ़ाने का, और चर्मदृष्टि (मांसपिण्ड) को पददलित करने का ही परिणाम है। शारीरिक स्वार्थ पर विजय पाने से ही उसे सफलता मिली है; किन्तु चोरी की वृत्ति, जिसका वहाँ उपयोग किया गया, वह उस पर दंड-भय, त्रास वा कँपकँपी और चकित वा विस्मित अवस्था लाई। हम भूल करते हैं, जब किसी मनुष्य को नितान्त बुरा समझ लेते हैं। यहाँ तक कि चोर में भी कुछ प्रार्थना, शील वा विनय-संपन्न वृत्ति और ईश्वर-भावना होती है। क्राइस्टों (धर्म-निमित्त प्राण त्यागनेवालों), धर्म-प्रचारकों (missionaries), स्वामियों वा गुरुओं (उपदेशकों) में भी कुछ न कुछ बुरी वृत्तियाँ होती हैं। प्रत्येक मनुष्य में (इन गुण-दोष का) विचित्र मिश्रण (queer mixture) है। हम व्यक्ति विशेषों की पूजा करने में बड़ी भूल करते हैं, जबकि उनके सद्गुणों के साथ उनमें दुर्गुणों का होना भी स्वीकार नहीं करते; इसलिये भ्रान्ति के बीच से सदा सत्य को छाँट निकालने का प्रयत्न कीजिये।

वर्तमान दशा (स्थिति) में मनुष्य अपने आत्मा का अनुभव कैसे कर सकता है? इसका उत्तर स्वयं मनुष्य की प्रकृति पर निर्भर है। मनुष्यों का इस संसार में साधारण रूप से तीन प्रकार के स्वभाव वा चित्त की दृष्टि से विभाग किया जा सकता है। कुछ ऐसे हैं, जिनके चित्तों की दशा अस्थिर वा चंचल-स्वभाव (unstable equilibrium) है। कुछ ऐसे हैं, जिनके चित्तों की एकाग्रता, जिनके चित्तों की शान्ति स्थिर-स्वभाव (stable equilibrium) वाली है। कुछ ऐसे हैं, जो नित्य उभयसामान्य अर्थात् सम स्वभाव (neutral equilibrium) हैं। अस्थिर-स्वभाव वा अस्थिर-स्थिति क्या है? अपनी हथेली पर पेंसिल को इस प्रकार रक्खो, (यहाँ स्वामीजी ने अपनी

हथेली पर पेंसिल सीधी खड़ी की), यह कभी नहीं ठहरेगी (खड़ी रहेगी), एक आध पल यह शायद ठहरी रहे (खड़ी रह जाय), नहीं तो पवन का हरएक झकोरा इसको नीचे गिरा देगा। इसे अस्थिर-स्थिति कहते हैं। पेंसिल को उस प्रकार रक्खो (यहाँ पर स्वामीजी ने पेंसिल को अपनी अंगुलियों के बीच पकड़ा और पैंडूलम (Pendulum) के समान लटकाए रक्खा), यह ठहरी हुई वा स्थिर है; किंतु पैंडूलम (लटकती हुई) होने के कारण यह कुछ काल तक हिलती रहेगी, फिर कुछ काल के बाद ठहर जायगी। स्थिरता चाहे भंग हो जाय, किन्तु पुनः स्थिरता प्राप्त हो सकती है। पर उस पूर्व दशा में स्थिरता पुनः प्राप्त हो नहीं सकती। किन्तु इसके सिवा तीसरी स्थिति एक और होती है। पेंसिल को इस प्रकार रक्खो (यहाँ स्वामीजी ने पेंसिल को मेज़ पर रख दिया), यह स्थिर है। इसे उस प्रकार से (टेबल पर) रक्खो, यह स्थिर है। यहाँ (टेबल पर) जहाँ कहीं तुम पेंसिल को रक्खो, यह स्थिर है। यह सदा स्थिरता की दशा में है। ठीक ऐसे ही कुछ लोग हैं, जिनके चित्त लगातार क्षुभित और हर वक्त विक्षिप्त हैं, वे कभी स्थिर नहीं हो सकते, कभी स्थिर दशा में नहीं रह सकते। बाह्य स्थिति उनको स्थिर कर देती है, वे पुनः विक्षिप्त (अस्थिर) हो जाते हैं। कुछ और लोग हैं, जिनके चित्त प्रायः शान्त, स्थिर (एकाग्र वा ध्यानावस्थित) और निश्चल रहते हैं, पर एक बार विक्षिप्त होने पर घंटों बहुत देर तक क्षुभित वा भ्रमित रहते हैं। और इस जगत् में बहुत से लोग इसी स्वभाव के हैं। आप बाज़ार में टहल रहे हैं, कोई आदमी आता है, आपसे हाथ मिलाता है, अर्थात् राम राम करता है, और कुछ ऐसे वचन कह जाता है, जो स्तुतिमय वा प्रिय नहीं हैं, किन्तु कटाक्ष और निन्दा भरे हैं। वह तो चला जाता है, किन्तु अपना काम कर जाता है, और रिमार्क

पास करके चल बनता है। उस विक्षेप का प्रभाव घंटों रहता है, बल्कि कभी-कभी तो दिनों, हफ्तों, महीनों और वर्षों तक बना रहता है। उस रिमार्क (वचन) का असर बना रहता है, और मन डाँवाडोल भ्रमित रहता है, एक बार विक्षिप्त होने पर बराबर हिले जाता और इधर-उधर भटकता फिरता है, और मन की यह अवस्था, मन की यह डाँवाडोल स्थिति आपका जीवन नष्ट कर देती है, और आपका सारा समय हर लेती है। अब ज़रा ध्यान दीजिये, कामों या बातों ने तो बहुत समय न लिया, कर्म तो प्रथम क्रिया वा चेष्टा थी, जो मन को दी गई, किन्तु उसके उत्तर-फल, या यों कहो कि आपके अपने मन की डाँवाडोल स्थिति ही आपके जीवन को हर लेती है। यदि आप मन की ये विचित्र चंचलता रोक सको, यदि आप भीतर के विक्षेप पर विजय पा सको, यदि आप मन की लगातार भ्रान्ति, स्फुरण वा धड़कन और संशय विपर्य्यय को वश में कर सको, वा उनका निग्रह कर सको, यदि आप इस मन को अधीन कर सको, तो आपका जीवन लाखों मनुष्यों के जीवन के बराबर हो जाय। आपके जीवन के तीस वर्ष भी सहस्रों वर्ष के तुल्य हो सकते हैं। आप अपने मन वा चित्त के रोग की ओर, वा उस आध्यात्मिक रोग की ओर जिससे कि आप हानि उठा रहे हैं, ध्यान दीजिए। उस रोग को जानिये और उसका इलाज कीजिये। आपके मन का रोग चंचल-स्वभाव है, जब कोई (ऐसी-वैसी) बात हो जाती है, मन भय और प्रसन्नता के बीच-बीच डाँवाडोल फिरता रहता है, अर्थात् मन भ्रम और भय के चंगुल में व्यर्थ फँसा रहता है, न प्रसन्न होने पाता है और न निर्भय। ऐसे लोग पैंडूलम-स्वभाव-मनुष्य होते हैं। अब तीसरे प्रकार के मनुष्यों को लीजिए, वे मनुष्य वीर और मुक्त पुरुष होते हैं। ये वे लोग हैं, जिनके चित्त किसी प्रकार की

परिस्थिति से विक्षिप्त नहीं होते, चाहे कोई ही बात उनके सामने हो, वे शान्त और निश्चल रहते हैं; चाहे घूरते हुए सागर की उछलती हुई लहरों (तरंगों) में उन्हें रख दो, वे वैसे के वैसे रहेंगे; चाहे उन्हें युद्ध में रख दो, तब भी वैसे के वैसे ही रहेंगे। आप उनके मित्र हैं, आज उनसे आप बातचीत करें, और उन्हें सर्व प्रकार की बातें कह डालें (अर्थात् कटाक्ष वा उपालंभ लगा लें), वे उनका प्रत्युत्तर नहीं देंगे। जिस क्षण आप उनसे अलग होते हैं, उनका चित्त पूर्ववत् वैसा का वैसा ही शुद्ध, पवित्र और हरा-भरा है। एक निरासक्त वा मुक्त पुरुष के साथ आप हज़ारों वर्ष रहें और चले जायँ, इससे आप उनके चित्त में किञ्चित् विक्षेप न डाल सकेंगे। वे ठीक दर्पणवत् होते हैं, जैसे दर्पण आपका मुखड़ा आपको वापिस दिखलाता है। आप जानते हैं कि दर्पण आपके मुख का ठीक-ठीक चित्र तो नहीं खींचता। यदि कुंडल आप के बायें कान में है, तो दर्पण में दायीं ओर के कान में आप उसे पाएँगे। इसी प्रकार दायाँ बायाँ हो जाता है बायाँ दायाँ होता है। आप सैकड़ों वर्ष दर्पण के सामने रहें, दर्पण सैकड़ों वर्ष तक आपको वैसा ही दर्शाता रहेगा। दर्पण को अलग कर दें, दर्पण तब भी वैसा का वैसा ही है; ऐसा ही ज्ञानवान् मुक्त पुरुष का हाल है। वह ऐसा है, जिस पर बाहिर के दूषण अपना चिह्न नहीं छोड़ सकते (अर्थात् उसे दूषित नहीं कर सकते), जिसको कोई भी दूषित वा कलङ्कित नहीं कर सकता और जो नित्य स्वतंत्र वा असंग रहता है। आप आयें और चाहे सारा समय उसकी स्तुति करके चले जायँ, तो आपके पीछे उसका चित्त उस स्तुति की जुगाली नहीं करता रहेगा (अर्थात् चित्त उस स्तुति को पुनः-पुनः ध्यान में लाकर फूलता नहीं रहेगा)। आप आयें और चाहे गुणदोष

विवेचक दृष्टि से और चाहे छिद्रान्वेषी वा कुटिल दृष्टि से उस पर दोष लगा जायँ; आपके चले जाने के बाद वह आप के इस दोष-निरूपण वा छिद्रान्वेषण को बार-बार ध्यान में नहीं लावेगा। असंग, निःसंग हुआ वह अपने आत्मा में निश्चय रखता है।

अब राम कहता है कि यदि आप वेदान्त को ठीक-ठीक पढ़ें और उसकी शिक्षा को नित्य अपने सम्मुख रक्खें, प्रणव या अन्य कुछ चिह्नों द्वारा अपने भीतर के बोध के साथ, अपने भीतरी विचारों से ठीक ओर में लग कर आप अपने ईश्वरत्व का ध्यान करें, और नित्य अपने सत्य स्वरूप को सम्मुख रक्खें, तो आपका चित्त यदि वह शुरू से अस्थिर वा चंचल स्वभाव (unstable equilibrium) है, तो स्थिर स्वभाव (stable equilibrium) हो जायगा, और यदि वह (शुरू से) स्थिर व एकाग्र स्वभाव है, तो वह दर्जे ब दर्जे समता (neutral equilibrium) को प्राप्त कर लेगा; और यह वेदान्त, यह सच्चाई आपको हरदम अपने सम्मुख रखनी होगी। इस अवस्था में नित्य रहने के लिये राम अब आपको कुछ बाहिर के साधन व सहकारी उपाय बताता है। इसे आज़माओ और आप देखेंगे कि यद्यपि लोग इसका उपदेश नहीं करते, तथापि यह है एक विचित्र उपदेश। आप यह देखेंगे कि जब लोग राम के पास आकर बातचीत करते हैं, कई समय दूसरों में छिद्रान्वेषण (कुटिल और दोष-दृष्टि से छिद्रान्वेषण) करके चले जाते हैं। आप जानते हैं, राम कैसे अपने आपको उनके विचारों वा उपदेशों से बचाये रखता है? इसमें नाना रास्ते हैं। एक रास्ता यह है कि आप यह छोटी पुस्तक जो अपने सामने देखते हैं, यह एक अद्भुत पुस्तक है, यह पुस्तक एक ऐसे मनुष्य द्वारा लिखी गई है, जिसकी बराबरी का मिलता नहीं है। यह मनुष्य प्रसिद्ध नहीं है। यह मनुष्य

भारतवर्ष में पूजा नहीं जाता। यह पुस्तक*श्रीमद्भगवद्गीता के समान प्रसिद्ध नहीं है, यह श्रीभगवान् कृष्ण से नहीं लिखी गई; यह उस मनुष्य से लिखी गई, जो नाम और कीर्त्ति से अपरिचित था। किन्तु यह एक मनुष्य है, जो आपको समस्त क्राइस्टस्, कृष्ण, बुद्ध, सारे के सारे दे देता है। राम इस पुस्तक को लेता है, आप जानते हैं, यह संस्कृत में है, और जब इस पुस्तक में से एक पद राम पढ़ता है, तो जन्माजन्म के कलंक को तथा समस्त हृदय-तल को धोने और साफ़ करने में यह काफ़ी होता है। यह तत्क्षण राम को हर्षोन्माद (ecstasy, अत्यन्तानन्द) की अवस्था में डाल देता है, यह छोटी सी पुस्तक, इस पुस्तक का एक पद राम के हृदय को हिला देता है और उसे उन्नत कर उसमें ईश्वरत्व का विकास कर देता है। यह पुस्तक नीच स्वभाव को नाश कर देती है, और तत्क्षण माया के पर्दे को फाड़ देती है। इसलिये राम आपको कहता है कि आप भी इसी प्रकार की पुस्तक अपने पास रक्खें, आप अपने पास कुछ ऐसे स्तोत्र रक्खें कि जो आपको वा आपके विचारों को उन्नत कर सकें, आपमें रूह फूँक सकें, अर्थात् आपको प्रबोधन कर सकें; आप अपने पास कुछ ऐसे भजन रक्खें, जो आपको तत्काल प्रबोधन कर सकें; आप अपने पास ऐसी कविता रक्खें जो आपको चोट लगावें वा ईश्वर की ओर प्रेरें, आप अपने पास बाइबिल, सर्मन ऑन दी मौंट (Sermon on the Mount) रक्खें। आप अपने प्रिय (रुचिकर) लेखकों के पदों (फ़िक़रों) वा वचनों पर निशान लगायें, ऐसे पदों (फ़िक़रों) पर कि जो आपमें रूह फूँक सकें, या ऐसी कोई बात पैदा कर दें कि जो आपके विचारों को ऊँचा करे। आप अपने पास एक छोटी नोटबुक रक्खें, जिसमें

* ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय स्वामीजी के पास अवधूत गीता थी।

आप ऐसे वचनों को जमा कर रक्खें कि जो आपको उत्तेजित करें, आपको ऊपर उठावें, जो आपको प्रार्थना वा उपासना-भाव से भर दें। आप इसी पुस्तक को रख लें, आप प्रसन्नता से इस पुस्तक के अन्त में यह कविता लिख लें। "Oh, brimful is my cup of joy"—"ओह! मेरे हर्ष का प्याला ऊपर तक पूर्ण है," यह कविता या ऐसी कोई बात जो सन्मार्ग में आपको उत्तेजित वा उत्साहित करे आप इसमें लिख लें, इसे आप हर वक़्त ठीक हाथ तले (समीप) रक्खें, और जब आप मित्रों से मिलकर हटें, या जब आप भिन्न-स्वभाव संगत को छोड़ें, तब अपने मन को भटकने, विक्षिप्त वा सारा काल भ्रमित अवस्था में रहने देने के स्थान पर आप तत्काल उस रूह फूँकनेवाले, उत्तेजित वा प्रबोधन करनेवाले पद को ले लें, और उससे अपने चित्त को स्थिर वा सावधान करें।

अब आप देखें कि राम ने आपको कारण अर्थात् मन का साधारण रोग बता दिया है। राम ने साधारण रीति से मानुषी आध्यात्मिक रोग को आपके सामने रख दिया है। साधारण रोग (मन का) यह चञ्चल स्वभाव है। और राम ने आपको बता दिया है कि कैसे हम मन को स्थिर व अचल रख सकते हैं।

हम इस विषय को अब दूसरे समय शुरू करेंगे।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

दुःख में ईश्वर

[ता० ८ फ़रवरी १६०३, रविवार के तीसरे पहर का भाषण ।]

मनुष्यों को दुःख क्यों होता है ? जगत् में दुःख का क्या कारण है ? इस प्रश्न पर आज तीसरे पहर विचार होगा। इतिहास की, अथवा पौराणिक ग्रंथों में जो कुछ पढ़ा है, उसकी दृष्टि से, वा महात्माओं के वचनों (उक्तियों), एवं बुद्धिमान् पुरुषों की सम्मति की दृष्टि से, राम इस प्रश्न पर विचार नहीं करेगा। यह ठीक है कि इन बड़े-बड़े विद्वानों, लेखकों, महान् विचारकों तथा ग्रन्थ-कर्त्ताओं ने सत्य ही कहा है, परम सत्य का जैसा रूप उनके अनुभव में आया, वैसा ही उन्होंने प्रकट किया है। परंतु जब तक आप स्वयं पूरी छान बीन न करेंगे और स्वयं अनुभव कर न देखेंगे, तब तक दुनिया के सब लेखकों की सारी रचनाओं को इकट्ठा करने से भी विशेष लाभ न होगा। राम केवल वही कहेगा, जो उसने निज अनुभव द्वारा देखा है, और जो प्रत्येक व्यक्ति अपने आप अनुभव द्वारा देख सकता है।

आजकल लोगों में, बड़े-बड़े सज्जनों, इतिहासज्ञों वा बड़े-बड़े वैज्ञानिकों के प्रमाण देने की बहुत रुचि है। और जो वक्ता उन महान् पुरुषों का प्रमाण दे सकता है, वही अधिक सम्मानित होता है। यह प्रवृत्ति आत्मघातिनी है। राम आपको अपने अनुभव की बातें कहेगा और यह बतलावेगा कि आप अपने अनुभव से क्या-क्या सीख सकते हैं।

जगत् में दुःख का यह प्रधान कारण है कि "हम आन्तरिक अवलोकन नहीं करते, हम स्वयं अपनी सम्मति स्थिर नहीं

करते, बहुत-सी बातों को हम यों ही मान लेते हैं, हम अपने लिये सोचने का काम बाह्य शक्तियों के भरोसे छोड़ते हैं।"

हम लोग भीतर बैठकर नहीं देखते, अपने बल पर भरोसा नहीं रखते; दूसरे जो कुछ कह देते हैं, उसे ही स्वयं-सिद्ध मान लेते हैं। मुहम्मद, बुद्ध और कृष्ण में विश्वास रखने के अतिरिक्त हम लोगों ने बेहिसाब अपूज्य देवताओं को गढ़ रक्खा है, जिनके आगे हम सिर झुकाते हैं। एक बालक ही यदि हमारे आचरण की टीका-टिप्पणी कर डालता है, तो बस, उतना ही हमारी शान्ति को भंग करने के लिये, हमें क्लेश पहुँचाने के लिये काफ़ी है। हम दूसरों के विचारों, दूसरों की आलोचनाओं की हद से ज़्यादा परवाह करते हैं, और उन की कृपा संपादन करने में बेहिसाब समय बरबाद करते हैं। अपने आपको अड़ोस-पड़ोस के लोगों की ही आँखों से देखना, अपने सच्चे स्वरूप पर स्वयं ध्यान न देना बल्कि दूसरों की ही दृष्टि से अपना निरीक्षण करना, यह जो भाव है, यही हमारे सारे दुःखों का कारण है। दूसरों की दृष्टि से अपने को देखने की जो आदत है, उसे ही वृथा अभिमान आत्म-श्लाघा (Self aggrandisement) कहते हैं। हम दूसरों की नज़रों में अति भले जँचना चाहते हैं। यही समाज का सामाजिक दोष है, और सब धर्म्मों का प्रधान अवगुण है।

हिन्दुस्तान के एक ग्राम में एक आधा पागल (नीम पागल) रहता था। जैसे यहाँ, अमेरिका में अप्रैल महीने में दूसरों को उल्लू बनाने की रीति है, वैसे ही भारतवर्ष में मार्च के महीने में लोग अपने यार-दोस्तों के साथ तरह-तरह के ठट्टा-मसख़री (मज़ाक़) किया करते हैं। उस ग्राम के आनन्दी युवकों ने उस नीम पागल से मज़ाक़ उड़ाने का अच्छा अवसर समझा। बस, उन सबों ने उसे कुछ शराब पिलाकर मस्त बना डाला, और बाद

उसके परम विश्वस्त, परम हार्दिक मित्र को उसके पास भेज दिया। उस पगले मनुष्य के नज़दीक आते ही उसका मित्र गला फाड़-फाड़कर चिल्लाने लगा, आँखों से दिखौवे आँसुओं की धारा बहाने लगा, रोने-धोने लगा, और बोला, "भाई, मैं तुम्हारे घर से अभी आ रहा हूँ, वहाँ मैंने देखा कि तुम्हारी स्त्री विधवा हो गई है, मैंने उसे विधवा पाया।" इस पर वह पागल भी अपनी पत्नी के वैधव्य (विधवापन) पर रोने-चिल्लाने और विलाप करने लगा व आँसू बहाने लगा। अन्त में दूसरे लोग आकर पूछने लगे, "तुम रोते क्यों हो?" पगले ने उत्तर दिया, "मेरी स्त्री विधवा हो गई है, इससे रोता हूँ।" वे बोले, "यह हो कैसे सकता है? तुम जीते हो और कहते हो मेरी स्त्री विधवा हो गई है? जब तक उसके पति तुम नहीं मरते, वह विधवा कैसे हो सकती है? तुम मरे नहीं, तुम स्वयं अपनी स्त्री के वैधव्य पर शोक कर रहे हो, यह तो बिलकुल बेतुकी बात है।" पर वह पागल कहने लगा, "अरे, जाओ; तुम नहीं जानते, तुम नहीं समझते; हमारे उस अत्यन्त विश्वास-पात्र मित्र ने कहा है, जो अभी हमारे घर से होकर आ रहा है, उसने हमारी स्त्री को वहाँ विधवा पाया है। वह इस बात का साक्षी है; वह देख आया है कि मेरी स्त्री विधवा हो गई!" लोगों ने कहा कि "देखो, यह कैसा भारी अनर्थ (बेहूदापन) है" (हँसी)। अब हम इस मूढ़ की कहानी पर हँस रहे हैं कि वह अपनी स्त्री के वैधव्य पर रो रहा था और लोगों की बात नहीं मानता था कि उसके जीवित होने के कारण उसकी स्त्री विधवा नहीं हुई, किन्तु अपने व्यवहार से वह यह कह रहा है कि:—

"तुम तो कहते हो सच मेरे भाई।
पर घर से आया है मोतबर नाई।

किंतु याद रहे, जगत् के मत और धर्म तथा सारे दंभी,

अभिमानी और 'फ़ैशनेबुल' लोग ऐसी ही विकट असंभव बातों को कर रहे हैं। न तो वे अपने नेत्रों से देखते हैं और न अपने दिमाग़ से सोचते हैं। यहाँ ही देखिये, आपका अपना आत्मा, आपका सत्य स्वरूप, प्रकाशों का प्रकाश, निरंजन, परमपवित्र, स्वर्गों का स्वर्ग, आपके भीतर विद्यमान है। आपका अपना आप; आपका आत्मा सर्वदा जीवित, अजर, अमर, नित्य उपस्थित है, फिर भी आप रो-रोकर आँसू ढारते हुये कहते हो, "अरे, हमें सुख कब प्राप्त होगा ?" और देवताओं का आवाहन करते हो कि वे आकर तुम्हें विपत्ति से उबार दें। आप देवताओं के आगे प्रणिपात होते हो, नीच प्रकृति (sneeking habits) का अवलंबन करते हो, और स्वयं अपने को तुच्छ समझते हो, क्योंकि अमुक लेखक, अमुक उपदेशक वा महात्मा अपने को पापी कह गया है, और वह हमें कीड़े कहकर पुकारता है, इसलिये हमें भी वही करना चाहिये, इसलिये अपने को मृतक समझने में ही हमारी मुक्ति है। इसी तरीक़े से लोग सब चीज़ों पर दृष्टि डालते हैं; पर इससे काम चलने का नहीं। अपने निज-जीवन का अनुभव करने लग जाओ; अपने निजात्मा को भान करना आरम्भ कर दो। इस नशे की हालत को बिदा करो कि जो आपको अपनी मृत्यु पर रुला रहा है। अपने पैरों पर आप खड़े हो जाओ, चाहे आप छोटे हो वा बड़े, चाहे आप उच्च पद पर हो वा नीच पद पर, इसकी तनिक परवाह न करो। अपनी प्रभुता का, अपनी दिव्यता का साक्षात्कार करो। चाहे कोई हो, उसकी ओर निःशंक दृष्टि से देखो, हटो मत। अपने आपको औरों की दृष्टि से अवलोकन मत करो, बल्कि अपने आप में देखो। आपका अपना आप आपको वारंवार यह उपदेश देगा कि "सारे संसार में आप सबसे महान् (आत्मा) हो।"

इसी प्रकार लोग कहते हैं कि वेदान्त व बौद्धमतादि हमें ऐसा समझने को कहते हैं, किन्तु राम कहता है कि आपके अन्तस्थित स्वर्ग से यह वाणी निकल रही है कि आप अपने को क्षीण, जीर्ण और पापिष्ठ कभी मत समझो। अपने भीतर के दिव्य स्वरूप का अनुभव करो।

'The mountain and the squirrel
Had a quarrel;
And the former called the latter 'Little Prig'.
Bun (squirrel) replied:—
"You are doubtless very big;
But all sorts of things and weather
Must be taken in together,
To make up a year
And a sphere.
And I think it no disgrace
To occupy my place.
If I'm not as large as you,
You are not so small as I,
And not half so spry,
I'll not deny you make
A very pretty squirrel track,
Talents differ; all's well and wisely put.
If I cannot carry forests on my back
Neither can you crack a nut"

एक बार पर्वत गिलहरी में हुई लड़ाई;
"तुच्छ जीव—घमंडी!" कह, गिरि ने अकड़ दिखाई।
गिलहरी बोली,—"तुम महान हो, यह तो सत्य है;
किन्तु बरस भर में सब ही ऋतु आवश्यक है।

"क्यों छोटी औ बड़ी चीज़ मिल 'ग्रह' है बनती,
मैं जैसी हूँ, उसे अतः मैं बुरा न गिनती।
"यदि मैं तुमसी बड़ी नहीं, तो लघुता को मम;
तुम भी पाते नहीं; न हो चंचल मेरे सम।
"बात नहीं ऐसी कि कुछ मुझे अस्वीकार हो—
वन पथादि के सहते तुम संपूर्ण भार हो।
"बुद्धि भिन्न हैं, बाह्य भेद भी दुनिया में हैं,
किन्तु सुभग उपयुक्त सभी निज-निज थल में हैं।
"हम न बनों को अपनी पीठ उठा यदि सकते,
तो वृक्षों से, भला, तोड़ फल क्या तुम सकते?"

इस प्रकार, आपका शरीर उस क्षुद्र गिलहरी के समान छोटा हो सकता है, और आपसे भिन्न कोई दूसरा शरीर पर्वताकार हो सकता है, पर इससे अपने को आप कनिष्ठ मत समझो। उस चमरपुच्छ (गिलहरी) के समान बुद्धिमान् बनो। याद रक्खो, यदि आपका शरीर अत्यन्त छोटा भी हो, तथापि इस संसार में आपको कोई ऐसा विशेष कार्य्य करना है, जो विशाल शरीर से संपादित हो नहीं सकता। तब आप अपने आपको तुच्छ क्यों समझो? आनन्दित और प्रसन्नचित्त हो।

एक सज्जन राम के पास आये, और कहने लगे कि मेरा बड़ा अफ़सर मेरे साथ सदैव बुरा बर्ताव करता है। राम ने उससे कहा कि आपका अफ़सर आपको इसलिये नीच दृष्टि से देखता है कि आप स्वयं अपने को नीच दृष्टि से देखते हो। यदि हम अपना सम्मान स्वयं करें, तो प्रत्येक मनुष्य अवश्य हमारा सत्कार करेगा। यदि इस छोटी-सी पुस्तक पर एक आना मूल्य लिखा हो, तो इसके लिये कोई दो आने नहीं देगा। पर इस छोटी पुस्तक का मूल्य १) रु० रक्खा गया है, तो इसके लिये १) देने को सभी राज़ी हैं।

इसी तरह आप अपना मूल्य कम कर दो, और देखो, कोई भी आप का अधिक मूल्य नहीं समझेगा। स्वयं अपना अधिक-से-अधिक मूल्य निर्धारित करो, आत्म-सम्मान करो, अपने दैवत्व (divinity), अपने ईश्वरत्व (godhead) को भान करो और प्रत्येक मनुष्य को वह मूल्य देना ही पड़ेगा।

लोग कहते हैं कि विश्वास आपका उद्धार करेगा, परन्तु बाह्य सिद्धान्तों (Principles) पर विश्वास आपका उद्धार नहीं करेगा, किन्तु अपने निजी स्वरूप में विश्वास आपका उद्धार करेगा। अपने दिव्य स्वरूप में निश्चय रखते हुए विश्वास करो, आत्म-सम्मान करो, तब प्रत्येक मनुष्य आपका सम्मान करेगा।

जिस सद्‌गृहस्थ ने राम से अपने अफ़सर की शिकायत की थी, उसने राम के उपदेशानुसार अपने समय को अपने आत्म-देव के अनुभव में बिताना शुरू किया। वह नित्य प्रार्थना करने लगा। पर प्रार्थना का यह अर्थ नहीं कि किसी शब्द को बराबर दुहराते रहना, बल्कि अपने आत्मदेव का भान करना और अनुभव करना ही प्रार्थना है। वह उस प्रकार प्रार्थना करने लगा। इसका फल उसने देखा कि उसके अफ़सर को उसका सम्मान और उसके साथ सद्व्यवहार करना ही पड़ता था। एक दिन उसका अफ़सर आकर बहुत खिझकर बोला, पर उस सज्जन ने अति मधुर स्वर से मनोहर रीति से उत्तर दिया और कहा, भगवन्! अवश्य ही आपकी तनख्वाह मेरी तनख्वाह से बहुत बड़ी है, और मैं जानता हूँ कि आप जो विशेष काम करते हैं, वह मुझसे नहीं होने का, और आपसे मुझे सदा काम रहता है, यह सत्य है। पर इसके साथ यह भी सत्य है कि आपको भी मेरी आवश्यकता है। क्या मेरी जगह पर विना किसी को रक्खे आप काम चला सकते हैं? नहीं, आप नहीं कर सकते। अतः जैसी मुझे आपकी अत्यन्त आवश्यकता है, वैसी ही आपको मेरी अत्यन्त

आवश्यकता है, और वस्तुतः आपको पहले मेरी ज़रूरत हुई। आपको इस जगह पर किसी के रखने की ज़रूरत हुई और इसलिये मुझे आपने बुला भेजा। मैं आपकी सेवा नहीं करता। यदि मैं किसी का सेवक हूँ, तो अपनी ही ज़रूरतों और आवश्यकताओं का सेवक हूँ। मैं आपका नौकर नहीं, बल्कि अपना नौकर हूँ। मैं किसी का दास नहीं। उत्तम अर्थ में सेवा करना ठीक है।

ऐसी अवस्था में आप जगत् में किसी के अधीन नहीं हो, यदि कोई अपनी ही इच्छाओं के अधीन है, तो ऐसी अवस्था में आप जगत् में किसी और के अधीन नहीं। बाह्य अधीनता तो केवल भ्रम है। वास्तव में तो हम केवल अपने ही अधीन हैं। अतः आप अपनी स्वतंत्रता का अनुभव करो, उसे प्राप्त करो, तुम्हें अपने को किसी देवता वा ईश, मुहम्मद वा कृष्ण अथवा संसार के किसी महात्मा के अधीन क्यों समझना चाहिये? तुम सब-के-सब स्वतंत्र हो, मुक्त हो। मुक्ति के भाव को ग्रहण करते ही वह तुम्हें सुखी बना देगा।

एक बार एशिया के एक राजा ने एक आदमी को अपराधी समझा, उसको अपराधी इसलिये समझा कि उसने राजा को सलाम नहीं किया था। इस बूढ़े राजा को जब कोई सलाम न करता, तो वह बहुत क्रोधित होता। उस अपराधी से राजा ने कहा—"तू नहीं जानता कि मैं कितना प्रतापी और कठोर शासक हूँ? तू इतना धृष्ट है! तुझे मालूम नहीं कि मैं तुझे मार डालूँगा?" उस (मनुष्य) ने इसके मुँह पर थूक दिया और इतनी कड़ी नज़र से उसकी ओर देखा कि वह राजा घबड़ा गया। फिर वह बोला—"अरे मूर्ख पुतले! यह तेरी शक्ति, तेरे अधिकार में नहीं कि तू मुझे मार सके। मैं आप अपना स्वामी हूँ। तेरा अपमान करना मेरी शक्ति में है, यह मेरे अधिकार में है कि मैं

तेरे मुँह पर थूक दूँ, और यह भी मेरे अधिकार में है कि इस शरीर को सूली पर चढ़ा देखूँ, अपने शरीर का मैं आप स्वामी हूँ। तेरा अधिकार पीछे है, मेरा अधिकार पहले है।" इसी प्रकार महसूस करो, अनुभव करो कि सदा आप अपने स्वामी हो। निज आत्मा की दृष्टि से सब चीज़ों को देखो, दूसरों की आँखों से नहीं। अपनी स्वतंत्रता का अनुभव करो, अनुभव करो कि आप ईश्वरों के ईश्वर, स्वामियों के स्वामी हो, क्योंकि आप वही हो, 'तत्त्वमसि'।

लोग क्यों दुःख सहते हैं? वे दुःख भोगते हैं निज आत्मा की अज्ञानता के कारण, जिससे उनको अपना सत्य स्वरूप भूल जाता है, और जो कुछ दूसरे उनको कहते हैं, वही वे अपने को समझ लेते हैं। और यह दुःख तब तक बराबर रहेगा, जब तक मनुष्य आत्मा का साक्षात्कार नहीं कर लेता, जब तक यह अज्ञान दूर नहीं हो लेता।

अज्ञान ही अन्धकार है। यदि किसी अँधेरे घर में आप जाओ, तो दीवार अथवा किसी और चीज़ से आप अवश्य टक्कर खायेंगे, अवश्य किसी प्रकार चोट खायेंगे। यह अनिवार्य्य है, आप इससे बच नहीं सकते। कहीं-कहीं पूर्वी हिन्दुस्तान में झोपड़ियों में रहनेवाले कुछ लोग इतने अकिंचन होते हैं कि घर में एक दीपक भी नहीं जला सकते। राम ने गलियों में आते-जाते समय अक्सर देखा है कि घर का स्वामी अँधेरे घर में जाने पर अवश्य अपनी स्त्री वा अन्य गृहवासियों को दोष देता है। वह कहता है—"अरे तुमने यह मेज़ यहाँ क्यों डाल रक्खी है, अभी मेरा घुटना टूट चुका था?" अथवा "इस कुरसी को यहाँ क्यों रक्खा है, अभी मेरा हाथ टूट जाता?" अथवा इसी तरह की कुछ और शिकायत करता है। क्या इसकी कोई दवा है? नहीं, बिलकुल नहीं, क्योंकि यदि वह मेज़ वा कुरसी

घर के दूसरे कोने में रक्खी जाय, तो उसे अँधेरे में जब वहाँ जाना होगा, तब वह वहाँ चोट खायगा। जब तक अंधकार है, तब तक हाथ, पाँव, गर्दन वा सिर अवश्य टूटेगा, अवश्य ही कभी सिर दीवाल से टकरा उठेगा, यह बचाया जा नहीं सकता। यदि घर में सिर्फ़ चिराग़ जला दो, तो फिर आपको परेशान होने की ज़रूरत नहीं। जो जहाँ है, उसे वहीं रहने दो, आप एक जगह से दूसरी जगह बिना चोट खाये जा सकते हैं।

संसार की भी यही दशा है। यदि आप अपने दुःखों का अन्त करना चाहें, तो आपको इसके लिये अपनी बाह्य परिस्थिति पर वा अपने सामाजिक पद (ओहदे) के समाधान (adjustment) पर भरोसा नहीं करना चाहिये, वरन् अन्तर्स्थित सूर्य के समीकरण के उपाय पर भरोसा रखना चाहिये। सब कोई, मानो फरनीचर (furniture, सामान) को यहाँ से वहाँ हटा कर, वा सांसारिक पदार्थों को इधर से उधर फेरकर, द्रव्य इकट्ठा कर, वा बड़े-बड़े महल बनवाकर, अथवा दूसरों की ज़मीन मोल लेकर, दुःख से पीछा छुड़ाना चाहते हैं। अपनी परिस्थिति के सुधारने, वा चीज़ों को इस तरह वा उस तरह सजाने से आप कभी दुःख से नहीं बच सकते। केवल अपने घर में दीपक जलाने से, प्रकाश प्रकाशित करने से, केवल अपने हृदय की अँधेरी कोठरी में ज्ञान का प्रवेश करने से ही दुःख छूट सकता, हटाया जा सकता और दूर किया जा सकता है। अन्धकार दूर होने दो, फिर कोई आपको हानि नहीं पहुँचा सकता।

हिमालय के किसी भाग में कुछ ऐसे जंगली लोग रहते थे, जिन्होंने आग कभी जलाई ही न थी। पहले के जंगली लोग आग जलाते न थे—आग जलाना उन्हें मालूम न था। मछली को सुखा और अन्न को सूर्य की किरणों में पकाकर वे खाते थे।

वे संध्या होते ही सो जाते और सूर्योदय के बाद उठा करते थे। इस प्रकार उन्हें अँधेरे से कभी काम नहीं पड़ता था। उनके निवास-स्थान के निकट ही एक बड़ी भारी गुहा (गुफा) थी। वे जंगली समझते थे कि हमारे पूज्य पितर लोग इसी में रहते हैं। वस्तुतः बात यह थी कि किसी समय उनके कोई पूर्वज उस गुफा में गये थे, और दलदल में फँसकर वा किसी नुकीली चट्टान से टकराकर मर गये थे। अतः वे जंगली लोग उस गुफा को पवित्र और पूज्य मानने लगे थे; पर उन विचारों को अँधेरे का ज्ञान न होने से वे उस गुफा के अंधकार को बड़ा भारी राक्षस समझते थे और उसे दूर करना चाहते थे (हँसी)। आप लोग इस मूर्खता पर हँसते हैं, पर आज-कल के लोग इससे कहीं बड़ी बज्र मूर्खता कर रहे हैं। अस्तु। किसी ने कहा कि उस अन्धकार रूपी राक्षस की पूजा करो तो वह गुफा त्यागकर चला जावेगा। बस, वे सब-के-सब गुफा के नज़दीक जाकर बरसों उसे दण्डवत-प्रणाम करने लगे, पर अन्धकार इस भक्ति-भाव से दूर नहीं हुआ। इसके बाद किसी ने सम्मति दी—"अँधेरे को धमकाओ व उसके साथ युद्ध करो, तो यह भाग जायगा।" फिर क्या था, सब अपना-अपना तीर-कमान, भाला, लकड़ी फेंकने लगे; पर अँधेरा उससे भी दूर न हुआ, किञ्चित् विचलित न हुआ। तीसरे ने कहा—"उपवास करो, उपवास! उपवास करने से अन्धकर हटेगा, अब तक तुम लोग उल्टी बातें कर रहे थे, उपवास की आवश्यकता असल में है।" बिचारे उपवास करने लगे, परन्तु वह राक्षस गुफा से न हटा, अन्धकार दूर न हुआ। तब अन्य किसी ने कहा—"दान करने से अँधेरा दूर होगा।" इस पर जो कुछ उनके पास था, सबको दान में देने लगे। पर पिशाच ने इस पर भी गुफा न त्यागी। अन्त में एक आदमी

आया, उसने कहा कि "मेरी बात मानो, तो अन्धकार दूर हो जायगा। तब उन्होंने पूछा कि वह बात क्या है, उसने उत्तर दिया कि "कुछ बाँस की लकड़ियाँ लाओ, थोड़ी-सी घास उन्हें बाँधने के लिये और थोड़ा मछली का तेल लाओ।" फिर उसने कुछ चिथड़े, खर वा काई अथवा कोई और चीज जलाने के लिये माँगी। इन सबों को बाँस के किनारे लपेट कर, चकमक पत्थर से आग झाड़ी और उस घास को जलाया। आग जलाई गई। इन जंगलियों ने आग पहले कभी देखी न थी, इसलिये यह जलती हुई आग उनके लिये एक अनोखा दृश्य था। अब उस मनुष्य ने उन सबों से कहा कि इस मशाल को ले गुफा में जाओ और जहाँ वह अन्धकार-राक्षस मिले, वहाँ से उसे कान पकड़कर बाहर घसीट लाओ। पहले उन्हें इस पर विश्वास न हुआ। वे कहने लगे—"यह कैसे ठीक हो सकता है। हमारे पूर्वजों ने उपवास करना, दान देना, पूजा आदि बतलाया था। वह सब करने पर भी यह राक्षस दूर नहीं हुआ, अब इस अनजाने आदमी पर कैसे विश्वास कर लें, यह निःसन्देह हमें ठीक मति नहीं दे सकता। इसकी मति व्यर्थ है। ओ, हम तो इसको नहीं मानेंगे?" उन लोगों ने आग बुझा दी, पर कुछ दूसरे थे, वे इतने पक्षपात-पूर्ण नहीं थे। वे रोशनी लेकर गुफा में गये, पर वहाँ तो वह पिशाच था ही नहीं! वे उस लम्बे खोह में आगे बढ़ते गये, फिर भी राक्षस दिखाई न पड़ा। तब उन लोगों ने सोचा कि राक्षस कहीं सुराख वा दरार में छिपा होगा, इसलिये कोने-कोने रोशनी ले गये, पर राक्षस कहीं नहीं मिला, मानो वह कभी उसमें था ही नहीं।

ठीक वैसे ही, आपके अन्तःकरण की गुहा में अज्ञानांधकार रूपी राक्षस घुसा हुआ है। वही दुःख और डर उत्पन्न कर इस सृष्टि को नरक-तुल्य बनाता है। सारी चिन्तायें, सारे

दुःख-दर्द आपके भीतर ही रहते हैं, कभी बाहर नहीं। जब कोई आपको गालियाँ देता है वा अपशब्द कहता है, तब मानो वह आपके लिये ऐसा भोजन तैयार करता है, जो ग्रहण करने से हानि करेगा। इस प्रकार कोई भी वस्तु तब तक आप को क्षुब्ध वा क्रुद्ध नहीं कर सकती, जब तक आप उसे लेकर हृदय में धारण न कर लें। राम कभी किसी विषय को अपने भीतर नहीं लेता। राह चलते समय राम पर कितने लोग टीका करते हैं, पर ऐसे शब्दों का तब तक कोई असर नहीं होता, जब तक उन्हें सत्य मानकर हृदय में न रक्खा जाय।

वेदान्त की दृष्टि में वही मनुष्य साक्षात्कार को पाये हुए है, जो ऐसे विषैले भोजन को ज़रा भी ग्रहण वा स्वीकार करने का कष्ट नहीं उठाता। ऐसा स्थित-प्रज्ञ पुरुष अपनी वृत्ति में कभी विक्षेप वा क्षोभ होने नहीं देता।

अपने सत्य स्वरूप, अपने ईश्वरत्व में स्थित रहो। दूसरों की निन्दा, दूसरों पर दोषारोपण करनेवालों पर दया करो। अपने को अपमानित, पद-दलित वा पतित कभी मत समझो। अपने 'ऐश्वर्य्य' की प्रतीति करो, अपने दिव्य स्वरूप में निष्ठा रक्खो; अन्यथा सब अज्ञान है, और सब कुछ अन्धकार है। आपके अन्तःकरण का अज्ञान ही है, जो आपके लिये (संसार को) नरक बनाता है। इस अंधकार को दूर करने के लिये आप (ज्ञान से अतिरिक्त) सब कुछ उपाय भले ही करें, पर किसी से कुछ न सरेगा।

जब तक आप अपने अन्तःकरण के अन्धकार को दूर करने पर न तुलोगे, तब तक तीन सौ तेंतीस कोटि क्राइस्ट क्यों न अवतार लें, पर तो भी कुछ लाभ न होगा। परावलम्बी मत बनो। जब तक आपके हृदय में अज्ञान है, तब तक इस देव-मन्दिर से उस मन्दिर में जाना, वा इस समाज से उस

समाज में सम्मिलित होना, तथा क्राइस्ट वा कृष्ण के आगे प्रार्थना करना, यह पूजा, यह पदार्थ-पूजा या वह पदार्थ-पूजा, सब बेकार हैं। जो मन माने करो, किन्तु कुछ होने का नहीं। इसका एकमात्र उपाय है प्रकाश, और वह प्रकाश है अपने दिव्य स्वरूप का ज्वलन्त ज्ञान और उसमें जीता-जागता विश्वास। यही एकमात्र उपाय है, और दूसरी राह नहीं— (नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।)

ऐ महिलाओं और भद्र पुरुषों के रूप में विराजमान देव! ऐ प्रति-व्यक्ति-रूप में मेरे आत्मन! इन सब शरीरों के रूप में ऐ मेरे प्रिय शुद्ध अपना आप! ऐ सर्व-देह-रूपिणी जगज्जननि! ऐ सर्वरूपधारी आनन्दमय आत्मन्! प्रकाश का तात्पर्य्य है सत्य का इतना अधिक अनुभव कि सब दृश्यमात्र देह और रूप शून्यता में परिणत हो जावें।

भीतरी प्रकाश वा सत्य का प्रत्यक्ष अनुभव वस्तु-मात्र को स्फटिक बना देगा और सब नाम-रूप व्यक्तियों को वायु का बुद्बुदा सा बना देगा। अनुभवी पुरुष के सामने कैसा ही व्यक्ति आ जाय, वह उस व्यक्ति के तुच्छ अहंकार या बाह्य शरीर को नहीं देखेगा, वह केवल (उसमें) ईश्वरत्व देखेगा। उसके लिये तो बाह्य रूप या शरीर एक मिथ्या भ्रम, अन्धकार और अज्ञान है।

अज्ञान के दूर होने का तात्पर्य है ईश्वर-दर्शन, अपने यथार्थ स्वरूप का दर्शन, तत्त्व-मात्र का साक्षात्कार, आत्मा का अनुभव और सब भय तथा चिन्ता से छुटकारा।

ऐ दिव्यस्वरूप! ऐ परमात्मदेव!! इन सब शरीरों में विद्यमान, ऐ मेरे परम प्रिय परमेश्वर!!! औरों की दृष्टि में जो लोग मेरे शत्रु कहलाते हैं, वे सब-के-सब वस्तुतः मेरे निजात्मा हैं; और जो लोग दूसरों की दृष्टि में मेरे मित्र कहलाते हैं, वे सब-

के-सब भी वस्तुतः मेरे निजात्मा हैं। क्षुद्र अहंभाव को मत देखो, बाह्य व्यक्तित्व पर ध्यान न दो। अन्य सब शरीरों में ही नहीं, अपितु अपने शरीर में भी ईश्वर-दर्शन करना ही प्रकाश है, जिससे निज आत्मा और ईश्वर बिलकुल एक-जैसा दीखने लगता है। 'ईश्वर' मेरे सत्य-आत्मा (वास्तविक रूप) का पर्य्यायवाची शब्द है। वह वास्तविक स्वरूप 'मैं' सब जगह है, उस 'मैं' का अनुभव करो, उसका निदिध्यासन करो, उसका अनुष्ठान करो; सब दीवारें, सब कठिनाइयाँ, सब विघ्न और सब बाधायें हवा हो जायँगी। कैसा अद्‌भुत दर्शन है! कैसा सुन्दर सत्य है!! कितना भव्य तत्त्व है !!! दुःख है कि इसका वर्णन नहीं हो सकता, कष्ट है कि किसी शब्द की वहाँ पहुँच नहीं, यह दुःख है कि कोई भाषा इसे चित्रित नहीं कर सकती। यह एक असली तत्त्व है, यदि आपको इसकी जिज्ञासा होगी, यदि आप में इसके लिये उत्कट अभिलाषा होगी, तो आप इसे अवश्य पालेंगे।

जब हम लोग ज्योतिष-शास्त्र का अध्ययन करते हैं, तब हम वहाँ ज्योतिष-सम्बन्धी गणना करते हैं, तब भिन्न-भिन्न तारा-गणों के बीच के अन्तर को नापते समय वा उन (तारों) के परिमाण का हिसाब लगाते समय हम लोग इतने विशाल क्षेत्रों को पाते हैं कि जिनके सामने गणित की दृष्टि से यह पृथ्वी शून्यवत् बिन्दु-मात्र होती है।

इसी प्रकार, जब आप परम तत्त्व का साक्षात्कार करने लगते हैं, जब आपको यह प्रतीत होने लगता है कि "प्रकाशों का प्रकाश, देवों का अधिदेव, ईश्वरों का ईश्वर स्वयं मैं ही हूँ", तब यह विराट् आकाशगंगायें, ये सब खगोलीय तारे एक उपेक्षणीय स्वल्प बिन्दु-मात्र होते हैं। जब आप ऐसा अनुभव करते हैं, ऐसा निदिध्यासन करते हैं, ऐसा विचार करते हैं—अजी, तब

यह कैसे संभव है कि संसार के महाभयास्पद (Bug bears, हौवेबाटे) आप पर कोई प्रभाव डाल सकें ?

जब इन महान् तारागणों के सामने यह पृथ्वी शून्यता को प्राप्त हो जाती है, तब उस सूर्य्यों के सूर्य्य, प्रकाशों के प्रकाश की उपस्थिति में—मेरे सत्य-स्वरूप आत्मा के सम्मुख इन बिचारी लौकिक बाधाओं और चिन्ताओं की, भला, कैसे कुछ गिनती हो सकती है ?

तत्त्व का साक्षात्कार करो, उसका अनुभव करो, उसे अपना जीवन बनाओ, और जब आप उसकी पराकाष्ठा (पूर्ण सत्ता) का अनुभव कर लोगे, तब कोई भी, कुछ भी, आप को बिचलित नहीं कर सकेगा। चाहे करोड़ों सूर्य्यों का प्रलय हो जाय, अगणित चन्द्रमा भले ही गल कर नष्ट हो जायँ, पर अनुभवी ज्ञानी पुरुष मेरु की तरह अटल वा अचल रहता है। उसे क्या हानि हो सकती है ? भला संसार में ऐसा है ही क्या जो उसे कष्ट दे सके ?

अहो, आश्चर्य्य ! महाआश्चर्य्य !! ऐसी महान्, ऐसी असीम अवर्णनीय महिमा-पूर्ण आपका सत्य स्वरूप है और (फिर भी लोग) इसे भूल जाते हैं।

वह सूर्य्य, वह अनन्त सूर्य्य, आँखों पर के एक छोटे से परदे से छिपा है। और परदा आँखों के इतना निकट है कि सारा संसार उससे ढका हुआ है। ऐसा तेजोमय उज्ज्वल तत्त्व और ऐसे तुच्छ अज्ञान से ढका है ! अरे, दूर करो ऐसे दुर्बलकारी व अशक्तकारी अज्ञान को, परे करो उसे। अनुभव करो कि "मैं परमेश्वर, ज्योतिषां ज्योति, अकथ्य वा वर्णनातीत हूँ।" "तत्त्वमसि, तत्त्वमसि" (तुम वही हो, वही तुम हो !)। अहा ! उस सत्ता को जब आप भान करने लगते हैं, तब सभी चीज़ें कितनी सरल व कितनी साफ़ हो जाती हैं।

राम कोई बात इतिहास से वा महात्माओं की जीवनी से

लेकर नहीं कहता है। राम तो वही कहता है, जो उसका निजी अनुभव है, और जिसको आप स्वयं अनुभव कर सकते हैं।

राम कहता है, जिस समय हम सत्य का अनुभव करते हैं, और तत्त्व को भान (प्रतीत) करने लगते हैं, उस समय यह जगत् वास्तव में स्वर्ग बन जाता है। और तब, न कोई शत्रु रहता है, न भय, न किसी प्रकार का दुःख-दर्द रहता है, और न चिन्ता। अवश्य, अवश्य यह तत्त्व ऐसा ही है।

जब हम किसी बहुत ऊँचे स्थान पर हों, तब नीचे की चीज़ों के बीच की ऊँचाई-निचाई का लोप हो जाता है। पर नीचे से यदि एक घर बहुत ऊँचा दीखता है, तो दूसरा बहुत नीचा, अथवा कोई सड़क ऊँची नज़र आती है, तो दूसरी नीची। पर जब हम उन्हीं चीज़ों को किसी खूब ऊँचे टीले पर चढ़कर देखते हैं, तो वह भेद मालूम ही नहीं पड़ता। इसी प्रकार जब आप आध्यात्मिक वैभव के शिखर पर चढ़ोगे, जब आप निज सत्य स्वरूप को भान (महसूस) करने लगोगे, एवं जब आप भीतर के तत्त्व का अनुभव करोगे, तब आपके लिये शत्रु-मित्र अपकारी और उपकरी का तुच्छ भेद सब मिट जायगा। इन तुच्छ भेद-भावों की यह प्रतीति ही है, जो हम लोगों को अशान्त बनाती है, और असुखकर परिणाम उत्पन्न करती है। इनके परे पहुँच जाओ, ताकि जो तत्त्व है, वही प्रत्यक्ष हो जाय, और सब भेद-भाव लुप्त हो जायँ। इसे ही वेदान्त 'एकत्वम्' कहता है। ईश्वर परम सत्य है, जगत् वा बाह्य दृश्य तो 'माया' है।

इसलिये आत्मा का, अपने निज स्वरूप का, इस दर्जे तक अनुभव करो कि यह जगत् असत्य भान हो, और ईश्वर वा वास्तविक परमदेव प्रत्यक्ष हो जावे। जब आप अपने भाई को मनुष्य कहकर पुकारते हैं और उसके भीतर परमात्मदेव का अनुभव नहीं करते, अरे, तब आप कितना घोर पाप करते

हैं। अपने इस कृत्य से आप उसके भीतर के आत्मदेव की हत्या करते हैं।

मातृ-हत्या, स्त्री-हत्या, मनुष्य-हत्या आदि अनेक प्रकार की हत्याएँ वर्णित हैं, पर प्रत्येक व्यक्ति में ईश्वर का अनुभव न करके आप ईश्वर-हत्या वा देव-हत्या नामक घोर पाप करते हैं। जब आप किसी मनुष्य को पिता, भाई, पुत्र, दोस्त वा दुश्मन कहकर संबोधन करते हैं और उसके अन्तरस्थ परम-देव का अनुभव नहीं करते, तब आप शब्दों का कुछ ऐसा प्रयोग करते हैं कि अन्तरस्थ परमदेव की हत्या हो जाती है। जब शरीर, आकार, अथवा बाह्य मायाविक रूप इतना प्रधान हो जाता है कि जिससे भीतर का ईश्वर विस्मृत हो जाय, तब आपकी अधोगति होती है। जब-जब आप अपने हृदयस्थ देवता की हत्या करने का यत्न करते हैं, तब-तब, (कहना चाहिये कि) इस संसार में आपका सर्वनाश होता है। यह ईश्वर-हत्या, यह देव-हिंसा ही अज्ञान है, और यही अज्ञान संसार के दुःखों का मूल है। यह तत्त्व स्वप्न-मात्र रह जायगा, यदि लोग इसे व्यवहार में नहीं लावेंगे। यह एक तथ्य है, इसे अनुभव करो और अपने को सुखी बनाओ। इसकी प्रतीति करो, अर्थात् इसका निदिध्यासन करो, इसे आचरण में लाओ, और तब आप देखेंगे कि आप अद्भुत संसार में वास कर रहे हैं, आप देखेंगे कि सब शक्तियाँ (ऋद्धि-सिद्धियाँ) आपकी सेवा कर रही हैं; इसका निदिध्यासन करो, फिर सारे सूर्य, चन्द्र और तारे आपका हुक्म बजायेंगे। निरन्तर प्रयोगों द्वारा आप इसे (इस अवस्था को वा इस कथन की सत्यता को) ठीक पायेंगे।

सुखी है वह मनुष्य, जो सदा अपने आत्मदेव को अनुभव कर सकता है, जो सदा सबके साथ एकता अनुभव कर सकता है।

एक संस्कृत-श्लोक है, जिसका शब्दार्थ है कि "जैसे किसी गुहा में सैकड़ों वर्षों के अन्धकार को, प्रकाश लाने पर, निकलते देर नहीं लगती, वैसे ही उस मनुष्य का हाल है, जिसने अपने में जन्म से ही अज्ञानान्धकार जुटा रक्खा है, पर जब यह तत्त्व, यह आत्म-ज्योति, उसके हृदय-मन्दिर में दमकती है, तो यह सब अज्ञान भाग जाता है।"

इस विषय में राम का यह प्रतिदिन का अनुभव है कि जब वह प्रत्येक विद्यमान मनुष्य वा व्यक्ति में आत्मा का दर्शन करता है, जब वह प्रत्येक मनुष्य की देह को ईश्वर के (शरीर) तुल्य मानता है, या यों कहो कि जब वह मनुष्य के व्यक्तित्व की जगह उसके भीतर के आत्मतत्त्व को देखता है, तब वह दुःख नहीं पाता; किन्तु जब वह केवल शरीर को देखता है, जब वह किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व-मात्र पर ही दृष्टि डालता है, तब राम अवश्य दुःख उठाता है; किन्तु पहले की सब न्यूनताओं और गत सफलताओं के अनुभव से अब राम इतना होशियार हो गया है कि किसी व्यक्ति को परमात्मा से भिन्न किसी अन्य भाव से देखने की कभी भी, बल्कि स्वप्न में भी, कोई संभावना उसे नहीं रही। राम प्रत्यक्ष देखता है कि आपको सत्स्वरूप मानने से, आपको निज आत्मा अनुभव करने से, और ऐसा अनुभव करने से कि "ये सब शरीर मेरे ही हैं, ये सब देह मेरी ही देह के समान हैं", (दूसरे) लोग भी वैसा ही समझने लग जाते हैं।

मजनूँ नामक एक मनुष्य हो गया है। लोग उसे 'प्रेमियों का राजा' कहा करते हैं। उसके समान किसी ने प्रेम नहीं किया। किन्तु उसका प्रेम था अपनी प्रेम-पात्री के शरीर पर, उसके व्यक्तित्व पर। इसी से वह जन्म-भर में उसे न देख सका।

राम कहता है कि यदि आप अपनी इच्छाओं को पूर्ण करना

चाहते हैं, तो आपको उन इच्छाओं को त्यागना चाहिये, उनसे परे हो जाना चाहिये। पर उस (मजनूँ) बिचारे को यह रहस्य मालूम नहीं था। फिर भी संसार भर में वह आदर्श प्रेमी था। कहते हैं कि भारी निराशा के कारण उसका दिमाग़ बिगड़ गया, वह उन्मत्त हो गया। और बिचारा यह पागल शाहज़ादा अपने माता-पिता, घर-द्वार को छोड़ वन-वन में भटकने लगा। यदि वह कोई गुलाब का फूल देखता, तो उसे अपनी प्रिया समझ, उसके पास दौड़ जाता, इसी तरह वह (cypress) सरु वृक्ष को माशूक़ा (प्रिया) समझ प्यार करता। हरिन को देख वह उसे अपनी माशूक़ा समझता और उसके पास जाता। ऐसा ही उसका भाव था ; वह हर जगह उसे देखता और इन क्षुद्र वस्तुओं को अपनी माशूक़ा के रूप में परिणत कर डालता। किन्तु उसके प्रेम का विषय भौतिक था, इसी से उसे इतना कष्ट भोगना पड़ा।

राम कहता है, प्रेम करो और मजनूँ की तरह प्रेम करो, किन्तु ईश्वर को, आत्मा को, उस परमात्मदेव को अपना प्रेम-पात्र बनाओ। क्या सारा संसार ही सुख के पीछे पागल वा उन्मत्त नहीं हो रहा है ? और सुख 'ईश्वर' का ही पर्य्याय-वाचक शब्द है। मजनूँ विचारा जानता ही न था कि कहाँ परम सुख वा ईश्वर मिलता है। वृक्षों में, पशु-पक्षियों में जिस मजनूँ ने अपनी प्रियतमा का दर्शन किया था, उस मजनूँ के समान जिस मनुष्य ने तत्त्व का दर्शन किया है, वही मनुष्य धन्य है। एक दिन मजनूँ उसी वन में मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। उसी समय उसका पिता उसकी खोज में वहाँ आ पहुँचा। वह मजनूँ को धूल से उठाकर, झाड़-पोंछकर कहने लगा—"प्यारे बेटे ! क्या तू मुझे पहचानता है ?" मजनूँ बेसुध देखता रहा। माशूक़ा विना उसकी दृष्टि में समस्त जगत् शून्यवत् था। उसके रोम-रोम से यही ध्वनि निकल रही थी, 'कौन पिता, पिता कौन

है ?" पिता ने फिर कहा, "मेरे प्यारे बेटे ! क्या तू मुझे नहीं पहचानता, मैं तेरा पिता हूँ ?" उसने उत्तर दिया, "पिता कौन ?" तात्पर्य्य यह कि क्या दुनिया में मेरी माशूक़ा के सिवा और भी कोई चीज़ है ?

जैसा प्रेम मजनूं को उस भौतिक पदार्थ, उस मांस और त्वचा के लिये था, वैसा ही तत्त्व के साथ प्रेम रखना तत्त्वानुभव है। दिव्य प्रेम की इस उच्च शिखर में जब आप पहुँच जाते हैं, जब आप इतनी ऊँचाई पर चढ़ जाते हैं कि आप पिता में, माता में, प्रत्येक व्यक्ति में और किसी का भी नहीं, किन्तु केवल ईश्वर का दर्शन पाते हैं, जब आप पत्नी में पत्नी का नहीं, किन्तु केवल उस परम प्रिय ईश्वर का दर्शन करते हैं, तब अवश्य आप स्वयंमेव ईश्वर हो जाते हैं। हाँ, तब आप वास्तव में ईश्वर के समक्ष हो जाते हैं।

जब तक मजनूं जीवित रहा, तब तक वह अपनी माशूक़ा (lady love) को न देख सका। कवि आगे लिखता है कि (मरने पर जब) वह ख़ुदा के सामने लाया गया, तो ख़ुदा ने कहा— "अरे मूढ़ ! तूने एक भौतिक, सांसारिक पदार्थ को इतना क्यों प्यार किया ? जितना प्रेम तूने अपनी प्रियतमा पर व्यर्थ किया, यदि तूने उसका कोटि अंश भी मुझे अर्पण किया होता, तो आज तुझे मैं बिहिश्त का फ़रिश्ता (स्वर्ग का देवता) बना देता।" कहा जाता है, मजनूँ ने उत्तर दिया, "ऐ ख़ुदा ! मैं तुझे इस (धृष्टता) के लिये माफ़ कर देता हूँ। पर यदि सचमुच ही तुझे मेरे इश्क़ की इतनी चाह थी, तो तू स्वयं मेरी माशूक़ा बनकर मेरे पास क्यों न आया ? यदि तू मेरी मुहब्बत का भूखा था, तो तुझे मेरी माशूक़ा, मेरे प्रेम का विषय बनना था।" इस मजनूँ ने तो खेल ही उलटा दिया, किन्तु राम कहता है कि आपको सत्य स्वरूप के साथ ऐसा ही उत्कट

प्रेम रखना चाहिये, अपने आत्मा को अवश्य प्यार करना चाहिये, उसे ही अपना प्रेमपात्र समझना चाहिए। उसे प्यार करो, अनुभव करो, मजनूँ की तरह अनुभव करो, ताकि और कोई वस्तु आपके पास न आने पावे, जब तक कि वह प्रियतम सत्य स्वरूप के ही रूप में उपस्थित न हो। उसमें आप केवल प्रियतम देव को देखो, और कुछ नहीं।

इस पर शायद आप कहो, "क्या जरूरत है? हम इसे अनुभव करना नहीं चाहते। हम तो अपने इस नरक में ही सुखी हैं।" तो राम कहता है, "सम्भव है कि आप सुखी हों, किन्तु आप का ध्येय वही है। अतः सड़क पर पैर घसीटते चलने में समय नष्ट करने से क्या लाभ? यहाँ आपको आना ही पड़ेगा; पर कीचड़ में चलकर परेशानी तो न उठाओ। रेल की ऊँची सड़क पकड़ो, बिजली की गाड़ी, नहीं-नहीं, विमान ले लो, सड़क के किनारे अपना वक्त बरबाद मत करो।"

आप प्रतिदिन अपने अड़ोस-पड़ोस का अवलोकन करो, क्या मालूम पड़ता है? आप देखोगे कि प्रकृति का ऐसा प्रबन्ध है कि आप उस लक्ष्य तक अवश्य पहुँच जाँय। यह एक नैसर्गिक घटना है। जब कोई मनुष्य शान्त, स्थिर, पवित्र और आनन्द की वृत्ति में होता है, तब कुछ देर तक उस शान्त, स्वस्थावस्था में रहने से वह देखता है कि उस अवस्था के साथ-साथ कोई अच्छी खबर आती है, वा कोई शुभ परिवर्तन होता है, अथवा कोई उत्तम घटना घटती है; निरुपवाद ऐसा होता ही है।

उस साम्यावस्था में, उस शान्त, अचंचल दशा में रहो, और आप देखोगे कि कोई मित्र मिलने आता है, वा कोई प्रिय वस्तु मिलती है, अथवा आपके लिये कोई गौरव-जनक बात होती है। जब साधारण मनुष्य इस सफलता पर फूल उठते हैं, वा उसको आत्मिक महत्त्व देते हैं (तब उन्हें दुःख भोगना

ही पड़ता है)। यदि आप उस भौतिक रूप को हृदय में स्थान दोगे, यदि आप उससे आसक्त हो जाओगे और उसे जकड़ रक्खोगे, उसे बेहद प्यार करने लगोगे, तो आप देखोगे कि अवश्यमेव कुछ अकथ घटना घट जायगी, और वह उस वस्तु को हर लेगी वा उसमें कोई नवीन (अवांछित) परिवर्तन पैदा कर देगी। यह दैवी विधान है, यह टाला नहीं जा सकता।

यदि इस विषय पर पुस्तकें नहीं लिखी गई हैं, तथापि दैवी विधान यही है। इसी प्रकार जब आप किसी वस्तु में आसक्ति रख उसके मोह में अत्यन्त फँस जाते हैं, जिससे कोई प्रसंग उत्पन्न होकर वस्तु को हर लेता है और आप दुःखी एवं निकृष्टतम होते हैं, तब दो प्रकार की घटनायें घटती हैं। कुछ लोग इस प्रकार मुँह की खाकर बाह्य दशा को दोष देना, हाथ-पैर पटकना और बाह्य स्थिति की समालोचना करना आरंभ करते हैं। ऐसे लोगों पर और भी कड़ी उलझनें आती हैं; तब वे चिल्ला उठते हैं—"अरे! विपत्तियाँ कभी अकेली नहीं आतीं।" ऐसा एक वार दुःख उठाने के बाद भी जो लोग अपने चित्त की समता प्राप्त नहीं करते, बल्कि दूसरों की समालोचना करते और उन पर दोष लगाते रहते हैं, वे क्षण-भंगुर अवलंब आश्रय) के पीछे छटपटाते फिरते हैं, क्योंकि बुरे दिन अकेले नहीं आते; परन्तु कुछ काल तक कष्ट झेलने पर उनके चित्त की स्थिति ऐसी हो जाती है कि जिसमें अदृश्य बल प्राप्त हो जाता है। तब साम्यावस्था आती है, 'यद्भाव्यं तद्भवतु' भाव का उदय होता है, तब उन वासनाओं के त्याग की वृत्ति, चित्त-प्रसन्नता तथा विश्व-व्यापक शान्ति की दशा उपस्थित होती है; तब दुःख के बादल दूर हो जाते हैं, और फिर बाहिर से भी अच्छी अवस्था प्राप्त होती है। वे पुनः सत्पथभ्रष्ट होते केवल बाह्य रूपों वा व्यक्तियों पर निर्भर रहने लग जाते हैं, जिससे फिर

कठिनाइयों में जा फँसते हैं, और तब कुछ काल के बाद वे धर्म की शरण में आते हैं। कहते भी हैं कि विपत्तियाँ मनुष्य को धर्ममुख करती हैं (Misfortunes lead to religion)।

इसी तरह आपके दैनिक जीवन में दिन-रात हुआ करती है, प्रत्येक दुःख की रात्रि के बाद सुख की प्रभात आती है, और प्रत्येक सुख के दिवस के बाद दुःख की निशा होती है। जब तक आप बाह्य रूपों में आसक्ति रक्खेंगे, तब तक यह उत्थान और पतन होता ही रहेगा, एक के बाद दूसरे का आना जारी रहेगा। पर इस आन्तरिक उत्थान-पतन का उद्देश्य क्या है? आपको अपने भीतर के सूर्य्य का अनुभव कराना ही इस आन्तरिक पतनोत्थान का उद्देश्य है।

पृथ्वी पर रात्रि और दिवस होता है। पर सूर्य्य में सर्वदा दिन ही दिन रहता है। पृथ्वी के घूमने से ही दिवा-रात्रि होती है, पर सूर्य्य में रात होती ही नहीं, वहाँ सदा दिव्य प्रकाश, सदा दिन रहता है।

आप पर आपत्ति दुःख और चिन्तायें इसलिये आती हैं कि आप भीतर के बैकुंठ का अनुभव करें। इनका काम आप को यही सुझाने का है कि आप हृदयस्थ सूर्य्यों के सूर्य्य, प्रकाशों के प्रकाश का अनुभव करें। और जिस समय आपने अनुभव कर लिया, उसी समय आप सारे सांसारिक दुःख-दर्दों से, परिवर्तनों से परे हो गये।

अच्छा, हम लोगों को उन्नत करना ही इन दुःख आदि का उद्देश्य कैसे है? सुख का प्रथमागमन हमें यह बतलाता है कि सुख सदा उसी समय मिलता है, जिस समय हम अपने भीतर के आत्मदेव से संलग्न वा निमग्न रहते हैं, अथवा जिस समय हम विश्व के साथ अपनी एकता भान करते हैं। इस प्रकार यह हमें बतलाता है कि जब हमारी विश्व के साथ चित्त से एकता होती

है, तब सब सुख हमारे हो जाते हैं; तब वे हमें अवश्य मिलेंगे ही, यही दैवी विधान है। विपत्ति जो है, वह हमें बतलाती है कि मैं भौतिक भ्रममय वा मायिक विषयों में आसक्ति वा मोह का पीछा करती हूँ। कष्ट हमें बतलाते हैं कि भौतिक पदार्थों में आसक्ति रखना, एवं इन भौतिक विषयों को सत्य समझना ही दुःख-दर्द एवं चिन्ता का लाना है। इस प्रकार ये दुःख हमें सूचित करते हैं कि भौतिक पदार्थ मिथ्या हैं, अतएव बाह्य सांसारिक नाम-रूपों पर हमें अपना समय और शक्ति नष्ट न करनी चाहिये। सभी विपत्तियाँ यही शिक्षा देती हैं। राम सारे जगत् के इतिहास को इसी दैवी विधान से प्रतिपादित कर सकता है। 'शेक्सपियर' (Shakespear) के 'मर्चेन्ट ऑफ़ वेनिस' (Merchant of Venice) नामक नाटक में आपने देखा होगा कि जब तक पोर्शिया (Portia) के शरीर में बसैनियो (Bassanio) आसक्त था, तब तक वह पतित था, सफल मनोरथ न हो सका। और बक्सों को चुनते समय उसकी दशा अवर्णनीय थी, वह शून्यावस्था में था; वह बड़ी ही भव्य स्थिति में था। वहाँ ईश्वर, देवता वा किसी स्वर्गीय दूत का उल्लेख तो नहीं है, पर ध्यान पूर्वक पढ़ने से पता मिलेगा कि जब उसका चित्त साम्यावस्था में था, जब वह ईश्वर से अभिन्न हो रहा था, उसी समय वह सफल हुआ। भले ही शेक्सपियर ने इसे स्पष्ट न किया हो। कवि लोग इसका स्पष्ट चित्रण नहीं करते। पर है यह एक तथ्य, जो प्रतिदिन अनुभव सिद्ध होता है। सब सुख यही उपदेश देते हैं कि आप सदा साम्यावस्था में रहें। वे यही बतलाते हैं कि आपकी समस्त विश्व और प्रकृति के साथ एकता होनी चाहिये। दुःख निषेधात्मक शिक्षा देते हैं। वे कहते हैं कि आप जगत् के पदार्थों से ममता कभी मत जोड़ें, और उन्हें कभी सत्य मत समझें। वे उपदेश देते हैं कि आप सर्वगत ईश्वर का

उच्छेदन मत करें, और न आप नाम रूप पर आसक्त होकर ईश्वर को ही भुला दें। सभी दुःख और सभी सुख आपको वेदान्त का पाठ पढ़ाते हैं। जब सब लोग इस पर विश्वास नहीं करते, तो क्या इससे कुछ और सिद्ध हो जाता है? नहीं, इससे केवल यही सिद्ध होता है कि इस सत्य को दुनिया नहीं समझ पाती, इसी से दुनिया दुःखी है। सत्य का अनुभव आप करो, फिर आप सुखी होंगे।

भारत में मिट्टी के बरतन बनाने के लिये अमेरिका के समान मशीन (कला) नहीं है। वहाँ कुम्हार चाक पर बरतन गढ़ते हैं। चरणों से एक गहरे भाँडे में मिट्टी गूँधी जाती है। और दोहरी रीति बर्ती जाती है। भीतर की ओर से किसी वस्तु का आधार देकर बाहर से उसे थपथपाते हैं, जिससे मिट्टी को बरतन में घड़ लेते हैं।

वैसे ही वे बाहरी थपेड़ आपकी उन्नति करा रहे हैं, आप को ईश्वर बना रहे हैं। यह दोहरा तरीक़ा है। भीतर का आधार बनाए रखिये, दुःख कठोर आघात हैं, और सुख अन्तर का आश्रय हैं। सुख-दुःख के ज़ोर से चरित्र संगठित होता है। दुःख जो बाहिर से कठोर आघात-तुल्य है और सुख जो आन्तर आधार-तुल्य है—दोनों का ही उद्देश्य आपका आन्तरिक ईश्वरत्व प्रकट करना, अन्तःस्थ ईश्वर को व्यक्त करना, एवं आपकी दिव्य प्रकृति को प्रस्फुटित करना है। यह प्रकृति का नियम है कि (उसकी) तलवार के ज़ोर के आगे आपको अपना ईश्वरत्व प्राप्त करना ही होगा। और यदि आप ऐसा नहीं करते, तो तमाचे पर तमाचे, लात पर लात ही नसीब होंगे। यदि आप इससे बचना वा छुटना चाहते हैं, तो कृपया आत्मा का, निज सत्य स्वरूप का अनुभव करिये। यही ध्येय है।

O, happy, happy, happy Rama,
Serene and peaceful, tranquil, calm.

My joy can nothing, nothing mar,
My course can nothing, nothing bar.

My livery wear gods, men, and birds,
My bliss supreme, transcendeth words.

Here, there and every where,
There, where's no more a "where ?"

Now, ever, anon, and then,
Then when's no more a "when" ?

This, that, and which, and what,
That that's above a "what ?"

First, last and mid, and high,
The one beyond a "why ?"

One, five and hundred, All,
Transcending number one and all.

The subject, object, knowledge, sight,
E'en that description is not right

Was, is, and e'er shall be,
Confounder of the verb "to be".

The sweetest Self, the truest Me,
No Me, no Thee, no He.

राम आनन्द - समुन्द्र लीन,
अविचल, सुशान्त विकंप-हीन।
मेरा आनन्द अति विशाल ;
कोई सके हि न विघ्न डाल।
मेरे रथ की गति अविरोध ;
कौन करेगा उसका रोध।
मेरा दिया हुआ चपरास ;
देवादिक पहने सहुलास।
मेरा शब्दातीतानन्द,
दिव्य,—करे वाचा को मन्द।
यहाँ वहाँ और जहाँ तहाँ—
'कहाँ ?' जहाँ पर है नहिं वहाँ;
भूत, भविष्य, सभी काल में—
अथवा 'काल'-हीन काल में !
सब से अतीत, सब वस्तु में,
प्रारंभ अन्त औ मध्य में।
प्रश्नों औ कारण से परे,
जो है संख्या से भी परे।
'कर्त्ता', 'कर्म', 'दृश्य' औ 'ज्ञान',
जिसका उचित नहीं अभिधान।
'अस्ति', 'नास्ति', 'है', 'था', का जाल,
बस, देता है भ्रम में डाल।
सबसे सच्ची 'अपनी' सत्ता,
बस, वह प्रियतम आत्मा एक।
जिसे त्यागकर 'हम', 'तुम', 'वह',
इन सबका कोई नहीं विवेक।

यही 'सर्व' है, परम आत्मा है, जो (सब कुछ होते हुए भी) अवर्णनीय है; वही तुम हो—'तत्त्वमसि'।

इस तत्त्व का अनुभव करो। जब लोग आकर राम के शरीर की पूजा करते हैं, तब राम अप्रसन्न होता है। राम के भीतर में इतना काफ़ी आनन्द, सुख, मोद भरा है कि प्रशंसा वा धन द्वारा प्राप्त होनेवाले सुख से वह मुक्त है।

मेरा सुख अकथनीय और असीम है। आन्तरिक (आनन्द का) दिव्य मूल इतना काफ़ी है कि उसने राम को नाम, कीर्ति वा द्रव्य के दरवाज़े पर सुख के लिये हाथ पसारने की आवश्यकता से मुक्त कर दिया है। मेरे भीतर काफ़ी सुख है।

अरे! अनुभव करो, अनुभव करो, उसे प्राप्त करो। वही मुक्त करेगा आपको इस याचक-प्रवृत्ति से, जो लोगों को सांसारिक सुख की खोज में प्रवृत्त कराती है।

भारत में एक स्त्री के नौ पुत्र थे। एक दिन उसके द्वारे एक भिक्षुक आया, और उस (स्त्री) ने उसे कुछ भिक्षा दी। वह भिक्षुक इतना प्रसन्न हुआ कि उसने उसको आशीर्वाद दिया और भगवान् से ऐसे प्रार्थना की 'हे प्रभो! इस देवी को तू सात बच्चों की माता बना।" जब उस सच्चे भाव वाले साधु ने उसे सात बच्चों की मा बनाने की प्रार्थना की, तो वह रुष्ट हो गई, क्योंकि यह उसके लिये शाप हो गया; क्योंकि उसके पहिले ही से नौ लड़के थे, इससे उसके दो लड़कों की हानि होती थी। उसने फिर से आशीर्वाद देने की, उस भिक्षुक से प्रार्थना की, और पुनः साधु ने वही आशीर्वाद दिया। वह स्त्री क्रोधित हो गई और बहुत से लोग वहाँ इकट्ठे हो गये, और उसके क्रोध का कारण पूछने लगे। यह सुनकर उन लोगों को हँसी छूटी कि आशीर्वाद आशीर्वाद न होकर शाप हो गया। इसी प्रकार राम के अन्दर अकथनीय आनन्द भरा है, सबों

को उस आनन्द का उपभोग करने दो। वही हम सबों को मुक्त, इस संसार के सभी विषयों से मुक्त, करेगा।

हिमालय की बर्फ़ानी नदियों के कमलों के समान शरीर को, व्यक्तित्व को, विना किसी की दृष्टि और ज्ञान के ही विकसित होने दो। चाहे वह शरीर शूली पर चढ़ाया जावे वा क़ैद में रक्खा जावे, चाहे महासागर की विशाल तरंगें इसे निगल जावें, वा उष्ण कटिबन्ध (Torrid zone) की गरमी इसे झुलसा दे—अथवा और कुछ बाधा भले ही आ पड़े, पर उस भीतर के निजानन्द का रंग भंग नहीं हो सकता। उसी आनन्द का, उसी परात्पर आन्तर सुख का, आप अनुभव करो, और जगत् के सब दंभ और मूढ़ता एवं अन्धकार से परे हो जाओ।

ईश्वरों के अधीश्वर, देवों के अधिदेव बनो। "तत्त्वमसि ! तत्त्वमसि !!" (वही तुम हो ! वही तुम हो !!)

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

(साधारण) बातचीत

गोल्डेन गेट हाल, बृहस्पतिवार, २२ जनवरी, १९०३

प्रश्न—"हम स्वाधीन होंगे"—स्वामी के इस कथन का क्या अर्थ है?

उत्तर—"हम स्वाधीन होंगे," यह वाक्य यथार्थ में भ्रान्ति-मूलक है। हमारा स्वाधीन होना वास्तव में भ्रान्तिमय है, क्योंकि हम इस समय भी स्वाधीन हैं, हम आदि से ही स्वाधीन हैं, हम कभी बन्धन या दासता में नहीं थे। इस प्रकार यह कहना, "हम स्वाधीन होंगे", असलियत में ग़लत है। साधारण बात-चीत में ज्ञान या ज्ञान प्राप्त करने के अर्थ में यह वाक्य बोला जाता है। आप जानते हैं कि ग़ुलामी की क़ैद, जिससे इस संसार के लोग छूटते या उठते हैं, वास्तविक क़ैद या दासता वा बन्धन नहीं है, यह केवल ग़लत विचार, अज्ञान और मिथ्या ज्ञानार्जन का फल है। दासता या बन्धन वास्तव में नहीं है, और सच्चे ज्ञान की प्राप्ति, सच्चे निज स्वरूप या आत्मा का अनुभव आपको तुरन्त स्वाधीन, सदा के लिये स्वाधीन कर देता है। वह स्वाधीनता कभी गई नहीं थी। इसलिये भविष्य में आनेवाली स्वाधीनता का विचार नहीं करना है, बल्कि उस स्वाधीनता का विचार करना है, जो सदा आपकी रही है, जो आपका जन्मजात स्वत्व है, जो आपका अपना असली स्वरूप है।

एक आदमी के गले में एक लम्बा बहुमूल्य हार था। एक समय वह उसे बिलकुल भूल गया। अपने गले में हार न पाकर उसे बड़ा रंज हुआ। उसकी खोज में वह इधर-उधर

भटकने लगा, पर वह न मिला। किसी ने उससे कहा कि हार तो तुम्हारे ही पास है, और वह बड़ा ख़ुश हुआ। यथार्थ में हार मिला नहीं था, क्योंकि वह तो बराबर वहीं था। वह खोया नहीं था, बल्कि भूल गया था। इसी तरह आपका सच्चा आत्मा, "मैं हूँ", कल, आज, सदा एकसाँ रहा है, और रहेगा; किन्तु मन या बुद्धि को केवल अज्ञान पर विजय पाना है। मन जब विश्वास करता है कि मूल्यवान् हार मिल गया, तब इस अर्थ में हम कह सकते हैं कि आपको अपनी स्वाधीनता फिर मिल गई। आपको अपना प्यारा हार मिल गया, जो यथार्थ में कभी खोया ही नहीं था।

प्रश्न—क्या हमारी आत्मा का व्यक्तित्व निरन्तर बना रहता है?

उत्तर—आप समझ सकते हैं कि इस प्रश्न का उत्तर "आत्मा" शब्द के अर्थ पर निर्भर है। यदि रूह (Soul) का अर्थ आत्मा माना जाय, तो वह न कभी जन्मा था, और न मरेगा। जब जन्म और मृत्यु ही नहीं, तो निरन्तरता कहाँ से आ सकती है। यदि "आत्मा" को आप आने-जानेवाला शरीर या सूक्ष्म शरीर समझते हैं, तो जीवन की धारा अविच्छिन्न वा निरन्तर है।

याज्ञवल्क्य के दो स्त्रियाँ थीं—मैत्रेयी और कात्यायनी। वे ऋषि बड़े धनी थे। वे भारत के अत्यन्त सम्पत्तिशाली राजा के गुरु थे। दोनों स्त्रियों में अपना धन बाँट कर वन-गमन (एकान्त-सेवन) को उनकी इच्छा हुई। मैत्रेयी ने अपना हिस्सा लेना नामंजूर किया। उसने कहा, यदि धन से अमरता मिल सकती होती, तो मेरे पति उसका त्याग न करते।

आप देखते हैं कि मैत्रेयी के दिल में यह ख़याल पैदा हुआ कि "मेरे प्रिय पति, जो भारत के एक बहुत बड़े धनी हैं, इस

दौलत को छोड़कर दूसरी तरह का जीवन क्यों अपना रहे हैं। अवश्य ही एक तरह का जीवन छोड़कर दूसरी तरह का जीवन कोई भी मनुष्य तब तक नहीं ग्रहण करता, जब तक नये जीवन में पुराने की अपेक्षा अधिक सुख, अधिक चैन नहीं समझता। इससे स्पष्ट है कि अपने वर्तमान जीवन की अपेक्षा मेरे पति को उस जीवन में, जिसे वह ग्रहण करनेवाला है, अधिक सुख-चैन होगा।" उसने सोचा और अपने पति से पूछा, "क्या सांसारिक सम्पत्ति की अपेक्षा आध्यात्मिक सम्पत्ति में अधिक सुख है, अथवा इसके विपरीत है?"

याज्ञवल्क्य ने जवाब दिया, "अमीरों की ज़िन्दगी जो कुछ है सो है, परन्तु उसमें असली सुख, सच्चा आनन्द, वास्तविक स्वाधीनता नहीं है।" तब मैत्रेयी ने कहा, "वह कौन सी चीज़ है, जिसकी प्राप्ति मनुष्य को स्वतंत्र बना देती है, जिसकी प्राप्ति मनुष्य को लौकिक लोभ और तृष्णा से मुक्त कर देती है? वह जीवन-सुधा मुझे बताओ, मैं उसे चाहती हूँ।"

याज्ञवल्क्य का सब धन और दौलत तो कात्यायनी के हाथ लगा, और मैत्रेयी को उनकी सब आध्यात्मिक सम्पत्ति मिली। वह आध्यात्मिक सम्पत्ति क्या थी?

न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति।

न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति। (बृह० उपनिषद्)

इस पंक्ति के कई अर्थ हैं। मोक्षमूलर ने इसका कुछ और ही अर्थ किया है। बहुतेरे हिन्दू एक दूसरा ही अर्थ करते हैं।

एक अर्थ के अनुसार, "पति के प्रिय होने का कारण यह नहीं है कि उसमें कुछ गुण हैं, या उसमें कोई विशेषता है, जो प्यार के योग्य है, उसके प्रिय होने का सबब यह है कि वह

स्त्री के दर्पण का काम देता है। जिस तरह से हमें शीशे में अपना प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है, उसी तरह अपने पति रूपी दर्पण में स्त्री अपने आपको देखती है, और इसीलिये वह पति को प्यार करती है, इसीसे पति उसे प्यारा है।" .

दूसरा अर्थ यह है कि "स्त्री पति के लिये नहीं प्यार करती, बल्कि इसलिये कि उसे पति में सच्चे तत्त्व, परमेश्वर, सच्चे परमात्मा के दर्शन होने चाहिये।"

आप जानते हैं कि यदि प्रेम के पलटे में प्रेम नहीं मिलता, तो कोई प्रेम नहीं करता। इससे ज़ाहिर होता है कि दूसरों में प्रतिबिम्बित केवल अपने आप ही को हम प्यार करते हैं। हम अपने सच्चे आत्मा को, भीतरी ईश्वर को, देखा चाहते हैं, और कभी किसी वस्तु को हम उसी के लिये प्यार नहीं करते।

यह एक कल्पना है। इसे जाँचिये, इसकी छान-बीन कीजिये, और आपको यह मालूम होगा कि वस्तुओं के प्यारी होने का कारण सच्चा अपना आप है। सम्पूर्ण मधुरता आप के भीतर के सच्चे अपने आप (आत्मा) में है। ऐसे भावों का दुरुपयोग न करो। जो सीढ़ी सदा आपके चढ़ने के लिये लगी है, उसे अपने को अज्ञान या संकट में गिराने या उतारने-वाली न बनाओ। इस मामले को जाँचो, और देखोगे कि सच्चा माधुर्य, सच्चा आनन्द, सच्चा सुख कहाँ है। आप जानोगे कि वह केवल आपके अपने-आप, सच्ची आत्मा, अर्थात् ईश्वर में है। इसे देखो और स्वतंत्र (मुक्त) हो जाओ। इसे जानो और सब सांसारिक आकांक्षाओं से ऊपर उठो। अपने को उठाओ, इन सब नीची, तुच्छ इच्छाओं से अपने को ऊपर उठाओ। ईश्वर से एक हो जाओ।

न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति। (बृह० उपनिषद्)

"सचमुच, लड़के के लिये लड़के प्यारे नहीं हैं, किन्तु अपने (आत्मा के) लिये लड़के प्यारे हैं।"

"लड़के सच्चे अपने आप, सच्ची आत्मा के लिये प्यारे हैं।" जब आपके लड़के आपके विरुद्ध हो जाते हैं, तब आप खिन्न होते हैं, उन्हें भगा देते हैं, अपने पास से हटा देते हैं। अरे, तब तो आप देख सकते हैं कि लड़के किसके लिये प्यारे थे।

उदाहरण के लिये, आपको अपने लड़के के लिये कुछ कपड़ों की ज़रूरत पड़ती है। आपको कपड़े बहुत अच्छे लगते हैं, परन्तु कपड़े कपड़ों के लिये आपको प्यारे नहीं हैं, बल्कि लड़के के लिये प्यारे हैं। लड़का कपड़ों से अधिक प्यारा है। इस तरह हम देखते हैं कि लड़का अपने निजस्वरूप आत्मा के लिये प्यारा लगता है। आत्मा में, सच्चे अपने आपमें अवश्य ही लड़के से अधिक सुख वा अधिक आनन्द होगा।

न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति ॥ ५ ॥ (बृहदारण्यक उपनिषद्, दूसरा अध्याय, ४ ब्राह्मण)

"सचमुच, सम्पत्ति के लिये सम्पत्ति प्यारी नहीं होती, किन्तु अपने आपके लिये सम्पत्ति प्यारी होती है।"

आप इस देवता और उस देवता से विनय करते हैं, और कहते हैं कि "हे देव! आप बड़े श्रेष्ठ हैं, आप बड़े कृपालु और दयालु हैं, आप बड़े सुन्दर हैं, आप ही सब कुछ करते हैं।" इत्यादि। ऐसा आप क्यों कहते हैं? इसलिये कि देवता आपकी जरूरतों को पूरा करता है, इसी कारण से कि देवता आपके अपने आपकी, आपमें असली सच्चे अपने आपकी सेवा करता है। देवता के लिये आप देवता की विनय नहीं करते, बल्कि अपने लिये करते हैं। इस पर ध्यान दो। सच्चा अपना आप सब सुखों का, आनन्द का मूल है। इसे जानो और इसे अनुभव करो।

हिन्दुस्थानी कठपुतली के तमाशे में एक आदमी परदे के पीछे बैठा रहता है, और उसके हाथ में बहुत से महीन तार होते हैं। ये तार पुतलियों की स्थूल देह से जुड़े रहते हैं। जो लोग पुतलियों का नाच देखने आते हैं, उन्हें ये महीन तार नहीं दिखाई पड़ते, और न उन तारों का खींचनेवाला ही परदे के पीछे बैठा देख पड़ता है। इसी तरह, इस संसार में, ये सब स्थूल शरीर, स्थूल कठपुतलियों के तुल्य हैं। आम तौर से लोग इन्हीं स्थूल शरीरों को वास्तविक रूप से करनेवाला, स्वतंत्र और कर्त्ता मानते हैं, और बाह्य देह-दृष्टि अर्थात् परिच्छिन्नात्मा की ही दृष्टि से सब बातचीत करते हैं। वे शरीर को स्वतंत्र कर्त्ता समझते हैं, और यदि उनके मित्र तथा नातेदार उनके अनुकूल कुछ करते हैं या उनकी सेवा-शुश्रूषा करते हैं, तो वे प्रसन्न होते हैं। पर यदि मित्र और नातेदार उनके विपरीत काम कर बैठते हैं, तो घृणा, निराशा, फूट और बेचैनी पैदा हो जाती है, और मित्रों तथा नातेदारों को चाहने के बदले वे उनसे नफ़रत करने लग जाते हैं। ये एक प्रकार के लोग हैं। दूसरे प्रकार के लोग, जो उच्च श्रेणी के हैं, महीन तार, डोरों पर बड़ा जोर देते हैं। ये लोग अधिक बुद्धिमान, अधिक तत्त्वज्ञ और अधिक आध्यात्मिक हैं। ये लोग महीन तार रूपी डोरे की सारी महिमा बताते हैं। स्थूल शरीर से रहित और स्वतंत्र भौतिक वस्तु वा भूत-प्रेत को ये लोग प्रत्येक कर्म का सच्चा कारण समझते हैं। भूत-प्रेत से अभिप्राय इनका निज आत्मा नहीं, बल्कि सूक्ष्म शरीर है। अपनी हद तक ये लोग ठीक हैं। ये एक कारण और कार्य की दृष्टि रखते हैं। ये सूक्ष्म तार और स्थूल शरीर पर उसके प्रभाव को देखते हैं, परन्तु हम जानते हैं कि मनुष्य से सम्बन्ध रखनेवाली शक्ति, परदे के पीछे असली तत्त्व वा वस्तु, इन महीन तागों या तारों को खींचनेवाली असली

शक्ति, सबको भान करनेवाली शक्ति, ये सबके सब यथार्थ में उसी अकथनीय शक्ति स्वरूप आत्मा से नियंत्रित होते हैं, जो देश, काल या वस्तु से परिच्छिन्न नहीं है। यही सच्ची अमरता, यथार्थ सुख, आनन्द और प्रसन्नता है। यही सब कुछ है। यही आत्मा है।

इन सब उपद्रवों से स्पष्ट होता है कि लोगों के ये सकल सम्बन्ध और सम्पर्क मानो मानव-जाति के लिये उपदेश हैं, वे मनुष्यों के लिये एक प्रकार की शिक्षा हैं। आपके सांसारिक सम्बन्ध और सम्पर्क आगे चलकर जिस महान् अवस्था में आपको खींच ले जाते हैं, वह अपने निज स्वरूप का अनुभव है, जो तार खींचनेवाला या पर्दों की ओट में असली तत्त्व है। ये उपद्रव आप पर स्पष्ट करते हैं कि आपको अपने आपका अनुभव करना चाहिये, आपको अपने स्वरूप की असलियत का बोध होना चाहिये, जो सबके पीछे है, जो मनुष्य के मन और शरीर का भी शासक और नियन्ता है। लोगों के मन और शरीर भी इस परम शक्ति, इस वास्तविक प्रेम, इस उत्कृष्ट तत्त्व के शासन के अधीन हैं।

इस तरह यह देखना और समझना है कि जब आप किसी सुहृद् का अवलोकन करते हैं, तब आप उसकी ओट में स्वयं अपने शुद्ध स्वरूप का अवलोकन करते हैं; जब आप उसे बातचीत करते सुनते हैं, तब सुनने की क्रिया का नियमन आपके भीतर के निज स्वरूप द्वारा हो रहा है; जब किसी मित्र की शक्ति आपके ध्यान में आती है, तब उसके भीतर परमेश्वर पर आपका ध्यान जाता है; जब आपको इस शक्ति का परिज्ञान हो जाता है, तब आप धोखे में नहीं होते, आपको क्लेश नहीं होता, आप क्षुभित नहीं होते।

"ठीक जैसे लोग जड़ पुतलियों को देखते हैं, उसी तरह वे जानते हैं कि इस सबके पीछे शक्ति मेरा सच्चा स्वरूप है।

लोगों के कामों के पीछे की ताक़त को देखो। उसका अनुभव करो, और जानो कि तुम वही हो। उसे भी उसी उग्रता या गंभीरता से जानो, जिस उग्रता से तुम रूप और रंग को जानते हो।

ब्रह्म तं परादाद् योऽन्यत्रात्मनो ब्रह्म वेद।
क्षत्रं तं परादाद् योऽन्यत्रात्मनः क्षत्रं वेद।
लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो लोकान् वेद।
देवास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो देवान् वेद।
भूतानि तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो भूतानि वेद।
सर्वं तं परादाद् योऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेद।
इदं ब्रह्म, इदं क्षत्रं, इमे लोकाः, इमे देवाः।
इमानि भूतानि, इदं सर्वं, यदयमात्मा ॥ ६ ॥

(बृह० उपनिषद्)

"जिस किसी ने ब्राह्मणत्व को अपने आत्मा से अन्यत्र देखा, उसे ब्राह्मणत्व ने त्याग दिया। जिस किसी ने क्षत्रियत्व को अपने आत्मा से अन्यत्र देखा, उसी को क्षत्रियत्व ने त्याग दिया। जिस किसी ने लोकों को आत्मा के सिवाय कहीं अन्यत्र समझा, उसी को लोकों ने त्याग दिया। जिस किसी ने देवताओं को आत्मा के सिवाय कहीं अन्यत्र जाना, उसको देवताओं ने दूर कर दिया। जिस किसी ने प्राणियों को आत्मा के सिवाय कहीं अन्यत्र देखा, उसी को प्राणियों ने त्याग दिया। जिस किसी ने भी किसी भी वस्तु को आत्मा के सिवाय कहीं अन्यत्र देखा, उसी को हरएक वस्तु ने त्याग दिया। यह ब्राह्मणत्व, यह क्षत्रियत्व, ये लोक, ये देव, ये प्राणी, यह सब वही आत्मा है।" यह तो आत्मदेव की स्पष्ट और सरल व्याख्या हुई।

इसे अपने दिलों में उतर जाने दो, और तब आप अनुभव

करोगे कि आप स्वाधीन हैं, तब आप अपना जन्मस्वत्व लौटा पाओगे।

"ये ब्राह्मण-वर्ग, वेद, सब कुछ वही आत्मा है", यह ईश्वरीय नियम है। यदि किसी भौतिक पदार्थ पर आप उसी निमित्त भरोसा या निर्भर करोगे, तो वेद और ईश्वरीय नियम (दैवी विधान) के कथनानुसार आपको परास्त होना पड़ेगा। आपको अपनी इच्छित वस्तुओं से परे होना चाहिये। यही विधान है। जब किसी महान् पुरुष या किसी अति शक्तिशाली शासक के सामने आप पहुँचते हो, और उसके शरीर या उसके व्यक्तित्व पर आप भरोसा करने लगते हो, तब, वेद का कथन है, तुम बहुत ही निर्बल नरकुल का सहारा लेते हो, और आप गिर पड़ोगे। आप पाप करते हो, क्योंकि उसकी सच्ची वास्तविकता या आत्मा की अपेक्षा आप उसके शरीर को अधिक महत्त्व देते हो। सत्य वस्तु के स्थान पर आप झूठे रूप-रंग को बैठाते हो। आप अन्तर्गत परमेश्वर को, भीतर के आत्मतत्त्व को झूठा करते हो। आप प्रतिमा पूजते हो, आप शरीर की आकृति की उपासना करते हो, आपकी पूजा केवल मूर्ति-पूजा है, न कि परमात्म-या ईश्वर-पूजा, और आपको इसके परिणाम-स्वरूप व्यथा और पीड़ा भोगनी पड़ेगी। यही दैवी विधान है। वेद कहते हैं कि व्यावहारिक संसार में विचरते समय अथवा अपने सांसारिक कामों के करते समय भी परमेश्वर या अन्तरात्मा पर दृष्टि रक्खो। लोगों को चाहिये कि सांसारिक कामों को कम महत्त्व का मानें, उन्हें स्वप्न-मात्र समझें, न कि अन्तर्निहित सत्य या आत्मा के समान महत्त्व-पूर्ण समझें। तत्त्व को व्यक्तित्व से अधिक समझो। मित्र का चित्र उसी चित्र की ख़ातिर नहीं, बल्कि मित्र की ख़ातिर प्यारा होता है। मित्र चित्र से अधिक प्यारा है। पदार्थों के सम्बन्ध में स्वयं पदार्थ की

अपेक्षा असली तत्त्व को ही अधिक देखना चाहिये। ऐसा करने से सांसारिक सम्बन्ध और सांसारिक काम बड़ी मधुरता से, सरलता से, अविषमता से चलेंगे। अन्यथा संघर्ष, दिक़्क़त और क्लेश होगा। यही विधान है।

यहाँ पर हम एक कहानी कहेंगेः—

एक छोटे गाँव में एक पगली औरत रहती थी। उसके पास मुर्ग़ा था। गाँव के लोग उसे छेड़ा करते थे, उसके नाम धरा करते थे, और उसे बहुत परेशान करते और क्लेश पहुँचाते थे। अपने निकट रहनेवाले अपने गाँव के लोगों से उसने कहा—"तुम मुझे तंग करते हो, तुम मुझे हैरान और दुःखी करते हो; देखो, अब मैं तुमसे बदला लूँगी, मैं तुम्हारी करतूतों का प्रत्युत्तर दूँगी और तुमसे सख़्त बदला लूँगी।" पहले तो लोगों ने उसके कहने पर कोई ध्यान नहीं दिया। वह चीख़ी, 'गाँववालो, ख़बरदार! सावधान! मैं तुम पर बड़ी सख़्ती करूँगी।" उन्होंने उससे पूछा कि "तू क्या करनेवाली है।" उसने कहा—"मैं इस गाँव में सूर्य न उदय होने दूँगी।" उन्होंने उससे पूछा कि "किस तरह तू ऐसा करेगी।" उसने उत्तर दिया, "जब मेरा मुर्ग़ा बाँग देता है, तब सूर्य उदय होता है। यदि तुम मुझे इसी तरह दिक़्क़ करते रहोगे, तो मैं अपना मुर्ग़ा लेकर दूसरे गाँव को चली जाऊँगी, और तब इस गाँव में सूर्य न उदय होगा।"

यह सही है कि जब मुर्ग़ा बाँग देता था, तब सूर्य उदय होता था, किन्तु मुर्ग़े की बाँग सूर्योदय का कारण न थी। कदापि नहीं। उसे बड़ा कष्ट था, उसने गाँव छोड़ दिया, और दूसरे गाँव को चली गई। जिस गाँव में वह गई, वहाँ मुर्ग़ा बोला और उस गाँव में सूर्योदय हुआ। किन्तु जिस गाँव को वह छोड़ आई थी, उसमें भी सूर्य उदय हुआ। इसी प्रकार मुर्ग़े का बाँग देना आपकी अभिलाषाओं की याचना और चाह भरी प्रकृति

है। आपकी अभिलाषायें मुर्ग़े की बाँग की तरह हैं, और आपकी इच्छित वस्तुओं का आपके सामने आ जाना सूर्योदय के समान है। इच्छित वस्तुओं की चाह या उत्कट अभिलाषा का उत्थान, शासन, नियंत्रण और नियमन एक अनन्त वा शुद्ध आत्मा रूप सूर्य के अधीन होता है। सच्चा स्वरूप वा शासक सूर्य ही है, जो सुबह या शाम, दिन या रात को उत्पन्न किया करता है। इसी शुद्ध आत्मा व अनन्त वस्तु के अधीन सब सांसारिक व्यवहार परिचलित और अनुशासित होते हैं। यह इन्द्रियों में प्रवेश कर जाता है। यह तार खींचनेवाला (सूत्रधारी) उक्त सूर्यों के सूर्य और प्रकाशों के प्रकाश स्वरूप से नियंत्रित होता है। यह याद रक्खो।

साधारणतः लोग ये सब बातें तुच्छ, भिखारी, भुक्खड़ और स्वार्थी जीवात्मा पर आरोपित करते हैं। यह भूल न करो, कृपया इससे बचो। जाँचो तो। जो सूर्य मुर्ग़े की आँख में प्रवेश करता है, और उसका गला खोलकर उससे बाँग दिलवाता है, प्रातःकाल को सुशोभित करनेवाला भी वही सूर्य है। किन्तु मुर्ग़े की बाँग और सवेरे का होना वास्तव में सूर्य की सुख-प्रद गरमी और शक्ति द्वारा शासित या सम्पादित होता है। एक ओर इन जीवित पदार्थों को, और दूसरी ओर अपने विचारों को देखो, ये सब उसी सूर्यों के सूर्य, प्रकाशों के प्रकाश, वास्तविक स्वरूप, आत्मा, असली अपने आपसे शासित, नियंत्रित और वेधित या व्याप्त होते हैं। इस तत्त्व को जानो, और स्वाधीन बनो। मिथ्या आरोपण मत करो। ग़लत अर्थ न निकालो। पदार्थों को ही सच्चा मत समझो। जब हम वस्तुओं को ही पीड़ा और रंज का असली कारण समझते हैं, तब हमारा विश्वास मिथ्या है। ऐसा समझो, ऐसा अनुभव करो, और सब चीजों को एक गहरा मजाक़, महान् नाटकीय अभिनय (खेल) मानो।

कोई क्लियोपैट्रा (Cleopatra) या मैकबैथ (Macbeth) का अभिनय (खेल) भले ही करे, किंतु असलियत में वह आत्मघाती या नरघाती नहीं है ; वह राजा या रानी नहीं है। वह केवल अभिनेता (Actor) है ; और वह अमुक-अमुक भलामानुस है। इसी तरह, आप कोई भी काम करो, पर यह न भूलो कि आपका सच्चा स्वरूप परमेश्वर है। जान लो कि "मैं हूँ" निर्विकार है, वही सम्पूर्ण आनन्द है, समग्र सुख है। इसे न भूलो। इसे समझो और मुक्त वा स्वतंत्र हो जाओ।

स यथा दुन्दुभेर्हन्यमानस्य न बाह्याञ्शब्दाञ्शक्नुयाद् ग्रहणाय,
दुन्दुभेस्तु ग्रहणेन दुन्दुभ्याघातस्य वा शब्दो गृहीतः ॥ ७ ॥
(बृह० उप० अ० २ ब्रा० ४ मं० ७)

"अब जिस तरह ढोल का शब्द, जब वह पीटा जाय, बाहर से नहीं पकड़ा जा सकता, किन्तु शब्द तभी पकड़ा जाता है, जब ढोल या ढोल का पीटनेवाला पकड़ा जाता है।" इसी प्रकार इच्छा के सब भौतिक पदार्थ तभी पकड़े जा सकते हैं, जब कि वह, जो उनकी उत्पत्ति का मूल है, और जिससे वे निकलते हैं, पकड़ा जाता है।

स यथा शंखस्य ध्मायमानस्य न बाह्याञ्शब्दाञ्शक्नुयाद् ग्रहणाय,
शंखस्य तु ग्रहणेन शंखध्मस्य वा शब्दो गृहीतः ॥ ८ ॥

"जिस प्रकार शंख की ध्वनि, बजते समय, बाहर से नहीं पकड़ी जा सकती, किन्तु ध्वनि तभी पकड़ी जा सकती है, जब शंख या शंख का बजानेवाला पकड़ लिया जाता है।"

इसी प्रकार जिसकी ब्रह्म से एकता है, उसकी सब इच्छायें परिपूर्ण हो जाती हैं। उसे कभी कोई धोखा न देगा। उसे कभी कोई पीड़ा या कष्ट प्राप्त न होगा।

स यथा सर्वासामपां समुद्र एकायनमेवं सर्वेषां स्पर्शानां त्वगेकायनम्, एवं सर्वेषां गन्धानां नासिका एकायनम्, एवं सर्वेषां रसानां जिह्वैकायनम्,

एवं सर्वेषां रूपाणां चक्षुरेकायनम्, एवं सर्वेषां शब्दानां श्रोत्रमेकायनम्, एवं सर्वेषां संकल्पानां मन एकायनम्, एवं सर्वासां विद्यानाम् हृदयमेकायनम्, एवं सर्वेषां कर्मणां हस्तावेकायनम्, एवं सर्वेषामानन्दानामुपस्थ एकायनम्, एवं सर्वेषां विसर्गाणां पायुरेकायनम्, एवं सर्वेषामध्वनां पादावेकायनम्, एवं सर्वेषां वेदानां वागेकायनम् ॥ ११ ॥

"जिस तरह जल-मात्र का केन्द्र समुद्र है, इसी प्रकार सब स्पर्शों की त्वचा, सब गन्धों की नाक, सब रसों (स्वादुओं) की जिह्वा, सब रंगों का नेत्र, सब शब्दों का कान, सब संकल्पों का मन, सब विद्या का हृदय, सब कर्मों का हाथ, सब आनन्दों का उपस्थ, सब त्यागों की पायु, सब गतियों का पैर और सब वेदों की वाणी केन्द्र वा गति है।"

उसी तरह सम्पूर्ण संसार और संसार के सब पदार्थ अपना केन्द्र निज स्वरूप, पवित्र आत्मा में रखते हैं। सब रंगों का केन्द्र भी उसी में है। सब शब्दों, रंगों, रसों, इन्द्रियों द्वारा कर्मों का अपना केन्द्र केवल आत्मा या निजस्वरूप में मिलता है। उसी से हरएक वस्तु निकलती है।

स यथा सैन्धवखिल्य उदके प्रास्त उदकमेवानुविलीयते, न हास्योद्ग्रहणायेव स्यात्। यतो यतस्त्वाददीत लवणमेव। एवं वा अर इदं महद्भूतमनन्तमपारं विज्ञानघन एव, एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति, न प्रेत्य संज्ञास्तीत्यरे ब्रवीमि, इति होवाच याज्ञवल्क्यः ॥ १२ ॥

"पानी में डाला जाने पर निमक का ढेला जिस तरह गल जाता है और फिर निकाला नहीं जा सकता, किन्तु सब कहीं (पानी में) हमें निमक का ही स्वाद मिलता है, उसी तरह सचमुच, ऐ मैत्रेयी, यह अनन्त, निःसीम, महद्भूत, जो विज्ञानस्वरूप-मात्र है, इन तत्त्वों से आविर्भूत होता है, और फिर इन्हीं में विलीन हो जाता है। हे मैत्रेयी! मैं कहता हूँ, जब वह चला जाता है, तब कोई संज्ञा नहीं रहती।" यह याज्ञवल्क्य

ने कहा। इन तत्त्वों का अनुभव हो जाने पर मनुष्य की उससे एकता हो जाती है, तब वह नाम और रूप के आश्रित नहीं रहता।

सा होवाच मैत्रेयी, 'अत्रैव मा, भगवान् मूमुहत्, न प्रेत्य संज्ञास्ति', इति।

तब मैत्रेयी ने कहा, यह कहकर आपने मुझे भ्रम में डाल दिया कि "जब वह चला जाता है, तब उस (प्रेत) की संज्ञा नहीं रहती।"

मैत्रेयी के मन में सन्देह हुआ कि यदि यह आप ही सब क्लेशों का लानेवाला है, यदि यही कष्ट और रंज तथा प्रत्येक उत्पत्ति का कारण है, यदि हमारा मन कुछ भी नहीं है, यदि हमारा व्यक्तित्व जब विनष्ट हो जाता है, तब तो अवश्य हमारा पूर्ण लोप है। इसलिये उसने कहा, "मैं विलोप नहीं चाहती। आपका यह अपना आप किस काम का जब कि वह विलोप, मृत्यु, विनाश रूप है ? मैं इसे नहीं चाहती, यदि सर्वस्व खोना पड़ेगा, तो भी मैं इसे नहीं चाहती।"

स होवाच, न वा अरेऽहं मोहं ब्रवीम्यलं वा, अरे इदं विज्ञानाय ॥१३॥

यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं जिघ्रति, तदितर इतरं पश्यति, तदितर इतरं शृणोति, तदितर इतरमभिवदति, तदितर इतरं मनुते, तदितर इतरं विजानाति; यत्र वा अस्य सर्वमात्मैवाभूत्, तत् केन कं जिघ्रेत्, तत् केन कं पश्येत्, तत केन कं शृणुयात्, तत् केन कमभिवदेत्; तत् केन कं मन्वीत, तत केन कं विजानीयात् ? येनेदं सर्वं विजानाति, तं केन विजानीयात् ? विज्ञातारमरे केन विजानीयात् ? ॥ १४ ॥

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया—"ऐ मैत्रेयी, मैंने भ्रम में डालनेवाली कोई बात नहीं कही। प्रिये ! जानने के लिये यह काफ़ी है। क्योंकि जहाँ यह द्वैत-सा होता है, वहीं एक दूसरे को सूँघता है, एक दूसरे को देखता है, एक दूसरे को

सुनता है, एक दूसरे का अभिवादन करता है, एक दूसरे को मनन करता है, एक दूसरे को जानता है। किन्तु जब इसका आत्मा ही यह सब कुछ हो गया, तो कौन किसको सूँघे, कौन किसको देखे, वह किससे किसको सुने, कैसे वह किसी का अभिवादन करे, किससे किसको मन में लावे, किससे किसको जाने ? जिससे इस सबको वह जानता है, उसको वह किससे जाने ? प्रिये ! वह विज्ञाता (अपने) को किससे जाने ?"

न सुनने के दो कारण हो सकते हैं। एक तो यह कि कोई मनुष्य बहरा और गूँगा हो, और दूसरा यह कि आपसे बाहर (परे या पृथक्) कोई शब्द ही न हो। ऐसे ही न देखने के दो हेतु हो सकते हैं। एक तो आपका अन्धापन, और दूसरे आपके सिवाय किसी और वस्तु का न होना, जिसे आप देखें। न सूँघने के भी दो ही कारण हो सकते हैं। एक तो आपमें सूँघने की इन्द्रिय का न होना, दूसरे आपसे बाहर सूँघी जानेवाली किसी वस्तु ही का न होना। इस तरह यहाँ मैत्रेयी ने यह शंका की है कि यदि (अद्वैत अवस्था में) वास्तविक वा शुद्ध आत्मा से ही हमें सुनना, देखना, सूँघना, रसास्वादन करना पड़ता है, तो (ऐसी अवस्था में) वस्तुतः क्या हम बहरे और गूँगे या अंधे तो नहीं हो जाते ? इस शंका का समाधान यह कहकर किया गया है कि अपने भीतर शुद्ध आत्मा में देखने का कारण ऐसा नहीं है, बल्कि इसलिये है कि अनन्त स्वरूप (आत्मा) के सिवाय कोई और वस्तु है ही नहीं, जिसे आप देखें। यह बात नहीं है कि सुनने की शक्ति न रहने के कारण आप कुछ नहीं सुनते, बल्कि कारण यह है कि सुनने को कुछ है ही नहीं। न कोई द्वैत है, न परिच्छिन्नता है। ऐसे ही न कोई पदार्थ हैं

जिनका आप मनन करें। वहाँ आप कुछ नहीं विचारते, इसका कारण यह नहीं है कि आपकी विचार-शक्ति जाती रही, बल्कि इसलिये कि आत्मा के सिवाय कोई अन्य पदार्थ है ही नहीं। फिर, यह दिखलाया गया है कि वहाँ केवल अनन्त आत्मा होने से वही अनन्त आत्मा कानों के सुनने और नाक के सूँघने का कारण है। यह सब कुछ आत्मा की ही शक्ति के कारण से है। नेत्र देखते हैं, तो आत्मा के ही प्रताप और प्रकाश के कारण। एक अनन्त आत्मा ही सकल इन्द्रियों के अस्तित्व का हेतु है।

मन जब उस अनन्त अवस्था में, उस अवर्णनीय लोक में पहुँच जाता है, तब (अपने से भिन्न कुछ और) वह अनुभव नहीं कर सकता ; क्योंकि विचार वहाँ प्रवेश नहीं कर सकता। विचार-शक्ति उसको जो स्वयं उसका शासन करता हो, कैसे वेध सकती है ?

कल्पना करो कि हमारे पास दो फलटोंवाला एक चिमटा है। यह चिमटा आपकी अँगुलियों के अधिकार में होता है। चिमटे के फलटे आपकी अँगुलियों के मज़बूत चुंगल में हैं, और इन फलटों से आप जो चीज़ चाहें पकड़ सकते हैं। किन्तु फलटों में यह ताक़त नहीं है कि पलटकर आपकी उन अँगुलियों को पकड़ लें, जो इन फलटों को पकड़कर चलाती हैं।

इसी तरह आपकी चेतना या बुद्धि, मन या दिमाग़, चिमटे के फलटों की तरह हैं, किन्तु यह चिमटा विलक्षण प्रकार का है। साधारणतः चिमटों में दो फल या फलटे होते हैं, किन्तु इस चिमटे के तीन फलटे वा चुंगल हैं। एक चुंगल तो 'क्यों' का है, दूसरा चुंगल 'कब' का है, और तीसरा फलटा (चुंगल) 'कहाँ' का है; अर्थात् देश, काल और वस्तु का है।

किसी बात या तथ्य को पूरी तरह समझने का क्या अर्थ है ?

पूरी तरह से किसी चीज़ को समझने का अर्थ उसे इन चुंगलों से, इन फलटों से मज़बूती के साथ पकड़ना है। जब किसी चीज़ का 'क्यों', 'कब' और 'कहाँ' आप जान लेते हैं, तब आप उसे समझ जाते हैं, उसका बोध हो जाता है। यों कह सकते हैं कि तब वह आपके, बुद्धि के, अधीन स्थित है। आपकी बुद्धि उसमें और उसके मध्य में होकर स्थित है, और वह बुद्धि के अधीन स्थित है।

बुद्धि, समझ, तीन चुंगलवाले विचित्र चिमटे के समान है। बुद्धि से सब चीज़ें समझी जा सकती हैं, किन्तु इसके साथ ही यह बुद्धि, आपका यह चित्त, खुद चिमटे की तरह शरीर रूपी 'राज्य' के इस विचित्र 'शासक' व विचार-कर्त्ता के शासनाधीन है। समझ इस विचित्र शक्ति (आत्मा) के शासन के अधीन है, इसके प्रभुत्व में है।

क्या आपकी बुद्धि, आपका चित्त, स्वतंत्र है ? यदि है, तो वह सुषुप्ति की दशा में, गाढ़ निद्रा की अवस्था में, क्यों नहीं है ? यदि वह स्वतंत्र होती, तो सब दशाओं में ऐसी ही रहती। वह स्वाधीन नहीं है। बुद्धि, समझ, एक उन्नतर शक्ति के वश में है। बुद्धि में यह बल नहीं है कि वह उलटकर अनन्त वा शुद्ध आत्मा को पकड़ ले, जिसके अधीन कि वह स्वयं है। वह आपसे यह प्रश्न नहीं कर सकती, "क्यों, कब और कहाँ तुम थे ?" बुद्धि 'असली' व शुद्ध 'आत्मा' से प्रश्न करने की शक्ति नहीं रखती। बुद्धि 'आत्मा' को समझ या ग्रहण नहीं कर सकती। 'आत्मा' बुद्धि से ऊपर है, परे है।

बुद्धि यद्यपि आत्मा को ग्रहण नहीं कर सकती, तथापि वह अपने को उसमें वैसे ही निमज्जित कर सकती है, जैसे बुलबुले

समुद्र में। बुलबुले समुद्र से बाहर नहीं निकल सकते, किन्तु वे फूट कर उसमें डूब सकते हैं। इसी प्रकार बुद्धि आत्मा को ग्रहण नहीं कर सकती, किन्तु वह अपने को आत्मा में लीन कर सकती है। और वस्तुतः माया का यही सारांश और तात्पर्य है। बुद्धि आत्मा या परमेश्वर से यह नहीं पूछ सकती कि "क्यों, कब और कहाँ तुमने दुनिया की सृष्टि की ?" साहस-पूर्वक वह प्रश्न नहीं कर सकती।

यह आत्मा, सत्ता का सच्चा समुद्र, यह शासक और परिचालक स्वरूप, यह अनुभव करने योग्य, निदिध्यासन करने योग्य, देखने योग्य और जानने योग्य है, जिससे अनन्त के साथ एक हो जाय। यह सच्चा स्वरूप या आत्मा 'मैं हूँ' कहलाता है। यह सच्चा स्वरूप वा पूर्ण 'अहं' देशकाल-वस्तु से परे है। इस पूर्ण, सच्चे स्वरूप का निरूपण ॐ से किया जाता है। ॐ का अर्थ है 'मैं हूँ', और ॐ को उच्चारण करते समय आपको किसी दूसरे के प्रति सम्बोधन नहीं करना पड़ता। ॐ को उच्चारण करते समय यह न समझो कि आप अपने से बाहरवाले किसी दूसरे को पुकार रहे हैं। ॐ को उच्चारण करते वक़्त आप अपने को इस सच्चे 'मैं हूँ' से एक समझो। ऐसी दृढ़ भावना से चित्त तत्त्व में निमग्न हो जाता है। इस पक्के विश्वास से, चित्त के इस सजीव ज्ञान से, चित्त मानो एक जल-बुद्बुद सा हो जाता है, जो तत्त्व के अगाध 'समुद्र' में फूट जाता है। आत्मानुभव का यही मार्ग है। मन के इस सजीव ज्ञान का तुम्हें पकड़ लेना, तुम्हारे मिथ्या अहंकार का हर ले जाना ही तुम्हें स्वाधीन कर देने वा तत्त्व की प्राप्ति का मार्ग है।

सच्चा 'मैं हूँ' इस शरीर में और उस शरीर में (अर्थात् प्रत्येक देह में) दिखाई देता है। सत्य स्वरूप 'मैं हूँ', शासक,

परिचालक, नियामक, अनन्त आत्मा इस नन्हें अणु में भी वैसा ही है जैसा विराट्, शक्तिशाली समुद्र में। सब देश-काल-वस्तु में एकसाँ है। ठीक ऐसा समझो, अनुभव करो कि आप वह सत्य स्वरूप 'मैं हूँ' हो, अनुभव करो कि आप अनन्त, अविनाशी आत्मा हो, और फिर देखो कि कैसा रूपान्तर होता है, आपकी स्थिति में कैसा महान् परिवर्तन हो जाता है। यही विचार करो कि आप सकल दिशा में व्याप्त हैं, कि आप सब काल में हैं, कि आप वह आत्मा हैं जो समग्र दिशा का आश्रयदाता है, कि अनन्त देश आप पर निर्भर है, आप उसे उठाये हुए हैं। अनन्त देश, अनन्त काल, अनन्त वस्तु, अनन्त शक्ति, अनन्त तेज, बल, यह मैं हूँ। यह तथ्य अज्ञान का नहीं है। अपने को जो कुछ भी मैं समझता हूँ, उसका वास्तव में कारण यह है, और यही कारण सदा आपका भी है। ऐसा विचार करते ही आप ऊपर उठ जाते (उन्नत हो जाते) हो, आप सकल स्वार्थमय उद्देश्यों से मुक्त हो जाते हो। इस पर निश्चय करो, और यह (निश्चय) सब चिन्ताओं और रंजों को छिन्न-भिन्न कर देता है; सब द्वेषों, क्षोभों, दिक़्क़तों और उत्पातों से आप छूट जाते हो। अनुभव करो कि आप वह 'मैं हूँ' हो। वही आप हो।

आपकी बुद्धि को अपने कारणस्वरूप से पूछने का कोई अधिकार नहीं है, कारण से अपने को तद्रूप करने का कोई अधिकार नहीं है।

यह दुपट्टा या उपरना लो। अगर यह किसी चीज़ से तद्रूप होता है, तो उसे अवश्य उस रेशम से ही तद्रूप होना चाहिये कि जिसका यह बना है, अथवा जिसमें इसका प्रादुर्भाव हुआ है। अपनी लम्बाई, चौड़ाई या मोटाई के साथ इसे अपने को तद्रूप करने का कोई अधिकार नहीं है।

इसी तरह, यदि बुद्धि को अपने को किसी से तद्रूप करना है, तो अपने ही तत्व से, अपनी ही सत्य प्रकृति से (जिसकी कि वह बनी हुई है) उसे तद्रूप होना चाहिये। उसे बुद्बुदा हो जाना चाहिये, और फूटकर महान् समुद्र, आत्मा 'मैं हूँ' से एक हो जाना चाहिये। देह से उसकी एकता नहीं की जा सकती। देह तो केवल एक कार्य वा परिणाम है। और, इसीलिये देह से अपने को एक करने का बुद्धि को कोई अधिकार नहीं है।

अरे! सत्य ईश्वर को, आत्मा को, इस श्रेष्ठ शक्ति को सांसारिक सम्बन्धों, दुनयवी मामलों से एक नहीं किया जा सकता। तुम वही श्रेष्ठ परमात्मा हो। सत्य तत्त्व हो। यह जानो, यह विचारो, यह अनुभव करो, और (इस तरह) सकल क्लेशों तथा शोकों से परे हो जाओ वा छूट जाओ।

घर आनन्दमय कैसे बना सकते हैं

२० दिसम्बर १९२२ को एकेडेमी आफ़ साइंसेज़ में दिया हुआ व्याख्यान।

महिलाओं तथा भद्र पुरुषों के रूप में मेरे ही आत्मन्!

आज हमारे पास लोगों के बहुत से प्रश्न-पत्र हैं। जब एक वकील किसी अदालत को आता है, तब शायद वह इतने ही काग़ज़ात अपने साथ लाता है, किन्तु वे सब नहीं सुने जाते। इन प्रश्नों की विपुल संख्या ही इन सबको न सुनाये जाने और इनका उत्तर न देने का अवसर देती है। एक दूसरा कारण भी है, जिससे हम इनमें से बहुत से प्रश्न-पत्रों को हाथ में न लेवेंगे। इनमें से अधिकांश का सम्बन्ध प्रेत-लोक या परलोक से है। अभी आप इस लोक में हो, और जिस विषय से वर्तमान में आपका कोई सरोकार नहीं है, उस पर कुछ कहने की अपेक्षा से यह बेहतर होगा कि आपके हृदय और व्यवसाय से अधिक सम्पर्क रखनेवाले विषय की कुछ चर्चा की जाय।

पिछली बार जो विषय उठाया गया था, उसी को हम जारी रक्खेंगे। वह विषय बड़ा महत्त्व-पूर्ण है। "आत्मानुभव प्राप्त करने की आकांक्षा करना क्या किसी विवाहित मनुष्य के लिये युक्ति-सङ्गत होगा?" यह विषय है। यह विषय लम्बा है, और आज की वक्तृता में ही इसकी पूरी व्याख्या नहीं की जा सकती। फिर भी, आओ, देखें कि आज इसके बारे में हम क्या-क्या जान सकते हैं।

भारत में एक बड़ा ही निर्दयी और हास-जनक (रँगीला) मालिक था। वह अपने नौकरों को बड़े ही मजेदार ढंग से घोर पीड़ा दिया करता था। एक बार नौकर ने एक अत्यन्त स्वादिष्ट व्यंजन (खाने की चीज) मालिक के लिये तैयार किया। मालिक चाहता था कि नौकर उसे न खाय। वह चीज रात को पकाई गई थी। मालिक ने कहा, "हम इसे अभी न खायँगे, सवेरे खा लेंगे। इस समय लेटो जाकर, सवेरे हम लोग इसे चक्खेंगे।" मालिक का असल इरादा इसे सवेरे खाने का इसलिये था कि उस समय तक उसे खूब भूख लग जावेगी। रात को कुछ भी न खाने के कारण वह सवेरे चाट पोंछकर खा जायगा, और नौकर के लिये कुछ भी न बचेगा। यह मालिक की असली नीयत थी। वह चाहता था कि नौकर छिलके और टुकड़े खाय, परन्तु इस अभिप्राय को नौकर से साफ़ नहीं कह सकता था। उसने नौकर से कहा, "जाओ, आराम करो, और सवेरे हममें से वह मनुष्य इसे खायगा, जो बड़े ही सुन्दर और सुखकर स्वप्न देखेगा। यदि सवेरे तक अत्युत्तम स्वप्न तू देख लेगा, तो सारा हिस्सा तेरा होगा, अन्यथा सब मैं ले लूँगा और खा जाऊँगा, और तुम्हें अपने को छिलकों और टुकड़ों से संतुष्ट करना पड़ेगा।" सवेरा हुआ और मालिक तथा नौकर एक दूसरे के सामने बैठे। मालिक ने नौकर से कहा कि अपने स्वप्न को बयान करो। नौकर ने कहा, "जनाब, आप मालिक हैं, आगे आपको चलना चाहिये। आप अपने स्वप्नों को पहले बतावें, बाद को मैं अपने बयान करूँगा।" मालिक ने अपने मन में सोचा कि यह ग़रीब नौकर, यह जाहिल, अपढ़ मनुष्य अति मनोहर स्वप्न नहीं गढ़ सकता। वह कहने लगा, "मैं अपने स्वप्न में हिन्दुस्तान का महाराजा

हुआ। मैंने अपने स्वप्न में देखा कि यूरोप और अमेरिका की सब शक्तियाँ भारत के राजा के अधीन आ गईं, और भारत के सम्राट् की हैसियत से मैं सारे संसार पर हुकूमत करने लगा।" आप जानते हैं कि यह स्वप्न क्रूर वा निर्दयी मालिक का था। सच्चे भारत-निवासी मांस के उन लोथड़ों को, जो बादशाह कहलाते हैं, अपने सामने रखकर उनकी उपासना करने की बच्चेपन की रीति को जारी रखना नहीं चाहते। अच्छा, यह उस मनुष्य का स्वप्न था। मानो उसने अपने को भारत के सिंहासन पर बैठाकर सारे संसार पर हुकूमत करता हुआ समझा, और वहाँ उसे सारे संसार के सब सम्राट् अपने सामने खड़े और वंदना करते मिले। इसके सिवाय, उसने देखा कि सब देवता और साधु-महात्मा उसके दरबार में लाये गये, और उसके दायें या बायें (राम भूल गया कि दायें या बायें) बिठलाये गये। अपना स्वप्न सुना चुकने के बाद उसने नौकर से अपनी कहानी, अपना स्वप्न, सुनाने को कहा।

बेचारा नौकर, सिर से पाँव तक काँपता हुआ बोला, "हुजूर, हुजूर, मैंने इस तरह का कोई स्वप्न नहीं देखा।" मालिक फूल उठा और बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने समझा कि सब स्वादिष्ट भोजन अब मेरे ही पल्ले पड़ेगा। नौकर कहने लगा कि "स्वप्न में मुझे एक विराट् दानव दिखाई पड़ा, बड़ा विकराल, महा भयङ्कर दैत्य मुझे अपनी ओर आता दिखाई पड़ा। उसके हाथ में एक लपलपाती तलवार थी।" मालिक पूछने लगा, "फिर क्या हुआ, फिर क्या हुआ?" तब उसने कहा, "सरकार! वह मेरे पीछे दौड़ा, वह मुझे मार डालने ही को था।" मालिक मुसकराया कि यह तो अच्छा लक्षण है। "वह मुझे मारने लगा, वह मेरा वध करने की चेष्टा कर

रहा था।" मालिक ने पूछा "और तुमने क्या किया ? तुम्हें क़त्ल करने में उसका क्या अभिप्राय था ?" नौकर ने कहा, "उसने मुझसे वह स्वादिष्ट भोजन खा जाने को या मर जाने को कहा।" मालिक ने पूछा "और तब तुमने क्या किया ?" नौकर ने कहा, "मैं चुपके से रसोई घर में चला गया और हरएक पदार्थ खा गया।" मालिक ने कहा, "तुमने मुझे क्यों नहीं जगाया ?" नौकर ने जवाब दिया, "जनाब, आप तो सारी दुनिया के बादशाह थे। आपके दरबार में बड़े लोगों का बहुत ही शानदार जमाव था, और लोग तलवारें निकाले तथा तोपें-बन्दूकें लिये हुए थे। यदि मैं आप महाराजाधिराज के पास पहुँचने का यत्न करता, तो वे मुझे मार डालते। मैं आपके पास पहुँचकर न बता सका कि मैं किस संकट में था। इसलिये वह स्वादिष्ट भोजन खा जाने को मैं लाचार हुआ, मुझे अकेले ही उसे चखना पड़ा।"

राम कहता है कि आप वचन-दत्त स्वर्ग (pormised paradise), वचन-दत्त वैकुण्ठ व प्रतिज्ञाबद्ध परलोकों का स्वप्न देख रहे हैं। आप इन्हीं चीज़ों का स्वप्न देख रहे हैं, और ये रोचक स्वप्न हैं, ये मधुर स्वप्न हैं, और इन स्वप्नों में आप आकाश में महल बना रहे हैं, शायद बालू पर ही बना रहे हैं। आप आकाश में महल बना रहे हैं, और सोच रहे हैं कि "हमें यह करना चाहिए और वह करना चाहिए। हमें शैतान से डरना चाहिए और हमें ईश्वर से डरना चाहिए। हमें इस तरह बर्ताव करना चाहिए, अथवा अमुक-अमुक देवदूत हमें नरक से स्वर्ग न जाने देगा।" आप इन चीज़ों का स्वप्न देख रहे हैं, किन्तु राम कहता है कि वह नौकर होना बेहतर है, जिसने दैत्य के डर से उपस्थित स्वादिष्ट भोजन खा लिया था। वैसा करना अच्छा है। वह एक ऐसी बात थी, जिसका

सम्बन्ध वर्तमान से था। वह एक ऐसी बात थी, जो उस समय सत्य थी। जो मामले आपके हृदय के निकट हैं, जिनका सम्पर्क आपके व्यापार और चित्त से है, पहले उन पर ध्यान देना अधिक वाञ्छनीय है, और परलोक अर्थात् स्वप्नों का वह लोक, अपनी फ़िक्र आप कर लेगा। उदारता का आरम्भ घर से होता है। पहले घर से आरम्भ करो।

राम अब उस प्रश्न पर आता है, जिसका वास्ता आप सबसे है। वह प्रश्न यह है, "विवाहित जोड़ा किस तरह रहे कि उनके विवाह का परिणाम संकट, चिन्ता, पीड़ा और रंज न हो?" लोग कहते हैं, "ऐ ईश्वर! तू हमारी तकलीफ़ों को दूर कर दे। हे ईसा! तू मेरे क्लेशों को हटा दे। हे कृष्ण और बुद्ध! मेरे दुःखों को हर ले।" किन्तु राम कहता है कि मृत्यु के बाद वे आपकी तकलीफ़ों को दूर करें या न करें, पर इस जीवन में आपके कष्टों को कौन हरेगा? इस जीवन में पति को स्त्री का ईसा मसीह होना चाहिए, और स्त्री को अपने पति का ईसा मसीह। पर हालत यह है कि हरएक स्त्री अपने पति के लिए और हरएक पति अपनी स्त्री के लिये जुडास इसकैरियट* (Judas Iscariot) हो रहा है। मामला कैसे सुधरे, बात ठीक हालत में क्योंकर आवे? प्रत्येक पति और प्रत्येक स्त्री को संन्यास का आलिङ्गन करना होगा। आप जानते हैं कि हज़रत ईसा, ईसाई संसार के अनुसार, त्याग या संन्यास की मूर्ति थे। इसी तरह हरएक स्त्री यदि त्याग की मूर्ति हो जाय, तो वह अपने पति की त्राता हो सकती है। संन्यास एक ऐसा शब्द है, जिससे हरएक काँपता

* हज़रत ईसा के उस शिष्य का नाम है, जिसने ईसा को समय पर धोखा दिया था। इसलिये धोकेबाज़ वा दग़ाबाज़ से अभिप्राय है।

और थर्राता है। हरएक इस शब्द से थर्राता है, किन्तु बिना त्याग के आपके परिवार में कोई स्वर्ग लाने की ज़रा सी भी सम्भावना नहीं है। त्याग शब्द के सम्बन्ध में बड़ी भ्रान्ति है। पिछले व्याख्यानों में यह शब्द इतनी बार बर्ता गया है कि इसके असली अर्थ समझा देना अब बहुत ज़रूरी है। त्याग यह नहीं चाहता कि आप हिमालय के घने जंगलों में चले जायें; संन्यास यह नहीं चाहता कि आप सब कपड़े खोलकर नंगे हो जायें; संन्यास आपसे नंगे सिर और नंगे पैर चलने को नहीं कहता। यह त्याग नहीं है। यदि त्याग का यही अर्थ होता, तो विवाहित जोड़े के लिये त्याग का अभ्यास कैसे संभव हो सकता था? वे दोनों स्त्री और पति की तरह रहते हैं, उनके परिवार है, उनके सम्पत्ति है। वे लोग त्यागी कैसे हो सकते हैं? हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों में त्याग का जो चित्र खींचा गया है, वह है एक साथ बैठे हुए भगवान् शिव और भगवती पार्वती का, और उनका परिवार उनके आस-पास है। भगवान् शिव और उनकी स्त्री पार्वती, एक साथ स्त्री-पुरुष की तरह रहते हैं, अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हैं। हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों में वे त्याग की मूर्ति कहे गये हैं। लोग समझते हैं कि त्याग शब्द से हिन्दुओं का अभिप्राय है वन को चले जाना, समाज से अलग रहना, हरएक वस्तु से दूर भागना, हरएक चीज़ से नफ़रत करना। पर हिन्दुओं के अनुसार त्याग शब्द के ये अर्थ नहीं हैं। अपने गार्हस्थ्य जीवन में भी हिन्दुओं को 'संन्यास' का चित्र खींचना पड़ता है। यदि यह वेदान्त, यदि यह तत्त्वज्ञान या सत्य केवल वन को चले जानेवाले थोड़े से लोगों के लिये होता, तो यह किस काम का है? हमें इसकी ज़रूरत नहीं। इसे गंगा नदी में फेंक दो, हमें यह न चाहिए। यह त्याग,

जिसका हिन्दू प्रचार करते हैं, सबके काम का है। जिस तरह के त्याग की हिन्दू शिक्षा देते हैं, वह सफलता की एक-मात्र कुंजी है। कोई वीर अपने को विख्यात नहीं कर सकता, यदि वह त्यागी पुरुष नहीं है। कोई भी कवि आपको कोई कविता नहीं दे सकता, यदि वह त्यागी पुरुष नहीं है। आप बाइरन (Byron) का नाम लेंगे, जो इंग्लैंड से निकाल बाहर किया गया था, क्योंकि वह बड़ा ही दुराचारी समझा जाता था। वेदान्त कहता है कि बाइरन की भी मेधा-शक्ति (genius) का कारण संन्यास ही था। संन्यास की जो कल्पना राम आपके सामने रक्खेगा, वह अति विलक्षण है। वाशिंगटन त्यागी पुरुष है। यदि उसमें त्याग न होता, तो सभा में वह विजयी न होता। यह बड़ी ही अद्भुत बात है। क्या आप यह नहीं समझते कि हरएक नायक को, चाहे वह नेपोलियन बोनापार्ट हो चाहे वाशिंटन वा विलिंगटन हो, चाहे एलिकज़ैंडर वा सीज़र हो, चाहे कोई भी हो, विजयी होने के लिए, राष्ट्रों का स्वामी बनने के लिए, सेनाओं का सञ्चालन करने की शक्ति पाने के लिए, अपने को व्यवहारतः सब संसार से सब सम्बन्धों से परे रखना पड़ता है। उसका चित्त संक्षोभ-रहित, शांत, सौम्य, उद्वेग-रहित और अचंचल अवश्य होना चाहिए, और एक ही बिन्दु पर उसे अपनी सब शक्तियाँ लगा देनी चाहिये। दूसरी हालतों से उसे क्षुब्ध न होना चाहिए। और इसका क्या मतलब है? इसका अर्थ मानो सब पदार्थों का त्याग कहा जा सकता है। इस त्याग की मात्रा जितनी ही अधिक किसी मनुष्य में होती है, उतना ही वह श्रेष्ठ है। नेपोलियन समर-भूमि में आता है, और केवल एक शब्द 'ठहरो' से उन हज़ारों आदमियों को रोक लेता है, जो उसे परास्त करने आये थे। यह कैसे? यह शक्ति कहाँ से आई? सच्चे, असली

तत्त्व में, भीतर के परमात्मदेव में, अन्तरात्मा में नेपोलियन के लीन हो जाने से यह शक्ति मिली। यह शक्ति वहाँ से आती है। उसे चाहे इसकी खबर हो या न हो। वह शरीर से, चित्त से, हरएक वस्तु से परे खड़ा हुआ है; संसार उसके लिए संसार ही नहीं है। इसी प्रकार, सर आइज़क निउटन जैसे श्रेष्ठतम मेधावी (genius) को भी, अपने तत्त्वज्ञान और विज्ञान से दुनिया का वैभव बढ़ाने के लिए, प्रत्यक्ष इस त्याग का अनुभव करना पड़ा है। वह देह, चित्त और हरएक चीज़ से ऊपर उठ जाता है। वह घर में बैठा हुआ है, किन्तु घर उसके लिए घर नहीं है, मित्र उसके लिए मित्र नहीं हैं। कैसी समाधि की अवस्था है! लोग कहते हैं कि वह कुछ नहीं कर रहा है। लेकिन जब आप कहते हो कि वह कुछ नहीं कर रहा है, तभी वह अपनी सर्वोत्तम अवस्था में है। ज़ाहिरा वह निस्तब्ध है, उसने हरएक वस्तु त्याग दी है, किन्तु वह अपनी परमोच्च दशा में है। ये लोग, ये वीर, ये नायक, ये अलौकिक-बुद्धि महापुरुष अज्ञाततः त्याग पर पहुँच जाते हैं। जिस सत्य को वे अनजाने अमल में लाते हैं, और जिसके द्वारा वे उन्नत होते और अपने को विख्यात करते हैं, उसी को आपके सामने विधिवत् रखना हिन्दू-तत्त्वज्ञान का उद्देश्य है। उस (सत्य) तक ठीक रास्ते से आपको पहुँचाना, उसे एक विज्ञान का रूप देना और उन क़ानूनों, नियमों तथा तरीक़ों को, जो उस तक आपको ले जाते हैं, आपको समझाना इस हिन्दू-शास्त्र का उद्देश्य है।

यह त्याग हिन्दुओं में ज्ञान-तुल्य कहा गया है, जिसका अर्थ विद्या है, अर्थात् त्याग और ज्ञान एक ही और अभिन्न वस्तु हैं। त्याग शब्द ज्ञान का पर्यायवाची है, किन्तु यह प्रचलित ज्ञान नहीं, भौतिक पदार्थों का ज्ञान नहीं; हाँ,

ठीक, इस (भौतिक ज्ञान) से भी आपको बड़ी सहायता मिलती है, किन्तु यह असली ज्ञान नहीं है, यह अकेला आपको कदापि कोई शान्ति नहीं दे सकता। जो ज्ञान त्याग का पर्यायवाची है, वह सत्य का ज्ञान है, असली आत्मा का ज्ञान है; आप जो वास्तव में हैं, उसका ज्ञान है। अच्छा, आप जो कुछ हैं, उसका ज्ञान आपको बुद्धि द्वारा मिल सकता है। क्या वह यथेष्ट होगा? किसी हद तक, किन्तु पूरी तरह नहीं। इसलिये कि आप ज्ञानी हो सकें, आप जीवन्मुक्त हो सकें, यह विशाल संसार आपके लिये स्वर्ग हो जाय, आपको इस दिव्य ज्ञान का अनुभव करना होगा—इस ज्ञान का कि "आप परमात्मा हैं, आप दैवी विधान हैं, आप विदेह, परम शक्ति या तेज हैं, अथवा जो कोई भी नाम देना पसन्द करें, वह वस्तु आप हैं, या यह ज्ञान कि आप परमेश्वर हैं।" यह ज्ञान केवल बुद्धि द्वारा प्राप्त हुआ ही नहीं, बल्कि भाव की भाषा में भावित, आपके आचरण में आचरित, आपके रक्त में रंजित, आपकी नसों में दौड़ता हुआ, आपकी नाड़ी के साथ फड़कता हुआ, आपमें भिद कर और व्याप्त होकर आपको जीवन्मुक्त बना सकता है। यह ज्ञान त्याग है। यह ज्ञान प्राप्त करो, और आप त्यागी पुरुष हैं।

वन को चला जाना तो उद्देश्य-प्राप्ति का एक साधन मात्र है, विश्वविद्यालय को जाने के समान है। महाविद्यालय में हम विद्योपार्जन करते हैं, परन्तु यह कभी नहीं समझा जाता कि हमें वहाँ सदैव रहना है। इसी तरह इस ज्ञान के पाने के लिए आप कुछ काल के लिए भले ही जंगल को चले जायँ, किन्तु वेदान्त-दर्शन यह कभी नहीं सिखाता कि वनवास का नाम त्याग है। त्याग का आपके स्थान, स्थिति या शारीरिक कार्य से कुछ भी प्रयोजन नहीं है। उसे इन

बातों से कोई मतलब नहीं । त्याग तो आपको केवल आपकी परमोच्च दशा प्राप्त कराता है, आपको आपके श्रेष्ठ पद पर ला बिठाता है। त्याग केवल आपकी शक्तियाँ बढ़ाता है, आपके तेज की वृद्धि कराता है, आपका बल पुष्टतर करता है, और आपको ईश्वर बना देता है । वह आपका सब रंज हर लेता है, वह आपकी सम्पूर्ण चिन्ता और भय भगा देता है। आप निर्भय और सुखी हो जाते हैं।

एक विवाहित पुरुष इस त्याग को कैसे पा सकता है ? यदि स्त्री और पुरुष एक दूसरे को सुखी करने की ठान लें, तो आज ही मामला निपट सकता है । सब इंजीलें तब तक कुछ भी भला नहीं कर सकतीं जब तक कि स्त्रियाँ और पति लोग एक दूसरे के रक्षक और ईसा मसीह होना न ठान लें। देखिये, जब लोग धार्मिक व्याख्यानों में आते हैं, तब उनसे हरएक चीज़ त्यागने को कहा जाता है, अपने शरीर और सम्पत्ति को ईश्वर का समझने के लिये कहा जाता है, और अपने को यह देह न मानकर ईश्वर मानने को कहा जाता है। उन्हें ऐसा उपदेश किया जाता है। उन्हें कुछ ज्ञान मिलता है। किन्तु जब वे घर लौटते हैं, तब क्या होता है ? स्त्री आकर कहती है "हे भगवन् ! मुझे एक बड़ा गौन (gown, लहँगा) चाहिए", और वह कहता है कि मेरे पास पैसा नहीं है । इसका क्या अर्थ है ? बच्चा आता है, और कहता है, "दादा ! प्यारे दादा !! भीतर आओ ।" ओ मेरा पुत्र ! मेरी स्त्री !! मेरी लड़की ! मेरी बहन !! ऐसा सब कहने लगते हैं ।

वही लड़की, बहन, सम्पत्ति, घर और परिवार, यह सब गिरजा-घर में ईश्वर को दे दिया गया था । घर पहुँचते ही ईश्वर से सब लौटा लिया गया। वह 'मेरा', 'मेरा' हो गया। अब वह ईश्वर का नहीं रहा । वह क्षणिक और चंचल भाव

जिसने चित्त पर क़ब्ज़ा कर लिया था, "ऐ ईश्वर ! मैं तेरा हूँ, मैं तेरा हूँ, सब कुछ तेरा है, मैं सर्वस्व तेरे अर्पण करता हूँ", स्त्री और बच्चों का मुख दिखाई पड़ते ही एक पल में वह भाव ग़ायब हो गया।

आप देखते हैं कि आध्यात्मिक उन्नति और अपनी वर्तमान स्थिति में पारिवारिक जीवन एक दूसरे के विपरीत है, परस्पर-विरोधी है। गिरजाघर में जो कुछ किया गया था, वह घर में उलट दिया गया, बल्कि शायद उससे भी कुछ अधिक किया गया। यह तो पिनैलोपीज़ (Penelopese)* की सी बात हुई। वह दिन भर सूत लपेटा या बटा करती थी और रात आते ही लपेटे या बटे हुए सूत को फिर उधेड़ देती थी, अर्थात् जैसा का तैसा कर डालती थी। इसी तरह आप सबके सब गिरजाघरों में, अपनी-अपनी प्रार्थनाओं और उपदेशों में आध्यात्मिक उन्नति रूपी सूत बटते हो और घर में आकर सब बटा हुआ उधेड़ देते अर्थात् खोल देते हो, किया-धरा मिटा देते हो। यदि यही हालत बनी रही, तो कोई आशा नहीं है। यदि आप ईश्वर से मज़ाक़ नहीं कर रहे हो, यदि अपनी प्रार्थनाओं को आप पाखंड नहीं बनाना चाहते हो, तो ठीक ढंग से आपको मामले पर ध्यान देना होगा। आपको वह कारण हटाना होगा, जो आपकी आध्यात्मिक उन्नति को रोकता है। आपको घर की हालत सुधारना पड़ेगी। प्रत्येक स्त्री को अपने पति का ईसा मसीह बनना होगा, और प्रत्येक पति को अपनी स्त्री का त्राता। लोग कहते हैं, "अहा ! मैं तुम्हें चाहता हूँ, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।" कैसा गपोड़ा है ! यदि वस्तुतः आप अपनी स्त्री या पति को प्यार करते होते, तो उसके लिए कुछ स्वार्थ-त्याग करने की भी सामर्थ्य आपमें

* ओडसीयस (Odysseus) की पत्नी का नाम है।

होती। यदि आप सचमुच उसे प्यार करती या करते हो, तो उस पर कुछ निछावर भी आप को करना चाहिए। पर क्या आप कुछ स्वार्थ-त्याग करते हो ? नहीं करते, नहीं करते। स्त्री पति को अधिकार में रखना चाहती है, और पति स्त्री का अधिकारी बनना चाहता है, मानो वह कोई जड़ पदार्थ है, जिसका वह अधिकारी हो सकता है, जो उसकी सम्पत्ति हो सकती है। एक दूसरे को अपने अधीन करना चाहता है। यदि सचमुच आप एक दूसरे से प्रेम करते हो, तो आपको एक दूसरे के हित की वृद्धि करने की चेष्टा करनी चाहिए। क्या सचमुच आप ऐसा करते हो ? आप समझते हो कि मैं ऐसा करता हूँ, पर आपकी समझ में भूल है। भाई ! स्त्री या पति की इन्द्रिय-वासनाओं की तृप्ति करना उसे सुख पहुँचाना नहीं है, उसे सच्चा सुख देना नहीं है, कदापि नहीं। यदि सुख पैदा करने का यही एक उपाय होता, तो सभी परिवार सुखी होते। क्या ऐसा है ? क्या ये परिवार सुखी हैं ? हज़ारों में एक भी नहीं। वे सुखी क्यों नहीं हैं ? क्योंकि वे यह नहीं जानते कि एक दूसरे का सुख क्योंकर बढ़ावें, और एक दूसरे के हित की वृद्धि कैसे करें ? वे यह नहीं जानते। वे समझते हैं कि केवल पाशविक वासनाओं की तृप्ति करना ही सुख बढ़ाना है। एक दूसरे का मिथ्याभिमान पोषण करना, यह वास्तविक हित करना नहीं। किसी ने कहा है कि "प्रेम करना तो रंज से संधि करना है" (To love is to make a compact with sorrow)। और अधिकांश उपन्यासकारों, ऐतिहासिकों और इस संसार के लोगों का यही अनुभव है—"प्रेम करना शोक से नाता जोड़ना है।" किन्तु क्या इसमें प्रेम का कोई दोष है, जो वह रंज पैदा करता है ? नहीं। प्रेम का आप

जो उपयोग करते हो, वह दूषित है, और वही अपने साथ रंज लाता है।

हिन्दू-धर्मग्रन्थ में एक कथा है कि भारत के प्रसिद्ध देवता, भारत के प्रभु ईसामसीह, भगवान् कृष्ण को एक बड़ा दैत्य खाये जाता था। उन्होंने अपने हाथ में एक खंजर ले लिया। वे खा लिये और निगल लिये गये। अपने को अजगर के पेट में देखकर उन्होंने अजगर का हृदय बेध दिया। हृदय फट गया, अजगर घाव से मर गया, और भगवान कृष्णचन्द्र बाहर निकल आये। ठीक यही मामला है। प्रेम क्या है? प्रेम कृष्ण है, अर्थात् प्रेम परमेश्वर है, प्रेम ईश्वर है, और वह हृदय में प्रवेश करता है, विषय-लोलुप मनुष्य के चित्त के भीतर वह पैठ जाता है, वह हृदय में घुस जाता है, और जब आसन जमा लेता है, जब हृदय के भीतर में उसे स्थान मिल जाता है, तब वह वार करता है। और, परिणाम क्या होता है? हृदय टूट जाता है, हृदय घायल हो जाते हैं। फल-स्वरूप व्यथा और शोक हाथ लगते हैं। सांसारिक प्रेमके हरएक मामले में रोना और दाँतों का पीसना ही होता है। यही रीति है। यही दैवी विधान है। यही घटना है। किसी भी सांसारिक पदार्थ से ज्यों ही आपने दिल लगाया, किसी भी लौकिक वस्तु को ज्यों ही आप उसके लिए प्यार करने लगे, त्यों ही कृष्ण भगवान् आपमें प्रवेश कर जाते हैं और आपको घायल कर देते हैं, हृदय फट जाता है, आप शोक-पीड़ित हो जाते हो, आप विलाप और रोदन करने लगते हो; "अरे, यह प्रेम बड़ा निष्ठुर है, इसने मुझे तबाह कर दिया।"

यह एक दैवी विधान है कि "इस दुनिया में जो कोई आदमी किसी व्यक्ति या दुनयवी चीज़ से अपना दिल

लगावेगा, उसे तकलीफ़ उठानी पड़ेगी। या तो वह प्रियजन अथवा पदार्थ उससे ले लिया जायगा, या उनमें से एक मर जायगा, या उनमें कलह हो जायगी।" यह अनिवार्य नियम है। इसे बेपरवाही से न सुनो, अपने हृदयों में इसे (इस सत्य को) गहरा उतर जाने दो, अपने-अपने चित्तों में इसे प्रवेश करने दो। जब कभी कोई मनुष्य किसी सांसारिक पदार्थ से अनुराग करता है, जब कभी कोई मनुष्य किसी वस्तु में सुखान्वेषण की चेष्टा करता है, तब उसे धोखा होता है, वह केवल इन्द्रियों द्वारा ठगा जाता है। लौकिक पदार्थों से अपना दिल लगाकर आप सुख और आनन्द नहीं पा सकते। यह क़ानून है। आपके सब सांसारिक प्रेमों की परिसमाप्ति हृदयों के टूटने में होगी, अन्यथा कुछ न होगा। शक्तिशाली मुद्रा (रुपया) पर भरोसा न करो, ईश्वर पर भरोसा करो। इस चीज़ या उस चीज़ पर भरोसा न करो, ईश्वर पर भरोसा रक्खो, अपने आत्मा या अपने आप पर भरोसा करो। सब सांसारिक स्नेह अपने साथ में दुःख लाते हैं, क्योंकि सांसारिक अनुराग-मात्र बुतपरस्ती (प्रतिमा-पूजा) है। सुन्दर प्रतिमायें, सुन्दर मूर्तियाँ इत्यादि बना दी जाती हैं, ये सब शरीर भी मूर्ति, प्रतिमा हैं; ये सब पुतले, चित्र, प्रतिमूर्ति हैं। आप एक चित्र को चित्र के लिए ही प्यार करने लगते हैं, और जिस व्यक्ति का वह चित्र है, उसकी उपेक्षा करते हैं। क्या इससे आप बुतपरस्ती नहीं कर रहे? कल्पना करो कि आपके पास आपके एक मित्र का चित्र है, और उसे आप अपने साथ रखते हैं, आपको उससे प्रेम है, उसे चूमते-चाटते हैं, वह आपका पूर्ण प्रेम-पात्र है, यहाँ तक कि वह मनुष्य, जिसका वह चित्र है, जब आप के घर में आता है, तब आप उसकी चिन्ता नहीं करते, उसका आदर नहीं करते। क्या यह ठीक है? क्या यह उचित है?

क्या वह मित्र अपना चित्र आपके पास छोड़ेगा ? नहीं, नहीं। उसने अपनी तसवीर आपको इसलिए दी थी कि आप उसे याद रक्खें। उसने अपनी तसवीर आपको इसलिए नहीं दी थी कि आप उसे भूल जायँ। वह चित्र आपका पूज्य नहीं होना चाहिए था। चित्र को चित्र की खातिर ही प्यार करने लगना बुतपरस्ती थी। आपको ईश्वर से प्यार करना था, आपको मालिक से, चित्र के स्वामी से प्यार करना था। इसी तरह, इस संसार में सब चीजें ईश्वर का चित्र, चिह्न-मात्र हैं। स्त्रियाँ और पति इन चित्रों के शिकार होते हैं। वे बुतपरस्ती का शिकार बनते हैं, और मूर्ति के गुलाम हो जाते हैं। आपकी इंजील आपको बताती है कि आपका कोई मूर्ति न स्थापित करना चाहिए, ईश्वर की प्रतिमा न बनाना चाहिए, और आपको मूर्ति-पूजा न करना चाहिए। मूर्ति-पूजा शब्द से यह मतलब नहीं था कि आपको इन प्रतिमाओं की उपासना न करना चाहिए। मतलब यह था कि ये जो जीती-जागती मूर्तियाँ हैं, इनके फेर में पड़कर असली को न भूल जाओ, यह अभिप्राय था।

भारत में एक क़ब्रिस्तान में राम ने एक क़ब्र पर एक अभिलेख देखा, जो इस प्रकार था:—

Here lies the babe that now is gone,
"An idol to my heart.
If so the wise God has justly done
'T was needful we should part."

"यहाँ वह बच्चा लेटा हुआ है, जो अब (परलोक) सिधार गया है, और जो मेरे हृदय-मन्दिर की प्रतिमा था। यदि ऐसा हुआ है, तो विज्ञ ईश्वर ने ठीक ही किया है, हमारा जुदा हो जाना जरूरी था।"

यह अभिलेख एक महिला ने लिखा था। वह उस बच्चे को बेहद चाहती थी। वह मूल से, उस असली से, जिसका चित्र-मात्र बच्चा था, बच्चे को अधिक मानने लगी थी, और इसलिए बच्चे का हरण उचित ही था। यही दैवी विधान है, यही नियम है। यदि आप चित्रों का ठीक उपयोग करोगे, तो वे आपके पास रहेंगे, यदि उनका दुरुपयोग करोगे, तो स्नेहभंग वा वियोग, रंज, चिन्ता और भय होगा। ठीक उपयोग करो। हम चित्र अपने पास रख सकते हैं, किन्तु तभी, जब हम असली को अधिक प्यार करें, उसको चित्र से अधिक प्यार करें। केवल तभी हम चित्र अपने पास रख सकते हैं, अन्यथा कदापि नहीं। यही दैवी विधान है। यही त्याग है।

इस ढंग से हरएक घर में संन्यास का अभ्यास किया जाना चाहिए।

अब और अच्छी तरह यह समझाया जाता है, देखिये। पुरुष या नारी, सज्जन या महिला, देवता या देवी के रूप में, आप यहाँ हैं। वहाँ आपका प्रेम-पात्र है। कौन-सी चीज़ आपको मोहती है, आपको खींचती है, आपको प्रेम-पाश में बाँधती है? क्या उसकी देह, उसकी त्वचा, उसके नेत्र, नाक, कान इत्यादि? नहीं, नहीं, कदापि नहीं। आप कवियों की अपेक्षा अधिक युक्तिसंगत और विवेकी, यथार्थवादी (rational) बनो। वास्तव में ये चीजें आपको नहीं आकर्षित करतीं। यदि ये प्रेम की पात्र होतीं, यदि इनमें कोई मोहिनी शक्ति होती, तो वे देह के प्राण-रहित हो जाने पर भी चित्ताकर्षक बनी रहतीं। जब प्राणी मर जाता है, उस दशा में भी आप शरीर से आकर्षित हुए होते, किन्तु उस समय आप नहीं आकर्षित होते। तो फिर जादू किसमें था? किसने यह मोहिनी बल अर्थात् आकर्षण और जादू उत्पन्न किया था?

यह तो काम भीतरी तत्त्व का था, अन्तर्गत 'जीवन' का था, भीतरी शक्ति का था, भीतर की 'आत्मा' का था, और किसी का नहीं। 'यह भीतर का परमेश्वर है, जो हरएक के नेत्रों के द्वारा आपसे बातचीत कर रहा है। शरीर भीतरी परमेश्वर का चित्र, प्रतिमूर्ति या पोशाक है। पोशाक को इसके पहननेवाले व्यक्ति (देही) से, भीतरी असलियत से, अधिक प्यार न करो। अपने भीतर विचार करो और आप समझ जाओगे।

कुछ लोग दूसरों की अपेक्षा अधिक चित्ताकर्षक होते हैं, उनमें शोभा अधिक होती है। जिस विषय की चर्चा करने की चाल नहीं है, उस पर यदि राम कुछ कहता है, तो क्षमा कीजियेगा। यह एक विचित्र बात है कि हम उन बातों को नहीं सुनते, जो हमारे चित्त को बहुत ही अधिक भाती हैं। साधारणतः इस विषय की चर्चा करने की चाल ही नहीं है। किन्तु चूँकि यह विषय अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण है, और वास्तव में आपसे वास्ता रखता है, और दूसरे लोग भी इस विषय पर नहीं बोलते, इसी कारण से राम इस पर बोलता है।

अच्छा, जो यह सौन्दर्य्य वा शोभा है, यह सौंदर्य्य वा शोभा कहाँ से आती है? शोभा, चेष्टा और उद्योगिता (उत्साह) क्या वस्तु है? वह क्या है? क्या वह आँख, कान या नाक के कारण से है? नहीं, नेत्र, कान इत्यादि में तो वह प्रकट होती है। आपने क्लियोपैट्रा (Cleopatra), उस मिस्री युवती, अफ्रिका-वाली क्लियोपैट्रा, उस हबशी बाला का वृत्तान्त सुना होगा। उसने उस सम्राट् (ध्यान रहे) ऐंटोनी को मोह लिया, लुभा लिया, और तसवीर बना दिया था। यह सब सुन्दरता के द्वारा हुआ। सुन्दरता वा शोभा आपके भीतर के परमेश्वर से मिलती है, और किसी दूसरी चीज़ से नहीं। वह चेतनता (activity)

है। चेतनता, उद्योग-शक्ति या गति किसके कारण से है? देखिये! आप मार्ग चल सकते हो, ढालू पहाड़ों पर चढ़ सकते हो, आप इधर-उधर विचर सकते हो, जहाँ चाहो जा सकते हो। किन्तु देहान्त होने पर क्या हो जाता है? प्राणान्त होने पर, वह चेतनता वा उद्योग-शक्ति, आपके भीतर का वह ईश्वर, जो आपको ऐसी-ऐसी ऊँचाइयों पर उठा ले जा-सकता था, पहले जैसी सहायता किया करता था, वैसी अब नहीं करता। तो फिर इस शरीर के अन्दर कौन है, जिसके कारण नसें डोलती हैं, बाल बढ़ते हैं, आपकी नाड़ियों में रक्त का सञ्चार होता है? वह कौन है? शरीर के अंगों को यह सब चाल, शक्ति, फुर्ती देनेवाला कौन है? वह कौन है? वह एक 'विश्वव्यापी शक्ति' है, एक 'विश्वेश्वर' है, जो आप वस्तुतः हो, वह 'आत्मा' है। जब कोई मनुष्य मर जाता है, तब कुछ आदमियों को उसे श्मशान या क़ब्रिस्तान उठाकर ले जाना पड़ता है। और जब वह ज़िन्दा था तब वह कौन चीज़ थी जो उसका मनों भारी बोझ बड़ी-बड़ी उँचाइयों पर, ऐसे ऊँचे पहाड़ों पर उठा ले जाती थी? वह कोई अदृश्य, अवर्णनीय वस्तु है, परन्तु है अवश्य। वह आपके अन्दर आत्मदेव है, वह हरएक शरीर में परमात्मा है, और वही परमेश्वर हरएक वस्तु को शक्ति और कर्मण्यता प्रदान करता है। प्रत्येक व्यक्ति की गति वा चेष्टा में शोभा का कारण भी वही परमेश्वर है। जब कोई मनुष्य सोया होता है, तब उसके नेत्र नहीं देखते; जब वह सोया होता है, तब उसके कान नहीं सुनते। जब मनुष्य मर जाता है, तब भी उसके नेत्र जहाँ के तहाँ रहते हैं, पर वह देखता नहीं, उसके कान ज्यों के त्यों रहते हैं, पर वह सुनता नहीं। क्यों? क्योंकि भीतर का वह ईश्वर या आत्मदेव अब उसी तरह

सहायता नहीं करता जैसे पहिले करता था। वह भीतर का ईश्वर ही है, जो नेत्रों के द्वारा देखता है, वह भीतर का ईश्वर ही है, जो कानों को सुनवाता है, वह भीतर का ईश्वर ही है, जो नाक को सूँघने की शक्ति देता है, और सब रगों का शक्ति-दाता भी वही भीतरी ईश्वर परमात्मा ही है। अन्तर्गत ईश्वर ही समस्त बाह्य शोभा या सौन्दर्य्य का सारांश तत्त्व है। यह सब अन्तर्गत परमेश्वर है। इसे याद रक्खो। इस पर ध्यान दो। आपके सामने कौन है? जब आप किसी व्यक्ति की ओर देखते हैं, तब आपसे नज़र कौन मिलाता है? वही भीतर का ईश्वर। बाहरी नेत्र, त्वचा, कान इत्यादि आवरण-मात्र हैं। वे केवल बाहरी वस्त्र हैं, और कुछ नहीं।

इस दुनिया में जब लोग पदार्थों को प्यार और उनकी इच्छा करने लगते हैं, तब वे भीतर की असलियत की अपेक्षा पोशाक को, वस्त्र को अधिक प्यार करने लगते हैं, जिस पोशाक के द्वारा कि वह (भीतर की असलियत) चमकती है। इस प्रकार वे भीतर के सत्य, मूल और तत्त्व की अपेक्षा वस्त्रों, बाह्य रूपों वा आकारों को अधिक प्यार और पूजा करते हैं। इसी से लोग दुःख उठाते हैं, और इस पाप के कुफल को भोगते हैं। यह बात है। इससे ऊपर उठो, इससे ऊपर उठो। प्रत्येक स्त्री और पति को एक दूसरे में परमेश्वर को देखने का यत्न करना चाहिए। भीतरी ईश्वर को देखो, भीतर के ईश्वर की पूजा करो।

हरएक वस्तु आपके लिए ईश्वर बन जानी चाहिए। नरक का खुला द्वार होने के बदले स्त्री को पति के लिए दर्पण के समान होना चाहिए, जिसमें वह परमेश्वर के दर्शन कर सके। पति को भी नरक का खुला द्वार होने के बदले स्त्री के लिए दर्पण के समान होना चाहिए, जिसमें वह भी परमेश्वर को देख सके।

कोई स्त्री अपने पति को, या पति अपनी स्त्री को, यह अनुभव, यह ईश्वरत्व, सब शक्तियों की यह वेदान्तिक एकाग्रता, कैसे प्राप्त करा सकता है ? यह वे कैसे कर सकते हैं ?

यदि किसी स्त्री को अपने पति का उद्धार करना है, तो पहले उसे अपने पति को सब बाहरी गन्दगियों से बचाना होगा। यदि मनुष्य अविवाहित है, तो वह सब तरह के प्रलोभनों का शिकार बन सकता है। वह बेपतवार की नौका की तरह होता है, जो सब पवनों और तूफ़ानों के वश में है, चाहे वे किसी दिशा से भी चलें। जब तक कोई मनुष्य अविवाहित होता है, विना आत्मिक ज्ञान के होता है ; जब तक वह अविवाहित है, तब तक सब ओर से उसे सर्व प्रकार की गन्दगियाँ भोगना पड़ती हैं, और स्त्री को पहले इन प्रलोभनों से अपने पति को बचाना होता है। पर अब होता क्या है ? साधारणतः स्त्रियाँ इन प्रलोभनों से अपने पतियों को नहीं बचातीं, किन्तु वे (स्त्रियाँ) स्वयं उनके कंधों पर भारी बोझ हो जाती हैं। यह तो ठीक ऐसा ही है कि कोई मनुष्य अपने सब रुपए देकर बड़ी रक़म का एक नोट ख़रीद ले। तब वह दूसरे प्रलोभनों के बोझ से तो छूट जाता है, परन्तु इस एक प्रलोभन की अधीनता पिछली सब अधीनताओं (Humiliations) से अधिक बोझल हो जाती है। अब वह पहले के से प्रलोभनों के अधीन नहीं है, किन्तु अब यह एक ही प्रलोभन या अधीनता उसके लिए काफ़ी है।

यह हाल ठीक उस घोड़े का-सा है, जो बचाव के लिए एक मनुष्य के पास गया था। आप जानते हैं कि एक समय था, जब मनुष्य भी वन में रहता था, घोड़ा भी जंगल में रहता था। हिरन और बारहसिंगे भी जंगल में रहते थे, जैसे कि

आजकल। एक बार एक घोड़ा लड़ाई में बारहसिंगे से हार गया। बारहसिंगे ने अपने सींगों से घोड़े को घायल कर दिया। घोड़ा सहायता के लिए मनुष्य की शरण में गया। मनुष्य ने कहा, "बहुत अच्छा, मैं तुम्हारी मदद करूँगा। मेरे हाथ में तीर हैं। तुम मुझे अपनी पीठ पर चढ़ा लो, और मैं जाकर तुम्हारे दुश्मनों को मार दूँगा।" आदमी घोड़े की पीठ पर सवार हुआ, जंगल में गया और बारहसिंगे का वध किया। वे विजयी होकर घर लौटे। घोड़ा बड़ा खुश था। अब घोड़े ने जाना चाहा। घोड़े ने मनुष्य को धन्यवाद दिया और कहा, "जनाब! मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। अब मैं बिदा होना चाहता हूँ।" आदमी आया और बोला, "ऐ घोड़े! ऐ घोड़े! तुम कहाँ जाओगे? चूँकि अब मुझे मालूम हो गया है कि तुम बड़े काम की चीज़ हो, मैं तुम्हें जाने न दूँगा। तुम्हें मेरा चाकर होना पड़ेगा, तुम्हें मेरा ग़ुलाम बनना होगा।" घोड़ा बारहसिंगे, हिरन और वन के अन्य पशुओं से बच गया, किन्तु उसकी स्वाधीनता जाती रही, और ग़ुलामी, जो उसकी बाहरी सफलता का नतीजा थी, उसकी स्वाधीनता की हानि की पूर्ति न कर सकी।

यही हाल मनुष्य का है। विवाह के बाद वह बहुतेरे प्रलोभनों से बच जाता है, किन्तु एक प्रलोभन, ग़ुलामी या पराधीनता जो स्त्री के सम्बन्ध से प्राप्त हुई है, ठीक उसी बर्ताव के तुल्य है, जो मनुष्य ने घोड़े के साथ किया था।

अच्छा, अब स्त्री पुरुष को बचानेवाली कैसे हो? वह उसे कुछ प्रलोभनों से तो बचाती है। इस बात की जहाँ तक दौड़ है, यह बहुत अच्छी है, बहुत ठीक है। अब दूसरी बात यह है कि उसे मनुष्य को ग़ुलामी में न जकड़ना चाहिए। (अमेरिकावाले कहते हैं कि उन्होंने

फिलीपाइन "Philippine" निवासियों को जीता है, किन्तु यदि वे स्वयं सावधान न रहे, तो गुलामी में फँस जायँगे।) यह कैसे हो सकता है? स्त्री को अपने पति को गुलाम बनाने का यत्न न करना चाहिए, और पति को स्त्री अपने अधीन न करनी चाहिए। यह अब दूसरा क़दम है। यदि यह किया जा सके, तो आशा है, अन्यथा कोई आशा नहीं। यह एक ऐसी बात है जो कभी नहीं, या बहुत कम, आपके ध्यान में लाई जाती है, परन्तु है यह एक तथ्य। आप जानते हैं कि हज़रत ईसा मानव-जाति का उद्धारकर्त्ता माना गया था, और यह कहा गया था कि वह सारे विश्व का उद्धार करेगा, सारा पाप धो डालेगा, और स्वर्ग का साम्राज्य भूमि पर ले आवेगा, किन्तु आपकी सब इंजीलों, क़ुरानों और वेदों के होते हुए भी, इन सबके होते हुए भी, दुनिया को हम वैसी ही अधार्मिक अब भी पाते हैं, जैसी पहले थी। कारण क्या है? कारण यह है कि दोष के असली मूल का उच्छेद नहीं किया गया है। वास्तविक कठिनता आपके परिवार-मण्डल में है। जब तक स्त्री पति का सच्चा हित करने की न ठान लेगी, और पति स्त्री का हित करने को न ठान लेगा, तब तक धर्म का अभ्युदय नहीं हो सकता; धर्म के लिए कोई आशा नहीं है।

आप जानते हैं कि यह भाफ और बिजली का ज़माना (समय) है। धर्म को गठरी बाँधकर चल देना चाहिए। ऐ ईसाइयो! ऐ हिन्दुओ! ऐ मुसलमानो! यदि आप सचमुच यह चाहते हो कि संसार की मुसीबत निर्मूल हो जाय, यदि आप चाहते हो कि मानव-जाति की व्यथा दूर हो जाय, तो आपको इस पर ध्यान देना चाहिए, वैवाहिक सम्बन्धों को सद्भावों पर स्थापित करना चाहिए, आपको हरएक महिला और भद्र पुरुष के हृदय में यह उतार देना चाहिए कि अपनी

स्त्री वा अपने पति के लिये ईसामसीह बनना उसका अपना कर्त्तव्य है। यह हमारा अवश्य कर्त्तव्य है, ईसा बनने को हम बाध्य हैं। और यह कैसे हो सकता है ? यदि स्त्री पति को दास न बनाना चाहे और पति स्त्री को अपने अधीन न करना चाहे, तो यह हो सकता है। सबको अपने आपसे मुक्त करो, तो आप स्वाधीन हो जाओगे। यही दैवी विधान है। Action & reaction are equal & opposite. "क्रिया और प्रतिक्रिया बराबर और आमने-सामने (उलटी) होती हैं।" स्त्री को अपने अधीन बनाओ, उसे अपना ग़ुलाम बनाओ, तो आप भी ग़ुलाम हो जाओगे। आह! अत्यन्त विकट वक्तृता है। सत्य सदैव अप्रिय है, विकट है। हज़रत ईसा ने यह विकट सत्य सिखाया था, और उसे पीड़ा पहुँचाई गई, अर्थात् उसे सूली मिली। सुक़रात आया और उसे विष दिया गया। सत्य को प्रसन्नता से लोग कभी नहीं ग्रहण करते। यह कथन दारुण मालूम होता है, पर है ऐसा ही। ज़रा ध्यान दो।

एक आदमी ने एक बैल के गले में एक रस्सी डाल रक्खी है, वह बैल के सींगों में बँधी हुई है, और रस्सी का दूसरा सिरा वह अपने हाथ में पकड़े है। वह समझता है कि बैल उसका नौकर है, उसका ग़ुलाम है, किन्तु वह भी बैल का ठीक उतना ही ग़ुलाम है, जितना बैल उसका। किस कारण से वह बैल को अपने अधिकार में बतलाता है ? इस-लिए कि बैल उसे छोड़ नहीं सकता। अब ख़याल करो, यदि यही एक कारण है कि बैल उसे छोड़ नहीं सकता, तो हम कहते हैं कि वह भी तो बैल को छोड़कर नहीं जा सकता। क्योंकि वह बैल को नहीं छोड़ सकता, इसलिए बैल उसे नहीं छोड़ सकता। यदि वह बैल को छोड़ सकता, यदि वह आज़ाद

होता, यदि वह बैल का गुलाम न होता, तो बैल उसका गुलाम न होता। यही दैवी विधान है।

क्या आप यह नहीं देखते कि सब कुटुम्ब कष्ट भोग रहे हैं? क्या यह तथ्य नहीं है? क्या यह तथ्य नहीं है कि सब परिवार इस संसार में, यूरोप में, अमेरिका में, भारतवर्ष में, जापान में, सब कहीं, कष्ट भोग रहे हैं? लोग कहते हैं, 'सुखी घर, सुखी घर।' कैसी प्रवञ्चना (humbug) है! कैसा ज़बानी जमा-ख़र्च है! कोरी बातचीत, केवल स्वप्न है!! यह क्या बात है कि लोग कष्ट पा रहे हैं, और घर सुखी नहीं है? और क्या आप अपने अन्तर्हृदय से नहीं चाहते कि परिवार सुखी हो? यदि आप सुख चाहते हो, तो उत्सुक बनो, घर को एक बड़ा मज़ाक़ न बनाओ! उत्सुक बनो, सच्चे बनो, कारण का पता लगाने की चेष्टा करो। उसे जाँचो, उस की छान-बीन करो, उसका अनुसंधान करो, और आप देखोगे कि परिवारों में फूट और सद्भाव के अभाव का केवल यही एक कारण है कि वे प्रकृति के क़ानूनों को नहीं जानते हैं, और मूढ़ हैं। वे अज्ञान रूपी दैत्य के क़ब्ज़े में हैं। वे नहीं जानते कि प्रकृति की योजना (Plan of Nature) क्या है, विकास का पथ किधर है। वे यह नहीं जानते। राम आपसे कहता है कि जिस रास्ते से विकास चलता है और यह सारी प्रकृति काम करती है, वह यह है कि हरएक क़दम बक़दम, धीरे-धीरे, अपने भीतर के ईश्वर की प्राप्ति के निकट पहुँचता जाय। यही पथ है, यही रेखा है जिस पर इस संसार के सब चमत्कार चल रहे हैं। हरएक को अपने भीतर के परमेश्वर का अनुभव करना चाहिए। भीतर के ईश्वर का अनुभव प्राप्त करके हरएक को पूर्ण आत्मा, पूर्ण ईश्वर हो जाना चाहिए। लोग इसे हृदयङ्गम नहीं करते, इसीलिए यह सब जीवन-संग्राम है।

अपनी स्त्री या पति से अपना सम्बन्ध ऐसा स्थापित करो कि ठीक मार्ग पर उन्नति हो; कि आप प्रकृति की योजना (Plan) के अनुकूल काम कर सको। प्रकृति की योजना (Plan) है 'स्वाधीनता ! स्वाधीनता !! स्वाधीनता !!!' अपनी स्त्री को अपने से मुक्त कर दो, तो आप उससे (उसके बंधन से) मुक्त हो जाओगे। इसका अर्थ क्या है ? क्या इसका यह अर्थ है कि सब बन्धन तुरन्त तोड़ दिये जायँ, फ़ौरन काट दिये जायँ, गौर्डियन ग्रन्थि (Gordian Knot) * की तरह काट दिये जायँ ? क्या यही अभिप्राय है ? क्या इसका यह अर्थ है कि हरएक नर इस संसार में खुला छोड़ दिया जाय और प्रत्येक नारी नितान्त निरंकुश हो जाय ? नहीं, कदापि नहीं। इस तरह से स्वाधीनता नहीं मिल सकती, यह तो दासता हुई, ग़ुलामी है। संगी को 'स्वतन्त्र' बनाने से यह मतलब है कि आप उसे ऐसा बना दो कि वह आपके अन्तर्गत ईश्वर पर विश्वास या भरोसा करे, न कि आपकी देह पर। जब आप उसे प्यार करो या वह आपको प्यार करे, तब आप उसके अन्तर्गत ईश्वर से प्रेम करो और उसे अपने अन्तर्गत ईश्वर का प्रेमी बनाओ। लोग कहते हैं कि "हम सब के सब ईसामसीह पर विश्वास करते हैं।" राम कहता है कि आपको अपनी स्त्रियों और पतियों पर विश्वास करना चाहिए।

* एक पेचीदा गाँठ जिसको फ्रिगिया के बादशाह गौर्डियन ने अपनी गाड़ी के एक सिरे में लगाई हुई थी और यह घोषणा दे रक्खी थी कि जो कोई इसे खोलेगा, वह एशिया का बादशाह हो जायगा। सिकन्दर ने इस का हाथ से खोलना कठिन देखकर इसे तलवार से काट दिया, जिससे इस का नाम गार्डियन नौट से प्रसिद्ध हो गया। अभिप्राय अति कठिन वा पेचीदा गाँठ से है।

राम कहता है, "अपने संगी के मांस-पिंड पर विश्वास न करो, भीतर के ईश्वर पर विश्वास करो।" इस बाहरी खाल और मांस को परदे के तुल्य जानो, और इसे आप अपने लिए पारदर्शी बना लो, तथा परदे के पार भीतर के ईश्वर को देखो।

हमको पक्षी की तरह होना चाहिए कि जो एक क्षण में किसी झूलती हुई फुनगी (डाली) पर उतर पड़ता है। उसे डाली के झुकने का बोध होता है, किन्तु निर्भय गाता रहता है, यह जानता हुआ कि उसके पंख हैं। डाली ऊपर-नीचे झूलती है, पर पक्षी भयभीत नहीं होता, क्योंकि यद्यपि वह डाली पर बैठा हुआ है, तथापि अपने परों के भरोसे है, ऐसा समझो। पक्षी जानता है कि वह डाली पर भरोसा नहीं कर रहा है, बल्कि अपने परों पर। यही ढंग है। उसका भरोसा उस डाली पर नहीं है जिस पर वह बैठा हुआ है; वह अपने पंखों पर भरोसा करता है।

इसी तरह जहाँ कहीं आप हो, अपनी स्त्री और बच्चों से कितने ही अनुरक्त क्यों न हो, किन्तु उनमें दिल न लगाओ। हृदय को परमेश्वर के साथ रक्खो, दिल की लौ अपने भीतर के परमात्मा से लगाये रहो। यही उपाय है। आप स्वयं ऐसा बर्ताव करो, और अपनी स्त्री तथा बच्चों से भी ऐसा ही बर्ताव करवाओ। आप उनसे मुक्त हो जाओगे, और वे आपसे मुक्त होंगे। पराधीनता का नाम नहीं रहेगा। स्वाधीनता! स्वतंत्रता!! इस तरह हरएक अमरिका-निवासी स्वाधीन हो सकता है।

व्याख्यान का रोचक अंश अब आता है।

एक स्थान पर एक अत्यंत सुन्दर चित्र देखा गया। उस चित्र या तसवीर में एक बड़ा अच्छा आसन (couch) था। उस

आसन पर बड़े उज्ज्वल शाही गद्दे और तकिए थे। एक बड़ी सुन्दर रानी उस आसन पर लेटी हुई थी, कौच के एक ओर बच्चे थे, और राजा एक कुरसी पर बैठा था। तसवीर बड़ी अच्छी थी, बड़ी मनोहर थी, अति शोभित थी। रानी बहुत बीमार थी। मरणासन्न थी। उसका पति, राजा आँसू गिरा रहा था, और उसका बेटा तथा बेटी रो रहे थे। यह एक सुन्दर चित्र था। क्या आप इस तसवीर के मालिक होना पसन्द करेंगे। अहा! अवश्य, हरएक आपमें से पसन्द करेगा। यह चित्र इतना मनोहर था कि यदि आप इसे देखते, तो अवश्य ख़रीद लेते। क्यों आप इस चित्र के मालिक होना चाहेंगे? इसमें एक ऐसी मनोहरता थी, जो आपको मंत्र-मुग्ध सा बना देती। किन्तु क्या वह मरणप्राय रानी होना आप पसन्द करते? उत्तर दीजिये। वह रानी होना क्या आप पसन्द करते? वह बड़ी अमीर थी, किन्तु मरणासन्न थी। और क्या वह रोता हुआ पति या बिलखते हुए बच्चे होना आप पसन्द करते? नहीं।

वेदान्त चाहता है कि आप अपने घरों में, अपने परिवारों में ईश्वर की तरह रहो; अपने मकानों में गवाह की तरह, निर्विकार ईश्वर की तरह अनासक्त रहो, किसी तरह से मिले या उलझे हुए न रहो। अपने मन को सदा स्थिर रक्खो, सदा अनासक्त रक्खो, अपने चित्त और हृदय को सदा भीतर के परमेश्वर पर जमाए रक्खो, और सब घरेलू मामलों को उसी तरह देखो, जिस तरह आप उस चित्र को देखते हो। आप जानते हैं कि जब आप साक्षी की तरह इसे देखते हैं, तब यह सुख का कारण होता है; जब आप इसमें उलझ जाते वा आसक्त होते हैं, तब यह मुसीबत का सामान बन जाता है। यदि इस संसार के व्यापार में हम फँस जाते हैं, तो हमारी बड़ी दुर्दशा होती है। जब निर्विकार स्थिति-बिन्दु

से साक्षीवत् हम इसे देखते हैं, तब हमें आनन्द आता है, तब यह अति रुचिर हो जाता है। इसी तरह अन्तर्गत परमेश्वर को प्राप्त करो। राम के सब व्याख्यान सुनो, धीरे-धीरे उन्नति करते हुए आपको विश्वास हो जायगा। राम ज़िम्मा लेता है कि इस संसार का कोई भी व्यक्ति यदि राम के सब व्याख्यान सुन लेगा, तो उसके संशय दूर हो जायँगे, अपनी ईश्वरता में उसे अवश्य विश्वास हो जायगा। पहले अपनी दिव्यता तथा ईश्वरत्व में गहरा विश्वास (पक्का निश्चय) प्राप्त करो। इसे पा लो, फिर उस विधि से, वा उन उपायों से, जो बताये जायँगे, आप उस परमेश्वर में अपना केन्द्र जमाओ, वही हो जाओ, शाश्वत और सर्वशक्तिमान परमेश्वर अपने को अनुभव करो। "वही मैं हूँ, वही।" यह अनुभव करो और अपने सब घरेलू सम्बन्धों तथा इन सब मामलों को इस तरह देखो कि मानो वे एक तसवीर हैं, मानो तुमसे कोई लगाव ही नहीं है। यह विपरीत और स्वतः विरुद्ध जान पड़ता है। लोग कहते हैं कि यदि हम इन मामलों में न उलझें, तो कोई उन्नति कर ही नहीं सकते। अरे! आप भूल रहे हो। उन मामलों में फँसते ही आपकी उन्नति रुक जाती है। जब आप लिखते हो, तो लिखना अव्यक्तित्व (अकर्तृत्व) भाव से होता है। उस समय आपका अहं-भाव, आपका तुच्छ अहंकार, मिथ्या अहंकार बिलकुल ग़ैरहाज़िर होता है; और अनायास यंत्रवत् काम किया जा रहा है। यह एक प्रकार से प्रतिक्रिया रूप कर्म है, हाथ अपने आप लिखता जा रहा है। क्यों? क्योंकि आप अपने तुच्छ अहंकार को, स्वार्थी अहं को, मामले में नहीं घुसेड़ते। ज्यों ही आप अपने चित्त में विचारने लगोगे, "अहः, मैंने ख़ूब ही लिखा है, मैंने कमाल किया है," त्यों ही आप भूल कर बैठोगे।

इस तरह हम देखते हैं कि काम केवल तभी होता है,

जब हम तुच्छ स्वार्थी अहंकार से छुटकारा पा जाते हैं। जिस क्षण आप ने स्वार्थी अहंकार का रंग जमाया, उसी क्षण काम बिगड़ा। सर्वोत्तम काम वही काम होता है, जो अकर्तृत्व-भाव से किया जाता है। त्याग का अर्थ है इस छोटे व्यक्तिगत, स्वार्थी अहंकार से छुटकारा पाना, जीव की इस मिथ्या कल्पना को दूर करना। सूर्य चमकता है। सूर्य में यह भाव नहीं है कि मैं काम कर रहा हूँ। परन्तु सूर्य अहंकार (व्यक्तिगत भाव) से रहित है, इसी से वह इतना मनोहर और चित्ताकर्षक है। नदियाँ बहती हैं। उनके बहने में कोई तुच्छ व्यक्तिगत अहं-भाव नहीं है, किन्तु काम हो रहा है। दीपक जलता है, किन्तु व्यक्तिगत अहं-भाव—"मैं महान् हूँ, मैं जल रहा हूँ, मैं प्रकाश कर रहा हूँ"—जलने का काम नहीं कर रहा है। फूल खिलते हैं और चारों ओर मधुर सुगंधि फैलाते हैं, किन्तु उनमें इस भाव का लेश भी नहीं है कि वे बड़े मधुर हैं, बड़े रुचिर हैं।

इसी तरह आपका काम स्वार्थमय अहंकार (अहम्मन्यता) के दूषण से निर्मुक्त होना चाहिए। आप अपना काम ठीक नक्षत्रों और सूर्य्य के काम के समान होने दो, अपना काम चन्द्रमा का सा होने दो। तभी आपका काम सफल हो सकता है। केवल तभी आप इस संसार में कुछ वस्तुतः कर सकते हो। सब नायक, सब धीसम्पन्न पुरुष यह रहस्य रखते थे, सब तालों में लगनेवाली यह परताली (Master-key) उनके अधिकार में थी। उन्होंने अपने को अकर्तृत्व दशा में डाल दिया था, और तभी उनका कार्य इतना फल-फूल सका। यही नियम है। इस भ्रान्त विचार को त्याग दो कि जब तक किसी मामले में आप अपने को आसक्त न कर लोगे, तब तक आपका अभ्युदय कदापि न होगा। ऐसा विश्वास करना आपकी भूल है।

दैवी विधान यह है कि मन तो शान्त, स्थिर और अचञ्चल हो, और शरीर सदा कर्मण्य रहे। चित्त तो स्थिति-शास्त्र (स्टेटिक्स, Statics) के नियमाधीन रहे, और देह गति-शास्त्र (डाइनेमिक्स, Dynamics) के नियमाधीन हो। बाह्य शरीर काम करता रहे और भीतरी अपना आप सदा स्थिर रहे, यही दैवी विधान है। स्वाधीन बनो। वस्तुओं को ठीक उसी तरह कोमलता से स्थित रहने दो, जिस तरह नयनगोचरीभूत भूप्रदेश [Landscape] नयनों पर स्थित रहा करता है। दृष्टिगोचर भूप्रदेश नेत्रों पर सचमुच, पूरी तरह, समग्रता से, अवस्थान करता है, किन्तु अति कोमलता से। वह नेत्रों पर बोझ नहीं डालता। सम्पूर्ण भूभाग (Landscape) का अवस्थान नेत्रों पर है, किन्तु नेत्र स्वाधीन हैं, भार से दबे नहीं हैं। अपने घरेलू मामलों में, अपने पारिवारिक या सांसारिक जीवन में आपकी स्थिति भी ठीक ऐसी ही होनी चाहिए। आप इन सब व्यापारों को देखो और निर्लिप्त बने रहो, स्वतंत्र रहो। और यह स्वाधीनता मिल सकती है केवल सच्चे आत्मज्ञान के द्वारा, पूर्ण तत्त्व के अनुभव द्वारा, जिसे वेदान्त कहते हैं। सच्चे आत्मदेव का अनुभव करो, और सब नक्षत्र तथा तारागण आपकी आज्ञा पालेंगे।

Roll on, ye suns and stars, roll on,
Ye motes in dazzling Light of lights,
In me, the Sun of suns, roll on.

O orbs and globes, mere eddies, waves
In me the surging oceans wide
Do rise and fall, vibrate, roll on

O worlds, my planets, spindles turn;
Expose me all your parts and sides,
And dancing, bask in light of life.

Do suns and stars or earths and seas
Revolve the shadows of my dream ?
I move, I turn, I come, I go.

The motion, moved and mover I,
No rest, no motion, mine or thine.
No words can ever me describe.

Twinkle, twinkle, little stars,
Twinkling, winking, beckon. call me.
Answer first, O lovely stars !

Whither do you sign and call me ?
I'm the sparkle in your eyes,
I'm the life that in you lies.

तात्पर्यः—

बढ़े चलो, तुम सूर्यो और नक्षत्रो, लुढ़कते रहो,
प्रकाशों के चमत्कृतकारी प्रकाश में तुम कणों !
मुझ सूर्यों के सूर्य में, लुढ़कते रहो।
भँवर मात्र ए ग्रह-मण्डलों और भूगोलों,
तरंगाकुल विशाल समुद्रो लहरोंवत् मुझमें
उठो और गिरो।

आन्दोलित हो, लुढ़कते चलो।
ए लोको, मेरे ग्रहो, धुरों पर घूमो ;
अपने सब अंग और पार्श्व मुझे दिखाओ,
और नाचते हुए, जीवन के प्रकाश में तपो।

सूर्यो और नक्षत्रो या भूमियो और समुद्रो !
चक्कर देते रहो मेरे स्वप्न की प्रतिच्छाया को ,
मैं चलता हूँ, मैं फिरता हूँ, मैं आता हूँ, मैं जाता हूँ।

गति, गतिमान् और गतिकारक मैं (हूँ)।
न विश्राम, न गति है मेरी या तेरी।
कोई शब्द मुझे कदापि वर्णन नहीं कर सकता।

चमको, चमको, छोटे तारो !
चमकते हुए, पलकते हुए, संकेत करो, मुझे पुकारो।
उत्तर पहले दो, ऐ सुन्दर तारो !
कहाँ के लिए संकेत तुम्हारा, कहाँ मुझे बुलाते हो ?
तुम्हारे नयनों की प्रभा हूँ ,
तुम में जो जीवन वह मैं हूँ।

यह है तुम्हारा सच्चा स्वरूप। तुम वास्तव में जो कुछ हो, वह यह है। यह अनुभव करो और मुक्त हो। यह अनुभव करो और तुम विश्व के स्वामी हो जाते हो। यह अनुभव करो और तुम देखोगे कि तुम्हारे उद्यम के सब मामले, तुम्हारे सब व्यापार आप-से-आप, अत्यन्त वांछनीय रूप में तुम्हारे सामने आ खड़े होंगे। तुम देखोगे कि सफलता को तुम्हारा खोज करना पड़ेगा, और तुम सफलता को ढूँढ़ते न फिरोगे। तुम देखोगे कि भीतर के परमेश्वर पर यह विश्वास, भीतर के परमेश्वर की यह अनुभूति, सारे विश्व को तुम्हारा क्षुद्र दास बना देगी, इस संसार की प्रत्येक वस्तु को तुम्हारे अधीन बना देगी। तुम देखोगे कि सफलता और अभ्युदय तुम्हें ढूँढ़ेंगे, और तुम्हें उनको न ढूँढ़ना पड़ेगा। "यदि पहाड़ मोहम्मद के पास नहीं आता, तो मोहम्मद पहाड़ के पास जायगा।" जिस क्षण तुम इन सांसारिक

पदार्थों में सुख ढूंढ़ना छोड़ दोगे और स्वाधीन हो जाओगे, अपने भीतर के परमेश्वर का अनुभव करोगे, उसी क्षण तुम्हें मोहम्मद के पास न जाना पड़ेगा, मोहम्मद तुम्हारे पास आवेगा। यही दैवी विधान है। यही रहस्य है, यही गुह्य भेद संसार का शासन कर रहा है। यही सिद्धान्त तुम स्वयं हो। यह अनुभव करो, अपनी स्त्री और बच्चों को यह अनुभव कराओ। ख़ुद स्वाधीन हो और उन्हें स्वाधीन बनाओ। इस तरह तुम अंधकूप या कारागार को साक्षात् वैकुण्ठ बना दोगे, तुम अपने घरों में अपने लिए स्वर्ग बनाओगे, तुम अपने अत्यन्त झगड़ालू घरों को सुखी घर बना लोगे। दूसरा कोई उपाय नहीं है! इस अनिवार्य निर्दयी क़ानून से तुम बच नहीं सकते। यही एक रास्ता है, यही एकमात्र फाटक खोलने का मंत्र है; यही एक परताली (Master Key) है, जो संसार के सब ख़ज़ानों को खोल देती है। यदि तुम अपने भीतर के परमेश्वर का अनुभव करो, तो तुम मुक्त हो। ऐसा अनुभव करने में दूसरों की सहायता करो।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

गृहस्थाश्रम और आत्मानुभव।

(ता० १ फ़रवरी १६०३, रविवार, सन्ध्या-समय)

"क्या कोई विवाहित मनुष्य (गृहस्थ) आत्म-साक्षात्कार की अभिलाषा कर सकता है ?"* यह प्रश्न कुछ समय पहिले राम से पूछा गया था और उसका पूर्ण उत्तर भी उस समय दिया गया था।

राम आज उसी विषय को नहीं छेड़ेगा, किन्तु उसी के समान अन्य विषय पर बोलेगा।

उस प्रश्न के उत्तर में कामनाओं के स्वरूप का निरूपण दिया गया था। अर्थात् "कामना क्या वस्तु है; और मनोरथ मनुष्य के स्वभाव पर क्या प्रभाव डालते हैं ? कामनाओं की पूर्ति से क्योंकर सुख और अपूर्ति से क्योंकर दुःख होता है ?" आदि प्रश्नों का विचार किया गया था। यह प्रश्न बहुत बड़ा और जटिल है, और इस पर राम ने बहुत गंभीरता-पूर्वक विचार भी किया है। राम के अनुसंधानों का फल "मनोवेग शास्त्र (Dynamics of mind)"† नामी ग्रन्थ में प्रस्तुत किया जावेगा।

"क्या अपने पुत्र, कलत्र, स्नेही, सम्बन्धियों में रहनेवाला गृहस्थ वा दूसरे शब्दों में एक साधारण सांसारिक मनुष्य

---

* यह विषय गत पृष्ठ ६० के 'निश्चल चित्त' नामी व्याख्यान में दर्ज है।

† मनोवेग शास्त्र नाम का ग्रन्थ 'राम' ने आरम्भ ही किया था कि शरीर ने साथ न दिया। इस नाम तले कुछ नोट दो-चार पृष्ठ पर लिखने के बाद 'राम' ब्रह्म-लीन हो गए। अतएव अब इस ग्रंथ का केवल नाम तो रह गया, आकार बनने नहीं पाया।

तत्त्व या आत्मा का साक्षात्कार कर सकता है ?" यह प्रश्न है।

हम इस प्रश्न के एक अंग पर विचार करेंगे। वेदान्त केवल इतना पूछता है "क्या तलवार आपके शत्रुओं का नाश कर सकती है ?"

यदि इस प्रश्न के उत्तर में 'हाँ' कहा जा सकता है, तो "क्या कोई सांसारिक गृहस्थ तत्त्व का साक्षात्कार कर सकता है ?" इस प्रश्न के उत्तर में भी 'हाँ' कहा जा सकता है। यह सब केवल उस तलवार अथवा गृहस्थ-बन्धन के उपयोग पर निर्भर है। उसी एक तलवार से हम अपना नाश कर सकते हैं, और उसी से हम बाहरी आक्रमणों से अपने को बचा सकते हैं। इसी प्रकार मनुष्य अपने गृहस्थ के बन्धनों वा सम्बन्धों के दुरुपयोग से अपना विनाश कर सकता है, वा अपनी आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है, और अपने भीतर परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता है। अतः यह प्रश्न भी उसी प्रकार हल होता है।

हमारा टहलना, घूमना, स्वास्थ्य-सम्बन्धी हमारा दैनिक नित्य-कर्म हमारे सुख और आनन्द का कारण हो सकते हैं—वे हमारे लाभ तथा सुधार का कारण हो सकते हैं, यदि उचित रीति से हम उन्हें करें। परन्तु उनके दुरुपयोग से वही सैर-सपाटे, क्लेश, अशान्ति एवं व्याधि का कारण बन सकते हैं।

इसी तरह हमारे पारिवारिक सम्बन्ध हमें उन्नत और नीरोग कर सकते हैं, अथवा हमारा समूल नाश भी कर सकते हैं।

एक बड़ा सज्जन पुरुष था, जिसके पास एक बहुत लुच्चा और बदमाश नौकर था। वह प्रत्येक काम को उल्टा ही किया करता था। अपने मालिक की आज्ञाओं के पालन करने का उसका ढंग ही निराला था। वस्तुतः उसके कार्य्य करने

की शैली ऐसी थी कि गंभीर-से-गंभीर मनुष्य भी उससे झल्ला उठता। पर वह धर्मात्मा मालिक उस नौकर पर कभी क्रुद्ध न होता, उलटे वह उस दुष्ट के साथ अति प्रेम का बर्ताव करता। एक समय उसके एक अतिथि ने उस नौकर के विरुद्ध बहुत-सी शिकायत की। वह उसके कामों से बहुत खिन्न और क्रुद्ध हुआ था, और उसके मालिक को उसे निकाल देने को कहा। पर मालिक ने उत्तर दिया—"आपकी सलाह अत्युत्तम है, और आपने शुभेच्छा-पूर्वक यह सम्मति दी है। मैं जानता हूँ कि आप मेरे शुभ-चिन्तक हैं और मेरे कार्य्य की वृद्धि चाहते हैं, जिससे मुझे यह सम्मति देते हैं। पर मैं इस बात को अधिक जानता हूँ। मैं जानता हूँ कि मेरा काम-काज ख़राब हो रहा है। इससे मेरे व्यापार को हानि पहुँच रही है। किन्तु मैं उसे इसीलिये रखता हूँ कि वह इतना अनाज्ञाकारी वा अविश्वासी है। यह उसका दुष्ट आचरण और ख़राब स्वभाव है, जिससे वह मुझे इतना प्रिय हो रहा है। वह पापी, दुष्ट और नमकहराम है, इसी से मैं उसे अधिक प्यार करता हूँ।" उसका ऐसा कहना बड़ा ही आश्चर्य्य-जनक था।

वह मालिक बोला—"दुनिया में जितने लोगों से मेरा वास्ता पड़ा है, उन सबमें से एक यही मनुष्य ऐसा है, जो मेरी आज्ञा का उल्लंघन करता है, जो निन्दामय (अप्रिय-वादी), अकीर्तिकर और हानिकर काम करता है; और जितनों से मेरा वास्ता पड़ा, वे सबके सब इतने कोमल स्वभाव, इतने अच्छे और इतने प्रेमी हैं कि वह मुझे रुष्ट करने का कभी साहस नहीं करते। इसलिये यह नौकर असाधारण है। यह एक तरह का मुगदर (Dumb-bell) है, जो मेरी आध्यात्मिक शिक्षा का उत्तम साधन है। जिस प्रकार बहुत

से लोग अपना शारीरिक बल बढ़ाने के लिए मुगदर आदि फेरते हैं, उसी प्रकार यह नौकर मेरे आत्मिक बल की वृद्धि-निमित्त मुगदर का काम देता है, और इससे मेरा आध्यात्मिक शरीर पुष्टि पाता है। इस नौकर द्वारा मुझे आध्यात्मिक बल प्राप्त होता है। इसलिए इस नौकर के साथ मुझे एक प्रकार की कुश्ती लड़नी पड़ती है, जिससे मुझे शक्ति प्राप्त होती है।"

अतः राम इस तथ्य को आपके सामने उपस्थित करता है, और इसकी ओर आपका ध्यान इसलिए दिलाता है कि यदि आपको गृहस्थ-बन्धन आपकी उन्नति के मार्ग में विघ्न-रूप अथवा अड़चन-पत्थर मालूम पड़ें, तो भी आपको खिन्न होने की आवश्यकता नहीं। ठीक उसी धर्मात्मा मालिक का अनुकरण करो। भेद-भाव और कठिनाइयों को शक्ति और बल का नवीन स्रोत बना लो।

ग्रीस देश में सुक़रात (Socrates) नाम का एक महान् तत्त्ववेत्ता हुआ है। उसकी स्त्री दुनिया-भर में बड़ी कलह-कारिणी थी। एक दिन सुक़रात बड़ी गंभीर वृत्ति से किसी तत्त्व का चिन्तन कर रहा था। उसी समय उसकी स्त्री अपनी आदत के अनुसार उसके पास आई और अपशब्द बोली। उसने सुक़रात को लानतान की, और उसका अपमान किया, नाना नामों से उसे पुकारा। उसकी वृत्ति अपनी ओर खींचने का आग्रह किया। अपनी टहल उससे चाही और 'यह कर', 'वह कर' की आज्ञा हाँकने लगी। पर सुक़रात अपने तत्त्व-चिन्तन में लगा रहा। किसी भी समस्या को तब तक नहीं छोड़ता था, जब तक वह हल न हो ले। यही उसकी परिपाटी थी।

स्त्री ने गरज-गरज कर तूफ़ान मचा दिया, परन्तु सुक़रात ने तब भी न सुना, तब ग़ुस्से में भरकर स्त्री ने गन्दे पानी से

भरा बरतन बेचारे के सर पर उलट दिया। क्या सुक़रात उस समय भी क्षुब्ध वा क्रुद्ध हुआ? किञ्चिन्मात्र भी नहीं। वह मुसकराया और हँसते हुए बोला, "आज यह समस्या (लोकोक्ति) ठीक सिद्ध हुई कि oft-times when it roars, it rains प्रायः मेघ जब गरजता है, तब बरसता है।"

पहिले जब कभी वह गरजी, वर्षा नहीं हुई। किन्तु आज जब उसने गरज-गरज कर तूफ़ान मचाया, तो पानी भी बरस पड़ा। उपर्युक्त व्यंग्य वचन (remark) के बाद सुक़रात फिर अपने तत्त्व-चिन्तन में मग्न हो गया।

इससे स्पष्ट है कि अपने स्वभाव को वश में करने की शक्ति से मनुष्य को कभी निराश न होना चाहिये। यदि एक मनुष्य (सुक़रात) ने अपने स्वभाव को इतना वश में कर लिया, तो फिर सब कोई कर सकता है। आज भी क्या दुनिया में ऐसे लोग नहीं हैं कि जिनकी आदत वा स्वभाव उनके अपने अधीन न हों? अवश्य ऐसे मनुष्य हैं, और उद्योग से आप भी ऐसा कर सकते हैं।

यदि आप चाहो तो तत्त्व-साक्षात्कार वा परमात्मा से एकता, अथवा सबसे अभेदता या समस्त विश्व के साथ अपनी समता एवं इस आत्म-साक्षात्कार का मार्ग अपने गृहस्थ सम्बन्ध द्वारा विशेष सुगम बनाया जा सकता है।

जगत् के प्रत्येक मनुष्य का उद्देश्य तथा लक्ष्य और आध्यात्मिक विकास का परिणाम यही है कि प्रत्येक प्राणी अपने अन्तरात्मा का अनुभव करे, और यह परिच्छिन्न आत्मा जब तक ईश्वर के साथ अभेदता वा परमात्मा से एकता का साक्षात्कार न कर ले, तब तक निजी अनुभवों का उपार्जन करता रहे; अन्यथा तलवार की धार पर तो उसका सबको अनुभव करना ही होगा। यही उद्देश्य है। यदि साधारण मनुष्य को गृहस्थ

के सम्बन्ध विघ्नरूप जान पड़ते हैं, तो (इसके विपरीत) राम कहता है कि पुत्र और कलत्र आपके सहायक बन सकते हैं।

पृथ्वी सूर्य्य के चारों ओर घूमती है। पृथ्वी को अवश्य परिक्रमा करना है। चन्द्रमा पृथ्वी से चिमटना चाहता है। अब बताओ, पृथ्वी बेचारी क्या करे? चन्द्रमा और उपग्रहों को साथ लेकर पृथ्वी सूर्य्य की प्रदक्षिणा कर सकती है।

इसी प्रकार से, हे पुरुषो वा स्त्रियो! यदि आपने सूर्य्यों के सूर्य्य की ओर खिंच जाना निश्चय किया है, तो जिस प्रकार पृथ्वी चन्द्रमा को साथ-साथ रखती है, उसी प्रकार आप भी अपने साथी को साथ रक्खो, और तब अपने साथी के साथ सूर्य्यों के सूर्य्य तथा प्रकाशों के प्रकाश के इर्द-गिर्द चन्द्रमावत् परिक्रमा करते जाओ। ऐसा करने से अकेले अपने इस तुच्छ शरीर को ही उस 'सूर्य्यों के सूर्य' की प्रभा, कान्ति एवं शोभा का भागी बनाने की जगह आप अपने साथ अपने साथी (पत्नी इत्यादि) को भी उसी सूर्य्य की प्रभा, कान्ति और शोभा का उपभोग करा सकते हो। इस प्रकार एक ही व्यक्ति की जगह आप अनेक जीवों को अपने साथ खींच ले जा सकते हो। केवल एक शरीर द्वारा काम करने के बदले आप अनेक शरीरों द्वारा कार्य्य कर सकते हो। ये सभी आपके शरीर हैं। जिस प्रकार एक शरीर आपका है, उसी प्रकार ये सब शरीर ईश्वर के हो सकते हैं, और उसका गुणानुवाद कर सकते हैं। जैसे जब कोई मनुष्य किसी स्थान पर जाता है और अपने साथ एक ही देह (शरीर) ले जाता है, तो वह अपने हाथ, पैर, आँख, कान, नाक आदि को पीछे छोड़ नहीं जाता, ये सब उसके साथ ही जाते हैं; उसी प्रकार वेदान्त कहता है कि जब आप स्वर्गीय ज्ञान प्राप्त करने जाते हो, जब आप सत्य का अनुभव करने जाते हो, तब आप अपने आधे शरीर-मात्र (अर्द्धांग) को स्वर्गीय ज्ञान की

ओर ले जाने के स्थान पर सम्पूर्ण शरीर को अपने साथ ले जा सकते हो, आप अपने पुत्र-कलत्र को, मानो अपने दिल-दिमाग और हाथ-पैरों को, साथ ले जा सकते हो।

इस तरह परमात्मा के साथ अभेदता और एकता अनुभव करने के पूर्व आप अपनी स्त्री और पुत्र के साथ एकता अनुभव करो। जिस मनुष्य ने अपनी अर्धांगिनी और पुत्र-कलत्र के साथ एकता अनुभव नहीं की, वह सबके साथ अपनी एकता का अनुभव कैसे कर सकता है ?

वेदान्त की दृष्टि में स्वाभाविक मार्ग तो यही है कि जिसके साथ आपका सम्बन्ध हो, उसी के साथ एकता अनुभव करना आरंभ करो। आपके जो प्रियतम हों, उन्हीं में आप अपने को लीन कर दो। अपने हित को उनके हित में लीन कर दो। सब शरीरों को मिलाकर एक कर दो। सबों को मिलकर एक धारा-प्रवाह बन जाने दो, और फिर अनुभव-पर-अनुभव प्राप्त करते जाओ। तदनन्तर दूसरे परिवारों को लो और क्रमशः उन्नति करते हुए सब परिवारों को अपना शरीर बना लो। जब आप सब व्यक्तियों को अपना शरीर समझ लोगे, तब आप परमात्मा के साथ एकता अनुभव कर सकोगे, तब आप प्रत्येक को अपने साथ ले जा सकोगे।

ईसाइयों की धर्म-पुस्तक (बाइबिल) में शिष्य सेंट जोह्न (Saint John) के सम्बन्ध में हम पढ़ते हैं कि उससे हज़रत ईसा प्रेम करते थे। ईसा समस्त संसार से प्रेम करते थे। "शिष्य से ईसा ने प्रेम किया।" इस कथन को थोड़ा बदल देने से यों हो जाता है कि शिष्य ने ईसा से प्रेम किया। इससे ईसाई सिद्धान्त (ईसा द्वारा मुक्ति) का मूलसूत्र मिल जाता है।

"आघात-प्रत्याघात बराबर और परस्पर विरोधी होते

हैं।" (Action and reaction are equal and opposite)। यदि ईसा अपने शिष्य से प्रेम करता था, तो शिष्य ने भी ईसा से अवश्य प्रेम किया होगा। जोह्न को यदि ईसा के प्रति भक्ति न होती, तो "आघात और प्रत्याघात बराबर और परस्पर विरोधी" होनेवाले अनिवार्य्य नियम के अनुसार ईसा सदा उससे प्रेम नहीं कर सकता था। ईसा तत्त्वदर्शी था। वह जगत्-पिता और 'सर्व'* से अभिन्न था। वह एक ऐसा मनुष्य था, जिसने अपने मन, बुद्धि और अहंकार वा व्यक्तित्व को परमात्मा में लीन कर दिया था।

जोह्न, पीटर, पाल अथवा अन्य कोई शिष्य ईसा के साथ अपना सम्बन्ध जोड़, ईसा की भक्ति कर (क्योंकि भक्ति और प्रेम द्वारा ही सम्बन्ध होता है) एवं उसके साथ एकता का अनुभव करके स्वभावतः ही ईसा का ईशत्व भोगता है।

कल्पना करो कि हमारे पास एक पदार्थ है, जिसमें बिजली भरी है। यदि इस विद्युन्मय पदार्थ के साथ कोई दूसरा पदार्थ लगा दिया जाय, तो इस विद्युन्मय (electrified) पदार्थ से विद्युत्-हीन पदार्थ में सहज ही बिजली चली जायगी।

इसी प्रकार उस समय के शिष्यों को ईसा की भक्ति द्वारा ईसा की प्रकृति प्राप्त होना अवश्य है। और इस प्रकार यदि ईसा अपना उद्धार करता है, तो उसकी भक्ति द्वारा दूसरे का उद्धार अवश्य होता है।

वेदान्त के अनुसार तब तक कोई प्राणी ईश्वरानुभव नहीं कर सकता, जब तक उसका अपना आप पूर्णतया विश्व-प्रेम में परिणत न हो, और जब तक समस्त विश्व को ही वह अपना शरीर न समझ ले।

* सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः। [गीता, ११-४०]

आपको याद होगा कि आत्मानुभव वा तत्त्व-साक्षात्कार की यह पहली सीढ़ी है। यह समस्त जगत् हो जाना है, फिर दूसरी सीढ़ी उस (जगत्रूप) से ऊपर उठना है। एक दिन राम ने अपने व्याख्यान में दो प्रकार के अध्यासों का वर्णन किया था—एक स्वरूपाध्यास और दूसरा संसर्गाध्यास।

स्वरूपाध्यास के कारण नाना व्यक्तित्व एवं उनमें परस्पर भेद-भाव की कल्पना उत्पन्न हो आती है, और इसी से वह अन्धापन व अन्धकार उत्पन्न हो आता है कि जिससे मनुष्य को प्रत्येक में ईश्वर देखना नहीं मिलता। यही उस मानसिक व्याधि का हेतु है, जो आपको विश्व के सब पदार्थों में एकत्व का अनुभव करने नहीं देती। संसर्गाध्यास बाह्य विषमता है, नाम-रूप का भ्रम है।

इस प्रकार सांसारिक मनुष्य में इन दोनों प्रकार के अध्यासों को दूर करना होगा। सबसे पहिले तो समस्त वस्तुओं (व्यक्तियों) में एकता का अनुभव करना आवश्यक है। जिस मनुष्य को इन दोनों प्रकार के अध्यासों को जीतना व दूर करना होता है, उसे पहिले अपने को ही समस्त विश्व के प्रत्येक पदार्थ का आत्मा अनुभव करना होता है। वह अपनी आत्मा को ही जगत् के सारे मनुष्यवर्ग, सारे वनस्पतिवर्ग, समस्त वृक्ष, सरिता, कीट, पतंग आदि की आत्मा समझता और अनुभव करता है। अनुभव की यह एक अवस्था है। ऐसे मनुष्य को आरंभिक अवस्था में अपने पुत्र-कलत्र के साथ एकता अनुभव करने से सहायता मिलती है। जब वह सारे संसार के साथ अपनी एकता (अभेदता) अनुभव करता है, तो यह अनुभव की पहिली अवस्था है। दूसरी अवस्था वह है, जब कि सभी बाह्य नाम-रूप और आकार अन्तर्धान हो जाते हैं, जहाँ यह माया समूल नष्ट हो जाती है, और तब सारे संसार का,

जो शरीर रूप था, बाध किया जाता है, और वह आत्मा में विलीन हो जाता है।

आरंभ में हमको समस्त विश्व अपना शरीर अनुभव करना होता है। तब जिस विश्व को अपना शरीर अनुभव किया होता है, उस विश्व का बाध किया जाता है, अर्थात् वह रद्द किया जाता है, और उस सत्य स्वरूप आत्मा में कि जो मेरा अपना आप है, वह विलीन हो जाता है।

आत्मानुभवी मनुष्य पहिले समस्त जगत् बनता है, और तब जगत् का उद्धार करता है; इस प्रकार वह समस्त विश्व का उद्धारक (Saviour) बन जाता है। अतः तुम अपने उद्धारक आप हो, ऐसा वेदान्त का तात्पर्य्य है।

"ईसा द्वारा हम ईश्वरानुभव करते हैं" इस कथन का अथ यह है कि सर्वजगदात्मैक दृष्टि की जो अवस्था है, उस अवस्था द्वारा ही, उस 'ईसा' की अवस्था को पार करने पर ही हम वर्णनातीत, अक्षर ब्रह्म में लीन हो सकते वा ग़ोता लगा सकते हैं। अतः जो शाश्वत है, जिसके वर्णन में वाचा कुण्ठित होती है, जो वाणी-मात्र के परे है, उस तत्त्व के अनुभव के पूर्व उस सत्यस्वरूप को प्राप्त करने से पहले—जहाँ नाम-रूप, भेद-भाव का अस्तित्व नहीं, उस परमात्म-अवस्था में पहुँचने से पहले, आपको वह अवस्था प्राप्त करना होगी, जहाँ अपना सत्य स्वरूप ही आपको सब नाम रूपों में ओत-प्रोत और व्याप्त दीखता है; यही अवस्था 'ईसा' की अवस्था है। इस प्रकार ईसा की अवस्था को लाँघकर आप ईश्वर तक पहुँच सकते हैं; और यह अवस्था प्रत्येक के साथ क्रमशः ऐक्य बुद्धि करने से प्राप्त होती है। जिन प्रारम्भिक पाठों के द्वारा इसकी व्यावहारिक शिक्षा मिलती है, उनका आरंभ तब होता है, जब आप अपनी माता, पिता, पत्नी, बालकों और स्नेहियों के साथ

अपनी एकता अनुभव करने लगते हो, और फिर धीरे-धीरे समस्त देश के साथ एवं समस्त जगत् तथा विश्व के साथ उत्तरोत्तर एकता अनुभव करते हो। यह बहुत कठिन काम मालूम होता है, पर वास्तव में यह बहुत कठिन है नहीं। आरंभ करना कठिन है, पर कुछ ही काल बाद प्रगति (progress) तीव्र हो जाती है। जब एक बार कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के साथ अपनी अभेदता अनुभव कर लेता है, तथा दूसरे में मानों विलीन हो जाता है, तब वह प्रत्येक के साथ अपनी एकता अनुभव करने लगता है। अनुभव से यहाँ यह स्पष्ट होता है कि प्रकृति के अटल नियमानुसार जगत् में जो कुछ प्रीति है, वह हमको बलात्कार ऐसी स्थिति में ले जाती है कि जहाँ हमारा प्रेम-पात्र बाह्य जगत् का विषय नहीं रहता, जहाँ हमारा प्रेम बाह्य रंग-रूप-आकृति वा लिंग चिह्नों पर नहीं टिकता, वरन् जहाँ प्रेम अधिकाधिक अन्तरात्मा, सर्वाधार सत्ता पर ही ठहरता है।

प्रत्येक मनुष्य इस कथन की सच्चाई के विषय में निज अनुभव से कुछ-न-कुछ कह सकता है। जैसे-जैसे हम वयोवृद्ध होते जाते हैं, वैसे-वैसे हम देखते हैं कि हमारा प्रेम-पात्र अधिकाधिक विशुद्ध होता जाता है—हमारी प्रीति का केन्द्र विशेष सरल, विशेष इन्द्रियातीत और अधिक सूक्ष्म होता जाता है।

क्या जगत् के सब मनुष्यों को अपने जीवन में इस रहस्य का थोड़ा-बहुत अनुभव नहीं हुआ है? एक समय आता है कि जब हम अपने प्रेम-पात्र के मुँह के काट (वज़ा-क़ता) वा चेहरे के भद्दपन पर या त्वचा की झुर्रियों पर तथा बाह्य चिह्नों व विकारों पर रंचक-मात्र भी ध्यान नहीं देते। तब हम केवल अन्तरात्मा को, भीतरी प्रीति को, अन्तर्हृदय को वा भीतरी पवित्रता को तथा भीतरी प्रेम-पात्र को प्यार

करते हैं! क्या इसको सबने देखा वा अनुभव नहीं किया है? क्या सबने यह नहीं देखा है कि प्रायः हम अपने प्रेम-पात्र के बाह्य दोषों, शारीरिक विकारों को देखते तक नहीं? हम केवल सौन्दर्य्य देखते हैं, कुरूपता की ओर से अन्धे हुए होते हैं। यदि उस प्रेम में, अथवा उस व्यक्ति में वा हमारे उस प्रेम-पात्र में, वास्तविक प्रीति होती है, तो हमारा हृदय द्रवित हो जाता, उसकी ओर आकर्षित हो जाता है। तदनन्तर ऐसा समय आता है, जब हमारे प्रेम का केन्द्र इन बाह्य एवं स्थूल रंग-रूप, आकार और चिह्न से अधिक सूक्ष्म अर्थात् दूर और विशेष विशुद्ध होता है। बस यहाँ पहुँचते ही हम एक सीढ़ी ऊपर आ जाते हैं। पहिले से ऊँचे उठ आते हैं। यहाँ हम बाह्य चिह्नों और स्थूल शरीरों से उठकर सूक्ष्म मनोवृत्तियों में पहुँच जाते हैं।

अब इससे परे दूसरी और उच्चतर स्थिति है, जहाँ हमारे प्रेम का केन्द्र भीतरी भाव, मनोवृत्ति वा चित्त (अन्तःकरण) की शुद्धि नहीं, और न अपने प्रेम-पात्र के दर्शन ही हैं, बल्कि जहाँ हम परमात्मा या अन्तर्यामी ही को प्यार करते हैं, तथा अपने शुद्ध स्वरूप अन्तरात्मा का दर्शन करते हैं। बस एक बार जिस समय यह स्थिति प्राप्त हो जाती है, जिस समय जगत् के सारे पदार्थ चित्र वा चिह्न-मात्र बन जाते हैं; जिस समय हम पदार्थों को पदार्थ-भाव से नहीं देखते, बल्कि उनके पीछे उनके आधार रूप निर्विकार आत्मा को देखते हैं; जिस समय हमारी दृष्टि इस वा उस पदार्थ पर पात होते ही उसमें हमारा हृदय-नेत्र शुद्ध स्वरूप परमात्मा को देखता है; जिस समय ऐसी स्थिति प्राप्त होती है; तब समस्त विश्व के साथ एकता, अभेदता अनुभव करना मनुष्य के लिए सुगम हो जाता है। यही 'क्राइस्ट की स्थिति' अथवा ईसा-दशा है। इस

क्राइस्ट की अवस्था में कुछ काल रहने के बाद दूसरी इससे भी उच्चतर स्थिति आती है। तब हम परमात्मा में पूर्णतया लीन हो जाते हैं। जब हम इस तरह समाधि, पूर्णतया एकता, निमग्नता वा लय की अवस्था में होते हैं, तो वह परमात्म-अवस्था है। इसको हम निर्वाण या समाधि अवस्था कहते हैं, ऐसी अवस्था में अन्तःकरण में न कोई स्फुरण होता है, न क्षोभ और न विरोध।

उस स्थिति में क्रमशः पहुँचने के लिए हम अपने सांसारिक कुटुम्बियों तथा सम्बन्धियों से किस प्रकार सहायता प्राप्त कर सकते हैं?

भारतवर्ष में ऐसे लोग हैं, जो रोमन कैथोलिकों की तरह ईश्वरोपासना करते हैं, जो ईश्वर-पूजन प्रतिमाओं द्वारा करते हैं। ईश्वर, राम वा कृष्ण की प्रतिमा को (अधिकतर) पूजते हैं। राम और कृष्ण भारत के ईसा मसीह हैं।

भारतवर्ष में एक बार एक वृद्धा स्त्री ने एक महात्मा के पास जाकर पूछा—"यदि उचित हो, तो मैं अपने गृहस्थ और कुटुम्ब को त्याग कर कृष्ण की जन्म-भूमि वृन्दावन में निवास करूँ?" अपने कौटुम्बिक बन्धनों को छोड़ और प्रत्येक से अपना सम्बन्ध तोड़कर उस परम रमणीय नगर—हिन्दुस्तान के जेरूसलम—वृन्दावन का सेवन करना क्या उसके लिए उचित था?

उस स्त्री के साथ उसका शिशु पौत्र था। महात्मा ने उत्तर दिया—"ज़रा ध्यान दो, ज़रा विचारो तो, इस छोटे शिशु के नेत्रों में से तुम्हारी ओर कौन देख रहा है? इस बालक के शरीर में कौन सी शक्ति, कौन सी चेतनता तथा कौन सी प्रभुता है, जो इसके रोम-रोम से तुम्हारी ओर देख रही है?" स्त्री ने उत्तर दिया—"यह अवश्य ईश्वर ही होगा।

इस प्यारे छोटे-से शिशु के चित्त में लोभ या दुष्टता का लेश-मात्र भी नहीं है। यह प्यारा शिशु बिल्कुल निष्पाप और पवित्र है। जब यह रोता है, तो इसके रुदन में परमात्मा का स्वर होता है, और कुछ नहीं।" फिर महात्मा ने कहा "जब तुम वृन्दावन जाओगी, तब भारत के उस जेरूसलम में तुम्हें कृष्ण की एक प्रतिमा से लग्न लगानी होगी, भगवान की उस प्रतिमा में तुम्हें भगवान को पूजना होगा। जिस प्रतिमा का तुम्हें भारत के जेरूसलम रूपी वृन्दावन में दर्शन होगा, क्या इस बालक की देह उतनी ही अच्छी कृष्ण की मूर्ति नहीं है?" वृद्धा कुछ चकित हो गई, और विचार तथा मनन करने के बाद वह इस परिणाम पर पहुँची कि "बिना किसी हानि के उस बालक को कृष्ण का अवतार मानकर मैं उसके शरीर द्वारा ईश्वर की पूजा कर सकती हूँ, क्योंकि ईश्वर ही वह है, जो उस बालक के नेत्रों में से देखता है, ईश्वर ही वह है, जो उस बालक को शक्ति व बल देता है, ईश्वर ही वह है, जो बालक के कान में से सुनता है, ईश्वर ही वह है, जो बालक के केशों को बढ़ाता है, ईश्वर ही वह है, जो उस बालक के शरीर के प्रत्येक रोम में से व्यापार करता है; यह बालक स्वयं प्रभु है।"

महात्मा के उपदेशानुसार वृद्धा को अब अनिवार्य हो गया कि वह इस बालक को अपना पौत्र न समझे, किसी रीति से अपना सम्बन्धी नहीं, बल्कि ईश्वर समझे। और इस प्रकार उसके साथ सब पारिवारिक तथा सांसारिक सम्बन्ध तोड़ डाले, केवल ईश्वरीय वा ईश्वरत्व का सम्बन्ध बनाए रक्खे। यही त्याग की विधि है।

त्याग का अर्थ वैराग्य वा वानप्रस्थपना नहीं है। त्याग का अर्थ प्रत्येक वस्तु को पवित्र बनाना है। बालक-त्याग का अर्थ

बालक वा पौत्र के साथ सभी सम्बन्धों का तोड़ना नहीं, बल्कि उसे ईश्वर समझना है। प्रत्येक वस्तु में परमात्मदर्शन करना ही वेदान्त के अनुसार त्याग है।

ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥ १॥
(ईशावास्योपनिषद्)

भावार्थः—जो कुछ दीखे जगत् में, सब ईश्वर से ढाँप।
करो चैन इस त्याग से, धन-लालच से काँप॥ १॥

वेदान्त आपको पति, पत्नी तथा अन्य सम्बन्धियों को त्यागने को कहता है। वेदान्त कहता है कि पत्नी से पत्नी का नाता तोड़ दो, उससे पत्नी-भाव त्याग दो, किन्तु उसमें अपना शुद्ध आत्मा वा परमात्मा स्वरूप देखो। शत्रुओं को शत्रु रूप से त्याग दो, उनमें ईश्वर देखो; मित्रों को मित्र रूप से त्याग दो, और उनमें ईश्वरत्व वा ब्रह्मत्व का अनुभव करो।

स्वार्थ-पूर्ण व्यक्तित्व के सभी बन्धनों का त्याग करो। प्रत्येक प्राणी व पदार्थ में ईश्वरत्व का अनुभव करो, सबमें विभु का दर्शन करो। प्रत्येक हिन्दू दम्पति (स्त्री-पुरुष) को धर्म-शास्त्र यों ही रहने की आज्ञा देता है। धर्म-शास्त्र के नियमानुसार, जिनको राम अपने गृहस्थ-आश्रम में व्यवहार में लाता था, पत्नी नित्य प्रातःकाल सवेरे जागती थी। और जब राम ध्यान में लीन होता, जब राम परमात्मा का अनुभव वा साक्षात्कार करता, जब वह परमात्मा में निमग्न होता, वा जब वह शरीर और मन के परे होता, जब वह मधुर अमृतत्व-सुधा का पान करता होता, तब उसकी पत्नी निकट आती, और जिस प्रकार रोमनकैथोलिक अपनी मूर्तियों की पूजा करते हैं, उसी प्रकार देह विस्मरण कर उसकी पत्नी राम पर दृष्टि डालती। यहाँ जैसे राम अपने शरीर

को भूल जाता है, इस भौतिकता के परे जा पहुँचता है, और ईश्वर में लीन हो जाता है, वैसे ही पत्नी राम में ईश्वर और उसकी विभूति का दर्शन करती, और कुछ न देखती। इस प्रकार राम के शरीर से कुछ दूर बैठकर वह राम के ललाट पर अपनी दृष्टि जमाती। अधिक उन्नत न होने के कारण वह राम के शरीर का ध्यान करती, और इस प्रकार 'ॐ' का उच्चारण करती हुई अपने ध्यान में राम की प्रतिमा को ऐसे ज़ोर से रखती कि अन्य सब विचार निर्मूल होजाते, और वह अपनी देह की सुध भी नितान्त भूल जाती। वह अपने को राम के शरीर में निमग्न वा परिणत हुई अनुभव करती, पर उसके आत्मा के विषय क्या देखती? उसे स्पष्ट ऐसा प्रतीत और अनुभव होता कि उसका आत्मा राम का आत्मा है। वह यही अनुभव करती कि राम समाधिस्थ और ब्रह्माकार वृत्ति में लीन नहीं, वरन् मैं ही ब्रह्माकार वृत्ति में निमग्न हूँ। राम का ध्यान उसका ध्यान होता, और वह समस्त विश्व के साथ तादात्म्य अनुभव करती; उस समय उसे ऐसा प्रतीत और अनुभव होता कि मैं ही सारे संसार की सार और आत्मा हूँ। इस रीति से मानों वह राम की सहायक और राम उसका सहायक होता था। अब यदि आप पूछें कि स्त्री किस प्रकार सहायक हो सकती है? जब स्त्री अपने पति को ईश्वर समझती है, जब ऐसे विचार और ऐसे विचारों के प्रवाह उसके पति को ईश्वर बनाने लगते हैं, तब क्या उसकी मानसिक शक्ति और सामर्थ्य, जो इस ओर प्रवाहित हैं, उसके पति को साक्षात् ईश्वर नहीं बना देंगी? क्या इस रीति से पति को सहायता न मिलेगी कि वह अपने शुद्ध आत्मा को परमात्मा अनुभव कर सके? अवश्य मिलेगी।

सभी ईसाई वैज्ञानिक लोग अपने अनुभव से जानते हैं कि जैसा हम चाहें, वैसा अनुभव हम किसी भी मनुष्य को करा सकते हैं।

कल्पना करो कि यहाँ एक स्त्री (पत्नी) है, जो सदा ऐसे दिव्य विचार भेजती रहती है, जो सदा ऐसा विचार करती है कि "मेरा पति परमेश्वर है।" उसके ये विचार आत्म-साक्षात्कार करने में पति के सहायक होते हैं। इसी प्रकार जब पति परमात्मा के साथ अपनी एकता अनुभव कर लेता है, तो पत्नी को सहायता मिलती है। अहा! कैसा आध्यात्मिक विवाह है! अहा! कैसा उत्तम मिलाप है!! दोनों परस्पर सहायता करते और सहायता पाते हैं। ऐसे आध्यात्मिक मिलाप पर निर्बंधित विवाह और प्रीति जगत् में अत्यंत सुखमय होते हैं। मुख के वर्ण पर, मुखरेखा पर, आकार पर वा शारीरिक लावण्य पर आसक्ति के कारण से होनेवाले वैवाहिक सम्बन्ध अन्त में बड़े हानिकारक और बड़े दुःखदायक होते हैं। ऐसे विवाह हृदय-वेदना, शोक-चिन्ता और अन्ततः दुःख उत्पन्न करते हैं।

जिस विवाह में शारीरिक सुन्दरता वा मुँह के रूप-रंग की कोई गिनती नहीं, अपितु जो अन्तरात्मा को ही देखता है, और जो केवल आध्यात्मिक मिलापजन्य है, वही विवाह निरापद् (आपद्-भय-मुक्त) और चिर-स्थायी होता है। केवल ऐसे ही विवाह सुख एवं आनन्द देनेवाले हो सकते हैं।

एक बार एक स्त्री ने महात्मा के पास जाकर पूछाः—"महाराज! कुछ मास हुए मेरा पति मर गया है। बतलाइये उसके उद्धार के लिए मैं क्या करूँ?" एक दूसरे सज्जन आकर बोले कि "मेरा इकलौता पुत्र मर गया है। उसका वियोग असह्य है; और इसीलिए मैं आत्मघात करने जा रहा हूँ।" तीसरे ने

कहा—"मेरी स्त्री मुझ से सदा के लिए बिछुड़ गई है, अब मैं जीना व्यर्थ समझता हूँ।" महात्मा ने इन सबको क्या उत्तर दिया ?

वह स्त्री बहुत ही हताश थी और अपने पति का उद्धार करने के लिए भी अतीव उत्सुक थी। अतः महात्मा ने कहा— "तुम अपने पति का उद्धार कर सकती हो, तुम्हें हताश होने की आवश्यकता नहीं। तुम मेरे उपदेशानुसार चल सकती हो। प्रतिदिन जब तुम्हारे हृदय में निराशा उत्पन्न होने लगे, अथवा जिस समय तुमको अपने पतिदेव का ध्यान उत्पन्न हो आवे, उसी समय तुम झट बैठ जाओ, अपनी आँखें बन्द कर लो, और अपने मन में पति के शरीर की कल्पना करो। तुम जानती हो कि मनुष्य की प्रिय वस्तु उसके ध्यान में तुरन्त उपस्थित हो आती है। जब वह चित्र वा उसका शरीर तुम्हारे मन के सामने आ जावे, तब तुम ज़रा भी चिन्तित वा दुःखित न होना, जरा भी रोना-धोना नहीं। रो-रो कर आँसू बहाने से तुम्हारा पति पृथ्वी की ममता में पड़ जावेगा, इस प्रकार तुम उसे संसार के मोह-बन्धन में बाँध दोगी, और तुम्हारा कृत्य नीच और बिल्कुल उलटा हो जायगा। तुम्हें उसकी अवनति का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। तुम अपने पति के परलोक का चिन्तन कर सकती हो; तुम उन्हें मृतक नहीं समझ सकती हो, (क्योंकि नेत्र बन्द करने से तुम्हारे पति का चित्र तुम्हें स्पष्टतया दीखता है), मानों वह जीवित है। जब वह चित्र उपस्थित हो जाय, तब वारंवार यही भावना करो, यही निश्चय करो, यही अनुभव करो कि 'वह ईश्वर है।' उसको ऐसा कहो, समझाओ, उपदेश दो, वारंवार कहो, उसके प्रति यही विचार प्रवाहित करो कि 'तुम ईश्वर हो, प्रभू हो, जगदीश हो ; तुम्हारे चित्र में, तुम्हारे शरीर में, तुम्हारी मूर्ति में यह परमात्मा ही मुझे भासित हो रहा है।'

"जिस प्रकार जब हम टेलीफ़ोन-यन्त्र के पास जाते हैं, और उससे कान लगाते हैं, तब हम कुछ सुनते हैं, उस समय हमें जो कुछ आवाज़ सुनाई देती है, वह हम जानते हैं कि उस लोहे के यन्त्र की नहीं, वरन उस दृश्य के पीछे वा यन्त्र की दूसरी ओर पर खड़े अपने मित्र की होती है। इसी प्रकार जब तुम अपने सामने अपने स्वर्गीय पति के चित्र को देखो, तो यह निश्चय करो कि उस चित्र के पीछे (अन्तर्गत) परमात्मा ही है। उसे सम्बोधन कर कहो, 'तुम प्रभु हो, परमेश्वर हो।' इसी रीति से तुम अपने स्वर्गीय पति का उद्धार कर सकती हो।"

जब हम अपने परलोकगत सम्बन्धियों का उद्धार कर सकते हैं, उनकी उन्नति और सहायता कर सकते हैं, तो उसी तरीक़े से निस्सन्देह हम अपने जीवित मित्रों का भी उद्धार, उन्नति और सहायता कर सकते हैं।

जब पति-पत्नी अपने जीवन को इस प्रकार व्यतीत करते हैं, तब उनका मिलाप (संयोग) केवल आध्यात्मिक उन्नति का साधन और एक दूसरे के सुख का कारण हो जाता है। कदाचित् तुम कहो कि हर जगह ही पति अपनी स्त्री के सुख को बढ़ाना चाहता है; जिससे उसे सुख हो, वह सब कुछ उसके लिए प्रस्तुत करना चाहता है; और लोग अज्ञान के कारण समझते हैं कि हमने ठीक राह पकड़ी है; वे समझते हैं कि विषय-तृष्णा को पूरी करना और इस प्रकार लोगों को सुखी बनाना ही उपयुक्त मार्ग है; पर ऐसी बात नहीं है। इन तरीक़ों से तुम अपने को और दूसरों को केवल नीचे गिराते हो। प्रकृति का नियम है कि जो मुझे सुखी करता है, वह तुम्हें अवश्य सुखी बनाएगा। जो मेरे लिए अच्छा है, वह तुम्हारे लिए भी अच्छा है। यदि मैं आगे बढ़ता हूँ, तो तुम भी आगे बढ़ोगे ही, मेरा उत्कर्ष तुम्हारा उत्कर्ष है। विना सारे संसार

को बीमार डाले मैं स्वयं बीमार नहीं पड़ सकता। अपने शरीर को स्वस्थ रखने से मैं समस्त विश्व को स्वस्थ रखता हूँ। आघात और प्रत्याघात बराबर और परस्पर विरोधी होते हैं। Action and Reaction are equal and opposite.

यदि मैं तुमको वास्तव में सुखी रख रहा हूँ, तो मुझे भी सुखी अवश्य होना चाहिए। किन्तु लोग समझते हैं कि किसी मनुष्य की रुचि के अनुसार कार्य्य करने से उसे सुख मिलता है। पर ऐसा नहीं है। उलटा इससे निराशा और घृणा उत्पन्न होती है। ऐसे कामों से दोनों दुःख उठाते हैं, दोनों ही अपने को हतभाग्य, हताश और दुःखित समझते हैं। उनके हृदय में चिन्ता और भय भरे रहते हैं।

परस्पर सुखी बनाने के मार्ग की यह अनभिज्ञता वा अज्ञानता ही है, जो असल में इन चिन्ताओं और दुःखों की जड़ है। यदि तुम एक दूसरे को सुखी करना चाहते हो, तो तुम्हें अपने क्षुद्र स्वार्थी भाव को विशाल बनाना होगा। तुम्हें अपने मित्र के सच्चे भावों का अनुभव करना होगा। अपनी पत्नी को प्रचण्ड बल अर्पित करना होगा, प्रचण्ड बल उसमें अवश्य प्रतिबिम्बित होना चाहिए। परस्पर एक दूसरे को तुम्हें ज्ञान देना होगा, इस प्रकार तुम अपने साथियों को सुखी बना सकोगे और अन्त में स्वयं भी सुखी बनोगे। यदि तुम सच्चे हितैषी हो, तो तुम उन्हें ऐसी वस्तु ज़रूर दो, जो सब सुख की असल जड़ है। और वे वस्तुएँ ज्ञान और आध्यात्मिक स्वतन्त्रता हैं। इन वस्तुओं को अपने संगियों को दो। प्रत्येक पति का यह धर्म है कि वह अपनी पत्नी को शिक्षा दे। जो पति अपनी स्त्री का शिक्षक नहीं, वा जो पत्नी अपने पति के उन्नत और शिक्षित होने में कारण नहीं बनती, और जिससे पति आत्म-स्वतंत्रता एवं ज्ञान नहीं प्राप्त करता,

वह पत्नी पत्नी होने के योग्य बिल्कुल नहीं । ऐसी स्त्री पापिनी है। इसी तरह वह पति भी पापी है, ऐसा पापी कि जो अपनी स्त्री के लिए अपने घर को विश्वविद्यालय (शिक्षा का स्थान) नहीं बनाता। एक दूसरे को सुखी बनाने का वास्तव में यही मार्ग है।

ईसा (क्राइस्ट) के अपौरुषेय गर्भाधान का राम यों समाधान करता है:—ईसा की माता 'मेरी' बड़ी शुद्ध, पवित्र और ईश्वर-भक्त थी। वह एक ऐसी स्त्री थी, जो कुछ हद तक साक्षात्कार कर चुकी थी, जो दिव्य दृष्टि-युक्त थी, वह परमात्मा से अभिन्न थी। और ज़करिया नाम का मनुष्य (तत्पश्चात् जोसेफ़, उसको कलंक से बचाने के लिए ज़करिया की जगह जा खड़ा हुआ), अथवा ज़करिया का नाम लेना यदि तुम्हें नापसन्द हो, तो हम जोज़ेफ़ ही कहेंगे, जोज़ेफ भी अति शुद्ध और पवित्र पुरुष था, वह भी सबमें आत्म-साक्षात्कार कर चुका था। उसने परमात्मा का अनुभव किया हुआ था। दोनों नवयुवक और पक्की आयु के थे। ऐसा हुआ कि जब 'मेरी' (अर्थात् 'मेरी' का शरीर) और उसका पति दोनों आत्म-निमग्न थे, जब दोनों पूर्ण समाहित चित्त थे, उसी समय 'मेरी' ने गर्भ धारण किया, उसी समय गर्भवती हो गई। पश्चात् वह इस घटना को बिल्कुल ही भूल गई।

प्रायः ऐसा होता है कि लड़के रात्रि को जगाए जाते हैं, और उनको दूध या मिठाई आदि खाने को दी जाती है। पर दूसरे दिन उनसे यदि पूछा जाय कि गत रात को जो दूध या मिठाई तुम्हें दी गई थी, वह तुमने पाई या नहीं? तो लड़का प्रायः यही कहेगा कि "ओ! मैंने नहीं पाई, तुमने मुझे कोई ऐसी चीज नहीं दी, तुमने सब बहन को

दिया होगा।" यह सत्य है कि लड़के ने रात्रि में दूध या मिठाई पाई, बच्चा दूध-पान करते समय या मिठाई खाते समय ज्ञानातीत अवस्था (एक प्रकार की तुरीयावस्था) में था, उसका दिमाग़ किसी दूसरी जगह था। जैसे नींद में चलनेवाले मनुष्य रात्रि में चलते फिरते हैं और अजीब अजीब काम भी कर लेते हैं, पर जब इसके विषय में प्रातःकाल उनसे पूछा जाता है, तो उन्हें रात की बातों का ध्यान ही नहीं रहता। वैसे ही ईसा के अपौरुषेय जन्म के विषय में राम का यह कथन है कि जब 'जोज़फ़' और 'मेरी' दोनों तुरीयावस्था में, आत्म-साक्षात्कार की दशा में, निमग्न थे—नींद में चलनेवालों की अवस्था में नहीं—तब 'मेरी' 'जकरिया' या 'जोज़फ़' से गर्भवती हुई। वह ऐसी अवस्था थी कि जिसमें इस क्षुद्र देह का भान नहीं रहता कि जब तुम दिव्य शरीर में रहते हो। उसी स्थिति में वे दोनों हम-बिस्तर हुए (संभोग किया), और 'मेरी' को गर्भ धारण हुआ; पर जब बाद में उससे गर्भ का कारण पूछा गया, तब वह कुछ भी न कह सकी, और ईसाई लोग कहने लग गए कि उसे पवित्र आत्मा (Holy Ghost) द्वारा गर्भाधान हुआ, जिसका तात्पर्य्य यह है कि ईश्वर-ज्ञान-संपन्न होकर, 'पवित्र आत्मा से व्याप्त होकर, एवं ब्रह्माकार वृत्ति में लीन होजाने पर' उसने गर्भ धारण किया। और इस प्रकार क्राइस्ट 'पवित्र आत्मा' (Holy Ghost) का पुत्र अभिहित हुआ। प्रकृति के नियम जैसे आज हैं, वैसे उस समय भी थे, पर तो भी हम लोग कह सकते हैं कि ईसा 'पवित्र आत्मा' (Holy Ghost) का पुत्र है।

इसी से राम कहता है कि इसी आचरण के अनुकूल सारे संसार को चलना चाहिये, ताकि ईसा मसीह के समान

अन्य अनेक लोग उत्पन्न हो सकें। यदि तुम मिल्टन, शेक्सपियर, क्राइस्ट ऐसे महापुरुषों को उत्पन्न करने की इच्छा रखते हो, यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारी सन्तान सारे संसार अथवा अपने परिवार का हित करनेवाली हो, तो अपने अन्तःकरण को शुद्ध करो, उसकी अधोगति न होने दो। राम तुम्हें अपने पुत्र-कलत्र के साथ इस प्रकार का जीवन बिताने को कहता है कि जो तुमको क्षुद्र, स्वार्थी भावनाओं से परे रक्खे, जो जीवन तुम्हें बराबर ईश्वर में, भगवान् में, पवित्र आत्मा में लीन करे, सबके साथ तुम्हें एक करे। यदि पति-पत्नी दोनों ऐसे उच्च विचार, ऐसी पुण्यमयी शक्ति और उच्च भावों से संपन्न होंगे, तो उनकी सन्तान, ऐसे पिता-माता की सन्तति भी क्राइस्ट होगी। यदि तुम चाहो, तो इस ज़माने में भी ईसा मसीह पैदा हो सकते हैं।

घर को प्रीति की हद नहीं, बल्कि प्रीति का केन्द्र बनाना चाहिये। लोग अपने घर को प्रीति की सीमा बना लेते हैं, ताकि उनका प्रेम और प्रणय उस मर्य्यादा के बाहर न जा सके। गृह और पुत्र-कलत्र को प्रीति का केन्द्र बनाना चाहिये, जिससे प्रेम की किरणें सब दिशाओं में छिटक सकें। तुम्हारा प्रेम वहीं सीमाबद्ध नहीं होना चाहिये। तुम्हें अपनी पत्नी को अपने प्रेम और प्रीति की सीमा ही नहीं बना देना चाहिए। तुम अपने स्वार्थी विचारों द्वारा अपने को और निज पत्नी को—दोनों को—नीचे गिराते हो, और इस प्रकार अपना व उसका अर्थात् दोनों का विनाश करते हो। पत्नी तुमको प्रीति करना सिखलाती है, और उस प्रीति को शुद्ध करने से, उस प्रीति को सारे विश्व की प्रीति बना देने से, उस बाह्य रूप, रंग, चित्र और आकार की प्रीति को परम तत्त्व वा परमात्मा की प्रीति बना देने से, यदि तुम उस प्रीति के साथ प्रत्येक पदार्थ

के निकट जाते हो, और उसी से तृण, पुष्प, नदी, पहाड़ और खाइयों पर दृष्टि डालते हो, तब समझ लो कि तुम सारे संसार के साथ अभेद हो चुके।

पत्नी तुम्हें अपनी स्थिति समस्त जगत् के साथ एक समान स्थापन करने को सिखाने के लिए है; जगत् से तुम्हारा समान सम्बन्ध तोड़ने के लिए वह नहीं है। अब राम आपको कुछ आध्यात्मिक नियम बतलाता है। ये आध्यात्मिक नियम इस संसार की सर्व प्रकार की प्रीतियों का शासन करते हैं। यदि राम उन्हें न भी बतलाए, तो भी आप उनका अनुभव कर रहे हो और सदा करते रहोगे, किन्तु कह देने से आप सावधान हो जाओगे। जैसे गाड़ीवान को यह विदित न होने से कि आगे रास्ते में क्या है और गाड़ी रुकावट (गति कुंठन-स्थान, Stumbling block) को टपती है, तो सारी गाड़ी हिल जाती है, और बड़ा धक्का लगता है; पर यदि उसे सावधान कर दो, यदि उसे आनेवाली रोक की सूचना दे दो, तो वह सावधानी से उस गाड़ी को रोक से बचा ले जाता है। वैसे ही आपके सांसारिक व्यवहारों में भी अनेक विघ्न-बाधाएँ, अनेक आपदाएं, अनेक असफलताएँ और मानसी व्यथाएँ आती हैं। पर इन मर्म वेदनाओं, इन विपत्तियों, असफलताओं एवं निराशाओं की सम्भावना कब समझनी चाहिए ? यह राम आपको बताता है। और जब आप यह जान लोगे, तो फिर आपको दुःख न होगा। उपाय बहुत सरल है, और जहाँ तक हो सकेगा, आप उन विपत्तियों से बचोगे। गणित-शास्त्र के नियम के समान यह नियम भी सत्य है। किसी भी भौतिक तथ्य के समान भी यह क़ानून सत्य है। "जब कभी कोई स्त्री या पुरुष किसी व्यक्ति, मूर्ति वा किसी भौतिक पदार्थ से प्रीति

करने लगता है, तब कुछ समय तक तो उस जड़ पदार्थ का उपभोग उसे करने को मिलता है, पर जैसे ही वह वस्तु उसके अन्तःकरण में घर कर जाती है, जैसे ही उसका जीवन तक उससे व्याप्त (रंजित) हो जाता है; वैसे ही—ठीक उसी समय—वह वस्तु वहाँ से हटा दी जाती है।" यही नियम (विधान) है। कोई इससे बच नहीं सकता। ऐसी कोई शक्ति, कोई सत्ता नहीं, जो ऐसी घटना को रोक सके, वा उसका निवारण कर सके। प्राचीनतम काल से लेकर आज तक इस नियम का कभी व्यतिक्रम हुआ ही नहीं है।

जहाँ किसी वस्तु के साथ आपने चित्त जोड़ा, किसी नाम या व्यक्ति से ममता की, किसी महान् पुरुष का आश्रय लिया, उस पर विश्वास किया, उन पर भरोसा कर अपना भार डाला, तो झट वह आधारस्तम्भ खींच लिया गया और आप धम से नीचे जा गिरे। आप किसी एक मेज़ के सहारे खड़े हो जाओ, यदि उस मेज़ को खींच लिया जाय, तो आप गिर पड़ते हो, आपको चोट लगती है। यह क्या शिक्षा देता है? यह हमें शिक्षा देता है कि इन स्थूल भौतिक पदार्थों के आश्रय हमें अपनी प्रीति नहीं बनाए रखना चाहिए। इन जड़ पदार्थों को यद्यपि अपनी प्रीति का पात्र तो नहीं बनाना चाहिये, किन्तु तो भी जड़ पदार्थों के विना हमारे हृदय में प्रेम का संचार भी नहीं हो सकता। इन जड़ पदार्थों के ही द्वारा हम प्रीति करना सीखते हैं। पर जब एक बार प्रीति का पाठ पढ़ चुकते हैं, तब प्रकृति हमको यही उपदेश देती है कि यह प्रीति जड़ वस्तुओं में बाँध कर नहीं रक्खी जा सकती। उस प्रीति का प्रसार होना चाहिये, उसे अन्तरात्मा तक पहुँचना चाहिये। पत्नी के चरणों में बैठकर जिस प्रीति की शिक्षा पाई है, उसे जो अन्तरात्मा को अर्पण नहीं करता, उस मनुष्य को धिक्कार

है। यदि आप ऐसा नहीं करते, तो आप नरकगामी होगे, और आपको दुःख मिलेगा। पति-पत्नी दोनों को एक साथ ही उन्नति करनी चाहिये। और जब कि पत्नी हमें प्रीति करना सिखलाती है, तो जो प्रीति हम सीखते हैं, उस प्रीति को इस शरीर में ही स्थापित न कर रखना चाहिये, किन्तु समस्त विश्व को, प्रत्येक प्राणी को, अर्पित करना चाहिये।

सांसारिक सुख रूपी क्षेत्र में बोए हुए बीज में आध्यात्मिक उन्नति अंकुरित नहीं होती। इसलिए जब आपकी प्रीति का बीज पति या पत्नी के पार्थिव क्षेत्र (शरीर) में आरोपित होता है, तब वह भौतिक शरीर में आरोपित प्रीति का बीज, मानों ज़मीन में डालकर, मिट्टी से ढक दिया होता है; पर जब वह प्रीति रूपी बीज नष्ट होकर बाहर प्रस्फुटित होता है और खुली वायु में सुफल फलता है, तभी वह प्रीति श्रेयस्कर होती है; अतः पति वा पत्नी में वा अन्य किसी भौतिक पदार्थ में आरोपित प्रीति रूपी बीज को अवश्य नष्ट होना चाहिये, और तब खुली वायु में उगकर फलना चाहिये। अतएव सांसारिक पदार्थ निमित्त जितनी कुछ प्रीति है, उसके सम्बन्ध में सदा प्रत्यक्ष असफलता ही दीख पड़ेगी। जब वह (भौतिक पदार्थ में) बोया हुआ (प्रीति) बीज नष्ट होता है, प्रकृति का नियम है कि वही (प्रेम रूपी) बीज तुम्हें एक-न-एक दिन आत्मानुभव अवश्य करा देता है। यह सच है कि "A man who never loved can never realize God". जिसने कभी प्रीति ही नहीं की, वह ईश्वर को नहीं पा सकता।

साधारणतः कहा जाता है कि धर्म को सांसारिक प्रीति से कुछ सरोकार है नहीं। पर राम कहता है कि सरोकार है। सांसारिक प्रीति का सदुपयोग आपको ईश्वरानुभव कराता

है। "बाहरी सुख तो (आत्मानुभव के मार्ग में जो दर्द वा पीड़ा मिलती है) उस पीड़ा के भी बराबर नहीं।" वस्तुतः वही शुद्ध प्रीति आपको ईश्वरानुराग कराती है, वह शुद्ध प्रेम ईश्वर का ही पर्यायवाचक शब्द (Synonym) है।

वैवाहिक सम्बन्ध को उच्च बनाना ही पति का उद्देश्य होना चाहिये, न कि द्रव्योपार्जन, धनसञ्चय और पारिवारिक सम्बन्ध का दुरुपयोग। जो पदार्थ वास्तव में सुख के साधन थे, वे ही दुःख देने का परिणाम बनाए जाते हैं। जो साधन-मात्र है, उसे साध्य मत बनाओ। धन-दौलत तो केवल शीत-उष्ण से बचाने, क्षुधा-तृषा को निवारण करने और निर्विघ्न एकान्त स्थल में हिफ़ाजत से रहने का साधन-मात्र होना चाहिए। अब विचारो कि क्षुधा-पिपासा दूर करने के लिए एवं सर्दी न हो, इसके वास्ते कपड़े लाने के लिए कितने थोड़े द्रव्य की आवश्यकता है।

लोग कहते हैं, "हमें सर्दी पकड़ती है।" पर सर्दी असल में आपको नहीं पकड़ती। आप ही सर्दी को पकड़ते हैं। रोग आपके पास नहीं आता, आप ही रोग के पीछे पड़कर उसे जा पकड़ते हैं। यह कहना बिल्कुल ठीक है। सर्दी से बचने के लिये वस्त्र अवश्य पहनना चाहिए, पर यह स्मरण रहे कि वस्त्र केवल शरीर-रक्षा के लिये और अपने आपको सर्दी से बचाने के लिए हों। इसलिए इस काम के वास्ते गाढ़ा और सस्ता वस्त्र भी हो सकता है, उसके बहुमूल्य होने की आवश्यकता नहीं। आधुनिक चमकीले और आलीशान मकानों के बदले हम छोटे-छोटे घरों में रह सकते हैं। अन्य लोगों अथवा जंगली जानवरों के हमले से बचने के लिये हमें साफ़-सुथरे छोटे-छोटे मकान ही काफ़ी हैं। अति सुन्दर मकानों की कोई आवश्यकता नहीं है।

लोगों ने अपने घरों की शोभा और सौन्दर्य्य को स्वयमेव अपने जीवन का एक उच्च उद्देश्य बना लिया है, दूसरों को कपड़ा पहनाने को सुन्दरता, खाने-पीने की चीज़ों की जटिलता, यह स्वयं एक उद्देश्य और इष्ट मान लिया है, नहीं-नहीं, उद्देश्य और इष्ट ही नहीं, बल्कि यही साधन-साध्य-मात्र समझ लिए हैं।

संसार के इतिहास में हम पाते हैं कि कई लोग झोपड़ों में, छोटे-छोटे मकानों में रहते थे। उनके कपड़े बहुत ही मामूली थे, और भोजन भी उन्हें मामूली मिलता था। पर तो भी वे लोग जगत्-विख्यात शूरवीर थे।

आप प्लेटो के विषय में जानते हो, प्लेटो के फ़ारसी नाम का अर्थ "पीपा वा पेटी में रहनेवाला" है। प्लेटो का घर 'पीपा' वा 'पेटी' था, और संसार से उपरान्त (अलग) होकर वह इसी मकान में जाकर रहता था।

ज़रा सोचो तो, जो लोग ऐसी दरिद्रता में रहते थे, ऐसे सादे ढंग से रहते थे, उन्होंने संसार के लिए कितना उपकार किया है।

एवन (Avon) नदी के तट पर स्ट्रैफ़ोर्ड (Strafford) ग्राम में शेक्सपियर का घर कोई भव्य भवन नहीं था। पहिले वह बहुत निर्धन था, पर पीछे उसने धन इकट्ठा किया। जीवन की प्रथम अवस्था में वह नाटक के दर्शकों की देख-रेख तथा उनके घोड़ों की ख़बरदारी किया करता था।

'न्यूटन' भी निर्धन मनुष्य था। पुस्तक ख़रीदने के लिए या किसी दरिद्र को कुछ देने के लिए जब उसके पास पैसे न होते, तो वह बहुत शोक प्रकट करता था; परन्तु किसी और अवसर पर वह अपनी ग़रीबी से कभी शोकातुर नहीं होता था। ज़रा देखिए, जिन्हें सदा मोटा खाना और मोटा

पहनना पड़ता था, उन्होंने ही संसार के लिये इतना उपकार किया है। भारतवर्ष के हिन्दू लोग पहिले जंगली कन्द-मूल पर ही गुज़ारा करते थे, पर इन्हीं लोगों ने जगत् को सर्व-श्रेष्ठ तत्त्वज्ञान, वेदान्त (मोक्ष और भक्ति का दर्शन-शास्त्र) प्रदान किया है।

अपने को श्रेष्ठ और सत्पुरुष बनाने का प्रयत्न करो। भव्य भवन और सुन्दर सदन बनाने में अपनी शक्ति मत खर्चो। अपने विचार नष्ट न करो। बहुतेरे गृह बड़े ऊँचे और आलीशान हैं, पर उनमें रहनेवाले मनुष्य बिल्कुल ही ठिगने और क्षुद्र हैं, भारत में अनेक विशाल क़बरें हैं, पर जानते हो, उनके भीतर क्या है? केवल सड़ी लाशें, रींगनेवाले कीड़े और साँप।

बड़े-बड़े मकान बनाने और उनमें चमकदार चीज़ों के सजाने में अपनी शक्ति का नाश कर अपने को, अपनी पत्नी और अपने मित्रों को बड़ा बनाने का यत्न मत करो। यदि आप इस विचार को ग्रहण कर लोगे, इसे हृदयंगम कर लोगे, इसे जान और समझ लोगे कि जीवन का एकमात्र आदर्श और उद्देश्य शक्ति का दुरुपयोग और धन का संचय करना नहीं है, वरन् भीतरी शक्तियों का विकास करना, ईश्वरत्व और मोक्ष प्राप्ति के लिए आत्म-शिक्षण करना है। यदि आप इसका अनुभव करके इसी ओर अपनी सारी शक्तियों को लगाओगे, तो पारिवारिक बन्धन कभी आपके लिए विघ्न रूप न होंगे।

कुछ लोग कहते हैं, हम तो सादी रीति से रह सकते हैं, पर हमारे मेहमान भी तो हैं। यदि हम लोग कमण्डलु आदि धारण करें, तो वे क्या कहेंगे।

ऐ मेरे प्यारे! तुम अपने लिए जीते हो, वा दूसरों के

लिए ? अपने लिए जीओ। तुम्हारे जीवन में दूसरों को दख़ल देने की आवश्यकता नहीं है। अपना भोजन करते समय तुम भोजन करते हो या वे ? तुम अपना खाना आप पचाते हो वा तुम्हारे लिए वे पचाते हैं ? देखते समय तुम्हारी अपनी आँखों के स्नायु तुम्हें सहायता देते हैं, या उनकी आँखों के ? अपने गुरुत्वाकर्षण का केन्द्र (centre of gravity) तुम आप बनो। स्वाश्रयी हो। ज़रा अपने भीतर के आधार वा अधिष्ठान को पा लो, और मेहमानों के मत वा विचारों की परवाह मत करो। भोजनों और बिछावनों को अतिथि-सत्कार का मूल-मंत्र न बनाओ। लोग समझते हैं कि मेहमानों को स्वादिष्ठ भोजन और सुन्दर पलंग नहीं देंगे, तो हम पूरे अतिथि-सेवी न होंगे। इस प्रकार घर का स्वामी इन चीज़ों का एक अनुबंध (appendage)-मात्र रह जाता है। कृपा करके अपने को द्रव्य का उपकरण (appendage) न बनाओ, द्रव्य को ही अपना उपकरण बनाओ, अपनी शक्तियों का अनुभव करो।

ऐसा करो कि जब तुम्हारा मेहमान (अतिथि) तुम्हारे यहाँ से अपने घर को जाने लगे, तो वह स्वच्छ चित्त, उदित और समुन्नत होकर जाए। यह योजना करो कि जैसा वह अपने घर से आया है, उससे अधिक बुद्धिमान् बनकर जाए। अपने स्वजनों के प्रति अपना यही कर्तव्य समझो। अपने परिवार को सुखी करने का यही मार्ग है। इसी तरीक़े से गृहस्थी अपने कुटुम्ब को विघ्न-बाधा के स्थान पर उन्नति का सोपान बना सकता है। यदि तुम्हारा अतिथि पहिले की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान् होकर लौटता है, तो उसके खाने-पीने की अधिक परवाह न करो। उसे इनसे कुछ श्रेष्ठतर चीज़ दो; उसे ज्ञान और बुद्धि दो। उसे आपकी प्रीति का

आनन्द लूटने दो। याद रक्खो कि यदि मैं तुम्हें एक कौड़ी भी न दूं, कुछ भी शारीरिक सेवा न करूँ, केवल प्यार से, सच्चे और साफ़ दिल से तुम्हारे प्रति प्रसन्नता-भरी हँसी (Smile) दूँ, तो तुम्हारा प्रफुल्लित होना, समुन्नत होना और उछलना अनिवार्य्य है। इतने से ही तुम्हारी बड़ी सेवा हो जाती है। किसी मनुष्य को धन देना कुछ नहीं है, यह वैसा है कि पहिले पत्नी को धन देकर पीछे से त्याग देना। पत्नी को धन नहीं चाहिए, उसे प्रीति चाहिए। किसी मनुष्य को धन देकर तुम पातकी का-सा आचरण करते हो। तुम उसे धोखा देकर भुलाया चाहते हो। उसे प्रेम और ज्ञान दो, उसे स्वच्छ चित्त और समुन्नत बनाओ। यह भारी अतिथि-सत्कार है, और यही तुम्हें करना चाहिये। ऐसी ही प्रीति तुम्हें अपनी स्त्री और बच्चों के साथ रखनी चाहिये।

मांस खाने की वेदान्तिक कल्पना

प्रश्न मांस खाने के विषय में वेदान्त का मत क्या है ?

उत्तर—मांस के सम्बन्ध में लोग समझते हैं कि भारत के लोग पशुओं के प्रति दया-भाव के कारण मांस नहीं खाते थे। शायद यह ठीक हो, क्योंकि कुछ मतावलम्बी ऐसे हैं कि जो इसी कारण से मांस खाने से परहेज़ करते हैं। किन्तु कम-से-कम वेदान्ती लोग इसलिये ऐसा नहीं करते।

वेदान्त इस हेतु आपसे मांस-भक्षण से परहेज़ करने को नहीं कहता। कदापि नहीं, वेदान्ती लोग और साधारणतः स्वामी लोग मांस नहीं खाते, किन्तु उनमें मांस न खाने का कारण पशुओं पर निर्दयता न करना नहीं है। यह युक्ति वा तर्क ठीक नहीं है।

वेदान्त के अनुसार दयामात्र दुर्बलता है। आप चाहे इससे चौंक पड़ें, पर बात है ऐसी ही। दया की इस पद्धति को, जो दूसरों को प्रसन्न करने की इच्छा है, या यों कहिये कि दूसरों की इच्छाओं और तरंगों की सेवा है, तत्त्वज्ञानी ऐसा ही समझते हैं। अपने सहचरों की यह अनुकूलता करना नर-नारियों के मिथ्याभिमान के सिवाय और कुछ नहीं है, यह एक प्रकार की प्रतिमा-पूजन और दुर्बलता है। यह दया या मिथ्याभिमान, दूसरों को प्रसन्न करने की यह इच्छा, क्या समाज के लिए प्रशंसनीय है ? नहीं, ये सब अज्ञान के गुण हैं, और कुछ नहीं।

कितने पाप और भूलें करुणा के नाम से की जाती हैं? साथी को सुख देने (Congeniality) की इच्छा से कितनी भूलें हुआ करती हैं?

एक मनुष्य की कुछ ऐसे नवयुवकों की संगति हो गई कि जो खाना-पीना और मौज उड़ाना पसन्द करते थे। अस्तु, नौजवानों की टोली में से एक कहता है कि मद्य पी जाय। दूसरे साथी राज़ी हो जाते हैं, और यह नया (अजनबी) आदमी अच्छा साथी (संगी) बनने की इच्छा का शिकार होता है, और केवल उन्हें (अपने साथियों को) खुश करने के लिए शराब पीना शुरू करता है। उसकी अपनी इच्छा मद्य-पान की नहीं है, किन्तु अपने सहचरों (संगियों) को खुश करने के लिए वह उनका अनुकरण करता है। उसमें दूसरों को प्रसन्न करने की अभिलाषा है, और यह इच्छा ही उसे शराब पिलाती है। दूसरी बार यही सज्जन वैसी ही संगति में पड़ जाता है, और दूसरों को केवल प्रसन्न करने की इच्छा से शराब पीने को फिर प्रलोभित होता है। और समय-समय पर ऐसा ही करते-करते एक वह समय आ जाता है कि जब मद्य-पान के व्यसन का वह तुच्छ दास बन जाता है।

इसी तरह, केवल दूसरों को प्रसन्न करने के अभिप्राय से नारियाँ भी वह काम करती हैं, जो धीरे-धीरे उन्हें किन्हीं दुर्व्यसनों की दासी बना देता है। इसलिए वेदान्त कहता है कि दूसरों को प्रसन्न करने की यह इच्छा वास्तव में अज्ञान, दुर्बलता और मिथ्याभिमान के योग के सिवाय और कुछ नहीं है। दूसरों को प्रसन्न करने की नीयत (उद्देश्य) से कभी कुछ मत करो। जो 'नहीं' कह सकता है, वह वीर है! 'नहीं' कहने की अपनी सामर्थ्य से आपका चरित्र-बल और बहादुरी प्रकट होती है।

अब दया के सम्बन्ध में लीजिये। केवल यह समझते हुए कि दूसरों के भावों का उन्हें आदर करना चाहिए, कितने लोग अपने को नरक में रखते हैं ? राम जो कह रहा है, उसे आप चाहे दारुण वा घोर पापिष्ठ क़ानून कह लें, किन्तु यह वह क़ानून है, जिसका गुण आप एक दिन अनुभव करेंगे।

ज़रा ख़याल तो कीजिए कि इस संसार में कितने लोग केवल इसीलिए नरक भोग रहे हैं कि वे दयावान् हैं; सम्बन्धियों या सुहृज्जनों के विरुद्ध होने के कारण अथवा किसी मनुष्य का हृदय टूट जाने के भय से वे सत्य का अनुसरण करना या सत्य की आज्ञानुसार बरताव करना निर्दयता समझते हैं।

वेदान्त कहता है, आप सत्य पर इसीलिए आपत्ति करते हो कि उससे किसी का दिल टूट जायगा, तो सत्य की हत्या होने की अपेक्षा किसी व्यक्ति की मृत्यु बेहतर है। वेदान्त कहता है, "इस या उस व्यक्ति के भावों की अपेक्षा सत्य का अधिक आदर करो", क्योंकि सत्य का आदर करना वास्तव में मित्र की क़द्र करना है। उसके मिथ्याभिमान या इच्छाओं का जितना ही अधिक आदर या ध्यान करोगे, उतनी ही अधिक चेष्टा आप कर रहे हो उसके सच्चे आत्मा के वध को, जो 'सत्य' स्वरूप है। "उसके बाह्य शरीर की अपेक्षा 'सत्य' का अधिक आदर करो।"

पुनः कितने लोग ऐसे हैं, जो आत्म-सम्मान की इस कल्पना के कारण अपने लिए नरक की सृष्टि रच रहे हैं ? कैसा घोर अनर्थ समझा जाता है। 'आत्म-सम्मान' से लोग इस तुच्छ शरीर का, इस क्षुद्र व्यक्तित्व का, 'आत्म-सम्मान' समझते हैं।

माँताओं, बहनों, पिताओं, भाइयों और बच्चों के रूप में ऐ परमात्मस्वरूप ! ऐ परमेश्वर ! तू देख कि आत्म-सम्मान का

अर्थ इन तुच्छ शरीरों या व्यक्तित्व का सम्मान नहीं है, समझ ले कि आत्म-सम्मान का अर्थ है 'सत्य' का सम्मान, सच्चे स्वरूप (आत्मा) का सम्मान। जिस प्रकार के 'आत्म-सम्मान' को तुम उत्तेजना दे रहे हो, उससे 'आत्म-सम्मान' की ओट में तुम अपने सच्चे 'आत्मा' का अपमान करते हो।

जब आप ईश्वर-भावना से परिपूर्ण हो जाते हो, तब आप अपने आत्मा (स्वरूप) का सम्मान करते हो; जब आप अन्तर्गत ईश्वर के ध्यान से परिपूर्ण होते हो, तब आप आत्म-सम्मान से परिपूर्ण हो। देह की पूजा के द्वारा आप आत्महत्या कर रहे हो, आप अपने लिए गढ़ा खोद रहे हो।

मांस के विषय में वेदान्त कहता है, "अपने शरीरों से लग्न न लगाओ, अपने शरीर के मरने या जीने की चिन्ता न करो, आपके शरीर की लोग पूजा करते हैं या उस पर ढेले मारते हैं, इसकी परवाह न करो। इससे ऊपर उठो।"

एक मनुष्य इस शरीर को वस्त्र पहनाता है और दूसरा उन्हें फाड़ डालता है, इसकी कोई परवाह न होनी चाहिए।

"जब कि स्तुतिकर्त्ता और स्तुत्य, या निंदक और निंद्य (वास्तव में) एक ही हैं, तो न निन्दा है न स्तुति।"

इस दशा में, यदि आप अपने सच्चे स्वरूप (आत्मा) का अनुभव करें, यदि इस क्षुद्र शरीर का ज्ञान आपके लिए मिथ्या हो जाय, तो जहाँ तक आपका सम्बन्ध है, दूसरों के बाहरी मांस और खून का आदर ग़ायब हो जायगा।

आज राम आपके कुछ अति प्रिय अन्ध-विश्वासों को चकना-चूर कर देगा।

वेदान्त कहता है, "दूसरी मूर्तियों को आप उसी अंश तक सच्ची समझ सकते हो, जिस अंश तक आप अपनी देह-रूपी प्रतिमा को असली समझते हो।" यह नियम है। दूसरों के

शरीर या व्यक्तित्व को आप ठीक उसी मात्रा में असली समझ या ग्रहण कर सकते हो, जिस मात्रा में आप अपने व्यक्तित्व या शरीर को असली समझते हो। यह क़ानून है।

जब आप व्यक्तित्व और देह से ऊपर उठोगे तब दूसरों के शरीर या व्यक्तित्व का भाव आपके लिए मिट जायगा, वे आत्मामय (spiritualized) और अति सूक्ष्म (etherialized) बन जावेंगे, वे पहले के से स्थूल न रह जायँगे। ऐसी दशा में, जिस मनुष्य ने 'सत्य' का अनुभव कर लिया है, उसके लिए दूसरी बात यह है कि चाहे कोटियों सूर्य और नक्षत्र शून्यता में फेंक दिये जायँ, पर उसकी बलाय से। उसके लिए बकरों, भेड़ों या बैलों के मरने से क्या। कुछ नहीं, कुछ नहीं, उसके लिए इससे कोई भेद नहीं पड़ता, वह इससे ऊपर है।

दुनिया के अत्यन्त विकराल युद्ध में कृष्णजी अर्जुन के सारथी थे। वहाँ अर्जुन विषाद तथा भारी भय को प्राप्त हुआ। दया और करुणा की वृत्ति ने उसे विह्वल कर दिया। तब तो यह वीर (अर्जुन) काँपने और थर्राने लगा; दया के विचार ने उसे दबा लिया। भगवान के अवतार कृष्ण ने, दुनिया-भर के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष कृष्ण ने, केवल भारत के नहीं, किन्तु अखिल विश्व के ईसू मसीह कृष्ण ने, तब तो अर्जुन से कहा, "तुम यह शरीर नहीं हो, यह व्यक्ति तुम नहीं हो, सच्चा कर्त्ता परमेश्वर है।" कृष्ण ने उससे कहा "तुम्हारे शरीर के द्वारा परमात्मा काम कर रहा है।" कृष्ण ने उसे उपदेश देकर उसमें परमेश्वर-भावना जाग्रत् कर दी, उससे साफ़-साफ़ कह दिया कि 'असलियत में वह क्या है', उसे भय से निकाल लिया, उसे चिन्ता और दुर्बलता से छुटा दिया। उन्होंने उससे कहा कि तुम्हारा वास्तविक स्वरूप (आत्मा) अविनाशी है; कल, आज और सदा एकसाँ

है, उसमें विकार हो ही नहीं सकता, वह निर्विकार और निर्विकल्प है। और उन्होंने उससे कहा, "अर्जुन, तू मर नहीं सकता। इन देहों में से चाहे किसी को भी मिटा दे, पर उसका असली स्वरूप (आत्मा) कभी नहीं मरता। तुम कभी नहीं मरते। और यदि तुम्हें पूर्ण सत्य का बोध भी नहीं, तथा आवागमन की चार दीवारी में ही तुम क़ैद हो, तब भी जान लो कि अपना या उनका व्यक्तित्व सत्य नहीं है, सच्चे स्वरूप (आत्मा) का अनुभव करो, जो परमेश्वर है, और जो अमर है। तुम काँपते और थर्राते क्यों हो? अपने उपस्थित कर्तव्य को देखो। यदि इस समय तुम्हारा सांसारिक कर्तव्य इन सब मनुष्यों का वध करना है, तो इन्हें मार डालो।" भगवान् कृष्ण उससे कहते हैं, "मैं देवों का 'परमदेव' हूँ, प्रकाशों का 'प्रकाश' हूँ, और क्या प्रतिक्षण मैं कोटियों पक्षी-पशुओं का नाश नहीं कर रहा हूँ? उन्हें शून्यता में नहीं फेंक रहा हूँ? मैं—'प्रकृति', परमेश्वर, जगन्नियन्ता—सदा ये काम कर रहा हूँ, फिर भी मैं सदा निर्लिप्त और निर्मल हूँ। ईश्वर नाश करता है, तो क्या ईश्वर दोषी है? नहीं, ईश्वर फिर भी शुद्ध है।" फिर भगवान् कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, "यदि तुम सत्य का अनुभव करो, यदि तुम परमेश्वर से अभेद हो जाओ, यदि तुम अपने शुद्ध स्वरूप का अनुभव करो, तो तुम्हारी देह परमात्मा का यंत्रमात्र बन जाय। यदि न्याय, धर्म, सत्य और अधिकार के लिए तुम्हारा शरीर लाखों और करोड़ों का संहार भी कर दे, तो भी तुम शुद्ध, अविकल और निष्कलंक रहते हो।"

यह सत्य लोगों को अनुभव करना होगा। किन्तु आप इसका अनुभव करो या न करो, राम को सत्य कहने से रुकना उचित नहीं।

वह वेदान्त था, जिसने नर-संहार करने में, बल्कि अर्जुन के अपने बहुत नगीची और प्रियतम सम्बन्धियों का तथा अपने गुरु, चचा, भाई, बन्धुओं का नाश करने में कोई आगा-पीछा नहीं किया था। वेदान्त कहता है, इनके वध करने से अर्जुन दूषित नहीं हुआ। तो फिर बकरों या भेड़ों, बैलों या कोई भी पशुओं को मारने में वेदान्त कैसे संकोच कर सकता है? पर फिर भी वेदान्त मांस से परहेज़ करने को आपसे कहता है, पर बिल्कुल अन्य कारणों से।

मांसाहार आपको उस दशा या अवस्था में पहुँचा देता है, जिसमें आप चित्त को आसानी से एकाग्र नहीं कर सकते। यदि मांस-भक्षण आप छोड़ नहीं सकते, यदि इस आदत को आप जीत नहीं सकते, तो वेदान्त कहता है, "खाओ, मत छोड़ो।" विभिन्न खाद्य पदार्थ भिन्न-भिन्न असर पैदा करते हैं। मद्य पीने से मनुष्य को नशा होता है। अफ़ीम खाई जाने पर एक ख़ास तरह का असर पैदा होता है। एक मनुष्य संखिया खाता है और उसका एक विशेष प्रभाव होता है। इसी तरह भोजन विशेष भी अपना ख़ास असर पैदा करता है। और मांस भी ऐसा ही करता है। मांस शरीर पर जो असर डालता है, उस (असर) की धर्म के विद्यार्थियों को आवश्यकता नहीं है।

यदि आप सैनिक हो, अथवा उद्यम-पूर्ण कृत्यों के पुरुष हो, तो वेदान्त कहता है, आपको मांस खाना चाहिए, क्योंकि आपको उसकी ज़रूरत है, और आपको केवल शाक आदि भोजन पर न बसर करना चाहिए। दूसरी वृत्तियों के लोगों के बारे में राम कहता है, अपनी-अपनी प्रकृति पर उसे आज़माकर देखो। कुछ लोगों के लिए वह हितकर है, और कुछ के लिए हानिकर। प्रकृति की योजना (plan) है कि

योग्यतम व्यक्ति अवश्य जीयेगा। यहाँ हम व्हेल (whales, तिमिंगिल) मछलियों को बढ़ते देखते हैं, वे जीती बचती हैं; और उन्हें बचाने के लिए प्रकृति चाहती है कि वे छोटी मछलियों पर निर्वाह करें। हज़ारों छोटी मछलियाँ अवश्य नष्ट हो जायँ, पर बड़ी मछली जीती रहे। यह प्रकृति की व्यवस्था है। इसी तरह हम खनिज संसार में देखते हैं कि मिट्टी, भूमि नष्ट हो जाती है और उद्भिज्ज संसार अर्थात् वनस्पतिवर्ग की रक्षा होती है। उद्भिज्जों की खाद्य वस्तु मिट्टी है। फिर पशुओं की रक्षा के लिए उद्भिज्ज पदार्थों को नष्ट होना पड़ता है, काम आना पड़ता है। पशु उद्भिज्ज पदार्थों को खाकर जीयें, यह प्रकृति की योजना है। यह प्रकृति की व्यवस्था है कि मनुष्यों (सर्वोच्च वर्ग) पशुओं पर गुज़ारा करें और वे उसका काम दें, यही प्रकृति की योजना है। राम का इससे अभिप्राय पशुओं को खाना नहीं, केवल उन्हें काम में लाना है। पशुओं को मनुष्य की सेवा करनी होगी। फिर दुनिया के साधारण मनुष्यों में भी हम देखते हैं कि उच्चतर लोग स्वभावतः बढ़ते चले जाते हैं। जब अतिव्यापी संग्राम और महामारियाँ आती हैं, तब निम्नतर और दुर्बलतर प्रकृतिवाले उच्चतरों के लिए मरते हैं। यह प्रकृति की योजना है। यह क़ानून विश्व का शासन करता है।

इसलिए राम कहता है, यदि मांस खाकर आप विश्व को अधिक लाभ पहुँचा सकते हो, तो मांस खाओ; यदि मांस से विरत रहकर आप उच्च-तर सत्य की वृद्धि कर सकते हो, तो मांस से परहेज़ रक्खो।

हरएक व्यक्ति को अपने परिच्छिन्न आत्मा को परमेश्वर का स्वरूप समझना चाहिए। वेदान्त के अनुसार, सबको सब काम निस्स्वार्थ और अकर्तृत्व भाव से करना चाहिए।

तुम्हें सब काम इस तरह पर करना चाहिए कि मानों तुम नहीं कर रहे, अर्थात् इस तुच्छ अहंकार के साथ अथवा अभिलाषाओं और अहंकार की दृष्टि से कुछ नहीं कर रहे। अभिलाषा और अहंभाव की यह दृष्टि तुम्हें त्याग देनी चाहिए। जब आपका शरीर संसार में प्रकृति की तरह काम करता है, 'सर्व' के लिए काम वितरण करता, काम का निरूपण करता, और काम को समाप्त करता है, बिना किसी स्वार्थमय अहंभावपूर्ण इच्छा के, बल्कि केवल 'अखिल' के लिए, समग्र के लिए, काम करता है। और यदि अखिल विश्व की उद्देश्य-वृद्धि निमित्त इस शरीर-यंत्र के लिए मांस खाना उतना ही आवश्यक हो, जितना एक पुतली-घर में कुछ पहियों के लिए तेल से चिकनाया जाना; यदि तुम्हारे शरीर के लिए मांसाहार से ओंगा जाना उतना ही ज़रूरी है, जितना उन कुछ पहियों विशेष का तेल से ओंगा जाना; तब तुम मांस खाने से न झिझको। किन्तु जब केवल ज़बान के मज़े के लिए तुम मांस खाते हो, तब वह पाप हो जाता है। यदि अपनी इच्छाओं की तृप्ति के विचार से तुम मांस-भक्षण करते हो, तो वह अन्य सब पापकर्मों के समान पाप हो जायगा। तब वह पाप हो जाता है।

भारत में ऐसे लोग हैं, जो रास्ते से गुज़रते हुए दुकानों में पशु के मृतक शरीर को लटकता देखकर मूर्च्छित हो जाते हैं। खाना तो दूर रहा, वे उसे देख भी नहीं सकते।

अपने स्वार्थपूर्ण ज़ायक़ों की तृप्ति के लिए जब तुम मांस खाते हो, तब मांस खाना पाप हो जाता है, किन्तु यदि तुम उसे दवा की तरह व्यवहार करते हो, यदि तुम केवल उपयोगी कार्य करने और अपने शरीर को मानव-जाति का हित करने की योग्यतम अवस्था में रखने के लिए उसे ग्रहण करते हो, तो मांस-भक्षण कुछ भी पाप नहीं है।

लोगों का मुख्य अभिप्राय स्वाद होता है। यदि कोई चीज़ स्वादिष्ट है, और सत्य के पक्ष को भी प्रबल करने में सहायक होती है, तो उसे ग्रहण कर लो। किन्तु केवल मधुरता के लिए किसी चीज़ को ग्रहण करने से काम नहीं चलेगा। सामान्यतः सुस्वादु चीज़ें उपयोगी भी होती हैं, किन्तु सदा ऐसा नहीं होता।

अब एक दूसरा प्रश्न उठता है। कितना प्रायः धर्म-ग्रन्थों का विपरीत अर्थ ग्रहण किया जाता है, कितनी प्रायः पुस्तकों की अनर्गल व्याख्या की जाती है? समाज के लिए यह बड़ी भारी व्याधि है — अर्थात् धर्म-ग्रन्थों का यह अनर्थ ग्रहण किया जाना और नाममात्र पवित्र धर्म-ग्रन्थों वा पुस्तकों का दुरुपयोग होना बड़ी भारी व्याधि है।

कहा जाता है कि मिल्टन (कृत पुस्तक) को पढ़ने के लिए दूसरे मिल्टन की ही ज़रूरत है। बहुत ठीक है। इसी तरह एक सिद्ध को भी समझने के लिए दूसरे सिद्ध की ज़रूरत है। और ईसूमसीह को समझने के लिए तुम्हें ईसू-मसीह हो जाना चाहिए। वेदों को समझने के लिए तुम्हें वेद बनना चाहिए। वेदान्ती लेखकों ने, जिनके लेखों का तो उपयोग किया जाता है, पर जिनके नाम नहीं लिए जाते, इस कल्पना को बड़ी उत्तमता से लिखा है। इन लोगों ने इस दर्जे तक अनुभव किया कि पाठक का शरीर मानों उन्हीं का शरीर है। वेदों में हमें ऐसे वाक्य मिलते हैं, "ऐ लोगो! वेदों से ऊपर उठो, शिक्षाओं का उपयोग करो, और उनसे लाभ उठाओ। देवताओं और देवदूतों (फ़रिश्तों) से ऊपर उठो, देखो तुम क्या हो। तुम सब कुछ हो।" यही हज़रत ईसा कहते हैं। इंजील से हम ऐसे वाक्य चुन सकते हैं, जिनका अर्थ इस प्रकार का है। "स्वर्ग का साम्राज्य तुम्हारे भीतर

है।" Kingdom of Heaven is within you। लोग इसका बिलकुल ग़लत इस्तेमाल करते हैं। वे अर्थ का अनर्थ करते हैं। यह बात राम को एक कहानी की याद दिलाती है।

एक बार एक गुरु बहुत थककर एक पलंग पर पड़ गया और अपने चेले से कहने लगा कि "अपने पैरों से लताड़ दो, अर्थात् मेरी देह को दाब दो।" भारत में इस तरह से देह दबवाने की चाल बहुत अधिक है। इसलिए गुरु ने शिष्य से अपनी देह दाब देने को कहा, किन्तु शिष्य बोलाः—"नहीं, नहीं, गुरुदेव! मैं ऐसा कभी न करूँगा। आपका शरीर अति पवित्र है, आपका व्यक्तित्व अत्यन्त पूत है। आपकी देह पर अपने पैर मैं नहीं रख सकता, यह तो अधर्म होगा। मैं ऐसा घोर पाप न करूँगा। मैं आपके लिए सब कुछ कर सकता हूँ, मैं आपके लिए अपनी जान तक दे सकता हूँ, किन्तु आपकी देह तो पैरों से न रौंदूँगा।" गुरु ने कहा—"ऐ बेटे! आ, मैं बहुत थका हूँ, आ, आ, और मेरी देह दाब दे।" शिष्य रोने लगा, परन्तु इस अधर्म करने को राज़ी न किया जा सका। गुरु ने कहा—"ऐ मूर्ख लड़के! तुम मेरे निचले अंगों को पैरों से नहीं रौंदना चाहते, तुम मेरे शरीर का अनादर नहीं करना चाहते, किन्तु तुम मेरे पवित्र ओठों को कुचलते हो, तुम मेरे पवित्र चेहरे को रौंदते हो। इनमें अधिक अधर्म क्या है? गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करना अधिक पापमय है, या उसकी देह दाबना?"

ईसा या मोहम्मद के पवित्र ग्रन्थों अथवा वेदों को तो बात की बात में लोग कुचल डालते हैं, किन्तु इस रक्त और मांस को लोग पूज्य और पवित्र समझते हैं, उसी रक्त और मांस को जिसे खाने को लोगों से ईसा ने कहा था। क्या ईसा ने अन्तिम भोज में अपना मांस खाने और पीने को

लोगों से नहीं कहा था ? जब रोटी तोड़ी गई थी, उसने कहा—"यह मेरा मांस है, यह मेरा रुधिर है।" सभी सिद्ध पुरुष यही समझते हैं। सब व्यक्तियों में, सब देहों में, वे परमेश्वर को देखते हैं, और उन पर प्रभुता पाने की इच्छा करते हैं। वे चाहते हैं कि हमारे शरीरों से ऊपर उठो, हमारे शरीरों को कुचल डालो किन्तु आप उनके शरीर तो न दावोगे, चाहे उनके पवित्र वचन भले ही कुचल डालो।

व्यक्तित्व से ऊपर उठो, भीतर के परमेश्वर को ढूँढो। यदि ईसा कभी इस संसार में रहा था, तो वह तुम्हारे शरीरों में रहता है। ईसा को अपने धर्म का स्थिति विन्दु या लक्ष्य (Stand point) बनाओ, उसे अपनी अग्र उन्नति का लक्ष्य (Stand point) बनाओ, उसे अपनी सीमान्त रेखा बनाओ, और उसे अपने इर्द-गिर्द कण्टक न होने दो। उसे अपने धर्म का, अपनी उन्नति का, उद्गम स्थान होने दो। खुद ईसा बनो, और ईसा का अर्थ समझो।

अस्तु, आजकल क्या हो रहा है ? जो लोग इस तुच्छ, मिथ्या, शैतानी अहंकार (अहंभाव) से छुटकारा नहीं पाना चाहते, वे ईसा को पांचभौतिक बनाना चाहते हैं, और वे परमेश्वर को घूँघट की ओट में भी रखना चाहते हैं। वे ईश्वर को साकार और बाह्य वस्तु ही बनाये रखना चाहते हैं। अपने को उठाकर ईश्वर बनने के बदले वे ईश्वर को नीचे उतारकर अपने बराबर करना चाहते हैं। इंजील में दो हासजनक (funny) शब्दों से इसका दृष्टान्त दिया गया है, अर्थात् 'परमेश्वर की आत्मा जल पर बहुत काल तक चिन्ताकुल रही।' The spirit of God brooded over the waters।

हिन्दुस्तान में एक लड़का था, किसी कलवार (मद्य-विक्रेता)

का पुत्र था। वह स्कूल में भरती किया गया, और अंग्रेज़ी पढ़ने लगा।

भारतवर्ष में, ख़ासकर ईसाई प्रचारकों के स्कूलों (Mission-Schools) में पहले इंजील पढ़ाई जाती है। अंग्रेज़ी पाठ का सम्बन्ध इंजील से था। जब लड़का इस वाक्य पर पहुँचा, 'परमेश्वर की आत्मा जल पर बहुत काल तक चिन्ताकुल रही', तब वह बहुत घबराया। लड़का 'स्पिरिट' (Spirit, सार, भूत, शराब आदि) शब्द जानता था, और वह 'ब्रूडिड' (brooded, बहुत काल तक चिन्ताकुल रही वा जन्म दिया) शब्द तथा 'वाटर' (water) शब्द भी जानता था, किन्तु वह 'गाड' (God) शब्द नहीं जानता था। और उसने कहा 'गाड' (God) की आत्मा ने जन्म दिया (brood ब्रूड का अर्थ जन्म देना या अंडे सेना भी है)। क्या 'गाड' का अर्थ जौ है, या ग़ल्ला अथवा अंगूर? मैं जानता हूँ कि जौ और ग़ल्ले से या अंगूर इत्यादि से शराब निकलती है। और उसने सोचा कि यह विलक्षण प्रकार की मदिरा थी, जो समुद्र में रक्खी गई, उसका पिता तेज़ शराबों में पानी मिलाया करता था और वह वैसी शराबों से परिचित था, किन्तु यह तो अजीब तरह का मिश्रण (mixture) था।

अरे, इसी तरह लोग धर्म-ग्रन्थों का अनर्थ करते हैं, क्योंकि वे कलवारियों (wine shops) में बहुत अधिक रहते हैं, क्योंकि वे स्थूल भौतिक पदार्थों में बहुत अधिक रहते हैं, और इसीलिये वे उन उत्कृष्ट तथा पवित्र धर्म-पुस्तकों का स्थूलार्थ ग्रहण कर लेते हैं, और उन्हें भौतिक बना देते हैं।

एक मनुष्य सेना में नियुक्त था। वह एक रमणी को चाहता था, उसका बड़ा अफ़सर भी उसी युवती को प्यार करता

था। इस रमणी ने एक मातहत कर्मचारी को अपना दिल दे दिया था। मातहत पदाधिकारी छुट्टी लेकर घर गया। रमणी भी मौक़े से लाभ उठाकर उसके घर पहुँची। विवाह की ठहर गई, और इसलिये उसने अपनी छुट्टी बढ़वाना ज़रूरी समझा। छुट्टी बढ़ाने को उसने अपने ऊपर के अफ़सर को तार दिया। अफ़सर को सब हाल मालूम हो गया और वह जान गया कि रमणी से ब्याह करने के लिए छुट्टी माँगी गई है। वह अफसर ईर्ष्यालु था और छुट्टी नहीं देना चाहता था। जवाब में उसने जल्दी से दुटप्पी (संक्षिप्त) भाषा में यह संदेश भेजा, "तुरन्त मिल जाओ (Join at once)।" उसका मतलब था कि मातहत पदाधिकारी तुरन्त आकर सेवा में सम्मिलित हो। यह मनुष्य वह संदेश पढ़ रहा था, जिसमें कहा गया था "तुरन्त सम्मिलित हो" और वह बहुत चाहता था कि घर पर ठहरूँ, किन्तु सन्देश कहता था "तुरन्त सम्मेलन करो।" उसे इस बात से बड़ी निराशा और व्यग्रता हुई। जब उसके चित्त की यह हालत थी, तब रमणी आई और उसे इतना निराश देख कर कारण पूछने लगी। उसने उसे तार दिखाया। रमणी की चपल मति ने संदेश का अपने अनुकूल अर्थ लगाने में उसे सहायता दी, और उसने संदेश का बड़ा ही प्रसन्नकारी अर्थ लगाया, तथा ख़ुशी से नाचने लगी। उसने उस (प्रेमी) से पूछा कि इतने उदास क्यों हो, तुम्हें तो मेरी समझ से प्रफुल्लित होना चाहिए। वह कमरे से निकलने को थी, तब उसने (प्रेमी ने) पूछा, जाने की इतनी जल्दी क्यों है? रमणी ने उत्तर दिया, 'जल्दी से विवाह होने की तैयारी करने के लिए।' इस तरह लोग धर्मग्रन्थों से अपना मतलब निकाल लिया करते हैं। ऐसा अर्थ विवाह करने को उत्सुक

महिला के लिए तो ठीक हो सकता है, परन्तु धर्म-ग्रन्थों का ऐसा अर्थ करने से काम न चलेगा।

धर्म-ग्रन्थ हमें बतलाते हैं, "शरीर परमेश्वर का मन्दिर है।" इस वचन का बड़ा ही दुरुपयोग किया जाता है। निस्सन्देह देह परमेश्वर का मन्दिर है, किन्तु क्या इस वचन का यह अभिप्राय था कि मन्दिर ही सब कुछ है और भीतर के परमेश्वर को भूल जाओ? मन्दिर का अभिप्राय वही नहीं था, जो आजकल रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के मन्दिरों का है। लोग भीतर के परमेश्वर को भूल जाते हैं और मन्दिर ही को सब कुछ बना देते हैं।

उस वाक्य का मतलब यही था कि भीतर के परमेश्वर की, परमात्मा की पूजा की जाय, और मन्दिर की नहीं।

लोग मन्दिर में प्रवेश करते हैं, और अन्तस्थ ईश्वर को भूल जाते हैं। इसलिए जब वे पढ़ते हैं कि "शरीर ईश्वर का मन्दिर है', तब वे अर्थ का अनर्थ करते हैं, और वाक्य का दुरुपयोग करते हैं, और शरीर को परिपुष्ट करते हैं। कभी-कभी देखा जाता है कि लोग शरीर का बहुत ख़याल रखना चाहते हैं, और अपने मिथ्याभिमानों तथा चित्त-तरंगों का बहुत दुलार करते हैं, तथा अपने इन कार्यों के समर्थन में इस वाक्य (शरीर ईश्वर का मन्दिर है) का हवाला देते हैं। अपने मिथ्याभिमान, दुर्बलता और अज्ञान की रक्षा के लिए यह एक गढ़ बना लिया जाता है।

मूल वचनों (मंत्रों) का यह एक दुरुपयोग है। यही कुशल है कि वे टेम्पल (temple) शब्द का और भी अधिक स्थूल प्रयोग नहीं करते। जब किसी एक विद्यार्थी ने यह वचन पढ़ा कि "शरीर ईश्वर का टेम्पल (temple)* है," तो उसने

* temple (टेम्पल) शब्द का एक अर्थ "कनपटी" भी है।

प्रश्न किया "ईश्वर के कान कहाँ हैं?" यही खैरियत है, वे इस वचन की और भी अधिक स्थूल व्याख्या नहीं करते, जो व्याख्या की जा चुकी है, वही काफी स्थूल है।

यदि देह ईश्वर का आलय (मन्दिर) है, तो आपको देह भूल जाना चाहिए, देह भूल जाने ही के लिए है। मन्दिर का अच्छा उपयोग उसे भुला देना ही है, न कि सब तरह की निधियों से उसे परितृप्त करना और लादना। अन्दर के ईश्वर का अनुभव करो, मन्दिर अपनी चिन्ता आप कर लेगा।

क्या ईश्वर सर्वव्यापी नहीं है? क्या ईश्वर का मन्दिर सर्वत्र नहीं है? सूर्य परमेश्वर का मन्दिर है। क्या सब नक्षत्र परमेश्वर के मन्दिर नहीं? हरएक वस्तु परमेश्वर का मन्दिर है। राम कहता है, प्रत्येक पदार्थ ईश्वर का मन्दिर है। देह ईश्वर का मन्दिर इसलिए है कि वह आपसे अत्यन्त निकट है।

प्रत्येक पदार्थ आपको परमेश्वर की शिक्षा देता है। प्रत्येक पदार्थ का मूल परमेश्वर है। इस सम्बन्ध में राम आपसे एक बात कहना चाहता है; मानसिक पीड़ा, आन्तरिक शूल, चिन्ता या क्लेश से व्यथित सब लोगों को वह वैकुण्ठ का एक संदेश देना चाहता है।

सम्पूर्ण विश्व के इतिहास के पन्नों में ईश्वर ने यह सन्देश भेजा है। ईश्वर यह सन्देश तुम्हारी नाड़ियों में, तुम्हारी स्नायुओं में, तुम्हारे मस्तिष्क में भेजता है। प्रत्येक कुटुम्ब में, हरएक परिवार में, भगवान् इस सन्देश का प्रचार कर रहा है। इस सन्देश को सुनो, इस पर ध्यान दो, और अपना उद्धार कर लो। यदि इस सन्देश पर ध्यान न दिया, इसका अनादर किया, तो अपने को फाँसी पर चढ़ा लोगे, मरोगे, नष्ट होगे। दूसरा कोई उपाय नहीं है।

मनुष्य दिन में कितनी बार मरता है ? जब आप भयभीत या बहुत परेशान होते हो, जब कभी आप ऐसी भयङ्कर अवस्था में होते हो, तभी मृत्यु है ; तब आप अन्तस्थ परमेश्वर को भूल जाते हो। उसकी ओर ध्यान दो, और अपने को बचाओ। उसका निरादर करोगे, तो तुरन्त विनष्ट हो जाओगे।

यही क़ानून (दैवी विधान) है—निष्ठुर (unrelenting), अलंघ्य (inviolable), बहुत सख्त और बड़ा कठोर है। यह दैवी विधान है। यह सन्देश क्या है ? उसे सुनो "जो पूज्य होना चाहते हैं, वे सूली पर लटकने की यातना भोगें।" ईसा ने पहले सूली चढ़ने की तकलीफ़ उठाई, और बाद को पूजा गया। भगवान् बुद्ध ने सूली (अति पीड़ा) का कष्ट पहले उठाया, और फिर पूजा गया। सुक़रात (विष की) सूली चढ़ा, अर्थात् उसने विष पीने की पीड़ा सही, और आज उसका शरीर पूजा जाता है। ब्रूनो पहले मरा और उसका सम्मान पीछे हुआ। भारत में हज़ारों सिद्ध (महापुरुष) बलिदान पहले हुए और पीछे पुजे। इन लोगों ने पहले मूल्य दिया, और पीछे पुरस्कार पाया।

यह तथ्य है कि इन सब सिद्धों ने पहले क़ीमत दी, और पीछे अपना इनाम पाया। किन्तु संसार के दूसरे लोगों का क्या हाल है ? इस संसार के नर-नारियों की क्या बात है ? वे पहले ख़रीदना चाहते हैं, किन्तु मूल्य देने से हटते हैं। परन्तु मूल्य देना होगा।

हरएक चाहता है कि वह पूजा जाय। पूजा के अर्थ हैं प्रेम और आदर तथा सत्कार। हरएक प्रेम, आदर और सत्कार पाना चाहता है, और लोग चारों ओर भक्ति पाना चाहते हैं। वे अपने इर्द-गिर्द ख़ुशामदों को चाहते हैं। सांसारिकता

के इस रोग से, मिथ्याभिमान के इस रोग से, देह निमित्त प्रेम के इस रोग से, दूसरों की देह के लिए इस प्रेम से, इस बद्धमूल रोग से, इस अज्ञान से जो तुम्हें शरीर में आत्मा का विश्वास कराता है और जिसके कारण तुम देह को अपने अन्दर का सार पदार्थ समझने की भूल करते हो, इस अज्ञान से जो अपने को पूजा जाने की लालसा में बदल लेता है, हरएक व्यक्ति संसार में व्यथा पा रहा है। बिना उचित मूल्य दिये इस रोग का, पूज्य होने की इस कल्पना का, आनन्द नहीं लूटा जा सकता। परमेश्वर का यह दैवी विधान किसी को माफ़ नहीं करता, न तो ईसा को छोड़ता है और न कृष्ण को। ईसा को क़ीमत देना पड़ी थी, पहले सूली मिली और पीछे वह पूजा गया। क़ानून के अनुसार सुक़रात ने पहले मूल्य दिया, और पीछे वह पूजा गया।

सब सिद्धों ने पहले मूल्य दिया और पीछे वे पूजे गये। तुम्हारे नेपोलियन, वाशिंगटन और अन्य महापुरुषों ने पहले मूल्य दिया और पीछे पूजे गये। न्यूटन और अन्य महापुरुष क़ब्र में जी रहे हैं. अब वे क़ब्रों में उन जीवनों को बिता रहे हैं, जो पहले बलिदान (crucifixion) के जीवन थे। वे शरीर से (अर्थात् देह-दृष्टि से) ऊपर हैं, भूख और प्यास की पीड़ाओं से परे हैं।

न्यूटन का जीवन-चरित्र पढ़ो, और तुम देखोगे कि अनेक बार वह भोजन करना भूल गया। इन लोगों ने पहले मूल्य दिया और पीछे पूजा पाई।

क़ानून (दैवी विधान) किसी को नहीं छोड़ता, वह व्यक्तियों का आदर नहीं करता, वह तुम्हारे पापियों या पुण्यवानों (साधुओं), तुम्हारे सिद्धों या तत्त्वज्ञानियों का लिहाज (पक्ष) नहीं करता। यह निष्ठुर और निर्दयी क़ानून (विधान)

है। तुम्हें अपने मामले में किसी विशेष व्यवस्था की आशा करने का क्या हक़ है? अपने शरीरों के लिए विशेष आदर की आशा करनेवाले तुम कौन हो? यदि दूसरों के प्रिय, पूज्य या सम्मान्य होने की तुम आशा करते हो, यदि दूसरों से तुम आदर पाने और बहुत कुछ समझे जाने की इच्छा रखते हो, तो पहले तुम्हें क़ीमत देनी होगी।

'दी ज्योवैस' (The Jewess, यहूदिन) नामी नाटक में 'ज्योवैस' ने 'जोज़फ़' की पूजा का पात्र बनना चाहा। अस्तु, पहले ही तुम्हारी पूजा सही; उसकी पहिले पूजा हुई, किन्तु उसे क़ीमत देनी ही पड़ी। यदि प्रकृति, विधान या परमेश्वर भी तुम्हारा कुछ आदर करता है, और तुम्हारे घर में कोई वस्तु भेजी जाती है, तो यह मतलब नहीं है कि 'वह' मूल्य न माँगेगा। यदि हमने पहले ही मूल्य दे दिया होता, तो बहुत अच्छा होता, किन्तु अब 'उसने' किताब भेज दी है, और मूल्य का तक़ाज़ा बड़ा कड़ा है।

'ज्योवैस' को 'जोज़फ़' ने पूजा और उसे मूल्य देना पड़ा। पाँच वर्ष तक वह प्रेमोन्मत्त रही, और बावलेपन में आँय-बाँय-शाँय बकती रही। अज्ञान को दण्ड, मूल्य, देना होगा।

हरएक उपन्यास या नाटक में जो हरएक नायक (hero) की दशा होती है, वही संसार के संपूर्ण इतिहास में संघटित होता है। इस परिच्छिन्न आत्मा से छुटकारा पाना ही 'क़ानून' अर्थात् विधान है। केवल तभी तुम्हें समुचित प्यार किया जायगा, अन्यथा कदापि नहीं।

इच्छाओं की तृप्ति का उपाय यही है कि इच्छायें त्याग दी जायँ। फ़ारसी में एक सुन्दर शब्द है, जिसे 'मतलब' कहते हैं। इस शब्द का एक अर्थ तो 'कामना' है, और दूसरा अर्थ है 'कभी न माँगो।' यह एक विचित्र शब्द है। वास्तविक

कामनायें, जो आप में हैं, उनकी तृप्ति के लिए उन्हें दूर कर देना चाहिए। कामनाओं से ऊपर उठो; व्यक्तित्व से, इस तुच्छ देह से ऊपर उठो।

यह एक दीपक है। पतंगों को दीपक भाता है, वे उसे प्यार करते हैं, और वे आते तथा अपनी देहों को उसके लिए भस्म कर देते हैं। एशिया में इस जल जाने को प्रेम का एक चिह्न समझा जाता है, और लोग कहते हैं, "ये पतंगे दीपक से इतना प्रेम करते हैं कि अपने को जला देते हैं।"

वेदान्त कहता है, "नहीं, नहीं, पहले दीपक अपने को जलाता है, और तत्पश्चात् प्यार किया जाता है।"

इसी तरह शरीर से ऊपर उठो, अपने इस व्यक्तित्व को जला दो, इसका दाह करो, इसे नष्ट करो, इसे भस्म कर दो, केवल तभी तुम अपनी इच्छाओं को पूरा होते देखोगे; तब तुम्हें पूजा जायगा; तब तुम्हारी कामना के पदार्थ तुम्हारी उपासना करेंगे। दूसरे शब्दों में, 'अपना अहंकार त्यागो।' यह कहना सहज है, किन्तु इसे अमल में लाना चाहिए।

गिर्जाघरों में ही तुम्हारा मामला ईश्वर से समाप्त नहीं हो जाता; मन्दिरों में तथा रीतियों को पूरा करने से ही तुम ईश्वर से छुट्टी और स्वाधीनता नहीं पा सकते। ईश्वर की दरबारदारी कर आने से काम न चलेगा। तुम्हें अपने जीवन के हरएक दिन अपना अहंकार भुला देना होगा। अपने मित्रजनों के साथ साधारण व्यवहारों में, बाज़ार में चीजें ख़रीदने में, नातेदारों से अपने सम्बन्धों में, तुम्हें इसका अनुभव करना होगा।

जरब का पहाड़ा पढ़नेवाले लड़के को ज़रब के क़ायदे सिखाये जाते हैं। ज़रब के नियम लड़के के चित्त में जम जाते और उसे याद हो जाते हैं। किन्तु इतना ही काफ़ी नहीं होता। केवल उसकी बुद्धि ने त्रैराशिक सीख लिया है, उसे तब तक

उसका अभ्यास करना होगा, जब तक उसका उससे मानों तादात्म्य न हो जाय, जब तक वह उसमें पूरा दक्ष न हो जाय। जब तक तुम्हें कोई नियम केवल कण्ठाग्र है, तब तक वह केवल तुम्हारे दिमाग़ में है, और तुम प्रायः ग़लतियाँ (भूलें) करोगे। भूलों से तब तक बचाव नहीं हो सकता, जब तक आप सैकड़ों-हज़ारों सवाल हल न कर डालें और उन्हें हस्तामलक न कर लें। केवल तभी तुम विना भूलें किये सवाल हल करने के योग्य होगे।

ठीक यही बात, 'परिच्छिन्नात्मा का त्याग करो', तुम्हें इंजील में पढ़ने को मिलती है, और तुम इसे उसी तरह पढ़ते हो, जिस तरह एक लड़का त्रैराशिक सीखता है। किन्तु इतना काफ़ी न होगा, तुम्हें अपने नित्य के सम्पूर्ण व्यवहारों में इसे प्रयोग में लाना होगा, तुम्हें अपना चित्त इस पर एकाग्र करना होगा, इसका बार-बार प्रयोग और अभ्यास करना होगा, स्वार्थ त्याग द्वारा सवाल लगाना होगा।

बच्चों से अपनी बातचीत में इस नियम को लागू करो। सड़क पर चलते समय अहंकार की विस्मृति करो। हँसी-दिल्लगी करते समय इस नियम को काम में लाओ। तुम्हें इस सवाल को अवश्य लगाना चाहिए, इस सवाल को जाँचना चाहिए। वेदान्त सीखना सहल काम नहीं है। वेदान्त की पुस्तक का पाठ सुगमता से तुम्हें सुनाया जा सकता है, किन्तु वेदान्त अपने आप ही तुम्हें सीखना होगा। निरन्तर अभ्यास, विवेक और वेदान्त में दक्षता प्राप्त करने से काम हलका हो जाता है।

जब राम गणित-विद्या का अध्यापक (professor) था, तब वह गणित के सवाल उतनी ही जल्दी हल कर लेता था, जितनी शीघ्रता से वह उन्हें लिखता था। वे बड़ी सरलता से हथियाये जाते अर्थात् विचार लिये जाते थे। क्यों? कारण

यही था कि विभिन्न नियमों को राम ने यहाँ तक याद किया था कि वे उसकी उँगलियों के पोरों पर मौजूद रहते थे। राम का अभ्यास इतना बढ़ा-चढ़ा था कि उदाहरणार्थ १८ अंकों के गुण्यांक (digits) और १७ अंकों के गुणक का गुणन-फल राम तुरन्त एक क्षण में बता देता था। क्योंकर? अभ्यास की बदौलत। इस तरह तुम्हारा भगवन्-मन्दिर केवल तुम्हारे हृदय में न होना चाहिए। वेदान्त का मन्दिर तो दुकान में है, सड़क पर है, तुम्हारे बिस्तर पर (इस सत्य के मनन और अभ्यास करने में) है, तुम्हारे अध्ययन में है, तुम्हारे भोजनागार में है, तुम्हारे बैठकखाने में है, और तुम्हारे बातचीत करने के कमरे में है। इन मन्दिरों में तुम्हें रहना और सत्य का अनुभव करना होगा। ये स्थान हैं, जहाँ तुम्हें अपने सवाल हल करना होंगे।

जब राम लड़का था, एक दिन वह सड़क के किनारे एक किताब पढ़ता हुआ जा रहा था। एक भद्र पुरुष आया और उसने राम से दिल्लगी की। उसने कहा—"तुम यहाँ क्या कर रहे हो? युवक महोदय! यह पाठशाला नहीं है, किताब अपनी अलग करो।" राम ने उत्तर दिया—"सम्पूर्ण विश्व मेरी पाठशाला है।" अब राम समझता है कि तुम्हारी पाठशाला क्या होनी चाहिए।

यदि प्रतिदिन जीवन में वेदान्त पर अमल नहीं किया जाता, तो वह किस काम का? किताबों में छपा हुआ और कीड़ों से खाये जाने के लिए अलमारी में रक्खा हुआ वेदान्त काम न आवेगा। तुम्हारा जीवन वेदान्त के अनुसार बीतना चाहिए।

वेदान्त को अग्नि कहा जाता है। यदि वेदान्त हमारे संकट

और पीड़ा को नहीं दूर करता, तो यह दैवी अग्नि उस श्रेणी की भी नहीं है, जिसकी कि भौतिक अग्नि, जो तुम्हारा भोजन पकाती है, जिससे तुम्हारी भूख बुझती है, और जिससे तुम्हारी सर्दी दूर होती है। यदि वेदान्त तुम्हारी सर्दी नहीं दूर करता, यदि वह तुमको सुखी नहीं करता, यदि वह तुम्हारे बोझों को नहीं दूर हटाता, तो उसे ठुकराकर फेंक दो। तुम तभी वेदान्त सीखते हो, तुम तभी उसे प्राप्त करते हो, जब तुम उसे बरताव (अमल) में लाते हो।

एक समय युधिष्ठिर नाम का एक व्यक्ति था। वह भारत के सिंहासन का युवराज था। उसके बचपन की एक कहानी प्रचलित है। अपने छोटे भाइयों के साथ वह पाठशाला में पढ़ता था। उसके बहुतेरे भाई थे। एक दिन बड़े गुरु, परीक्षकजी, उन लड़कों की परीक्षा लेने आये। आचार्यजी ने आकर पूछा कि तुम लोगों ने कहाँ तक पढ़ा है। युवकों ने जो कुछ पढ़ा था, वह गुरु के सामने रख दिया। जब युधिष्ठिर की बारी आई, तब फिर गुरुजी ने वही सामान्य प्रश्न किया, और युधिष्ठिर ने पहली पुस्तक खोलकर हर्ष व प्रसन्नता भरे स्वर में बिना जरा सा भी लज्जित हुए कहा—"मैंने तो वर्णमाला पढ़ी है, और पहला वाक्य पढ़ा है।" गुरु ने पहला वाक्य दिखाकर कहा—"बस, इतना ही?" गुरु ने कहा—"और भी कुछ तुमने पढ़ा है?" युवराज ने झिझकते हुए कहा—"दूसरा वाक्य।" राजकुमार ने, प्यारे छोटे बालक ने तो यह प्रसन्नता-पूर्वक और सहर्ष कहा। किन्तु गुरुजी रुष्ट हो गये, क्योंकि वे उससे अधिक विद्या और अधिक बुद्धि का अधिकारी होने की आशा करते थे, न कि घोंघे की सी सुस्ती (चाल)। गुरुजी ने उससे अपने सामने खड़े होने को कहा। गुरु बड़ा निर्दयी था।

उसने विचारा "छड़ी से काम न लेना लड़के को बिगाड़ना है।" (तुम जानते हो कि अध्यापक समझते हैं कि लड़कों पर छड़ियाँ तोड़ डालने से उनका सुधार हो जाता है, और जितनी ही अधिक छड़ियाँ वे लड़कों को पीटने में तोड़ेंगे, उतना ही लड़के सुधरेंगे।) मन की इस अवस्था ने गुरु को अत्यन्त निर्दयी बना दिया, और उसने युवराज को ठोकना तथा मारना शुरू किया, किन्तु युवराज सावधान रहा। वह पहले की तरह प्रसन्न रहा, वह सदा की भाँति खुश रहा। गुरु ने कई मिनटों तक उसे पीटा, किन्तु राजकुमार के सुन्दर मुख पर क्रोध या चिन्ता, भय या रंज का कोई चिह्न नहीं दिखाई दिया। तब तो युवराज का चेहरा देखकर गुरुजी को तरस आ गया, मानों पत्थर भी तो पिघल जाता है। गुरु ने विचार किया और अपने मन में कहा, यह मामला क्या है ? यह बात क्या है कि यह राजकुमार, जो अपने एक शब्द से मुझे बरखास्त करवा सकता है, और जो एक दिन मुझ पर और समग्र भारत पर हुकूमत करेगा, इतना शान्त है ? मैंने उस पर इतनी कठोरता की, और वह ज़रा सा भी नाराज़ नहीं हुआ। मैंने एक समय अन्य भाइयों पर सख़्ती की थी और वे बिगड़ गये, और उनमें से एक ने तो छड़ी पकड़कर मुझे पीटा था, किन्तु इस युवराज ने अपना मिज़ाज ठीक रक्खा। वह प्रसन्न है, शान्ति और अविचलता उसके मुख पर विराज रही है। तब गुरु की दृष्टि पहले वाक्य पर पड़ी, जो युवराज ने पढ़ा था।

आप जानते हैं, भारत में प्रारम्भिक पुस्तकें कुत्तों और बिल्लियों की कहानियों से नहीं शुरू होतीं। भारत में प्रारम्भिक पुस्तकें ईश्वर से, और सदुपदेश से शुरू होती हैं। संस्कृत पुस्तक में वर्णमाला के बाद पहला वाक्य था, "कभी

क्षुब्ध मत हो, कभी विकल मत हो, क्रोध न करो।" दूसरा वाक्य था, "सत्य बोलो, सदा सत्य बोलो।" युवराज ने कहा था कि उसने पहला जुमला पढ़ लिया है, किन्तु दूसरा जुमला पढ़ लेने की बात उसने झिझकते हुए कही थी। अब गुरुजी की दृष्टि पहले जुमले "कभी क्षुब्ध मत हो, क्रोध न करो" पर पड़ी, और फिर उन्होंने युवराज के मुख की ओर देखा। गुरुजी की एक आँख युवराज के चेहरे पर थी और दूसरी आँख पुस्तक के जुमले पर।। तब तो वाक्य का अर्थ उसके चित्त में कौंध गया।

तब तो युवराज के चेहरे ने जुमले के अर्थ कह दिये। युवराज का चेहरा पुस्तक में लिखे हुए जुमले "कभी क्रोध न करो" का अवतार था। युवराज के शान्त, स्थिर, उज्ज्वल, प्रसन्न, सहर्ष और सुन्दर मुख ने "कभी क्रोध न करो" वाक्य का अर्थ गुरुजी के हृदय में जमा दिया।

अब तक तो गुरुजी जुमले को केवल लाँघ गये थे, उन्होंने वाक्य का सारांश पहले केवल ओठों से रट रक्खा था। अब उन्होंने जाना कि यह वाक्य केवल तोते की तरह कहने के लिए नहीं है, अमल में लाया जा सकता है, कार्य में परिणत किया जा सकता है, और तब गुरुजी ने अनुभव किया कि मेरी विद्या कितनी तुच्छ है। वह अपने मन में लज्जित हुए कि मैंने पहला वाक्य भी (वास्तव में) नहीं पढ़ा है, जब कि उस युवराज ने उसे वास्तव में पढ़ लिया है। आप समझ सकते हैं कि युवराज के लिए कोई चीज़ का पढ़ना उसे केवल जिह्वाग्र कर लेना नहीं था, किन्तु पढ़ने का अर्थ, अमल करना, कार्य में परिणत करना, अनुभव करना, बोध होना और स्वयं उसका रूप बन जाना वह समझता था। युवराज के लिए पढ़ने का अर्थ यही था।

ज्यों ही गुरुजी ने पढ़ने का अर्थ समझा, त्यों ही उनके हाथ

से छड़ी गिर पड़ी, उनका हृदय कोमल हो गया। उन्होंने युवराज को पकड़कर अपनी छाती से लगा लिया और उसका मस्तक चूमा। साथ ही उन्हें अपनी मूर्खता का और अपने में व्यावहारिक विद्या के अभाव का यहाँ तक बोध हुआ कि उन्हें अपने पर शर्म आई, और युवराज की पीठ ठोककर उन्होंने कहा, "पुत्र! प्रिय राजपुत्र! कम से कम एक वाक्य ठीक ठीक पढ़ लेने के लिए मैं तुम्हें बधाई देता हूँ। मैं तुम्हें बधाई देता हूँ कि कम से कम एक वाक्य तो धर्म-ग्रन्थों का तुमने यथार्थ में पढ़ लिया है। अरे! मैं तो एक वाक्य भी नहीं जानता, मैंने तो एक जुमला भी नहीं पढ़ा है, क्योंकि मुझे क्रोध आ जाता है और मैं क्षुब्ध हो जाता हूँ, सड़ी सी भी बात मुझे रुष्ट कर सकती है। ऐ मेरे पुत्र! मुझ पर दया कर, तू अधिक जानता है, तू मुझसे अधिक पठित है।" जब गुरुजी ने यह कहा, जब उन्होंने युवराज को उत्साहित किया, तब युवराज ने कहा, "पिता! पिताजी! मैंने अभी यह वाक्य अच्छी तरह से नहीं पढ़ा है, क्योंकि मुझे अपने हृदय में कोप और रोष के कुछ लक्षण जान पड़े थे। जब पाँच मिनट तक मुझे ताड़ना मिली, तब मुझे अपने हृदय में कोप के कुछ चिह्न मालूम हुए थे।" इस तरह पर उसने दूसरे वाक्य के अर्थ भी बतलाये, इस तरह पर वह सत्य बोला, जब कि अपनी आन्तरिक दुर्बलता छिपाने का उसके लिए प्रत्येक प्रलोभन था, ऐसे मौक़े पर जब कि उसकी ख़ुशामद हो रही थी। अपने अन्तःकरण में गुप्त दुर्बलता को अपने ही कर्मों से प्रकट करके युवराज ने सिद्ध कर दिया कि उसने दूसरा वाक्य 'सत्य बोलो' भी पढ़ लिया है। अपने कार्यों से, अपने जीवन द्वारा, उसने दूसरे वाक्य पर भी अमल किया।

पढ़ने का यही तरीक़ा है, वेदान्त सीखने की यही शैली है, वेदान्त पर अमल करो, वेदान्त का अभ्यास करो।

अब राम कहता है कि दूसरा कोई तुम्हारा उद्धार नहीं कर सकता, तुम्हें स्वयं अपना उद्धार करना होगा, अपने त्राता हम आप ही हैं। प्रातःकाल जब आप ॐ का उच्चारण करते हो, तब वेदान्त पर अमल करने का, वेदान्त के अभ्यास करने का दृढ़ और प्रबल निश्चय करो। जो कोई भी काम आप अपने ऊपर लो, उसे प्रारम्भ करने से पहले सावधान हो जाओ। नदी में नहाने को जाते समय जिस तरह आप तैरने के लिए अपने को तैयार करते हो, उसी तरह जब कोई काम आप शुरू करो, जब आप किसी मनुष्य से भेंट करने जाओ, जब आप किसी व्यक्ति से मिलनेवाले हो, तब पहले अपने को मार्ग के लिए तैयार कर लो। जब आप नदी में नहाने जाते हो, तब जिस तरह अपने कपड़े खोल डालते हो, उसी तरह अपने को इस मिथ्या अहंकार से, इस व्यक्तित्व से, ईश्वर के इस मन्दिर से, नग्न कर लेना चाहिए। अपने को मिथ्याभिमान-मात्र से शून्य कर लो, अपने को ईश्वर जानो, और अपने सच्चे आत्मा का अनुभव करो, और हरएक शरीर में ईश्वर को देखने का दृढ़ निश्चय करो। जब किसी मित्र के पास जाओ, या जब कहीं भी आप जाओ, तब तैयार होकर जाओ। और जब आप ऐसे करने को प्रस्तुत होगे, तब आप असफल न होंगे, आपका धड़ा ठीक रहेगा, अर्थात् आप सावधान रहोगे, आप कुछ खोओगे नहीं। जब कोई काम हो जाय और आप मित्र के घर से लौटो, या जिस किसी से भी मिल कर लौटो, तब फिर अपने को तैयार करो।

जब आपके हाथ मैले हो जाते हैं, तब आप धो डालते हैं। यदि कोई सज्जन या भद्र महिला कपड़े पर धब्बा देखती है,

तो तुरन्त उसे साफ करने का यत्न करती है। इसी तरह, ऐसी सोहबत में समय बिताने के बाद कि जहाँ आपका व्यक्तित्व और अहंभाव उत्पन्न हुए थे, ऐसे संगियों से अलग होने के बाद तुरन्त ही पहला कर्त्तव्य यह है कि आप अपने हाथ धो डालो, अर्थात् उनसे निर्लिप्त हो जाओ और फिर ईश्वर होकर बैठो।

पुनः जब आप रुष्ट और पीड़ित हो, जब आपका धड़ा ठीक न हो, अर्थात् जब आप अस्थिर-चित्त हो, तब आपको क्या करना चाहिए? समान भार करने अर्थात् स्थिर चित्त करने की उसी शैली का अनुसरण करो।

वैद्य का तराजू हवा के कारण जब हिल जाता है, तब पलड़े ऊपर-नीचे लहराने लगते हैं। इसका वे (वैद्य) क्या इलाज करते हैं? वे उसे किसी निश्चल स्थान में रख देते हैं और फिर वह समय आ जाता है, जब धड़ा ठीक हो जाता है, और पलड़े अचल हो जाते हैं। इसी तरह, जब आपका चित्त व्यग्र या रुष्ट हो जाय, तब अपने को एक कमरे में बन्द कर लो, मित्रों का साथ छोड़कर एकान्त में चले जाओ। समय और एकान्त आपको बलवान् बना देंगे। ॐ का उच्चारण करो और वेदान्त का मनन करो, अपने ईश्वरत्व को, अपनी दिव्यता को सोचो और अनुभव करो, और आपको शीघ्र ही अपनी पूर्वस्थिति पुनः प्राप्त होगी, आपका धड़ा बँध जायगा और आप शान्त हो जाओगे।

यदि तुम समझो कि तुम्हारा अन्तःकरण उद्विग्न या कुपित है, यदि तुम्हारी समझ में आवे कि तुम्हारा चित्त खिन्न है, यदि क्रोध, वैर, चिन्ता या भय का भाव तुम्हारे चित्त में वर्तमान हो, तो तुम्हें क्या करना चाहिए? अरे! तुम्हें किसी को अपना मुँह दिखाने का कोई अधिकार नहीं है। चेचक के दानोंवाला मुख किसी को न दिखाया जाना चाहिए।

तुम्हें अपने को *गमनागमन-निषिद्ध स्थान* (quarantine) में बन्द कर लेना चाहिए। तुम हैज़े से आक्रान्त हो, तुम प्लेग-पीड़ित हो, तुमको एक संक्रामक बीमारी (Contagious disease) हो गई है, और समाज में उपस्थित होने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। पहले अपने को चंगा करो, तब बाहर आओ।

अस्तु, यदि किसी महिला या भद्र पुरुष का चेहरा या पोशाक ख़राब हो जाय, तो वह कभी समाज में न सम्मिलित होगा। इसी तरह, यदि तुम्हारा अन्तःकरण मलिन हो गया है, यदि तुम्हें कोई संक्रामक बीमारी हो गई है, या यों कहिये, यदि तुम्हारी वास्तविक प्रकृति हैज़े से पीड़ित है, तो समाज में कदापि न मिलो-जुलो, अकेले बैठो, ॐ उच्चारण करो, ईश्वर का अनुभव करो, और जब तुम ईश्वर को विचारने लगो, जब तुम ईश्वर का अनुभव करने लगो, तब बाहर आओ।

राम तुमसे कहता है कि जब तुम इस शक्ति का अनुभव करने लगोगे, तब तुम्हें अपने जीवन में एक विशेष अन्तर प्रतीत होगा।

लोग फल खाना चाहते हैं, किन्तु फलनेवाले वृक्ष को ही वे काट डालना चाहते हैं। वे प्रसन्न होना और सुख भोगना चाहते हैं, किन्तु वे जीवन को सत्यव्रती नहीं बनाना चाहते। सुख-भोग और आनन्द केवल तभी किसी व्यक्ति को मिलता है, जब वह अपनी ईश्वरता में रहता है, अपने परमेश्वरत्व में रहता है।

लोग चाहते हैं कि इन शरीरों की पूजा हो, वे इन क्षुद्र शरीरों के लिए सब आराम चाहते हैं, किन्तु वे मूल्य देने से भागते हैं। परन्तु इससे काम न चलेगा। आप शहरों में

रह सकते हो, यह भागीरथ श्रम आप अपने भीतर कर सकते हो, यह सम्भव है, यह आपके अपने तेज पर निर्भर है।

राम आपसे कहता है कि मैं भय से, चिन्ता से, रोष से परे हूँ। किन्तु निरन्तर साधन से इसकी प्राप्ति हुई है। निर्बलता और अन्धविश्वास के अत्यन्त गहरे गढ़े से अभ्यास ने राम को ऊपर निकाला है। एक समय राम अत्यन्त अन्धविश्वासी था, हवा का हरएक झकोरा राम के चित्त की समता को बिगाड़ देता था। पर अब सर्व अवस्था में चित्त अचल और सम रहता है। यदि एक आदमी ऐसा कर सकता है, तो आप भी कर सकते हो।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

मैं प्रकाश-स्वरूप

(१३ जनवरी १९०४ को डेनवर, कौलोरेडो में दिया हुआ व्याख्यान)

शुद्धात्मा (सत्यस्वरूप) क्या है ? देह सत्यस्वरूप नहीं है, न चित्त ही असली अपना आप है, न यह प्राण ही वास्तविक आत्मा है। आप कैसे जानते हैं कि दुनिया है ? अपनी चेतना (Consciousness) के द्वारा। आपकी चेतना को भी तीन प्रकार के परिवर्तनों या वृत्तियों के अधीन होना पड़ता है। एक जाग्रत्-चेतना है, एक स्वप्नशील चेतना है, और गाढ़ निद्रित चेतना भी है। आपकी चेतना ताप-मापक (thermometer) या वात-मापक (barometer) यंत्र के समान है। वह ताप (temperature) या संसार की गुरुता (pressure) को मापती है।

जाग्रत् दशा में चेतना सूचित करती है कि संसार ठोस है, कठोर है, अपने क़ानूनों और नियमों में ठसा हुआ है। स्वप्नावस्था में चेतना का निर्णय बिलकुल भिन्न है। किन्तु स्वप्न और निद्रा की अवस्थाएँ भी ठीक उतनी ही प्रबल हैं, जितनी कि जाग्रत्-अवस्था। फिर हम देखते हैं कि आपका निद्रागत अनुभव ठीक उतना ही समय लेता है, जितना कि जाग्रत् काल का अनुभव। अपने जीवन में आप उतना ही सोते हैं, जितना जागते हैं। एक बच्चा, मानों, हर समय निद्रित ही है। यह अनुभव सारे संसार को होता है। गाढ़ निद्रा या स्वप्नावस्था की चेतना के निर्णय जाग्रत्-अवस्था की चेतना के निर्णय या ज्ञान का पूर्ण रूप से खंडन करते हैं।

अब वास्तविक वस्तु वह है, जो कल, आज और सदा

एकसाँ है। सभी को सत्य की यह कसौटी मान्य है। जो क़ायम रहता है, वह असली है। अधिष्ठान अर्थात् द्रष्टा के स्थिति-बिन्दु से यह चेतना तीन विभिन्न रूप ग्रहण करती है। जाग्रत् दशा में यह चेतना देह से अपनी अभेदता स्थापित करती है और जब आप 'मैं' शब्द का प्रयोग करते हैं, तब आपको इस शरीर, इस देह-चेतना का बोध होता है। स्वप्नशील अवस्था में वह बिलकुल दूसरी ही दशा धारण करती है। आप बदल जाते हैं। स्वप्नशील द्रष्टा वैसा ही नहीं है, जैसा कि जाग्रत्-द्रष्टा है। आप अपने स्वप्नों में अपने को निर्धन पाते हैं, यद्यपि आप धनी हैं। आप अपने को शत्रुओं से घिरा हुआ पाते हैं, आपका घर अग्नि से नष्ट हो जाता है, और आप विवश जीने बचते हैं। अपने स्वप्न में आपने चाहे कुछ पानी पिया हो, किन्तु जागने पर आप अपने को प्यासा पाते हैं। स्वप्नशील द्रष्टा जाग्रत्-द्रष्टा से भिन्न है। इस तरह चेतना स्वप्न की अवस्था में एक रूप धारण करती है, और जाग्रत्-अवस्था में दूसरा, और गाढ़ निद्रावस्था में तीसरा रूप धारण करती है। आपकी चेतना तब (गाढ़ निद्रा में) शून्यता से अपनी अभेदता स्थापित करती है। आप कहते हैं "मुझको इतनी गहरी नींद आई कि मैंने कोई स्वप्न भी नहीं देखा।" गाढ़ निद्रा की दशा में आपमें कोई चीज़ है, जो बराबर जागती रहती है। जो नहीं सोती, वही आपका वास्तविक आत्मा (स्वरूप) है। वह विषयाश्रित चेतना से पृथक् है, वह शुद्ध चेतना है। वह आपका स्वरूप (अपना आप) है।

एक मनुष्य आता और कहता है, "कल रात को बारह बजे मैं आठवें स्ट्रीट पर था, और मैंने कुछ नहीं देखा। उस

समय वहाँ एक भी व्यक्ति नहीं था।" हम उससे कहते हैं कि वह अपना बयान लिख दे कि उक्त सड़क पर अमुक समय पर एक भी व्यक्ति मौजूद नहीं था। वह मनुष्य कहता है कि यह बयान सत्य है, क्योंकि मैं प्रत्यक्षदर्शी गवाह हूँ। तब प्रश्न किया जाता है, "तुम कोई चीज़ हो या नहीं हो? यदि यह बयान तुम्हारे प्रमाण पर हम मानें, तो यह आत्मविरोधी है। यदि यह बयान सत्य है, तो आप वहाँ मौजूद थे।"

जब कोई गाढ़तम निद्रा में है, तब वह जागने पर कहा करता है कि मैंने कोई स्वप्न नहीं देखा। हम कहते हैं, भाई! तुम यह बयान तो करते हो कि वहाँ कुछ नहीं था, किन्तु इस बयान के सही होने के लिये तुम्हें आकर गवाही देना पड़ेगी। यदि आप वस्तुतः ग़ैरहाज़िर थे, तो यह गवाही आप कैसे देते हो? आपमें कोई चीज़ ऐसी है, जो उस गाढ़ निद्रा में भी जागती है। वह आपका वास्तविक स्वरूप (आत्मा) है, वह चेतनस्वरूप वा ज्ञानस्वरूप (Absolute will or Absolute consciousness) है।

देखिये, इससे सारे संसार का प्रसार कैसे होता है। नदियों को देखिये। उनकी तीन दशायें होती हैं, एक हिमानी (glacier), दूसरी छोटे चश्मों और नालों की। बरफ़ पिघलते ही नदी बहुत ही कोमल, शान्त और शिशु अवस्था में होती है। तीसरी दशा वह है, जब नदी पहाड़ों को छोड़कर मैदान में उतर आती है, और बड़ी उत्पातिनी होती है तथा कीचड़ से भर जाता है। ये तीन दशायें हैं।

पहली दशा में पहाड़ों में, बरफ़ में, सूर्य का प्रतिबिम्ब नहीं दिखाई पड़ता। दूसरी और तीसरी में वह (सूर्य का प्रतिबिम्ब) दिखाई देता है। दूसरी दशा में नदी जहाज़ या नौका को चलाने के लायक़ नहीं होती। वह किसी व्यावहारिक

काम की नहीं होती, तथापि वह बड़ी सुन्दर होती है। तीसरी दशा में वह नाव या जहाज़ चलाने के लायक़ होती है, और खेतों तथा घाटियों को भी उपजाऊ बनाती है। सो हम देखते हैं कि दो चीज़ें मौजूद थीं, एक सूर्य और दूसरी नदी।

एक आपमें सूर्यों का सूर्य है, जो गाढ़ निद्रावस्था में परमेश्वर है। वह सूर्यों का सूर्य जमी हुई बरफ़ पर चमकता है। वह सूर्यों का सूर्य, अचल, अव्यक्त, साक्षी है। जब वह सूर्य सुषुप्तिकाल की शून्य अवस्था पर कुछ समय तक चमकता रहता है, तब आपमें वह सूर्यों का सूर्य अपने को चमकीली, गरमानेवाली हालत में रखता है, और आपके कारण-शरीर को पिघलाता है, तब उस शून्यता से स्वप्नशील दशा प्रवाहित होती है। यही इंजील कहती है, "परमेश्वर ने शून्य से संसार की सृष्टि की।" परमेश्वर था और वह वही था, जो पहली दशा में शून्य कहा जाता है। जिस तरह सूर्य बरफ़ से नदियाँ पैदा करता है, ठीक उसी तरह जब सूर्यों का सूर्य, जो आपके भीतर परमेश्वर है, देखने-मात्र शून्यता पर (जिसे हिन्दू माया कहते हैं।) चमकता है, तब उसी वक़्त द्रष्टा और दृश्य पदार्थ बाहर बह निकलते हैं। द्रष्टा के अर्थ ज्ञाता हैं और दृश्य पदार्थ वह है, जो देखा वा जाना जाता है।

स्वप्नावस्था का अनुभव जाग्रत्-अवस्था के अनुभव के लिये वैसा ही है, जैसा नन्हा, छोटा नाला महान् नदी के लिये है। लोग कहते हैं कि मनुष्य परमात्मा के रूप में बना है। गाढ़ निद्रा में आपमें कोई अहंभाव नहीं है। किन्तु स्वप्न और जाग्रत्-अवस्था में आपमें अहंभाव है। स्वप्न और जाग्रत्-दशा में आप परमेश्वर का प्रतिबिम्ब रखते हो। असली आत्मा परमेश्वर है, सूर्य है, न कि यह प्रतिबिम्बित सूरत (मूर्ति)। स्वप्न में आप सब प्रकार की

चीजें देखते हैं। किसी वस्तु को (स्वप्न में) देखने के लिये, किस प्रकाश में आपको उसे देखना पड़ता है? वह चन्द्रमा का प्रकाश है या नक्षत्रों का या भौतिक सूर्य का कि जो हमें स्वप्न में वस्तुओं को देखने की शक्ति देता है? किसी का भी नहीं। फिर वह कौन-सा प्रकाश है, जो स्वप्न में सब प्रकार की वस्तु देखने के योग्य बनाता है? वह आपके अन्दर का प्रकाश है। वह वही प्रकाश है, जो प्रत्येक पदार्थ को दृष्टि-गोचर बनाता है। यह प्रकाश जो स्वप्न में सब प्रकार की वस्तुओं को देखने की शक्ति आपको देता है, केवल गाढ़ निद्रावस्था में स्वच्छन्द रूप से चमका था। स्वप्न में वह पदार्थों को अवलोकनीय बनाता है। इस तरह पर घनसुषुप्ति में और स्वप्नावस्था में भी वह प्रकाश निरन्तर रहता है। स्वप्न में यदि आप चन्द्रमा देखते हैं, तो चन्द्र और साथ ही उसके प्रकाश की स्थिति का भी कारण आपके अन्दर का प्रकाश है।

आज यह सिद्ध किया गया है कि तुम प्रकाश-स्वरूप हो, तुम प्रकाशों के प्रकाश हो। जैसे कि नदी के संबंध में जानते हो कि उसके मूल में भी वही सूर्य है, जो मुहाने पर है; उसी तरह असली आत्मा तुममें सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत्-दशा में वही है। तुम वही हो। अपने को उस अंतर्यामी आत्मा से अभेद कर दो, तब तुम बलिष्ठ और शक्ति से पूर्ण होते हो। यदि आप चंचल, परिवर्तनशील वस्तुओं से अपनी अभेदता क़ायम करते हो, तो आप उस लुढ़कते हुए पत्थर के समान हो जाते हो कि जिसमें काई या सेवार नहीं जमती। सूर्य केवल एक ही नदी के उत्पत्ति-स्थान, बीच और मुहाने पर नहीं है, किन्तु दुनिया की सब नदियों की सब अवस्थाओं में भी वही है।

आपमें जो प्रकाशों का प्रकाश है, वह दुनिया के सब लोगों की सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत्-अवस्थाओं का वास्तविक आत्मा

है। वह प्रकाश उन पदार्थों से भिन्न नहीं है, जिन पर वह चमकता है। आप वह प्रकाशों के प्रकाश हो। इस विचार (ख्याल) पर टिको कि मैं प्रकाशों का प्रकाश हूँ। वही मैं हूँ। प्रकाशों के प्रकाश से अपनी अभिन्नता क़ायम करो। वही आपका असली स्वरूप है। कोई डर नहीं, कोई झिड़कियाँ नहीं, कोई शोक नहीं, सर्वत्र वह है। प्रकाशों का प्रकाश, अविच्छिन्न, निर्विकार, कल और आज तथा सदा एकरस। मैं प्रकाशों का प्रकाश हूँ। सारी दुनिया केवल लहरें, केवल तरंगें और चक्कर जान पड़ती है।

'क्षुद्रात्मा वा परिच्छिन्नात्मा' को जो पर्दा घेरे हुए है, उसे हटाने में निम्न-लिखित उपाय बहुत ही उपकारी सिद्ध होगा।

लोग कहते हैं, "सैर करते समय बातचीत के लिये एक मित्र होना चाहिये।" नीचे लिखे कारणों से यह कथन भ्रमजनक वा असत्य है :—

प्रथम—जब हम अकेले चलते हैं, तब हमारी साँस स्वाभाविक, तालबद्ध और स्वास्थ्यकर होती है। इस कारण से, कांट (Kant) अपने जीवन के अन्तिम भाग में सदा अकेला सैर करता था, ताकि साँस का ताल बराबर बना रहे, और उसने अच्छी दीर्घ आयु पाई। जब हम अकेले चलते हैं, तब हम नथनों से साँस ले सकते हैं; किन्तु जब हम बातें करते होते हैं, तब हमें अपने मुख से साँस लेनी पड़ती है। नथनों से साँस लेना सदा शक्तिवर्द्धक है, और फेफड़ों को बलवान् बनाता है। परमेश्वर ने मनुष्य के नथनों में साँस भरी, मुख में नहीं। हम मुख से साँस बाहर चाहे निकालें, किन्तु भीतर साँस सदा नथनों से हमें खींचना चाहिये। जो हवा फेफड़ों में प्रवेश करती है, वह नथनों के बालों से छन कर जाती है।

द्वितीय—जब हम अकेले विचरते हैं, तब हमारी विचार करने की अति सुन्दर वृत्ति होती है, और उत्कृष्ट विचार उस समय मानों हमें खोजते हैं। लॉर्ड क्लाइव (Lord Clive) को किसी तरह इस रहस्य का पता लग गया, और भारतीय राजनीति के जब किसी अत्यन्त पेचीदा मसले पर उसे विचार करना होता था, तब वह टहलने लगता था। इस तरह टहलना बुद्धि की वृद्धि में बहुत ही उपकारी है। जब हम किसी के साथ चलते हैं, अथवा ऐसे लोगों के साथ चलते हैं, जो सदा अपने विचार बलात् हम पर लादते रहते हैं, तब हम मौलिक और उत्कृष्ट विचारों को अपने पास आने से रोक देते हैं, जो अन्यथा हम पर अवश्य कृपा करते।

तृतीय—आध्यात्मिक स्थिति-बिन्दु से। अकेले चलते समय विभाजक शक्तियों और प्रतिकूल (विपरीत) तत्त्वों को चित्त झिटक देता है, और उसे अपने केन्द्र तथा आत्मा की विश्रान्ति रूप भावना का लाभ होता है, और स्वयं उसे भोगने का वह अवसर पाता है। सम्पूर्ण कायव्यूह (शरीर-यंत्र) में तेज वा बल का संचार हो जाता है।

यह आत्म-सूचना (बुद्धि) अपने आपको दो कि "मैं आनन्द-स्वरूप हूँ, मैं प्रकाशों का प्रकाश हूँ।" अपनी उच्चतर शक्तियों का उत्कर्ष करने में इस विचार पर ज़ोर देना चाहिये। चाँदनी में या प्रातःकाल चलने में अकथ लाभ हैं, जिनका लगाव इसी से है। अस्त या उदय होते हुए सूर्य की ओर मुख करके चलो, नदियों के तटों पर सैर करो। जहाँ शीतल पवन के झकोरे आते हों, वहाँ टहलो, तब आप अपने को प्रकृति से एकतान पाओगे, विश्व से एकताल पाओगे।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

केन्द्रच्युत न हो

(ता० ६ जून १६०३ को कैसिल स्प्रिंग्स में दिया हुआ व्याख्यान)

यहाँ के लोगों का ढंग यह है कि भोजन करते समय बातचीत करते रहते हैं, किन्तु भारत में दूसरी ही चाल है। वहाँ भोजन करते समय बातचीत नहीं की जाती। आप जानते हैं कि वहाँ भोजन करते समय प्रत्येक व्यक्ति को खाने की क्रिया मानों धार्मिक भाव से करनी पड़ती है, उसे पवित्र कृत्य बनाना पड़ता है। आपके मुख में जानेवाले भोजन के हरएक ग्रास के साथ आपको इस विचार पर ध्यान देना होता है कि यह कौर (ग्रास) बाह्य संसार का प्रतिनिधि है, और इस प्रकार मैं सम्पूर्ण विश्व को अपने में सम्मिलित कर रहा हूँ। और वे खाते समय निरन्तर इस विचार को अपने चित्त में रखते हैं और ॐ जपते रहते हैं, मन से अनुभव करते और समझते जाते हैं कि सम्पूर्ण संसार मुझमें सम्मिलित है। ॐ, ॐ, विश्व मुझमें है, दुनिया मेरी देह है। इस प्रकार, प्रत्येक ग्रास के साथ वे आध्यात्मिक बल प्राप्त करते हैं। आध्यात्मिक और शारीरिक भोजन साथ-साथ होता है। सारी दुनिया मैं हूँ, मेरा ही मांस और रुधिर है। भोजन सम्पूर्ण संसार का, जो मेरा अपना ही मांस और रक्त है, एक प्रतिनिधि है। सब एकता है। हिन्दुओं का इससे घनिष्ठ परिचय होने के कारण ये सब विचार उनके चित्तों और भावनाओं में एकत्रित हो जाते हैं, भावुक प्रकृति (emotional nature) और संकल्प-शक्ति (will power) की यहाँ तक पुष्टि होती है कि तुरन्त

आत्मानुभव होता है, और वही आहार-क्रिया, जो पाशविक क्रिया कही जाती है, आत्मानुभव की क्रिया हो जाती है।

स्नान करते समय आपको वह मंत्र जपना चाहिये, जिसका अर्थ जल है। जल ठोस पृथिवी का समुद्र है। विवस्त्र शरीर पानी से एक होता है, शरीर का प्रत्येक रोम-कूप उस जल को ग्रहण कर रहा है और हम प्रकृति से एक होते हैं, मीन (जल-जन्तु) से अभिन्न होते हैं, विश्व के जल से अपने बन्धुत्व का हमें पुनर्लाभ हो जाता है। जिस प्रकार से जल मिट्टी और मैल को देह से हटा रहा है, उसी तरह आत्मा की धूल भी छूट रही है। सम्पूर्ण विश्व मेरा भोजन है, मैं पवन भक्षण कर रहा हूँ। इसी तरह जीवन की प्रत्येक क्रिया और प्रत्येक कृत्य को, वेदान्त के अनुसार, धार्मिक कार्य बनाया जा सकता है। यहाँ तक कि नाना रोग भी देवता बनाये जाते हैं।

भारत में जब किसी घर में चेचक आती है, तब वे कदापि नहीं विकल होते, कदापि कोई चिकित्सा नहीं करते, बल्कि खुश होते हैं। क्या यह अद्भुत नहीं है? वे अनेक प्रकार से गाते-बजाते हैं, इस अवसर को अत्यन्त धार्मिक समझते हैं। घर का प्रत्येक व्यक्ति परमात्मदेव की पूजा करता है। उन्हें शोक या चिन्ताकुल इच्छाएँ नहीं होतीं। जब बच्चा चंगा हो जाता है, वे धन-दान द्वारा और ढोल पीटकर देवता का पूजनोत्सव करते हैं, और बहुत हर्ष तथा आनन्द प्रकट करते हैं, दिव्य विश्व के प्रति प्रेम और कृतज्ञता प्रकट करते हैं। इन दिनों इन रीतियों ने जनता के लिये अपनी महत्ता खो दी है। लोग चाहे इन बातों को समझें या न समझें, राम इनका अर्थ जानता है और इन सबका सर्वोत्तम उपयोग करता है।

राम आपमें से हरएक से एक बात की सिफ़ारिश करता है। सबेरे जब आप उठते हैं या चलते हैं अथवा कोई और काम करते हैं, तब अपने विचार सदा निज धाम में रखिये। सदा अपने आपको केन्द्र में रखिये। केन्द्रच्युत मत हूजिये। जिस तरह मछलियाँ जल में रहती हैं, जिस तरह चिड़ियाँ वायु में रहती हैं, उसी तरह आप प्रकाश में रहो। प्रकाश में आप रहो, चलो, फिरो और अपना अस्तित्व रक्खो। जब अँधेरा होता है, तब भी विज्ञान के अनुसार प्रकाश ही होता है। आन्तरिक प्रकाश सदा मौजूद है। गाढ़ निद्रा-अवस्था में प्रकाश उपस्थित है। एकाग्रता की सहायता में, आत्मानुभव के उच्चतम शिखर पर चढ़ने के निमित्त, जिज्ञासुओं के लिये यह अत्यन्त आवश्यक पाया गया है कि वे अपनी सत्ता को प्रकाश का साथी मानें।

भौतिक वस्तु के रूप में हम प्रकाश को पूजा नहीं करते हैं, जैसा कि रोमन कैथोलिक ईसाई अपनी मूर्तियों के साथ करते हैं। आत्मानुभव के अत्यन्त निश्चित उपाय के तौर पर, हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों में, यह बार-बार उपदेश दिया गया है कि अपने आपको निरन्तर संसार का प्रकाश समझते हुए पूजा को आरम्भ करना चाहिये। जब आप ॐ जप रहे हों, तब अनुभव कीजिये कि आप प्रकाश हैं, तेज हैं। प्रकाश आप हैं। यह भाव जो हिन्दू-शास्त्रों में बड़े विज्ञान के साथ प्रकट किया गया था, इसकी ठोकर सब महात्माओं को लगी थी। ईसा ने कहा, "मैं संसार का प्रकाश हूँ।" मोहम्मद और सब महान् पुरुष इसी प्रकार से बोले थे। प्रकाश के रूप में आप सब वस्तुओं में व्याप्त हैं। इन विचारों को निरन्तर आपको अपने सामने रखना चाहिये और इस

प्रकार आप सदा परमेश्वर के संपर्क में होते हैं। इस प्रकार से हिन्दू का हरएक कृत्य धार्मिक स्थिति-बिंदु से आत्मा से एक स्वर (अभेद) हुए होता है।

राज़ी से या बेराज़ी से, प्रकृति की सब शक्तियाँ मनुष्य को आत्मानुभव कराने में बाध्य हैं। अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितियों से कोई भेद नहीं पड़ता। जैसे चलने में जब हम एक पैर आगे बढ़ाते हैं, तब दूसरा उठाते हैं, उसी तरह सुख और पीड़ा निरन्तर परस्परानुगामी हैं, और सम्पूर्ण विश्व-भर में यह प्रक्रिया काम कर रही है। वे लोग सचमुच सुखी हैं, जो सांसारिक सुखों और दुःखों से अपने को परे रखते हैं। इन दोनों से बचना चाहिये, और इसी में सच्चा सुख है। एक का उतना ही स्वागत करना चाहिये, जितना दूसरे का। सांसारिक सुख और दुःख उसे विभिन्न नहीं प्रतीत होते, जो मनुष्य उनसे ऊपर उठता है, उसको एक उतना ही मान्य है, जितना कि दूसरा। प्रत्येक सुख के गर्भ में दुःख उपस्थित है, और प्रत्येक पीड़ा के गर्भ में सुख मौजूद है। जो सुखों को ग्रहण करता है, उसे दुःख भी लेने ज़रूरी हो जाते हैं। वे अलग नहीं किये जा सकते। सच्चे आनन्द का मार्ग उन (सुख-दुःख) से ऊपर उठना है। सवदा अपने आत्मा का भोग करो। वही मनुष्य स्वतंत्र है, जो सुखों और दुःखों का समभाव से उपयोग कर सकता है। सदा सत्यात्मा में रहो, फिर तुम्हारे आनन्द में कोई बाधा नहीं डाल सकता। जो स्वतंत्र है, उसकी अभ्यर्थना सारी प्रकृति करती है, सम्पूर्ण विश्व उसके सामने शीश झुकाता है। जब आप भान करते हैं कि मैं वह (सत्यस्वरूप) हूँ, तब आप स्वतंत्र हैं। आज यह आपको आदरणीय हो या न हो, फिर भी यह कठोर सचाई बनी रहती है, और देर या सबेर सबको

इसकी उपलब्धि करनी होगी। सोऽहम् और ॐ का जाप आपको केवल सत्य में रखने के लिये है। अपने आपको कारण-कार्य-तल पर उतार लाना सबसे बड़ा पतन है। संसार दृश्य के कारण-कार्य-भाव (हेतुओं) को ज्यों ही कोई सोचना आरंभ करता है, त्यों ही वह गिरता है। एक बच्चा कारण-कार्य-भाव से परे है, वह हर एक वस्तु का उपयोग करता है, और कारण की परवाह नहीं करता। अतः वह प्रफुल्लित और सुखी है। वह कारण कार्य-भाव के प्रदेश से ऊपर है। कारण-कार्य-भाव के प्रदेश में गिरने के बदले आपको ईश्वर-भाव में चढ़ना चाहिए। मैं दृश्य का केवल साक्षी हूँ, कदापि उन (रूपों वा रूप) में फँसा नहीं हूँ, सदा उनसे ऊपर हूँ। ये सब नाम-रूप-व्यापार केवल स्फुरण-मात्र हैं, चक्र की ऊपर और नीचे गति है, अथवा क़दम का ऊपर उठना और नीचे आना है। आपको कारण-कार्य-भाव से ऊपर उठाने का उद्देश्य है, न कि नीचे लाने का। कारण-कार्य-भाव के तल से ऊपर उठने के लिये आपको निरन्तर प्रयत्न और संघर्ष करना पड़ेगा। अपने ईश्वरत्व में रहो और आप मुक्त हो, आप ही अपने स्वामी हो। विश्व के विधाता हो।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

आत्मानुभव की सहायता नं० १

या

प्राणायाम

(ता० ८ मार्च १९०३ को दिया हुआ व्याख्यान)

आज राम का प्रवचन कुछ बातों पर होगा, जिनसे उन लोगों को बड़ी सहायता मिलेगी, जिन्होंने राम के पिछले व्याख्यान सुने हैं। पहले हम प्राणायाम को लेंगे। प्राणायाम का शाब्दिक अर्थ 'श्वास (प्राण) का नियंत्रण' है। योग पर हिंदुओं की पुस्तकों में प्राण के नियमन की आठ मुख्य विधियाँ दी हुई हैं। किन्तु राम आपके सामने केवल एक विधि पेश करेगा। जिसे प्राणायाम कहते हैं, और जो प्राण के नियमन की बड़ी महत्त्व-पूर्ण विधि है। आप सवाल करेंगे कि प्राण का संयम करने से क्या लाभ है ? इसके उत्तर में राम केवल यह कहता है, "प्राण (श्वास) के नियंत्रण की यह विधि सीखो और इसे अमल में लाओ। आपका अपना अभ्यास ही बता देगा कि यह अत्यन्त उपयोगी है।" जब कभी तुम चकराओ, जब कभी तुम्हें विषाद जान पड़े, जब कभी तुम खिन्न हो, जब कभी तुम्हें उदासी जान पड़े, जब कभी तुम्हारा मन मलीन हो, निरुत्साही हो, तब प्राणायाम करो, जिसे राम तुम्हारे सामने अब उपस्थित करने लगा है, और तुम देखोगे कि तुम्हें तुरन्त शान्ति मिल जाती है। प्राण के नियमन की इस विधि का लाभ आपको तुरन्त जान पड़ेगा। पुनः जब कभी किसी विषय पर आप लिखना शुरू करो, जब आप कभी

किसी विषय पर विचार करना शुरू करो, और आपको जान पड़े कि आप अपने विचारों को क़ाबू में नहीं ला सकते, तब आप यह प्राणायाम करो, और इससे जो आपको तुरन्त शक्तियाँ प्राप्त होंगी, उस पर आपको विस्मय होगा। हरएक वस्तु क्रमानुसार (ठीक स्थान पर) है। हरएक वस्तु अत्यन्त वांछनीय अवस्था में रक्खी हुई है। प्राणायाम के ये लाभ हैं:— इससे आपके बहुत से शारीरिक रोग दूर हो जायँगे। प्राणायाम से आप पेट के दर्द से, सिर के दर्द से, दिल के दर्द से अच्छे हो सकते हैं। अब हम देखेंगे कि यह प्राणायाम क्या है। इस देश में लोग इस या उस विधि से प्राण का नियमन करने का यत्न कर रहे हैं, किन्तु राम आपके सामने वह उपाय रखता है, जो समय की परीक्षा में पूरा उतर चुका है, जो भारत में अति प्राचीन काल में प्रचलित था, और जिसका आज भी वहाँ प्रचलन है, तथा अति प्राचीन काल से लगाकर आज तक जिस किसी ने उसका अभ्यास किया है, उसी ने उसे अत्यन्त उपयोगी पाया है।

अस्तु, प्राणायाम करने के लिये आपको अत्यन्त सुखकर, सरल स्थिति में बैठना चाहिये। एक पाँव दूसरे पर चढ़ाकर बैठना बड़ा ही सुखकर आसन है, किन्तु यह आसन, ऐ पश्चिमी भारत-वासी! आपको मार डालेगा। इसलिए आप आराम-कुरसी पर बैठ सकते हैं। अपनी देह सीधी रक्खो, रीढ़ की हड्डी कड़ी रक्खो, सिर ऊपर, सीना बहिर्गत, नेत्र सामने रक्खो। दाहिने हाथ का अँगूठा दाहिने नथने पर रक्खो और बाएँ नथने से धीरे-धीरे भीतर साँस खींचो। तब तक धीरे-धीरे भीतर साँस खींचते रहो, जब तक तुम्हें आराम मिले। जब तक आराम से खींच सको, तब तक साँस भीतर खींचते रहो। साँस भीतर खींचते समय चित्त को शून्य न होने

दो। भीतर साँस खींचते समय चित्त को एकाग्रता से इस विचार पर जमाओ कि सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ परमेश्वर भीतर खींचा जा रहा है कि आप परमात्मा, नारायण, सम्पूर्ण संसार, सम्पूर्ण विश्व को पी रहे हैं। अस्तु, जब आपको समझ पड़े कि आपने अपनी पूर्ण शक्ति भर हवा भीतर भर ली है, तब अँगुली से उसी बाएँ नथने को बन्द कीजिये, जिससे आप भीतर साँस भर रहे थे; और जब आप दोनों नथने बन्द कर दें, तब मुख से साँस न निकलने पावे। भीतर खींची हुई साँस अपने अन्दर फेफड़ों में, पेट में, पेड़ू में रहने दो। सब छिद्र (सूराख, खाली स्थान) हवा से भरे हों, उस हवा से भरे हों, जो आपने भीतर खींची है। और जब साँस से खींची हुई हवा आपके भीतर हो, तब मन को शून्य न होने दीजिये, मन इस विचार में, इस सत्य में केन्द्रित (ध्यानावस्थित) रहे कि "मैं परमात्मा हूँ, मैं सर्वशक्तिमान् परमेश्वर हूँ, जो विश्व की हरएक वस्तु में व हरएक अणु में, प्रत्येक परमाणु में, भिदा हुआ है, व्याप्त है, परिपूर्ण है।" यह समझो। इस विचार के अनुभव को उपलब्धि में अपनी सारी शक्तियों का प्रयोग करो, अपनी परमेश्वरता को अनुभव करने में अपनी सारी शक्ति लगा दो। ज्यों-ज्यों साँस तुम्हारी देह में भरती जाय, त्यों-त्यों अनुभव करो और समझो कि "मैं सत्य हूँ, मैं वह दैवी शक्ति हूँ, जो सम्पूर्ण विश्व में परिपूर्ण है।" यह समझो। आवश्यकता है कि आप अपने मन इस पर एकाग्र करें। जब आपको समझ पड़े कि अब आप साँस एक क्षण भी और नहीं रोक सकते, तब बायाँ नथना बन्द रखकर दाहिना नथना खोल दीजिये, और दाहिने नथने से धीरे-धीरे

क्रमशः साँस बाहर निकालिये। तब भी मन को सुस्त न होने दीजिये, वह काम में लगा रहे, उसे अनुभव करने दो कि ज्यों-ज्यों साँस आ रही है, और पेट की सब मलिनता दूर हो रही है, त्यों-त्यों सारी मलिनता, अशुद्धता, सारी गंदगी, सारी दुष्टता, दुर्गन्धता, सम्पूर्ण अविद्या बाहर निकल रही है, दूर की जा रही है, और त्यागी जा रही है। सारी दुर्बलता कूच कर गई, न कोई दुर्बलता है, न अविद्या है, न भय है, न चिन्ता, न व्यथा, न परेशानी, न क्लेश है, सबका अन्त हो गया, सब चले गये, आपको छोड़ गये। जब आप साँस बाहर निकाल चुको, आराम से जितनी साँस बाहर निकाल सकते हो, उतनी जब आप निकाल चुको; तब तक साँस बाहर निकालते रहो, जब तक आप आराम से निकाल सकते हो, और जब आपको समझ पड़े कि अब और साँस बाहर नहीं निकाली जा सकती, तब दोनों नथनों को खुले रखते हुए यत्न करो कि तनिक भी हवा भीतर न जाने पावे। हाथ नाक से हटा लो, कुछ देर तक हवा को भीतर न जाने दो, जितनी देर तक आपसे ऐसा हो सके उतनी देर तक, और जब तुम्हारे प्रयत्न से हवा नथनों के द्वारा फेफड़ों में न जाने पाती हो, तब मन को फिर काम में लगाओ और उसे यह भान करने दो, अपने पूरे बल और शक्ति से उसे यह अनुभव करने की चेष्टा करने दो कि यह परमेश्वरता अनन्त है। सम्पूर्ण समय (काल) और स्थान (देश) मेरा अपना विचार है; मेरा सत्य आत्मा, निज स्वरूप, समय, स्थान और कारणत्व (काल, वस्तु और देश) से परे है। अनुभव करो कि यह परमेश्वरत्व देश-काल-वस्तु से परे है, इस दुनिया की किसी भी वस्तु से परिमित नहीं है। वह कल्पनातीत है, विचारातीत

है, इन सबसे परे है, प्रत्येक वस्तु से परे है, अपरिमित है, हरएक वस्तु इसमें समाई है, हरएक वस्तु इससे परिमित है, आत्मा या निज स्वरूप सीमाबद्ध नहीं हो सकता। यह अनुभव करो।

इस प्रकार आप ध्यान दें कि इस प्राणायाम में, जितना कुछ अब तक आपके सामने रक्खा गया है, चार प्रक्रियाएँ हैं—मानसिक और शारीरिक दोनों। पहली प्रक्रिया भीतर साँस खींचने की थी। भीतर साँस खींचने का अंश शारीरिक क्रिया थी। और यह विचार या विचार-विधि अथवा अनुभव करना और समझना कि परमेश्वरता मैं हूँ, मैं परमेश्वर हूँ, तथा उस परमेश्वरता को अनुभव करने में मन को लगाना, एवं शक्ति को प्रयत्नशील करना, यह विचार तत्संबंधी मानसिक प्रक्रिया थी। फिर जब तक साँस तुमने अपने फेफड़ों में रोक रक्खी, तब तक दो क्रियाएँ होती रहीं, एक तो साँस को फेफड़ों में रखने की शारीरिक क्रिया और अपने आपको सम्पूर्ण विश्व समझने की मानसिक प्रक्रिया। और तीसरी प्रक्रिया में आपने दाहिने नथने से साँस बाहर निकाली, और सारी दुर्बलता दूर कर दी; अपने को परमेश्वरता में स्थापित रखने, आसीन रखने, जमे रहने की, कभी कोई दुर्बलता पास न फटकने देने की या कोई आसुरी-प्रलोभन अपने निकट न आने देने की दृढ़ प्रतिज्ञा की और तदनन्तर चौथी प्रक्रिया साँस को बाहर रखने की थी। इस प्रकार प्राणायाम का प्रथमार्द्ध अब तक इस चौथी प्रक्रिया में हो गया। आधा (प्राणायाम) समाप्त हो गया। यह चौथी क्रिया कर चुकने के बाद आप कुछ विश्राम ले सकते हैं। तब साँस को यथेच्छ अपने नथनों में भरने दीजिये। उसी तरह जल्दी-जल्दी साँस भीतर ले जाइये और बाहर निकालिये

जैसा कि दूर तक चलने के बाद होता है। साँस का यह स्वाभाविक भीतर जाना और बाहर निकलना, जो बहुत शीघ्रता से होता रहता है, स्वतः प्राणायाम है। यह प्राकृतिक प्राणायाम है। इस प्रकार विश्राम लेने के बाद, कुछ देर तक अपने फेफड़ों को भीतर साँस लेने और बाहर निकाल देने के बाद पुनः प्रारम्भ करो। अब शुरू करो, बायें से नहीं बल्कि दाहिने नथने से। मानसिक क्रिया पूर्ववत्। केवल नथनों में अदला-बदल हो गया। दाहिने नथने से साँस भीतर खींचो और ऐसा करते समय समझो कि मैं परमेश्वर को साँस में भीतर खींच रहा हूँ। यथाशक्ति साँस भीतर खींच चुकने के बाद जब तक आराम से हो सके तब तक साँस अपने भीतर रखिये। और फिर जब साँस आपके भीतर है, अनुभव कीजिये कि आप सम्पूर्ण विश्व का जीवन और साँस हैं, आप विशाल विश्व को परिपूर्ण और संजीवित करते हैं। इसके बाद बायें नथने से साँस बाहर निकालिये। उस नथने से साँस बाहर निकालिये, जिससे आपने प्राणायाम के पूर्वार्द्ध में साँस भीतर खींची थी, और समझिये कि आप सारी दुर्बलता, सम्पूर्ण अन्धकार अपने चित्त से निकाल बाहर कर रहे हैं, जैसे सूर्य कुहरा, धुंध, शीत, और अन्धकार को मार भगाता है, न फिर कुहरा, न धुंध, न अन्धकार और न सर्दी रहती है। तब साँस को अपनी नाक से बाहर रखिये, तथा हरएक क्रिया को बढ़ाने और दीर्घ करने का यत्न कीजिये। सब मिला कर इसमें आठ क्रियायें हैं। पहली चार क्रियाओं से आधा प्राणायाम होता है, और दूसरी चार से प्राणायाम का उत्तरार्द्ध बनता है। इन सब क्रियाओं को यथासाध्य बढ़ाइये और दीर्घ-काल-व्यापी बनाइये, इसमें एक-ताल गति है। जिस तरह लटकन (पेंडुलम, pendulum) दो तरफ़ा

झूलता है, उसी तरह इस (प्राणायाम) में आपको अपनी साँस को लटकन बनाना होता है। तालबद्ध चाल चलाना होता है। आप तब अपने ही अनुभव से देखेंगे कि आपको बड़े बल की प्राप्ति होती है। आपके अधिकांश रोग आपको छोड़ देते हैं। यक्ष्मा, पेट के विकार, खून की बीमारियाँ और प्रायः हरएक रोग आपको छोड़ देगा, यदि आप प्राणायाम का अभ्यास करेंगे।

अस्तु, राम देखता है कि जब लोग प्राणायाम का अभ्यास शुरू करते हैं, तब उनमें से अधिकांश बीमार पड़ जाते हैं। कारण यह है कि वे स्वाभाविक विधि को नहीं ग्रहण करते। वे इतने सैकिंडों तक साँस भीतर खींचते और बाहर निकालते हैं कि जिससे आप बीमार अवश्य पड़ जायँगे। इस साँस-क्रिया के हरएक भाग में आप स्वाभाविक बनिये। हर एक क्रिया को बढ़ाने का प्रयत्न कीजिये, भरसक यत्न कीजिये, किन्तु अपने को थका न डालिये। अधिक काम न कीजिये। यदि केवल पहली दो क्रियायें (अर्थात् भीतर साँस खींचना और फेफड़ों में उसे रखना) करने के बाद आपको थकान जान पड़े, तो रुक जाइये। रुक जाइये, क्योंकि आप किसी के बँधे नहीं हैं। दूसरे दिन अधिक विचार से काम कीजिये और पहली या दूसरी क्रिया करते समय अपनी शक्तियों को बचा रखिये, ताकि बाक़ी क्रियाओं को भी आप कर सकें; विवेकी बनिये।

अस्तु, साँस के नियंत्रण की यही एक अनुकूल विधि है। यह हर प्रकार का शारीरिक व्यायाम है। जो लोग समझते हैं कि इस प्राणायाम में कोई गूढ़ रहस्य है, इसमें कोई दैवी अभिप्राय है, वे ग़लती पर हैं। जो समझते हैं कि अत्यन्त ऊँचे दर्जे का आत्मानुभाव इससे

प्रतिफलित होता है और इससे बढ़कर कुछ भी नहीं है, वे ग़लती पर हैं। प्राणायाम या साँस के इस नियंत्रण में कोई अलौकिकता नहीं है। यह एक साधारण व्यायाम है। जिस तरह बाहर जाकर शारीरिक व्यायाम करते हैं, उसी तरह यह एक प्रकार की फेफड़ों की कसरत है। इसमें कोई वास्तविक महिमा नहीं है, इसमें कोई गुप्त भेद नहीं है।

प्राणायाम के संबंध में एक बात और कही जानी चाहिये। जब आप साँस भीतर खींचना या बाहर निकालना शुरू करें, तब अपने पेड़ू (इस शब्द के व्यवहार के लिये राम को क्षमा कीजिये) को, शरीर के अधो भाग को, भीतरी ओर खिंचा रखिये। इससे आपका बड़ा हित होगा। पुनः जब आप साँस भीतर खींचें या बाहर निकालें, तब साँस को अपने सम्पूर्ण उदर में पहुँचने और भरने दीजिये। ऐसा न हो कि साँस केवल हृदय तक जाय और हृदय से आगे न जाने पाये। साँस को नीचे और गहरा उतरने दीजिये। अपने शरीर का प्रत्येक छिद्र (खाली स्थान), अपने शरीर का सब ऊपरी आधा भाग परिपूर्ण हो जाने दीजिये। अस्तु, प्राणायाम के संबंध में इतना यथेष्ट है, और वेदान्त की रीति पर जो लोग अपने मन को एकाग्र करना चाहते हैं, वे ॐ का उच्चारण (जाप) शुरू करने के पूर्व, वेदान्तिक साहित्य में पढ़ी हुई किसी विधि पर मन की एकाग्रता आरम्भ करने के पूर्व, प्राणायाम करना अत्यन्त उपयोगी पावेंगे।

अब राम चित्त को एकाग्र करने की एक विधि आपके सामने रक्खेगा। इस काग़ज़ (प्रबन्ध) को अभी पढ़ना शुरू करने की आपको कोई ज़रूरत नहीं है। राम आपको बतावेगा कि इसे कैसे पढ़िये। भला आप जानते हैं कि यह उनके लिये है, जो राम के व्याख्यानों में आते रहे हैं। जिन्होंने

व्याख्यान नहीं सुने हैं, उनके लिये यह रोचक न होगा, उन्हें इसमें कोई अच्छाई नहीं मिलेगी, तथापि शायद इसके पढ़ने की विधि से उनका कुछ हित होगा। वे उस विधि को अपनी निजी प्रार्थनाओं में प्रयुक्त कर सकते हैं। इस कागज़ को अपने साथ ले जाने की भी उन्हें ज़रूरत नहीं है। वे विधि को सीख लें और अपनी निजी प्रार्थनाओं में उसका प्रयोग करें। यदि आप समझते हैं कि ये टाइप किये हुए कागज़ किसी काम के हैं, तो इनको आपमें से कोई भी अपने व्यवहार के लिये छपवा सकता है। प्रार्थना का यह एक रूप है। यह इस अर्थ में प्रार्थना नहीं है कि इसमें परमेश्वर से कोई वस्तु माँगी, चाही या याचना की गई है। यह इस अर्थ में प्रार्थना है कि आप को अपनी परमेश्वरता अनुभव करने के योग्य बनाती है। आपमें से अधिकांश के पास 'आत्मानुभव' पर राम-कृत वह लाल किताब है। अस्तु, यह प्रबन्ध भी उसी किताब के ढंग का है। यह कागज़, अर्थात् 'सोऽहम्' शीर्षक लेख, जो इस व्याख्यान के अन्त में दिया हुआ है, आप हर समय अपनी जेबों में रख सकते हैं, और जब कभी आपको समझ पड़े कि आपकी स्थिति की दशा आपके लिये बहुत अधिक विपरीत है, जब कभी आपको जान पड़े कि चिन्ताओं का, परेशानियों का, नित्य के जीवन के फ़िक्रों का बोझ आपको दबाये देता है, तब इस कागज़ को लेकर एकान्त में बैठ जाइये, और इसे उस प्रकार से पढ़ना शुरू कीजिए, जिस प्रकार से राम आज पढ़ेगा।

आराम से बैठ जाइये। उसी तरह पर बैठिये, जिस तरह पर आपसे प्राणायाम करने के लिये बैठने को बताया था। आप चाहें तो अपने नेत्र बन्द कर लें, और प्रार्थनात्मक

वृत्ति में प्रारम्भ करें, अथवा अपनी आँखें आधी बन्द रक्खें, जैसा भी आपको भावे।

'बस, केवल एक तत्त्व है ॐ ! ॐ !! ॐ !!!' इसे पढ़ो और काग़ज़ को अलग रख दो, उसे वहाँ रक्खा रहने दो। 'बस, केवल एक तत्त्व है।' आप यह जानते हैं, यही सत्य है। कम-से-कम वे सब, जिन्होंने राम के व्याख्यानों में जी लगाया है, जानते हैं कि यह सत्य है, और जब आपको विश्वास हो जाय कि यह सत्य है, तब इसे अनुभव कीजिये। 'बस, केवल एक सत्य है', भाव-पूर्ण भाषा में यह कहिये, अपने समग्र हृदय से इसे कहिये, इस कल्पना में घुल जाइये। 'बस, केवल एक सत्य है, ॐ ! ॐ !! ॐ !!!' अब देखिये यह पद 'बस, केवल एक सत्य है' लिखने के बाद इसके सामने लिखा हुआ है ॐ ! ॐ !! ॐ !!! इससे क्या सूचित होता है ? इससे सूचित होता है कि आपका दिल भर जाने के बाद, 'केवल एक सत्य है' के विचार में आपका मन डूब जाने के बाद, ये सब शब्द, एक, दो, तीन, चार, पाँच पढ़ने के बदले 'केवल एक शब्द ॐ आप कहें, क्योंकि यह एक शब्द आपके लिये सम्पूर्ण कल्पना को प्रतिपादन करता है। जैसे कि बीज-गणित में हम बड़े भागों (अंशों) को य अथवा र, क अथवा ख, या किसी और अक्षर से दिखाते हैं, उसी तरह जब आप यह विचार 'बस, केवल एक सत्य है,' पढ़ चुको, तब यह नाम ॐ, जो पवित्रों का पवित्र है, यह नाम ॐ जिसमें परमेश्वरता या परमात्मा की परम शक्तियाँ हैं, उच्चारणा चाहिये, और उसे उच्चारते समय एक केवल सत्य की कल्पना को आप अनुभव करें। जब आपके ओंठ ॐ उच्चारते हों, तब आपके सम्पूर्ण अन्तःकरण को 'केवल एक सत्य है' की कल्पना का अनुभव करना चाहिये।

किन्तु अभी तो आपको ये शब्द 'बस, केवल एक सत्य है' सम्भवतः प्रलाप-मात्र हों। वे आपके लिये निरर्थक हों। यदि आपने राम के व्याख्यान सुने हैं, तो आपको जानना ज़रूरी है कि 'केवल एक सत्य है', इसका एक मोटा अर्थ आपके लिये होना चाहिये। इसका अर्थ है कि यह सम्पूर्ण दृश्य (विश्व जो हमारे उत्साह को ठंडा कर देता है और हमारी प्रसन्नता को नष्ट कर देता है), यह सम्पूर्ण भेद-मय दृश्य जगत् सत्य नहीं है, सत्य केवल एक है, सारी परिस्थितियाँ सत्य नहीं हैं। यह अर्थ है। सत्य केवल एक है, और ये हैरान करनेवाली परिस्थितियाँ सत्य नहीं हैं। जिन्होंने इस प्रयोग की परीक्षा नहीं की है, और अपनी शक्तियों को भय-भीत कर दिया है, केवल वे ही इस एक सत्य के अस्तित्व को अस्वीकार कर सकते हैं। यह मामला भी उतना ही प्रयोग करने का है, जितना कि किसी प्रयोगशाला में किया हुआ कोई भी प्रयोग। यह दृढ़ कठोर तथ्य है। जब आप अपने चित्त को गला देते हो, जब आप अपने क्षुद्र मिथ्या अहंकार को परमेश्वरता में विलीन कर देते हो, तब क्या परिणाम होता है? परिणाम यह होता है (नज़रथ के ईसा के इन शब्दों पर ध्यान दीजिये) कि यदि सरसों के बीज भर भी विश्वास आपमें हो और पहाड़ को आने का आदेश आप दें, तो पहाड़ आ जावेगा। उस सत्य में आप जियें (जीवन में बरतें), उस सत्य को अनुभव करें, तब आप देखेंगे कि आप की सब परिस्थितियाँ, आपके सब समुपस्थित संकट, सब क्लेश और चिन्ताएँ, जो आपके सिर पर सवार हैं, ग़ायब हो जाने को लाचार हैं। परमेश्वरता की अपेक्षा बाहरी व्यापार में आप अधिक विश्वास रखते हैं, आप दुनिया को परमेश्वर से अधिक वास्तविक (सत्य) बना देते

हैं। बाहरी व्यापार के संबंध में आपने मोह-वश अपने को एक जड़ता में परिणत कर लिया है, और यही बात है कि आप अपने को सब तरह की बीमारियों और क्लेशों में फँसाते हैं। जब आपका चित्त बहुत गिरा हुआ हो, तब इस काग़ज़ को उठा लीजिये और अनुभव कीजिये कि 'बस, केवल एक सत्य है'। देखिये कि यह एक कथन उन सब नाम-मात्र सत्यों से उच्चतर कथन है, जो संबंधियों के द्वारा आपमें धीरेधीरे भर दिये गये हैं। सब नाम-मात्र तथ्य, जिनको आप तथ्य मानते रहे हैं, माया-मात्र वा भ्रम-मात्र हैं। इन्द्रियों के इन्द्रजाल ने आपके लिये इनको बना रक्खा है। इन्द्रियों के चकमें में न आओ। एक व्यक्ति आता है और आपमें दोष निकालकर आपकी आलोचना करता है, दूसरा आता और आपको गालियाँ देता है, तीसरा आता और आपकी ख़ुशामद करता तथा आपको अति स्तुति करके फुला देता है। ये सब तथ्य नहीं हैं, ये सब सत्य नहीं हैं। असली तत्त्व, कठोर तथ्य तो आपको अनुभव करना चाहिये। इसे जपते समय उस सारे विश्वास को आप उड़ा दीजिये व निकाल दीजिये कि जो आपने बाहरी दृश्य रूप परिस्थितियों में बना रक्खा है। अपनी सब शक्तियाँ और बल इस तथ्य में लगाओ, 'बस, केवल एक सत्य है। ॐ! ॐ!! ॐ!!!' अस्तु, प्रायः आप देखेंगे कि 'केवल एक सत्य है' के विचार का प्रथम पाठ आपको प्रसन्न और प्रफुल्लित कर देगा, आपको सब कठिनाई और व्यथा से मुक्त कर देगा। किन्तु यदि आपकी और आगे पढ़ने की प्रवृति हो, तो आप, पढ़ सकते हैं, अन्यथा यदि आप अपनी जेब के उस काग़ज़ का एक ही वाक्य अमल में ला सकें, तो यथेष्ट है। यदि आप समझें कि आपको कुछ और बल की आवश्यकता

है, तो आप दूसरा वाक्य पढ़िये, 'वह सत्य मैं स्वयं हूँ।' अब वह घर के निकट आ रहा है। 'अरे, मेरा पड़ोसी मुझसे भिन्न नहीं है, मैं वहाँ भी मौजूद हूँ। वह तत्त्व मैं ख़ुद हूँ। ॐ ! ॐ !! ॐ !!!' *ध्यान करो। कुछ लोग* कहते हैं कि जब आप ॐ उच्चार रहे हों, या यह कर रहे हों, तब अपने हाथ आप बन्द रक्खें। किसी तरह का कोई प्रतिबन्ध नहीं है। इस विचार को अनुभव करो। मन को एकाग्र करते समय यह ज़रूरत नहीं है कि आप अपने को किसी विशेष आसन में रक्खें। कोई बंधन नहीं है। अनुभव करते, महसूस करते और विचार को भीतर धसाने तथा अन्दर साँस के साथ खींचने की चेष्टा करते समय शरीर की परवाह न कीजिये। 'लोग क्या कहेंगे', इसकी चिन्ता न कीजिये। यदि आपकी गाने की प्रवृत्ति हो, तो गाते रहिये। यदि आपकी लेट रहने की प्रवृत्ति हो, तो फ़र्श पर पड़े रहिये। भाव का अनुभव कीजिये। यदि आपके हाथ उस ओर चलते हैं, तो उन्हें चलने दीजिये। शरीर के संबंध में कोई प्रतिबंध नहीं है, केवल भाव का अनुभव कीजिये। सर्वशक्तिमान् का भाव आता है, उस पर मनन कीजिये। यह काग़ज़ उनके लिए है, जिन्होंने व्याख्यान सुने हैं। जिन्होंने नहीं सुने हैं, वे अवश्य ही इसे रोचक न पावेंगे। जिन्होंने व्याख्यान सुने हैं, वे जानेंगे कि वास्तविक आत्मा सर्वशक्ति रूप है, परम स्वरूप, सर्वशक्तिमान् है। इस संबंध में, इस संसार में हर एक बात आत्मा से की जा रही है, जैसे कि इस पृथ्वी पर हर एक बात सूर्य के द्वारा हो रही है। हवा सूर्य के कारण चलती है, घास सूर्य के कारण उगती है, नदी सूर्य द्वारा बहती है, लोग सूर्य के कारण जाग पड़ते हैं, गुलाब सूर्य के कारण खिलते हैं। इसी

तरह, आत्मा ही के कारण, सर्वशक्तिमान् परम स्वरूप के ही कारण विश्व में प्रत्येक व्यापार हो रहा है। 'सर्वशक्तिमान्, सर्वशक्तिमान् ॐ! ॐ!! ॐ!!!' इस तरह उन सब सन्देहों को, जो आपको दुर्बल बनाते और पराजित करते हैं, उन सब भ्रान्तियों को, जो आपको कायर बनाती हैं, आपके सामने घुस आने का कोई अधिकार नहीं है। अनुभव कीजिये कि आप सर्वशक्तिमान हैं। जैसा आप ख़याल करते हैं, वैसे ही आप हो जाते हैं। अपने आपको पापी कहिये और आप पापी हो जाते हैं, अपने आपको मूर्ख कहिये और आप मूर्ख हो जाते हैं, अपने आपको दुर्बल कहिये, फिर इस दुनिया की कोई शक्ति आपको प्रबल नहीं बना सकती। अनुभव कीजिये कि सर्व-शक्ति और सर्वशक्तिमान् आप हैं।

तब 'सर्वज्ञ' का भाव आता है। इस सर्वज्ञता के भाव को आप ग्रहण करें, मन को इस भाव पर मनन करने दीजिये, ॐ का गान करने दीजिये। ॐ शब्द सर्वज्ञ का स्थानीय है, और ॐ उच्चारिये। शब्द या सूत्र जो उच्चारा जाना चाहिये वह ॐ है। सर्वज्ञ, ॐ, ॐ। इस तरह चलो और उन ग़लत विचारों को, जो आपको मुग्ध करके जाहिल वा मूर्ख बनाये हुए हैं, दूर कर दो। परमेश्वरता का सबसे सीधा रास्ता यही है।

ऐसा ही भाव 'सर्वव्यापी' का लीजिये। अनुभव करो कि "मैं परिच्छिन्न नहीं हूँ, यह क्षुद्र शरीर नहीं हूँ, मैं यह परिच्छिन्नात्मा नहीं हूँ; यह जीव, यह 'अहं' मैं नहीं हूँ। हर-एक अणु और परमाणु में जो व्याप्त और भिदा हुआ है, वह मैं स्वयं हूँ।" इस संबंध में तनिक भी सन्देह चित्त में न लाओ। सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, वह मैं हूँ, वह हरेक चीज़ में व्याप्त है, सब शरीर मेरे हैं। ॐ! ॐ!! ॐ!!!

अस्तु, बाक़ी वाक्यों पर अधिक टिकने वा ठहरने की

राम को ज़रूरत नहीं है। वे केवल आपको पढ़कर सुना दिये जायँगे। इस विधि का अभ्यास करो और यदि एक ही सप्ताह में आपको परमेश्वरता का अनुभव न हो, तो राम को ग़लत समझिएगा।

'पूर्ण स्वास्थ्य-स्वरूप मैं हूँ।'

यदि वह शरीर, जिसे आप मेरा कहते हैं, बीमार है, तो उसे अलग कर दीजिये, उसका ख़याल न कीजिये, समझिये कि आप पूर्ण स्वास्थ्य-स्वरूप हैं, पूर्ण स्वास्थ्य आपका है। यह अनुभव करो। शरीर तुरंत अपने आप ही स्वस्थ हो जायगा। यह है रहस्य। यत्न वा अभ्यास करने से आप देखोगे कि यह तथ्य है या नहीं। आपकी परवाह के बिना भी शरीर ठीक हो जायगा। आपको इस शरीर के लिये नहीं फ़िक्र करना चाहिये कि 'ऐ परमेश्वर, मुझे अच्छा कर दे।' संस्कृत धर्म-ग्रन्थों में एक सुन्दर वाक्य (मंत्र) है—"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।" दुर्बल इस सत्य को नहीं पा सकते। क्या आप नहीं देखते कि जब आप अमेरिका के राष्ट्रपति या किसी सम्राट् के पास जाते हैं, तब आप यदि फ़क़ीर बन कर जाते हैं, तो आप दुरदुरा दिये जाते हैं, आप उसके सामने नहीं हाज़िर होने पाते। सो जब आप फ़क़ीरी हालत में परमेश्वर के पास पहुँचोगे, तब आप ढकेलकर बाहर कर दिये जाओगे। समझिये कि 'मैं स्वस्थ हूँ,' और कोई चीज़ न माँगिये। 'मैं तन्दुरुस्त हूँ', और तन्दुरुस्त आप हैं।

तदुपरान्त दूसरा विचार 'सम्पूर्ण शक्ति मैं हूँ' आता है। इसे मन में रक्खो और ॐ! ॐ!! ॐ!!! उच्चारो। इस तरह कहो। 'सर्वशक्ति मैं हूँ'।

तब दूसरा विचार, 'सम्पूर्ण विश्व मेरा संकल्प-मात्र

है।' इसे मानो और इसे पढ़ते समय उन दलीलों को ध्यान में लाओ, जिन्हें वेदान्त इस तथ्य को सिद्ध करने में पेश करता है। इस तथ्य को सिद्ध करने में आप जो कुछ भी जानते हो, उसे ध्यान में लाओ, और यदि आपने ऐसी कोई भी बात पढ़ी या सुनी नहीं है, जो साबित करती है, कि दुनिया मेरा संकल्प है, तो इस विचार पर विश्वास करो, और आप देखेंगे कि दुनिया आपकी कल्पना-रूप है। 'दुनिया मेरी कल्पना है,' ॐ उच्चारो और ऐसा समझो। इसी प्रकार बाक़ी सब,

सर्व आनन्द मैं हूँ।	ॐ!	ॐ!!	ॐ!!!
सर्व ज्ञान मैं हूँ।	"	"	"
सर्व सत्य मैं हूँ।	"	"	"
सर्व प्रकाश मैं हूँ।	"	"	"
निडर, निर्भय मैं हूँ।	"	"	"
न कोई अनुराग या विराग। मैं सब इच्छाओं की पूर्णता हूँ।	"	"	"
मैं परमात्मा हूँ।	"	"	"
मैं सब कानों से सुनता हूँ।	"	"	"
मैं सब आँखों से देखता हूँ।	"	"	"
मैं सब मनों से सोचता हूँ।	"	"	"
जो सत्य मेरा स्वरूप है, उसी को जानने की साधु आकांक्षा करते हैं।	"	"	"
प्राण और प्रकाश जो नक्षत्रों और सूर्य के द्वारा झलकता है, वह मैं हूँ।	"	"	"

अब काग़ज़ समाप्त हो गया।

अब इसे स्पष्ट करने के लिये कुछ शब्द कहे जा सकते

हैं। हिन्दी-कहानियों में एक बड़ी सुन्दर कहानी है। एक समय में एक बड़े पंडित, बड़े महात्मा थे। कुछ लोगों को वे पवित्र कथा सुना रहे थे। ऐसा हुआ कि गाँव की ग्वालिनें पंडितजी के पास से होकर निकलीं, जब कि वे पवित्र कथा बाँच कर लोगों को सुना रहे थे। इन ग्वालिनों ने पंडितजी के मुख से ये वचन सुने "पवित्र-स्वरूप परमेश्वर का पवित्र नाम बड़ा जहाज़ है, जो हमें भव-सागर के पार लगा देता है। मानों कि सागर एक छोटा सरोवर-मात्र है। बिलकुल कुछ नहीं है।" इस प्रकार का कथन उन्होंने सुना। इन ग्वालिनों ने उस कथन को शब्दशः ग्रहण किया। उन्होंने उस कथन में अचल विश्वास स्थापित किया। उस पार अपना दूध बेचने के लिये उन्हें नित्य नदी पार करनी पड़ती थी। वे ग्वालिनें थीं। उन्होंने अपने मन में सोचा। वह पवित्र वचन है, वह ग़लत नहीं हो सकता, अवश्य वह यथार्थ होगा। उन्होंने कहा, "नित्य एक एकन्नी हम मल्लाह को क्यों दें? परमेश्वर का पवित्र नाम लेकर और ॐ उच्चारती हुई हम नदी को क्यों न पार करें? हम नित्य एकन्नी क्यों दें?" उनका विश्वास वज्र के समान कठोर था। दूसरे दिन वे आईं और केवल ॐ उच्चारा, मल्लाह को कुछ नहीं दिया, नदी पार करना शुरू किया, नदी उतर गईं और वे डूबी नहीं। प्रतिदिन वे नदी पार करने लगीं, मल्लाह को वे कुछ नहीं देती थीं। लगभग एक महीने के बाद उस उपदेशक के प्रति कि जिसने वह वाक्य पढ़े थे और उनका पैसा बचाया था, अत्यन्त कृतज्ञता का भाव उनमें उदय हुआ। उन्होंने महात्मा को अपने घर पर भोजन करने को निमन्त्रण दिया। अस्तु, निमन्त्रण स्वीकृत हुआ, नियत तिथि पर महात्मा को उनके घर पधारना पड़ा। एक ग्वालिन महात्मा को लेवाने आई। यह

ग्वालिन जब महात्मा को अपने गाँव लिये जाती थी, तब वे नदी पर पहुँचे। ग्वालिन एक पल में दूसरे तट पर पहुँच गई और महात्माजी उसी पार खड़े रह गये, वे उसके साथ न जा सके। कुछ देर में ग्वालिन लौट आई और महात्मा से विलम्ब का कारण पूछा। उन्होंने कहा कि मैं मल्लाह की राह देख रहा हूँ। मल्लाह को मुझे दूसरे तट पर ले जाना चाहिए। ग्वालिन ने उत्तर दिया, "महाराज! हम आपकी बड़ी कृतज्ञ हैं। आपकी कृपा से हमारे पैंतीस आने बच गये, और केवल पैंतीस ही आने नहीं, किन्तु अब हमें आजीवन मल्लाह को पैसा न देना पड़ेगा। आप ख़ुद भी रुपया क्यों नहीं बचाते और हमारे साथ उस पार चले चलते? आपके उपदेश और शिक्षा से हम, विना कोई हानि व क्षति उठाये, उस पार चली जाती हैं। आप स्वयं भी उस किनारे को जा सकते हैं।" महात्मा ने पूछा वह कौनसी शिक्षा थी, जिससे तुम लोगों का पैसा बच गया। ग्वालिन ने उस वचन की महात्मा को याद दिलाई, जो उन्होंने एक बार कहे थे कि भगवान् का नाम एक जहाज़ है, जो हमें भव-सागर के पार उतारता है। महात्मा ने कहा, बिलकुल ठीक है, बहुत ठीक है, मैं भी उस पर अमल करूँगा। अन्य साथी भी थे। (चले न जाओ, अब कथा का रोचक भाग आता है) एक बड़ा लम्बा रस्सा था। उसने वह रस्सी अपनी कमर में बाँध ली, और रस्सी का बाक़ी हिस्सा साथियों से अपने पास रखने को कहा, और कहा कि परमेश्वर का नाम लेकर मैं नदी में फाँदता हूँ, और विश्वास पर नदी के पार जाने का साहस करूँगा, किन्तु देखना कि मैं यदि डूबा जाने लगूँ, तो मुझे घसीट लेना। महात्मा नदी में कूद पड़ा, कुछ पग आगे बढ़ने पर वह

डूबने लगा। साथियों ने उसे बाहर निकाल लिया। अब तनिक ध्यान दीजिये। इस प्रकार की श्रद्धा जैसी महात्मा में थी, यह श्रद्धा जैसा विश्वास उत्पन्न करती है, वह रक्षा का बीज नहीं हो सकती। आपके दिलों में यह कुटिलता है। जब आप ॐ उच्चारना शुरू करते हैं या परमेश्वर का नाम लेते हैं और कहते हैं, 'मैं स्वास्थ्य हूँ, स्वास्थ्य', पर अपने हृदयों के हृदय में आप काँपते हैं, आपके हृदयों के हृदय में वह तुच्छ काँपता, लरज़ता 'अगर' मौजूद रहता है कि 'अगर मैं डूबने लगूँ, तो मुझे बाहर निकाल लेना'— आपमें वह क्षुद्र हिचकिचा 'अगर' है। आपके चित्त में कोई पक्का विश्वास, निश्चय, श्रद्धा व प्रतिज्ञा नहीं है। यह एक तथ्य है कि संसार के सारे भेद और परिस्थितियाँ मेरी सृष्टि हैं, तथा मेरी करतूत हैं, और कोई चीज़ नहीं हैं। आप परमेश्वर हो, प्रभुओं के प्रभु हो। ऐसा आप समझो। इसी क्षण इसे अनुभव करो। दृढ़, अचल विश्वास रक्खो। ज्ञान, व्यावहारिक ज्ञान को प्राप्त करो। आप देखेंगे कि आज बताये गये ढंग से नित्य इस पत्र को पढ़ने से आप को बाँधनेवाले सब 'अगर-मगर' दूर हो जायँगे। अपनी परमेश्वरता से निरन्तर अपने आपका लगाव रखने से तुच्छ 'यदि' से छुटकारा हो जायगा। यदि पाँच बार नहीं, तो कम से कम नित्य दो दफ़े इस काग़ज़ को पढ़ो, और आपके सब क्षुद्र 'अगर' निकाल दिये जायँगे।

राम अब व्याख्यान बन्द करता है, और आपमें से जो लोग कुछ सामाजिक बातचीत राम से करना चाहते हैं वे, यह आसन छोड़ चुकने के बाद, ऐसा कर सकते हैं। यह आसन ॐ, ॐ, ॐ, उच्चारने के बाद छोड़ूँगा।

एक शब्द और। आपमें से जिन लोगों ने ये व्याख्यान

नहीं सुने हैं, और इसलिये राम के इस व्याख्यान को नहीं समझ सके हैं, वे इस सम्पूर्ण वेदान्तिक तत्त्वज्ञान को पुस्तक के रूप में अत्यन्त दार्शनिक ढंग से प्रकाशित पावेंगे। सम्पूर्ण वेदान्त-दर्शन आपके सामने पेश किया जायगा। तथा एक शब्द और भी। जितने संदेह वेदान्त-दर्शन के संबंध में आपके मन में हैं, और आपमें जितनी आशंकाएँ हैं, वे ही सब संदेह और संशय एक समय में स्वयं राम के रहे हैं। आपके अनुभव और आपके सन्देह स्वयं राम के संदेह हैं। राम इन रास्तों में से होकर निकल चुका है, और आपको विश्वास दिलाता है कि हमारे सब सन्देह औंधे अज्ञान हैं। ये सब सन्देह क्षणस्थायी हैं, वे एक पल में उड़ सकते हैं। यदि आपमें से कोई अपने सन्देहों के संबंध में राम से विशेष वार्तालाप करना चाहता है, तो वह कर सकता है।

पुनः यह कहा जा सकता है कि यदि आप आपत्ति से छूटना चाहते हैं, पूर्ण आनन्द प्राप्त करना चाहते हैं, अपनी मुक्ति को फिर पाना चाहते हैं, आत्मानुभव को प्राप्त करना चाहते हैं, तो आपको वेदान्त का अनुभव होना चाहिये। अन्य कोई मार्ग नहीं है। आपके सब मत, आपके सब सिद्धान्त, आपके सब अनुभव, केवल वेदान्त को पहुँचाते हैं। वे केवल परम सत्य के पथ-प्रदर्शक हैं। ये आशा-जनक लक्षण हैं, बहुत अच्छे चिह्न हैं कि हाल में अमेरिका में जिन सम्प्रदायों का श्रीगणेश हुआ है, उनमें से अत्यधिक वेदान्त को सम्मिलित और ग्रहण कर रहे हैं। वे उसे (वेदान्त को) अपने में ले रहे हैं। उन्हें इसका ऋण स्वीकार करने की ज़रूरत नहीं है। ईसाई-विज्ञान, नवीन विचार, आध्यात्मिकता या दैवी विज्ञान इत्यादि—ये लोग, जो हमें ग्रहण कर रहे हैं, परमेश्वर हैं। अमेरिका के लिये

ये अति आशा-पूर्ण चिह्न हैं। किन्तु राम आपसे कहता है कि यदि आप सत्य को उसके पूर्ण प्रताप और सौन्दर्य्य के साथ प्राप्त करना चाहते हैं, तो वेदान्त मौजूद है। आप इसका चाहे जो नाम रख लें, किन्तु इन हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों में वे (ऋषि) इसे अति सुस्पष्ट और स्वच्छ भाषा में उपस्थित करते हैं। यह सर्वश्रेष्ठ सत्य है कि 'आप परमेश्वर हो, प्रभुओं के प्रभु हो।' यह समझो, यह अनुभव करो, और फिर आपको कोई भी हानि नहीं पहुँचा सकता, आपको कोई भी चोट नहीं पहुँचा सकता, आप प्रभुओं के प्रभु हो। 'दुनिया मेरा संकल्प है, मैं प्रभुओं का प्रभु हूँ।' यह है सत्य। यदि आप ऐसी बातें सुनने के अभ्यासी नहीं हैं, तो ख़ौफ़ न खाइये। यदि आपके पूर्वजों का इसमें विश्वास नहीं था, तो क्या हुआ? आपके पूर्वजों ने अपनी पूर्ण शक्ति से काम लिया, आपको अपनी पूर्ण शक्ति काम में लाना चाहिये। आपकी मुक्ति, आपके पूर्वजों का उद्धार आपका अपना काम है। वेदान्त को ग़ैर न समझो। नहीं, यह आपके लिये स्वाभाविक है। क्या आपकी निजी आत्मा आपके लिये ग़ैर है? वेदान्त आपको केवल आपकी आत्मा और स्वरूप के संबंध में बताता है। यह तब ग़ैर हो सकता था, जब आपका अपना ही आत्मा आपके लिये ग़ैर होता। सब पीड़ाएँ—शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक—वेदान्त का अनुभव करने से तुरन्त रुक जाती हैं, और अनुभव कठिन काम नहीं है।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

सोऽहम्

(ता० १० जून १९०३ को दिया हुआ व्याख्यान ।)

एक बड़ा ही उपयोगी मंत्र है, जिससे हरएक को परिचित होना चाहिये । वह है 'सोऽहम्' (Soham) । अंग्रेज़ी भाषा में 'सो' का अर्थ है 'ऐसा', किन्तु संस्कृत भाषा में 'सो' का अर्थ है 'वह', और 'वह' का अर्थ सदा परमेश्वर या परमात्मा है । इस तरह 'सो' शब्द का अर्थ परमेश्वर है । भारत में स्त्री अपने पति का नाम कभी नहीं लेती । उसके लिये दुनिया में केवल एक पुरुष है, और वह (एक पुरुष) उसका पति है । वह स्त्री सदा अपने पति को 'वह' कहती है, मानो समग्र विश्व में कोई और व्यक्ति मौजूद ही नहीं है । फलतः, उसके लिये 'वह' सदा परमेश्वर है, और परमेश्वर सदा उसके विचारों में है । इसी तरह वेदान्ती के लिये 'सो' शब्द का अर्थ सदा परमेश्वर या परमात्मा है । मेरा स्वरूप केवल एक सत्य-मात्र है, यह विचार निरन्तर चित्त में रहना चाहिये ।

हम् (ham) का अर्थ फ़ारसी भाषा में 'मैं' है । एच (*h*) को निकाल दो और वहाँ आई (*i*) को बैठा दो, और हमें सो-ऐम-आई (So- am- I) 'वह मैं हूँ' की प्राप्ति हो जाती है । परमेश्वर मैं हूँ, परमात्मा मैं हूँ, और परमेश्वर सदा मेरे द्वारा बोल रहा है, क्योंकि सब वही तो वह है । ॐ भी इसमें शामिल है । सोऽहम् (Soham) में से एस और एच (S and h) को निकाल दो, हमें ॐ (Om) मिलता है । सोऽहम् श्वास से आनेवाली स्वाभाविक ध्वनि है, और इस शब्द की पूर्ण महिमा हर समय

निरन्तर हमारे मनों में रहनी चाहिये। साँस को ताके रहो और इस मंत्र 'सोऽहम्' के द्वारा उसे सुरीली बनाओ। यह एक मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक व्यायाम है। साँस लेने में दो क्रियाओं का समावेश है, भीतर जाना और बाहर निकलना, साँस लेना और साँस निकालना। भीतर साँस लेते समय 'सो' कहा जाता है, और बाहर साँस निकालते समय 'हम्' कहा जाता है। कभी-कभी प्रारम्भ करनेवाले को 'ॐ' की अपेक्षा 'सोऽहम्' जपना (उच्चारना) बहुत सहज पड़ता है। यह दोनों को आलिंगन करता है। जब इसे धीमे-धीमे उच्चार रहे हो, तब इस पर विचार करो, भीतर-ही-भीतर और चित्त से इस पर मनन करो, किन्तु इस सारे समय बिलकुल स्वाभाविक रीति पर साँस लेते रहो। यह सच्चे प्रकार की आत्म-सूचना है, जो मनुष्य को इन्द्रियों के सम्मोहन से हटाकर परमेश्वरता में लौटा ले जाती है। वह हूँ मैं। विश्व में हर समय तालबद्ध गति हो रही है। संस्कृत में 'सो' शब्द का अर्थ सूर्य भी है। सूर्य हूँ मैं। मैं प्रकाश का दाता हूँ, मैं लेता कुछ नहीं हूँ, पर देता सब हूँ। मैं दाता हूँ और लेनेवाला नहीं हूँ। मान लीजिये कि हम दूसरों से बहुत ही रूखी चिट्ठियाँ और डाही पुरुषों की कठोर आलोचनाएँ पानेवाले हैं। तो क्या इससे हमें रंजीदा और हैरान तथा परेशान होना चाहिये? नहीं। अपनी परमेश्वरता में क्षोभरहित चैन से रहो। जो आपको सबसे अधिक हानि पहुँचाने की कोशिश कर रहे हैं, उनका कृपापूर्ण और प्रेममय चिन्तन करो। वे तुम्हारे अपने स्वरूप हैं, और अपने निजी स्वरूप के लिये आप केवल अच्छे विचार रख सकते हैं। मैं सूर्यों का सूर्य हूँ। प्रकाश, प्रताप, शक्ति मैं हूँ। मुझे कौन हानि पहुँचानेवाला है? मेरा अपना आप मेरे अपने आप

को हानि नहीं पहुँचा सकता। असम्भव है। दूसरों की क्षुद्र मिथ्या सम्मतियों से ऊपर उठो। परमेश्वर को सदा अपने द्वारा बोलने, सोचने और कार्य करने दो, अपनी परमेश्वरता में शान्ति से चैन करो। मैं सूर्य हूँ, दुनिया को प्रकाश देनेवाला हूँ।

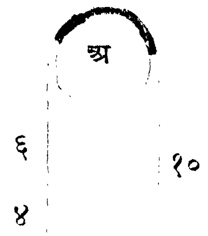
पूर्ण शक्ति अनुभव करो। आप देखते हैं कि हमारी सब कठिनाइयों का कारण 'अहं', परिच्छिन्न अपने क्षुद्र 'अहं' का सत्कार है। यही विचार है, जो हमें दुर्बल करता और मार डालता है। इस रोग को दूर करने के लिये किसी व्यक्ति या हरएक व्यक्ति को स्वभावतः एक कमरे में बैठ जाना होता है, और वहाँ रोना या विलपना, अपनी छाती पीटना, और यह कहना होता है "निकल शैतान, निकल, निकल शैतान, निकल।" अपने को ऐसी हालत में लाओ कि मानो यह देह आपकी कभी पैदा ही नहीं हुई थी। आप तो परमेश्वर हो, आप यह (देह) नहीं हो। यदि आप अपने आपको देश-काल के अन्दर क़ैद रखते हो, तो दूसरे लोगों के विचार और दूसरे मनुष्यों की तरकीबें आपको तंग करेंगी। यह देह जिसे आप संबोधन कर रहे हो, एक व्यामोह (hallucination) है। मैं परमेश्वर हूँ। क्या आप इस पर ध्यान देते हो? मिथ्या सम्मतियों की अपेक्षा वास्तविकता में अधिक विश्वास करो, परमेश्वर आप हो। बुरे विचारों और प्रलोभनों को आपकी पवित्र उपस्थिति में आने का कोई हक़ नहीं है। क्या अधिकार है उन्हें आपकी मौजूदगी में प्रकट होने का? पवित्र पुनीत आप हो, यह अनुभव करो। रोग फिर कहाँ है? किसी से कोई आशा न करो, किसी से न डरो, अपना कोई उत्तरदायित्व न समझो। कर्त्तव्य में बँधकर अपने काम को न करो। कर्त्तव्य क्या है? कर्त्तव्य आपकी अपनी

रचना है। श्रेष्ठ राजकुमार की भाँति अपना काम करो। हरएक चीज़ आपके लिये खेल की-सी चीज़ होना चाहिये। अपने सामने का काम प्रसन्नता से, स्वच्छन्दता से करो।

रोग दो प्रकार के हैं। भारतीय भाषा में हम उन्हें आध्यात्मिक (भीतरी) रोग और आधिभौतिक (बाहरी) रोग कहते हैं। इसका शब्दार्थ है शैतानी रोग (demon disease) और दैवी रोग (fairy disease), विकट रोग और नारी-रोग। इसका क्या अर्थ है? अरे, मायिक या नारी-रोग वह है, जो हमारे भीतर से उठता है। हमारे भीतर की इच्छाएँ, हमारी आकांक्षाएँ, हमारे अनुराग, हमारी लालसाएँ मायिक या नारी-रोग हैं। और विकट रोग या यथार्थ रोग वे हैं, जो दूसरों के कार्यों या प्रभावों से हमें होते हैं। अस्तु, किसी मनुष्य को नीरोग कैसे किया जाय? लोग कहते हैं, पुरुष-रोग जिसे आधिभौतिक रोग, दानव रोग, या बाहरी रोग कहते हैं, उसके संबंध में अपने आपको परेशान मत करो। जिस क्षण आप अपने आपको अपनी निर्बलकारिणी इच्छाओं से रहित करते हैं, जिस क्षण आप अपना पिंड उनसे छुड़ाते हैं, उसी क्षण तुरन्त बाहरी रोग आपको छोड़ देते हैं। किन्तु इस दुनिया में लोग एक भूल करते हैं, वे अपने निजी कर्तव्य को नहीं देखते। वे कठिनता के उस भाग पर नहीं ध्यान देते, जिसकी सृष्टि उन्हीं की इच्छाओं से होती है। वे पहले बाहरी भयों से लड़ना शुरू करते हैं, अतः वे ग़लत जगह से शुरू करते हैं, वे पहले परिस्थितियों से लड़ना चाहते हैं। वे नर-रोग को, जो रोग दूसरों के प्रभाव द्वारा आता है, हटाना चाहते हैं। वेदान्त कहता है कि आपकी इच्छायें आपकी अपनी कमज़ोरियाँ हैं, पहले इनको दूर करो, फिर हरएक बात का निर्णय

आपके लिये कर दिया जायगा। यह आपमें नारी-भाग है। यही बाहरी प्रभावों को आकर्षित करता है। जैसे कि एक कुत्ते के मुँह में जब मांस का एक टुकड़ा होता है, तब दूसरे कुत्ते आकर उसके लिये रार ठानते हैं। जब आप अपनी कमज़ोरी या नारी-रोग से छूट जायेंगे, तब नर-रोग आपको तुरन्त छोड़ देगा। इस नारी या मायिक रोग की प्रकृति की अधिक व्याख्या की जानी चाहिये। यह एक व्यक्ति है। यदि वह पूर्णतया शुद्ध है, यदि वह सब प्रलोभनों से अपने को पूर्णतया परे और अपने अन्तर्गत परमेश्वरत्व का अनुभव कर सकता है, तथा यह कहने को वह तैयार है "शैतान मेरे पीछे जा, मैं तुझसे कोई वास्ता नहीं रख सकता," तो राम उससे एक बात कहता है। उस मनुष्य को इस दुनिया में किसी भी व्यक्ति की इच्छाएँ, किसी के भी विचार, इस दुनिया के किसी भी व्यक्ति की बुराइयाँ या प्रलोभन कोई हानि नहीं पहुँचा सकते। कोई भी शक्ति उसे तंग या तनिक भी नीचा नहीं दिखा सकती, क्योंकि वह आप ख़ुद आसुरी या नर-रोग से मुक्त हो चुका है। जिस क्षण हम अपने को दुर्बल बनाते हैं और शारीरिक भोगों की इच्छा करने लगते हैं, तब क्या होता है? सब शत्रुओं के बुरे विचार इस या उस प्रलोभन का रूप धारण करते और हमें भक्षण करते हैं। यदि आप शांति और पूर्ण आनन्द भोगना चाहते हैं, यदि आप अपने ईश्वरत्व का अनुभव करना चाहते हैं, तो अधम प्रकृति की मृत्यु अवश्य होना चाहिये। इस मृत्यु में जीवन है, इसी मृत्यु में जीवन है। अब यहाँ अपने आपको परमेश्वर समझो। अपने को स्वाधीन करो। और इस काम को करते समय ठंढे दिमाग़ से, धीर, और निर्भय वृत्ति से काम लो।

मैं कोई इच्छा नहीं करता। मुझे कोई आवश्यकता, कोई भय, कोई आशा, कोई उत्तरदायित्व नहीं है।



यह 'अ' चक्र एक चरखी है, और इस चरखी पर एक बड़ा सुन्दर रेशमी तागा लटका है, और इस रेशमी तागे के सिरों में दो बाट बँधे हैं, जिनमें से एक १० सेर और दूसरा ६ सेर का है। अब इस ६ सेर के बाट में हम दूसरा ४ सेर का बाट जोड़ते हैं। ६ सेर में चार सेर जोड़ने से दस होते हैं। सो अब एक तरफ़ दस सेर और दूसरी तरफ़ भी दस सेर हो गये। दोनों पलड़े बराबर। वे बिलकुल नहीं डिगेंगे। अस्तु, अब मान लीजिये कि हमने चार सेर का बाट हटा लिया और तब एक ओर १० सेर और दूसरी ओर ६ सेर रह गये। बाट बराबर नहीं हैं। नतीजा क्या होगा? १० सेर का नीचे चला जायगा, और ६ सेर का ऊपर उठेगा। एक पल के बाद हम यह चार सेर का बाट ६ सेर के बाट में जोड़ देते हैं। फिर हम दोनों बोझ दोनों तरफ़ समान कर देते हैं। तब क्या परिणाम होगा? बहुत से लोग कहेंगे कि पलड़े बराबर सध जायेंगे, किन्तु बात ऐसी नहीं है, वे डोलते रहेंगे। पहली दृष्टि से ऐसा जान पड़ता है कि बोझों के बराबर हो जाने के एक पल ही बाद गति भी समान हो जायगी।

जब राम ने इस विषय पर विश्वविद्यालय में व्याख्यान दिया, तब सब विद्यार्थी कहने लग पड़े कि गति रुक जायगी, किन्तु जब उन्हें प्रयोग दिखाया वा समझाया गया, तब उनकी आँखें खुलीं। जब बाट बराबर कर दिये गये, तब भी पलड़े हिलते-डुलते रहे, रुके नहीं। इस तरह प्रारम्भ में हम समझते हैं कि यदि दोनों ओर के बाट बराबर कर दिये जावेंगे, तो वे ठहर जायँगे, पहले की शान्ति क़ायम हो जायगी। एक बार जब गति शुरू हो जाती है, तब फिर दोनों ओर बोझ बराबर कर देने पर भी हिलना-डुलना रोका नहीं जा सकता। यदि हम दोनों तरफ़वाले ६ सेर और १० सेर के बाटों को दो पल तक काम करने दें, और दो पल के बाद हम चार सेर का बाट फिर बढ़ा दें, तो दोनों तरफ़ बाट बराबर हो जाने पर भी गति सधेगी नहीं, रुकेगी नहीं। इसी तरह यदि तीन पल के बाद हम बोझ बराबर करें, तो भी गति रुकेगी नहीं। पहले पल के अन्त में हमें एक अन्तर दिखाई देता है, बोझों की तेज़ी या चाल प्रतिपल ४ फ़ुट अवश्य होगी। यदि असमान बाट एक पल हिलते रहे, तो परिणामभूत वेग ४ फ़ुट होगा, और यदि असमानता दो पल तक बनी रही, तो परिणामभूत वेग ८ फ़ुट होगा। यदि असमान बाटों को निरन्तर तीन पल तक काम करने दिया जाय, तो वेग १२ फ़ुट होगा, और ४ पल के अन्त में वह १६ फ़ुट होगा, इत्यादि। हम देखते हैं कि यदि बाट असमान रक्खे जाते हैं, तो परिणाम यह होता है कि हरएक पल के अन्त में गति की तीव्रता में अन्तर पड़ जाता है, गति की मौलिक तीव्रता (original velocity) में ४ फ़ुट का योग होता जाता है। इस तरह गति अपनी ४ फ़ुट की तरक़्क़ी प्रतिपल पाती ही जाती है। जो तीव्र गति अब तक प्राप्त हो चुकी है, वह वहीं

बनी रहती है। हम देखते हैं कि यदि बाट शुरू में, गति आरम्भ होने के पूर्व, बराबर कर दिये जाते हैं, तो बाट बराबर होने के कारण स्थिरता बनी रहती है। यदि बाट ४ फ़ुट की तेज चाल चल चुकने के बाद समान किये जाते हैं, तो बाटों की समानता चाल की तेज़ी में अधिक वृद्धि होने से रोक देगी, और यदि दूसरे पल के अन्त में बाट बराबर किये जाते हैं, तो परिणाम यह होगा कि हाथ लगी चाल ८ फ़ुट होगी और इस तीव्र गति में और तरक़्क़ी न होगी, और तीसरे पल के अन्त में लब्ध तीव्र गति १२ फ़ुट होगी, तथा और आगे चाल में वृद्धि न होगी। पहले पल के अन्त में वेग की तरक़्क़ी वेग-वृद्धि (acceleration) कहलाती है। किन्तु यहाँ हम एक दूसरी ही बात देखते हैं। जब दोनों ओर बाट एक समान कर दिये जाते हैं, तब पलड़ों पर प्रभाव डालने को कोई शक्ति नहीं रह जाती। यदि पलड़ों पर कोई शक्ति (भार) प्रभाव न डालती हो, तो विश्राम या प्रगति की अवस्था में कोई परिवर्तन नहीं उत्पन्न किया जा सकता। विश्राम या प्रगति (हरकत) में कोई परिवर्तन नहीं पैदा होता है। यदि वहाँ पहले की स्थिरता है, और हम भार एक ओर १० सेर तथा दूसरी ओर १० सेर कर देते हैं, और यदि बाटों में एक पल भर प्रगति रही है और तब बाट बराबर किये गये हैं, तो इस क़ानून के अनुसार शुरू की प्रगति बनी रहेगी। इससे मौलिक स्थिरता या पहिले से प्राप्त वेग रुकता नहीं है, किन्तु बाटों की समानता वेग में आगे को परिवर्तन न होने देगी। इस तरह, यदि दूसरे पल के अन्त में हम बाट समान कर देते हैं, तो पहिले से प्राप्त वेग वही बना रहेगा। इसी तरह तीसरे पल के अन्त में बाटों की समानता पहिले से प्राप्त १२ फ़ुट की तीव्र गति के वेग में और कोई परिवर्तन न होने देगी।

अब हम आत्मानुभवी मनुष्य के मामले पर आते हैं। आत्मानुभव दोनों ओर के बाटों की बराबरी-मात्र है। आत्मानुभव बोझों को बराबर करता है, आपके अन्दर से असमानता का निकाल लेता है। वह (आत्मानुभव) आपको बाहरी परिस्थितियों, से मुक्त करता है। वह आपको आँधियों और तूफ़ानों के वेग की अधीनता से छुड़ाता है। आत्मानुभव आपको बाहरी प्रभावों से बचाता है। वह आपको अपने बल पर खड़ा करता है। यह हो जाने पर आगे के लिये सब वेग-वृद्धि रुक जाती है, किन्तु पहिले की प्राप्त गति वहाँ बनी रहती है। पहिले से प्राप्त गति को हम जड़ता या पूर्व अध्यास कहते हैं। वह वहाँ बना रहता है। वह अपनी राह आप लेवेगा। हम देखते हैं कि यह आत्मानुभव कुछ लोगों को हुआ था, जिनमें पहिले से प्राप्त वेग बहुत ही कम था, किन्तु उनके शरीरों के द्वारा महान् कार्य नहीं हुए थे। किन्तु दूसरे लोग हैं, जिनकी पहिले से प्राप्त की हुई गति की तीव्रता अद्भुत व आश्चर्य-जनक है। स्वच्छन्द होने पर भी उनके शरीरों की प्रगति जारी रहेगी। उनके शरीर विलक्षण कार्य करते रहेंगे, महान् और उत्कृष्ट कार्य आत्मानुभव का दूसरा नाम है।

डॉक्टर एनथोनी (Dr. Anthony) का वाक्य है कि "Pleasures wrapped up in duties' garments."

"सुख कर्त्तव्यों के वस्त्रों में लिपटे हुए हैं।"

अपनी ईश्वरता को अनुभव करो, और फिर हरएक बात पूर्ण है।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

आत्मानुभव-संबंधी संकेत नं० २

परमेश्वर का अब हम कुछ दूसरे अलङ्कारों में निरूपण करते हैं। विशाल, विशाल क्षीरसागर में, जो समग्र विश्व को व्यापे हुए है, एक सुन्दर रेंगता सर्प या शेषनाग (परमेश्वर का) कोमल बिछौना बनता है, और अपनी देह की परत को मानों इसका एक गद्दा बनाता है। उसके सहस्र फन छत्र का काम दे रहे हैं। ऐसे सागर पर एक अत्यन्त सुन्दर, मनोहर देवी बैठी हुई है, जो इस परमेश्वर की पत्नी है। उसकी देह पारदर्शक है, नेत्र आधे खुले हैं और अधर मुसकराते हैं। वह इस परमेश्वर के चरण धीरे-धीरे दबा रही है। यह सुन्दर मूर्ति एक सुन्दर, शोभायमान कमल पर बैठी हुई है, और उस पर बैठकर वह परमेश्वर के चरण दाब रही है, और देह मर्दन कर रही वा मुट्ठियाँ भर रही है। दोनों के नेत्र मिल रहे हैं। एक दूसरे के नेत्रों को देख रहे हैं। यह पत्नी क्या निरूपण करती है? वह ईश्वरत्व, बुद्धि, कल्याण और आनन्द निरूपण करती है। वह इस परमेश्वर की अपनी महिमा है। इसका अर्थ यह हुआ कि मुक्तात्मा अपनी ही महिमा को हर समय देखा करता है, और वह आत्मा तब स्वतंत्र है, जब कि दुनिया उसके लिये बिलकुल डूबी हुई होती है। सब नातों और सम्बन्धों से परे, सब बन्धनों को तोड़कर, उसे दुनिया से कोई प्रयोजन नहीं होता है।

सागर का अर्थ अनन्तता है। और यह सागर क्षीर का क्यों कहा जाता है? दूध में तीन गुण हैं। वह प्रकाश है, वह सफ़ेद है, जिसका अर्थ कल्याण है, वह बलदायक

भी है, जिसका अर्थ शक्ति है। अतएव वह क्षीरसागर अनन्त प्रकाश, अनन्त कल्याण और अनन्त शक्ति का रूप है। इसमें दो (नारायण-लक्ष्मी) आराम करते हैं।

अब शेषनाग का क्या अर्थ है ? शेषनाग का अर्थ है वह नाग, जो सबके बाद बचा रहता है। जब सर्पिणी अपने १०० अंडे देती है, तब वह अपने ही दिये हुए अंडों को खाना शुरू करती है। जो कोई उसके पंजे से बच निकलता है, वह शेषनाग कहलाता है। इसी प्रकार हरएक वस्तु मर जाती है, केवल एक वस्तु रह जाती है। कल्याण, ज्ञान और शक्ति के सागर में एक अमर तत्त्व रहता है। दोनों अपनी ही महिमा में पूर्ण आनन्द, स्थिर और शान्त हैं। ॐ !

राम दो बातों पर आपका ध्यान विशेष रूप से खींचता है:—

१ परिच्छिन्नात्मा का निषेध (अनंगीकार)।

२—शुद्धात्मा का असंदिग्ध ग्रहण (अंगीकार)।

प्रथमः—वेदान्त के अनुसार उक्त निषेध पूर्ण विश्राम (उपशम), चैन, आराम, त्याग है। जब कभी आप समय निकाल सकें, पलँग पर या कुरसी पर लेट जाइये, इस तरह से जैसा कि मानों वह बोझ या भार आप कभी साथ नहीं ले रहे थे और उससे आपका कोई मतलब न था, तथा उससे आप उतने ही अपरिचित थे, जितने कि किसी शिलाखंड से। कुछ देर तक देह को निर्जीव मुर्दे की तरह आराम करने दीजिये, संकल्प या विचार पर किसी तरह का ज़ोर डालकर सहारा न लीजिये, ताकि किसी तरह का तनाव (ज़ोर) न होने पाए। देह का सब अनुराग और मोह त्याग दीजिये। चित्त को शरीर या किसी भी वस्तु की सारी फ़िक्रों और चिन्ताओं से छुट्टी पा जाने दीजिये। सब इच्छा या आकांक्षा और आशा को त्याग

दीजिये और उनका निषेध कीजिये। यही है निषेध या निवृत्ति (relaxation)।

द्वितीयः—ईश्वरत्व। ईश्वर की मर्ज़ी को ही अपनी मर्ज़ी बनाइये। चाहे सुख के लिये हो या दुःख के लिये। ईश्वरेच्छा का पालन कीजिये, मानों वह आप ही की इच्छा है, और 'आत्मानुभव'-सम्बन्धी व्याख्यान में वर्णित विचारधारा के अनुसार अपने आपको शरीर और उसके अड़ोस-पड़ोस, मन और उसके प्रवर्तक (motives , सफलता और भय का विचार, इन सबसे ऊपर (पृथक्) समझिये; अपने आपको सर्वव्यापी, परमशक्तिमान्, सूर्यों का सूर्य, कारणातीत, नाम-रूप संसार से परे और सकल महान् लोकों, पूर्णानन्द तथा मुक्त राम से अभिन्न समझिये। कोई सुर या सुरें जो स्वभावतः और अनायास आपके ध्यान में आ जायँ, उनसे ॐ उच्चारिये, प्रणव गाइये। ऐसा समझिये कि "मैं पूर्ण आनन्द, आनन्द-कन्द हूँ।" इस तरह पर शिकायतों और रोगों के सब हेतु स्वतः आपके सामने से चले जायँगे। दुनिया और आपका अड़ोस-पड़ोस ठीक वैसे ही है, जैसे आप उन्हें समझते हैं। दुनिया हृदय पर भारी न होने पाए। दिन और रात इस सत्य का ध्यान कीजिये कि "दुनिया का सम्पूर्ण लोकमत और समाज केवल मेरा ही संकल्प है और मैं ही असली शक्ति हूँ कि जिसकी साँस या छाया-मात्र सारी दुनिया है।" आप अपने लक्ष्य के शिखर पर क्यों नहीं पहुँचते ? इसका कारण यह है कि आप अपने निकट के पड़ोसी, परम शुद्ध स्वरूप की अपेक्षा दूसरों के चंचल, अस्थिर और धुँधले निर्णय का अधिक आदर तथा सत्कार करते हैं। राम कहता है, आप अपने ही लिये जिएँ न कि दूसरों की सम्मतियों के लिये। स्वतंत्र हूजिये। अकेले प्रभु, निज स्वरूप, अद्वितीय सच्चे पति, मालिक, अपने

ही भीतरी परमेश्वर को प्रसन्न करने का यत्न कीजिये। अनेक, जनता और बहुमत को आप किसी हालत में न सन्तुष्ट कर सकेंगे, और सहस्र-शिरधारी (पागल) जनता को सन्तुष्ट करने के लिए आप किसी तरह भी बाध्य नहीं हैं। जनता का क्या आपने कुछ देना है ? लोगों के क्या आप किसी तरह के ऋणी हैं ? नहीं, बिलकुल नहीं। आप आप ही अपने विधाता हो। अपने आपको गाकर सुनाइये, मानों अकेले आप ही आप हैं, और कोई दूसरा पास सुनने-वाला नहीं है। जब आपका अपना आत्मा प्रसन्न है, तब जनता अवश्य सन्तुष्ट होगी। यही क़ानून है। दूसरों के लिये अस्वाभाविक जीवन व्यतीत करने से क्या लाभ ?

एक राजकुमार अपने बचपन में दरबारियों के बच्चों के साथ लुक्कन-छिप्पन (hide & seek) खेल रहा था। उसे लड़कों को ढूँढ़ने में बड़ा झंझट करना पड़ा। पास खड़े एक व्यक्ति ने कहा, "संगी खिलाड़ियों को ढूँढ़ने में इतना झंझट करने से क्या फ़ायदा जब कि एक क्षण में वे जमा किये जा सकते हैं, यदि आप उन्हें आज्ञा देने में अपनी शाही सत्ता से काम लें ?" ऐसे सवाल का जवाब यह है कि उस हालत में खेल का मज़ा जाता रहेगा। खेल में कोई आनन्द न रह जायगा। ठीक इसी तरह राम के अनुसार, वास्तव में आप सर्वश्रेष्ठ शासक और सबके जाननेवाले सर्वज्ञ देवता हैं, किन्तु चूँकि आपने खेल में अपने ही विषय (अपने सम्बन्धी सब तरह के विचार और ज्ञान) को दुनिया की लुकन-छिप्पनवाली भूलभुलैया में ढूँढ़ना शुरू किया है, इसलिये विचार के क्रम को त्याग देना और खेल में उस अधिकार (सत्ता) से काम लेना, जिससे सारा खेल रुक जाता है, उचित खेल न होगा। जिस विचार-क्षेत्र में भूत, वर्तमान,

भविष्य और हज़ारों सूर्य तथा नक्षत्र सब आपके अपना आत्मा (निज स्वरूप) हो जाते हैं, तथा आपके ज्ञान के सागर में तरंग और भँवर-मात्र होते हैं, उसमें आप क़ानून (वकालत) की परीक्षाओं और सांसारिक सफलता की कैसे परवाह कर सकते हैं ? यदि आप सच्ची दिव्य दृष्टि (clairvoyance) प्राप्त करना चाहते हैं, तो आपको इन्हीं इन्द्रियों के लोक को, जिससे आप दिव्य दृष्टि (clairvoyance) चाहते थे, त्यागना या उससे ऊपर उठना होगा।

मछली पकड़ने को एक जाल बिछाया गया था। मछली जाल में फँसकर अपनी प्रचण्ड शक्ति से उसे घसीट ले गई। ईश्वर को यह सलाह न दो कि वह आपके साथ कैसा बरताव करे, अपनी मर्ज़ी का आदेश उसे न दो, अपने आपको केवल उस पर छोड़ दो, तुच्छ वा परिच्छिन्नात्मा को त्याग दो. झूठी इच्छाओं को छोड़ दो। इस प्रकार आप अपने शरीर और चित्त को प्रकाश से परिपूर्ण तथा ईश्वर-वाणी (इलहाम वा श्रुति) का पूर्ण यंत्र बना देंगे। सम्पूर्ण सत्य ज्ञान और वास्तविक शिक्षा भीतर से आती है, और किताबों या बाह्य वा बहिर्मुख चित्तों से नहीं। अलौकिक-बुद्धि पुरुषों (men of genius) ने, तफ़तीश के क्षेत्र में नवीन कार्यकर्त्ताओं ने केवल तभी अपने आविष्कार (discoveries) और अनुसन्धान (investigations) किये, जब कि वे विचार में नितान्त निमग्न थे, इन्द्रियों के लोक से बहुत ऊपर थे, किसी प्रकार की भी जल्दी या एषणा (कांक्षा) से बहुत ऊपर थे, जब कि वे अपने व्यक्तित्व और मानसिकता को स्वार्थपरता की किसी भी प्रवृत्ति से रहित कर चुके थे। वे जब एक पारदर्शक दर्पण या शीशे के द्वारा देख रहे थे, तब ज्ञान का प्रकाश उनके द्वारा चमका, उन्होंने पुस्तकों पर प्रकाश

डाला, पुस्तकालयों और पुस्तकों को प्रकाशित किया, किन्तु पुस्तकालय उन्हें प्रबुद्ध नहीं कर सके। यह है कार्य। कार्य से राम का अभिप्राय कभी भी निरन्तर निकृष्ट परिश्रम नहीं है। वेदान्त में कार्य का अर्थ सदैव विश्व से समताल होना तथा वास्तविक आत्मा से एकस्वर होकर स्फुरण करना है। वास्तविक स्वरूप से ऐसी निष्काम एकता, जो वेदान्त के अनुसार असली कार्य है, मूर्खों द्वारा प्रायः अकार्य या आलस्य की उपाधि पाती है। कृपया "सफलता के रहस्य" (इस नाम के व्याख्यान) को एक बार फिर पूरी तरह पढ़िये। अत्यन्त कष्टसाध्य कार्य भी, वेदान्त की वृत्ति से किया जाने पर, पूर्ण सुख और खेल जान पड़ता है, तथा ग़ुलामी या बोझ तनिक भी नहीं प्रतीत होता। इस तरह एक दृष्टिकोण से जो कार्य सर्वोच्च कहा जाता है, वह वेदान्त के दृष्टिकोण से कोई कार्य ही नहीं है।

हिन्दू - पुराणों में परमेश्वर के दो रूप दिये हुए हैं। प्रत्येक धर्म के तीन रूप होने चाहिये। एक है तत्त्वज्ञान, दूसरा क्रिया-विधि (कर्म-काण्ड) और तीसरा पुराण। तत्त्वज्ञान विद्वानों के लिये है, कर्म-काण्ड बाह्य शरीर वा बच्चों के लिये है, और पुराण विचारवानों के लिये है। तीनों का साथ-साथ चलना आवश्यक है। यदि एक भी पिछड़ जाता है, तब वह धर्म टिक नहीं सकता। हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों में इन तीनों में पूर्ण समता होने के ही कारण हिन्दू-धर्म आज भी तीस कोटि मनुष्यों का धर्म है। जिस धर्म में इनमें से एक का भी अभाव होता है, वह वास्तविक धर्म नहीं हो सकता। हिन्दू-धर्म में ये तीनों पूर्णावस्था में हैं। हिन्दू-पुराण से राम आपके सामने पूर्ण पुरुष या परमेश्वर का वर्णन करेगा, जो निरन्तर मन में रहता है।

हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों में परमेश्वर के दो रूप, परमात्मा के दो आकार दिखाये गये हैं। एक सफ़ेद, महान्, प्रभावशाली, सुन्दर, युवा पुरुष, प्रतापी आकार, हिमालय के शिखरों पर बैठा हुआ, ध्यान और विचार में मग्न, आँखें बन्द, दुनिया से बेख़बर, परमानन्द की साक्षात् मूर्ति, दिक़्क़तों और बखेड़ों से दूर, सम्पूर्ण चिन्ता और फ़िक्र से मुक्त है। ऐसा मुक्त कि पूर्ण स्वतंत्र, ऐसा प्राणी कि जिसके लिये दुनिया का कदापि अस्तित्व है ही नहीं। यह है परमेश्वर का एक चित्र। यह चित्र समाधि का है। यह एक स्वच्छन्द, मुक्त आत्मा है। श्वेत तो हिमालय का एक चिह्न है, और अचल मन शान्ति का चिह्न।

इसके साथ उस परमेश्वर की पत्नी है, जो सिर से पैर तक गुलाब के रंग की है। वह इस परमेश्वर के घुटनों पर बैठी हुई है और उसके लिये सदा वनस्पतियाँ तथा अन्य जोशीले रस घोटा करती है। परमेश्वर अपने नेत्र खोलता है और तुरन्त उसकी पत्नी अपने तैयार किये नशीले अर्क़ से भरा हुआ एक कटोरा उसके मुख में लगा देती है, ताकि वह फिर अपनी ध्यानावस्था में निमग्न हो जाय। तब वह उससे सम्पूर्ण विश्व के सम्बन्ध में प्रश्न करती है, और वह उन प्रश्नों को उसे समझाता है। वह एक राजा की बेटी है, किन्तु इस परमेश्वर के निकट रहने के लिये अपनी सब सुन्दर चीज़ें वह छोड़ चुकी है। परमेश्वर शिव कहलाते हैं, उनकी पत्नी का नाम गिरिजा (पार्वती) है।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

आत्मानुभव-संबंधी संकेत नं० ३

आप देखते हैं कि अपने जीवन की ज़रूरतें और आपकी शारीरिक तथा मानसिक ताक़तों पर दूसरों की नाना माँगें ऐसी हैं, जो आपको सदैव खैंचातानी में डाले रखने की संभावना रखती हैं। यदि इन बाह्य स्थितियों से आप सदा अपने को खैंचातानी में रहने देते हैं, तो अपने ही हाथों-पैरों से आप अपनी अकाल मृत्यु की व्यवस्था कर देते हैं।

इससे कैसे बचा जाय, और कैसे कुछ आराम मिले? राम काम को टालने या दैनिक कामों को त्यागने की सिफ़ारिश नहीं करता है। राम ऐसी सलाह कदापि नहीं देता। फिर भी वह एक बहुत ही लाभदायक आदत—जो आदत आपको सदा भारी और कठिन कार्यों से बचाये रहेगी—डालने की सलाह आपको देता है। यह सलाह वेदान्तिक त्याग से कुछ भी कम नहीं है। आपने अपने आपको सदैव त्याग की शिला पर रखना है, और उस श्रेष्ठ स्थान पर खड़े होकर, जो कार्य आपके सामने आ पड़े, उसमें दिलो-जान से जुट जाना है। आप थकेंगे नहीं। आपमें काम सम्हालने की शक्ति होगी।

अधिक स्पष्टीकरण यह है कि:—काम करते समय बीच-बीच में थोड़ा आराम लो, और एक या दो मिनट के आराम के बीच अपने को इस विचार में लगाओ कि "देह कुछ भी नहीं है, हमारा कभी इससे कोई सरोकार नहीं था। हम एक साक्षी-मात्र हैं, शरीर के कामों के नतीजों या परिणामों से हमें तनिक भी वास्ता नहीं।" इस प्रकार

विचार करते समय आप यदि चाहें, अपने नेत्र बन्द कर लें, अंग ढीले कर लें, शरीर को पूरे आराम में रक्खें, और सारी चिन्ता का बोझ उतार दें। चिन्ता का बोझ अपने कंधे से उतारने में आप जितना अधिक सफल होंगे, उतना अधिक बलवान् आप अपने को अनुभव करेंगे।

नाड़ियाँ (nerves) देह में प्राण-शक्ति को रखती हैं, और यह नाड़ी-चक्र विचार-शक्ति का भी पोषक है। पाचन-क्रिया, खून का दौरा, बालों की बाढ़ इत्यादि अन्त में नाड़ी-चक्र (nervous system) के ही कार्य पर निर्भर हैं। यदि आपकी विचार-शक्ति उद्विग्न है और आप सब तरह के विचारों से हैरान और परेशान हैं, तो इसका अर्थ यह है कि आपकी नाड़ियों पर बहुत अधिक बोझ है। नाड़ियों का यह उद्यमशील विचार-रूपी प्रयत्न के आकार में काम, जो एक ओर में लाभ है, तो दूसरी ओर से निश्चित हानि है। इस तरह देह के आवश्यक कार्य-अंगों को हानि पहुँचती है। यह एक ही घोड़े पर दो भारी बोझों के रख देने के समान है। एक बोझ बढ़ाओ, तो आपको दूसरा घटाना चाहिये। घोड़े का बोझ उतार लो, तब बोझों के भार को बिना किसी तरह की हानि पहुँचाये घोड़ा दौड़ सकेगा। यदि आप अपनी प्राण-शक्ति को क़ायम रखना चाहते हैं, यदि आप अपने स्वास्थ्य को क़ायम रखना चाहते हैं, यदि आप चाहते हैं कि नाड़ी-चक्र का घोड़ा शरीर के भार को आसानी से सहन करे, तो आपको चिन्ता का बोझ हलका करना होगा। घबड़ाहट भरे विचारों और हैरानी भरे ख़यालों को अपने जीवन का रक्त न चूसने दो। पूर्ण स्वास्थ्य और प्रबल उद्योगिता का रहस्य इसी में है कि आप अपने चित्त को प्रफुल्लित और प्रसन्न रक्खें, सदा परेशानी और जल्दबाज़ी से परे और सदैव किसी भी प्रकार के भय और विचार या चिन्ता से रहित रक्खें।

इस प्रकार वेदान्तिक त्याग का अर्थ सम्पूर्ण चिन्ता, भय, खेद, व्यग्रता और मन के क्लेश को, सदा अपनी मानसिक दृष्टि के सामने अपने वास्तविक आत्मा के ईश्वरत्व को रखकर, दूर करना और फेंक देना है; सब सांसारिक चिंताओं, परेशानियों और कर्त्तव्यों से बरी होना है। आपको कोई कर्त्तव्य नहीं पालने हैं, आप किसी में बँधे नहीं हैं, आप किसी के भी सामने उत्तरदाता नहीं। आपको कोई ऋण नहीं चुकाना है, आप किसी के भी बंधन में नहीं हो, सब समाज और समस्त राष्ट्र तथा हरएक वस्तु के मुक़ाबले में अपने व्यक्तित्व (स्वरूप) का प्रतिपादन करो। यह है वेदान्तिक त्याग। समाज, रीति और मर्यादा, नियम, विधान, खंडन-मंडन और आलोचनाएँ आपके वास्तविक स्वरूप को कदापि नहीं छू सकतीं। ऐसा भान करो, देह भावना को अलग कर दो, इसे त्याग दो, यह (देह) आप नहीं हैं। ॐ का ऐसा अर्थ करो, और थकावट के सब अवसरों पर ॐ को उच्चारो।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

उपदेश—भाग

बिना भोजन के मनुष्य की तरह हम आत्मानुभव के लिए भूखे और प्यासे रहते हैं, लालायित रहते हैं, मंत्र जपते हैं, मनकी साँस से बाँसुरी बजाते हैं। इसलिये आप मनकी झील में अगणित स्वार्थपूर्ण इच्छाओं को ढूँढ़ निकालें, और एक-एक करके उनको कुचल डालें—दृढ़ प्रतिज्ञाएँ करें और गम्भीर शपथें लें। जब आप झील से बाहर निकल आवेंगे, तब जल किसी पीनेवाले के लिए विषैला न रहेगा। गौओं, नारियों, मनुष्यों को पीने दो—निन्दकों का विष ऐसे स्वच्छ जल में बदल जायगा कि जिसका स्रोत ईश्वरानुभव है। (अपने मन में) दुर्बलताएँ तलाश करो और उन्हें निर्मूल कर दो। वासनाएँ एकाग्रता को रोकती हैं, और जब तक विशुद्धता तथा आत्मज्ञान का अस्तित्व न हो, तब तक सच्ची एकाग्रता नहीं हो सकती। पहले आप उसे (वासना को) उखाड़ फेंको, जो एकाग्रता की चेष्टा करते समय आपको नीचे घसीट लाती है। अपने प्रति आप सच्चे बनो। इस देश में विपुल संख्या में औरों से व्याख्यान दिये जाते हैं। हमें अपने आपको उपदेश देना चाहिये। बिना इसके कोई उन्नति नहीं हो सकती।

सोने से पहले बैठ जाइये, और उन दोषों को सामने लाइये कि जिन्हें हटाना है। इंजील, गीता, उपनिषद् या इमर्सन-जैसे लेखकों के लेखों को पढ़िये। यदि लोभ या शोक का दोष हो, तो उक्त अध्ययन की सहायता से विचारिये कि यह दोष क्यों मौजूद

है, इसे क्यों दूर होना चाहिये, यह कैसे हमारे मार्ग में बाधा डालता है? —अपना मन इससे ऊपर उठा लीजिये, और ॐ उच्चारण कीजिये। जब उसके दब जाने का निश्चय हो जाय, तो अंतःकरण से इसे निकाल दीजिये। फिर समझिये कि पूर्ण वश में यह हो गया है। और तब उसका बिलकुल ख़याल न कीजिये। एक-एक करके इन भुजंगों के फन पकड़िये, उन्हें कुचलिये और हरएक (दोष) पर अपने आपको व्याख्यान दीजिये। हरएक को अपना काम आप करना चाहिये। ध्यान करते समय ॐ का जाप तब तक करते जाइये, जब तक वाणी रटती रहे, और स्वर्गीय ध्वनि के प्रभाव पड़ते रहें। इस प्रकार से आपको सहायता मिलेगी, और सुन्दर संस्कारों से प्रभावित हुए आप बलवान् होकर निकलेंगे। यह पहली क्रिया है।

सब दोषों का मूल-कारण सब प्रकार की अविद्या है—अर्थात् शुद्ध आत्मा का अज्ञान, और अपने आत्मा को देह तथा बाह्य सुखों से अभिन्न मानने की इच्छा, एवं शोक, पीड़ा, क्लेश से पीड़ित होने की सम्भावना है। जब आप अनुभव कर लें कि आप अपरिच्छिन्न आत्मा हैं, तब आप विषय-वासना या शोक के अधीन कैसे हो सकते हैं? लोग कहते हैं कि धार्मिक नियम गणित विद्या के नियमों के समान निश्चित नहीं हैं। यह एक भूल है। गुफाओं और सुदूर वनों में आप देखकर विस्मित होंगे कि घास आपके विरुद्ध गवाही देने को उठ खड़ी होती है—दीवालें और वृक्ष आपके अपराध को प्रमाणित करते हैं। जो लोग कारण नहीं जानते हैं, वे अड़ोस-पड़ोस से लड़ते हैं। यह एक दैवी विधान (क़ुदरती क़ानून) है, जो अभंगनीय कहा जा सकता है। ईश्वर की आँखों में धूल झोंकने की चेष्टा करने से आप ख़ुद अन्धे हो जाओगे। मलिनता को आश्रय देने से बुरे

परिणाम भोगने पड़ेंगे। ये क़ानून एक-एक करके सिद्ध किये जायँगे। सिद्ध हो जाने पर मनुष्य नीच इच्छाओं के अधीन नहीं हो सकता।

मलिन इच्छाओं पर एक बार प्रभुता पा जाने पर आप जितनी देर चाहें, एकाग्रता लाभ कर सकते हैं।

न भूखे मरो और न अधिक खाओ। दोनों से बचना चाहिये। उपवास प्रायः स्वभावतः आता है, क्योंकि सहज स्वभाव का अनुसरण करना चाहिये, वह चाहे खाने का हो और चाहे उपवास करने का। दासता से बचना चाहिये। स्वामी बनो।

भारत में कुछ दिन, जैसे पूर्णिमा इत्यादि एकाग्रता उत्पादक सिद्ध हुए हैं। उस दिन आप अभ्यास करें, और आप ऐसे दिनों को अवश्य सहायक पाएँगे, यदि आप उस दिन विशेषतः बादाम आदि मग़ज़्यात, रोटी और फल खाएँ।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

तीसरा भाग

उत्तरार्द्ध

स्वामी रामतीर्थजी

के

हिन्दी-उर्दू के लेख व उपदेश

ग़ैर मुल्कों के तजरुबे

"सत्यमेव जयते नानृतम्"

सत्य की ही हमेशा जय होती है, झूठ की नहीं। पुराणों में लिखा है कि "लक्ष्मी विष्णु की सेवा करती है, विष्णु के पाँव दाबती रहती है, अर्थात् लक्ष्मी विष्णु की स्त्री है। लक्ष्मी विष्णु की छायावत् साथी है। विष्णु है, तो लक्ष्मी है। विष्णु नहीं, तो लक्ष्मी भी नहीं है।" यह बात बहुत ठीक है। विष्णु के अर्थ सत्य और धर्म के हैं, लक्ष्मी के अर्थ धन और जय के हैं। सो जहाँ सत्य और धर्म है, वहीं धन और जय है। जहाँ सत्य और धर्म नहीं, वहाँ धन और जय नहीं। वेदों में लिखा है "यतो धर्मस्ततो जयः"। अतएव यदि विष्णु रूपी धर्म की ओर आप बढ़ोगे, तो लक्ष्मी रूपी जय और धन आपकी छाया के समान आपके पीछे-पीछे फिरा करेंगे। पर विष्णु रूपी धर्म से विमुख होने पर यदि आप चाहोगे कि लक्ष्मी रूपी जय और धन प्राप्त कर लें, तो ऐसा कभी नहीं हो सकता। सूर्य्य की ओर पीठ करने से अपनी छाया को कोई भी अपनी अनुगामिनी नहीं कर सकता। जितना ही दूर आप भागते चले जाओगे, छाया सर्वदा आगे ही भागती चली जायगी, और हाथ नहीं आयगी। पर जिस समय सूर्य की ओर मुँह कर लोगे, तो उसी समय छाया (लक्ष्मी) आपके पीछे हो जायगी और आपको छोड़ नहीं सकेगी। सो जय और लक्ष्मी (धन) चाहनेवालों को सर्वदा सत्य और धर्म पर दृष्टि रखना चाहिये। हमारे हिन्दुस्तान की आजकल जैसी कुछ दशा

है, वह सब पर विदित है। प्लेग-राक्षस हज़ारों आदमियों का सफ़ाया कर रहा है। अकाल लाखों आदमियों का ख़ून चूस रहा है। हैज़ा, चेचक आदि सैकड़ों बीमारियाँ करोड़ों आदमियों के प्राण ले रही हैं। कहाँ तक कहें, हिन्दुस्तान हर प्रकार से दुःखी है। हिन्दुस्तान की ऐसी शोकमयी दशा क्यों है? इसके उत्तर में राम यही कहेगा कि सत्य और धर्म का ह्रास व ह्रास हुआ है। हिन्दुस्तानियों की सत्य और धर्म पर श्रद्धा नहीं। हिन्दुस्तान में धर्म केवल बोलने के लिये है, बरताव में लाने के लिये नहीं।

अब राम हिन्दुस्तान और अमेरिका का मुक़ाबला करता है। अमेरिका हिन्दुस्तान के पैर के नीचे है। हिन्दुस्तान * में दाईं ओर से जाते हैं, अमेरिका में बाईं ओर से जाते हैं। हिन्दुस्तान में मन्दिरों या मकानों में जाने से पहिले जूता उतारते हैं, अमेरिका में टोपी उतारते हैं। हिन्दुस्तान में पुरुष घर का मालिक होता है और स्त्री पर हुकूमत करता है, अमेरिका में स्त्री घर की मालिक होती है, पुरुष पर हुकूमत करती है। हिन्दुस्तान में कुत्ता सबसे अपवित्र और गधा सबसे बेवक़ूफ़ जानवर समझा जाता है, अमेरिका में कुत्ता सबसे पवित्र और गधा सबसे अक़्लमन्द समझा जाता है। वे गधे से बड़ी-बड़ी अक़्ल (बुद्धि) सीखते हैं। हिन्दुस्तान में उस किताब की बिलकुल क़द्र नहीं होती, जिसमें कुछ भी दूसरी किताब का प्रमाण न हो, अमेरिका में उसी किताब की प्रतिष्ठा होती है, जो बिलकुल नई हो। हिन्दुस्तान में कोई

---

* दाईं ओर से जाने का रिवाज अमेरिका में और बाईं ओर से जाने का रिवाज भारतवर्ष में अभी थोड़े काल से हुआ है। पहले दाईं ओर से ही जाने का रिवाज भारतवर्ष में और बाईं ओर से चलने का रिवाज अमेरिका में था।

आदमी ऐसा काम नहीं करता या करना चाहता, जिसका नतीजा वह अपनी आँखों के सामने न देख ले, यहाँ तक कि बूढ़े आदमी बग़ीचा लगाने में भी हिचकिचाते हैं, पर अमेरिका में यह बात नहीं है। वहाँ हरएक आदमी काम करता है और फल की इच्छा नहीं रखता। वे अपना फ़ायदा नहीं देखते, किन्तु मुल्क का फ़ायदा देखते हैं। जापान में एक अमेरिकन प्रोफ़ेसर था, वह बहुत बूढ़ा था, बारह भाषायें जानता था। इस आयु में रूसी भाषा पढ़ रहा था। राम ने उससे पूछा कि "आप अब रूसी भाषा पढ़कर क्या करेंगे?" उसने उत्तर दिया "मैंने सुना है कि रूसी भाषा में भूगोल सबसे उत्तम है, सो मैं रूसी भाषा को इस अभिप्राय से पढ़ रहा हूँ कि उस भूगोल को पढ़ूँ, और उसका अनुवाद अपनी भाषा में करूँ, ताकि हमारी ज़बान में भी अच्छा भूगोल हो, और हमारे मुल्क को फ़ायदा पहुँचे।" वह फल की इच्छा नहीं रखता था, पर इस बुढ़ापे में भी जो वह दूसरी भाषा पढ़ने का कड़ा परिश्रम कर रहा था, वह केवल अपने मुल्क के उपकार व फ़ायदे के वास्ते था। क्या हिन्दुस्तानी कभी अपने मुल्क के लिये ऐसा परिश्रम करता है? और फिर इस बुढ़ापे में? यहाँ तो मरने का बड़ा भय रहता है, इस मुल्कवालों (हिन्दुस्तानियों) को अकसर यह कहते सुनते हैं "मरना है, किसके लिये करना है?" तो भला हिन्दुस्तान की कैसे उन्नति हो?

हिन्दुस्तान में कोई आदमी अपने पूर्व-पुरुषों से आगे बढ़ना ही नहीं चाहता, और जो आगे बढ़ता है, वह नास्तिक समझा जाता है, अर्थात् लोगों में उसकी प्रतिष्ठा नहीं होती है, अपने बाप-दादों की लकीर का फ़क़ीर न रहने से कलंकित किया जाता है; पर अमेरिका में उस आदमी की बिलकुल क़दर नहीं होती, जो अपने बाप से दो क़दम आगे न बढ़ा हो।

वहाँ प्रत्येक आदमी के हृदय में यही प्रबल इच्छा रहती है कि हमारे बाप-दादों ने जो कुछ किया है, उससे हमको अधिक करना चाहिए, जो हम उससे कम या बराबर ही हुए, तो हम नालायक़ ही हुए। जब कि दिल में ऐसे ख़्याल हैं, तब वे लोग उन्नति न करें, तो क्या हिन्दुस्तानी उन्नति करेंगे ?

हिन्दुस्तानी अन्य देशों को जाने से अपना धर्म खोया हुआ समझते हैं, और विना दूसरे मुल्क गए उन्नति होती नहीं। यह बात सिद्ध ही है, क्योंकि अपने मुल्क की उन्नति के लिये यह ज़रूरी है कि दूसरे मुल्कों की रस्म-रिवाज, रीति-नीति, कला-कौशल, आचार-विचार, विद्या और वैभव मालूम हों; पर ये बातें तब तक मालूम नहीं होतीं, जब तक उन मुल्कों में जाकर ख़ुद न अनुभव करें। परन्तु जब दूसरे मुल्कों को जाना ही हिन्दुस्तानी पाप समझते हैं, तो उन बातों का कैसे अनुभव कर सकते हैं ? विना अनुभव किये उन्नति कैसे हो सकती है ? अफ़सोस ! हिन्दुस्तानी के ख़्याल में यह बात आ ही नहीं सकती कि दुनिया में क्या हो रहा है ? हम लोग एक मकान के अंदर बिलकुल बन्द हैं। हम नहीं ख़्याल कर सकते कि मकान के बाहर कैसी सुगन्धित वायु चल रही है, कैसे विचित्र, मनोहर पुष्प खिले हुए हैं ? प्रकृति का सौंदर्य कैसा सुख-प्रद है। इधर जब हिन्दुस्तान की ऐसी दशा है, तो अमेरिकावाले कभी घर पर नहीं रहते हैं। अमेरिका में उस आदमी का जन्म निष्फल समझा जाता है, जिसने कभी दूसरा मुल्क न देखा हो। योरप के देशों की भी यही कैफ़ियत है। जर्मनी प्रवासियों का इस तरह का हिसाब है कि दस हजार मिश्र देश में, पैंतालीस हजार पेरिस में और आठ फ़ी सैकड़ा दुनिया के और हिस्सों में बराबर आते-जाते रहते हैं। कैसा ज़बरदस्त देशाटन है !

एक बार राम जर्मन के जहाज़ में सफ़र कर रहा था। राम जहाज़ की छत पर गया, और वहाँ कुछ ईश्वर के विषय में भजन गाने शुरू किये। ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी, आस्मान साफ़ था, प्रकृति की सुन्दरता देखने योग्य थी। एकान्त स्थान होने से राम ने ज़ोर-ज़ोर से गाना शुरू किया। राम अति आनन्द-दशा में था कि राम का गाना सुनकर उस जहाज़ का कप्तान और कितने ही मुसाफ़िर, जो कि प्रायः सब जर्मनी के थे, राम के पास आए और राम के साथ बातचीत करने लगे। सिवाय कप्तान के और आदमी अँगरेज़ी नहीं समझ सकते थे। राम अँगरेज़ी में बातचीत करता था और कप्तान अपने साथियों को अपनी भाषा में समझाता था। कप्तान हिन्दू और हिन्दू-धर्म्म के विषय में बातचीत करता था। उससे मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि उसको हिन्दू-धर्म्म के विषय में इतना अनुभव कहाँ से प्राप्त हुआ! पूछने से मालूम हुआ कि दुनिया भर के देशों के धर्म्म, विद्या और रस्म-रिवाज जानना वे अपना मुख्य कर्त्तव्य समझते हैं। और इसी अभिप्राय से वे लोग देशाटन करते हैं। राम ने उनसे पूछा—"इससे क्या लाभ होगा?" उसने उत्तर दिया—"सब मुल्कों के रस्म-रिवाज और धर्म्मों को जान कर जो-जो रस्म-रिवाज, विद्या और धर्म्म हमारे मुल्क को लाभ पहुँचाने योग्य समझे जायेंगे, उनका अपने मुल्क में प्रचार करेंगे। विद्या का प्रकाश सब मुल्कों से लेना चाहिये, नहीं मालूम किस मुल्क में कौन सी विद्या है। सब देशों की विद्या का प्रकाश हम अपने मुल्क में ले जायेंगे, तो हमारे मुल्क में महाप्रकाश हो जायगा।" अहो! अपने देश में प्रकाश फैलाने की, अर्थात् अपने देश की उन्नति करने की, यह कैसी

नैसर्गिक विचार की भूमिका है। अहो! हिन्दुस्तानियो! आपकी कैसी शोचनीय दशा है? आपकी आँख कब खुलेगी? क्या कभी आपके हृदय में इन देव-तुल्य मनुष्यों के समान अपने मुल्क (स्वदेश) की भलाई, उन्नति और उपकार का ख्याल पैदा होगा? क्या कभी आप लोग भी इन जर्मनों के समान अपने देश में विद्याओं का महाप्रकाश करने की इच्छा से इस प्रकार भिन्न-भिन्न देशों में जाकर वहाँ से विद्या का प्रकाश लाओगे?

पहले जब हिन्दुस्तानियों को ग़ैर मुल्कों में जाने के लिये रोक नहीं होती थी और यहाँ प्रकाश था, तब हिन्दुस्तानी अपने मुल्क के प्रकाश से अन्य मुल्कों को प्रकाशित करते थे। पर जब से बाहर आने-जाने का मार्ग बंद कर दिया गया, तब प्रकाश भी बन्द हो गया और अँधेरा फैल गया। यहाँ से प्रकाश क्यों चला गया? प्यारे! एक मकान के भीतर, जिसमें प्रकाश आने-जाने के लिये खिड़की और दर्वाज़े हों, बाहर के प्रकाश (सूर्य्य की किरणों) से जब खूब प्रकाश हो गया हो, और तुम इस अभिप्राय से उसकी खिड़की और दर्वाज़े बंद कर दो कि भीतर का प्रकाश बाहर न जाने पावे, तो क्या उस मकान के भीतर प्रकाश कभी ठहर सकता है? कभी नहीं। ज्यों ही मकान का दर्वाज़ा और खिड़कियाँ बन्द होंगी, मकान के अन्दर अँधेरा फैल जायगा, और बाहर से प्रकाश आना भी बंद हो जायगा। बस, हिंदुस्तान की भी यही दशा हुई। बाहर आने-जाने के सब दर्वाज़े बंद कर दिये गये, सो नतीजा यह हुआ कि यहाँ जो कुछ प्रकाश था, वह भी बंद हो गया, और बाहर से प्रकाश आना भी बंद हुआ, और हिंदुस्तान में अँधेरा फैल गया। शास्त्रों में लिखा है कि विद्या-रत्न नीच से भी लेना चाहिये और सबको देना चाहिये।

जितनी ही विद्या तुम दूसरों को दोगे, उतनी ही तुम्हारी विद्या बढ़ेगी और तरक़्क़ी पायेगी, किन्तु अफ़सोस है कि हिन्दुस्तानी दूसरों को विद्या देने में निहायत संकोच करते हैं और दूसरों से विद्या लेना भी नहीं चाहते। दूसरों की विद्या न सीखी जाय, इसके लिये समुद्र-यात्रा का निषेध हुआ। इस दशा में विद्या-रूपी प्रकाश का किस प्रकार प्रकाश रहता? अहो! ख़ुदग़र्ज़ी क्या किसी और चीज़ का नाम है? वेद और शास्त्र, जिनसे परमात्मा-विषयक ज्ञान होता है, किसी अन्य-देशीय को न पढ़ाये जायँ, ग़ैर मुल्कों में उनका प्रचार न किया जाय, क्या इससे परमेश्वर प्रसन्न होगा? क्या अन्य देश-निवासी परमेश्वर के बनाये मनुष्य नहीं हैं? परमात्मा ने सच्चे ज्ञान के भंडार (वेदों) को आप लोगों के पास सौंपा, ताकि मनुष्यों को उसका यथार्थ ज्ञान हो, और आप लोग अपना कर्तव्य भूल कर उनको अपनी ही सम्पत्ति समझने लगे, तो बताइये कि ईश्वर का कोप आप पर न हो, तो क्या हो? देखो, ईसाई लोग बाइबिल को ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं, उनकी नज़र में बाइबिल के अनुकूल न चलने से किसी को मुक्ति नहीं हो सकती, बाइबिल ही उनकी समझ से संसार के परित्राण करने का एकमात्र अवलम्बन या उपाय है, तो देखिये, ये लोग उसके प्रचार के लिये कितनी तकलीफ़ें उठाते हैं, कितनी जानें खोते हैं, कितने रुपये ख़र्च करते हैं। वे उदार मनुष्य संसार को भ्रष्ट करने के लिये ऐसा नहीं करते हैं, किन्तु संसार की भलाई की इच्छा से ही ऐसा करते हैं। ईश्वरीय ज्ञान का सर्वत्र प्रचार करना अपना परम कर्तव्य समझते हैं। ओहो! परमात्मा उन पर ख़ुश न हो, तो किस पर ख़ुश हो? क्योंकि ईश्वर ने जो कुछ जैसा और जितना ज्ञान उनको दिया है, वे उसको जैसे का तैसा दूसरों को देने में

संकोच नहीं करते हैं, किन्तु तकलीफ़ उठाकर, उनको विद्या पढ़ाकर, रुपया खर्च कर यहाँ तक कि प्राण गवाँकर भी ज्ञान देते हैं। पर हिन्दुस्तानियों ! तुम्हारे पास जो कुछ सौंपा गया है, क्या तुम भी इन जगत्-हितैषी ईसाइयों के समान उसका संसार में प्रचार कर रहे हो ? यदि नहीं, तो क्या ईश्वर तुम पर ख़ुश होता होगा ? यदि कहो कि क्या मालूम कि ईश्वर ख़ुश होता है कि नहीं, तो क्या अभी तक तुम समझ नहीं सके कि ईश्वर का तुम पर कितना कोप हो रहा है ? राज्य गया, लक्ष्मी गई, विद्या गई, प्रतिष्ठा गई, बल गया, पौरुष गया, और सर्वस्व गया, तो भी न समझे, तो अकाल आया, प्लेग वा महामारी आई, हैज़ा आया, तो क्या अब भी समझ में नहीं आता कि ईश्वर हम पर कोप कर रहा है ! प्यारो ! सम्हलो, अभी सम्हलने का समय है।

परमेश्वर की दृष्टि में सब बराबर हैं, क्योंकि परमेश्वर ने सबको बनाया है। और यदि हम परमेश्वर को ख़ुश करना चाहें, तो हमको चाहिये कि हम प्राणी-मात्र से प्रेम करें। भाई के मारने या उसके साथ वैर करने या उसको नफ़रत करने से बाप कभी ख़ुश नहीं हो सकता। तब क्या किसी मनुष्य को नफ़रत करने से या नीच समझने से परमेश्वर, जो सबका पिता है, कभी ख़ुश हो सकता है ? कदापि नहीं। ख़ाली मुँह से यह बात कहते जाना कि हम परमेश्वर को मानते हैं, उससे प्रेम करते हैं, काफ़ी नहीं है। आपको चाहिये कर्म द्वारा इसका सबूत दो। सबूत यही है कि आप मनुष्य-मात्र से प्रेम करें, प्राणी-मात्र से प्रेम करें, जगत्-मात्र से प्रेम करें, सबको बराबर और अपने ही बराबर समझें, अर्थात् यह ख़्याल रक्खें कि जो कुछ मैं हूँ, वह वे हैं, और जो कुछ वे

हैं, वह मैं हूँ, अर्थात् मैं और वे अलग-अलग कुछ नहीं, किन्तु एक ही हैं। चाहे कोई किसी जाति का हो, किसी देश का हो, किसी रंग का हो, इसकी परवाह मत करो। जाति-धर्म, मज़हब, देश और रंग से कुछ मतलब नहीं, आपको तो ईश्वर को खुश करने से मतलब है, अर्थात् अपना कर्तव्य पालन करना है। हाथ शरीर के सब अंग और प्रत्यंगों को सहायता पहुँचाता है। पैरों को, उपस्थ इन्द्रिय को या और किसी अंग को जब तकलीफ़ होती है, तब फ़ौरन हाथ उनकी सहायता के लिये पहुँच जाता है। हाथ यह कभी विचार नहीं करता है कि पैर मुझसे नीचा है, गुदा आदि इन्द्रियाँ अपवित्र हैं, मुँह में थूक है, नाक में सींड है, कान के अन्दर मैल है, वह सम दृष्टि से सबको सहायता पहुँचाता है, और सबकी तकलीफ़ों को दूर करने का प्रयत्न करता है। यह कभी ख्याल नहीं करना चाहिये कि यह मुझसे नीच है या भिन्न मज़हब का है। अमेरिका में रविवार के दिन एक साहब से राम की मुलाक़ात हुई। उसकी मेम दूसरे मज़हब की थी, और वह दूसरे मज़हब का था (ईसाइयों के भी कई मज़हब हैं, कोई रोमन कैथोलिक और कोई प्रोटेस्टेंट कहलाते हैं), अर्थात् उसकी मेम (स्त्री) रोमन कैथोलिक थी और वह प्रोटेस्टेंट था। वह अपने-अपने गिर्जों में तो गये, पर साहब पहले अपनी मेम को उसके गिर्जे में पहुँचा आया, तब अपने गिर्जे में गया, फिर अपने गिर्जे से अपनी मेम को लेने के लिये उसके गिर्जे में गया, और तब वह साथ-साथ घर आये। राम ने उस साहब से पूछा कि तुम स्त्री-पुरुष भिन्न मज़हब के हो, कैसे एक दूसरे से प्रेम करते हो? उसने उत्तर दिया— "मज़हब का ईश्वर के साथ सम्बन्ध है और इसका (मेरी मेम का) और मेरा इस दुनिया का सम्बन्ध है। ईश्वर के

सामने अपने कर्मों का उत्तरदाता मैं हूँ, और वह अपने कर्मों की उत्तरदात्री है, सो हमको विवाद करने से क्या मतलब ? हम दुनिया के सम्बन्ध से आपस में प्रेम करते हैं। साहब ने ठीक उत्तर दिया। ऐसा ही होना चाहिये। परन्तु हिन्दुस्तान में यदि स्त्री वैष्णव है और पुरुष शैव, तो उनके बीच कभी प्रेम नहीं होता है। अहो, कैसा अनर्थ है !

आप लोग (हिन्दुस्तानी) अन्य देशवासियों को नीच, म्लेच्छ आदि नामों से संबोधन करते हो और उनसे नफ़रत करते हो; पर राम कहता है कि जिनको आप नीच समझते हो, वे उत्तम हैं, जिनको म्लेच्छ कहते हो, उनका हृदय पवित्र है, और वे आपसे प्रेम रखते हैं। उन लोगों में और भी इतना विशेष गुण है कि उनका देशानुराग इतना प्रबल है कि वे अपने देश के लिये ख़ून बहा देने को हर समय तैयार रहते हैं। एक जापानी जहाज़ में कुछ हिन्दुस्तानी लड़के सफ़र कर रहे थे, वे लोग चौथे दर्जे में थे। चौथे दर्जे-वाले मुसाफ़िरों के लिए हिन्दुस्तानियों के मुआफ़िक़ खाने का उचित सामान न था। वे लोग भूखे ही रह गये। इतने में एक जापानी लड़के की नज़र उन पर पड़ गई, उसको मालूम हुआ कि ये बेचारे हिन्दुस्तानी भूखे हैं। उस उदार, दयालु जापानी लड़के से न रहा गया, वह फ़ौरन फ़र्स्ट क्लास (पहिले दर्जे के कमरे में गया और वहाँ से फल और मेवे अपने पैसे लगाकर ले आया, और उनको उन भूखे हिन्दुस्तानियों के हवाले कर दिया। वे हिन्दुस्तानी लड़के बड़े ख़ुश हुए, और उस कृपालु जापानी लड़के को क़ीमत देने लगे, परन्तु जापानी लड़के ने उचित आश्वासन और मधुर वचन द्वारा सबका सत्कार करके क़ीमत लेने से इन्कार किया, और फिर उसी तरह चार-पाँच रोज़ तक उनको बराबर मेवे और फल देता

गया, और क़ीमत लेने से बराबर इन्कार करता गया। जब उनके जुदा होने का वक्त आया, तो हिन्दुस्तानी लड़के उसका शुक्रिया (धन्यवाद) अदा करने लगे, और फिर क़ीमत देने लगे। उस जापानी लड़के ने फिर इन्कार किया और नम्रता-पूर्वक उन हिन्दुस्तानी लड़कों से कहा कि "प्यारे! मैं दाम तो नहीं लेता, मगर एक अर्ज़ करता हूँ, यदि आप उसको स्वीकार करो तो।" हिन्दुस्तानी लड़कों ने कहा—"आप फ़र्माइये तो।" जापानी लड़के ने कहा कि "मेरी यही प्रार्थना है कि जब आप लोग हिन्दुस्तान में जाओ, तो यह बात न कहना कि जापानी जहाज़ में हमको कष्ट हुआ था, वहाँ खाने का प्रबन्ध ठीक नहीं था; क्योंकि आप लोग ऐसा कहेंगे, तो हमारे मुल्क की बदनामी होगी।" अहो! कैसी मुहब्बत है! कैसा विमल देशानुराग है! वह लड़का न उस जहाज़ का मालिक था, और न उस जहाज़ में नौकर था। पर वह जहाज़ जिस देश का था, वह भी उसी देश का रहनेवाला था, इसी सम्बन्ध से उस जहाज़ की बदनामी को वह अपनी और अपने देश की बदनामी समझता था। यही सच्चा वेदान्त है, इसी को सच्ची 'ब्रह्मविद्या' कहते हैं। क्या कोई हिन्दुस्तानी कभी ऐसा करता है? क्या किसी हिन्दुस्तानी ने ऐसा वेदान्त सीखा? क्या आपमें से किसी को इस सच्ची ब्रह्मविद्या की प्राप्ति हुई? अहो! यहाँ का वेदान्त, यहाँ की ब्रह्मविद्या तो केवल वाद-विवाद करने के लिये है, अमल में लाने के लिए नहीं। पर याद रखिए, जब तक ऐसी ब्रह्मविद्या अमल में नहीं लाई जाती, तब तक आपके देश की उन्नति नहीं हो सकती। अफ़सोस! वेदान्त और ब्रह्मविद्या तो हिन्दुस्तान में पढ़ी जायें, और जापान और अमेरिकावाले उसको 'अमल में लायें। अभी रूस-जापान के वर्तमान युद्ध में जापान-

वालों को अपने किसी जहाज़ के डुबाने की ज़रूरत पड़ी। यह निश्चय था कि जो इस जहाज़ को डुबाने जायेंगे, वे भी डूबेंगे, क्योंकि उनके बचाने के लिए कोई उपाय नहीं था, तो भी जहाज़ के कप्तान ने एक नोटिस अपनी पल्टन में फिराया कि "हम अपने जहाज़ को डुबाना चाहते हैं, मगर जो उसको डुबाने को जाएगा, उसके बचने का उपाय नहीं, सो इस पर भी जिसको वहाँ जाना मंज़ूर हो, वह दरख़्वास्त करे।" कप्तान का दफ़्तर दरख़्वास्तों से भर गया। ऐसा कोई जापानी नहीं था, जिसने दरख़्वास्त न दी हो। बाज़-बाज़ जापानियों ने अपनी अँगुली को काटकर ख़ून से अर्ज़ी लिखी, बाज़ों ने ऐसी धमकी की अर्ज़ी दी कि "यदि हमको न भेजा गया, तो हम फाँसी लगाकर मर जावेंगे।" अहो! मरने के लिए ऐसी उत्कंठा क्यों? प्यारों! उस जहाज़ को डुबाने से जापान को लाभ पहुँचता था, मुल्क के लाभ के मुक़ाबिले में वे अपने प्राण बिलकुल कुछ नहीं समझते थे। इधर हिन्दुस्तान में "आप मरा, तो जग मरा" की कहावत है। अगर किसी हिन्दुस्तानी से यह कहा जाय कि तुम्हारे मरने से हिन्दुस्तानियों को राज्य मिलता है, तुम मरना स्वीकार करोगे? तो क्या जवाब मिलेगा? यह कि हम मर ही जाएँगे, तो राज्य आने से फ़ायदा ही क्या होगा? उफ़् (हा शोक!)! कैसा घृणित स्वार्थ भरा हुआ है! प्लेग से दो लाख से ऊपर आदमी हरएक महीने में मर रहे हैं, हैज़ा आदि अन्य बीमारियों का हिसाब अलग है, पर हिन्दुस्तान में ऐसा कोई माई का लाल नहीं है, जो अपने इस क्षण-भंगुर शरीर को अपने देशोपकार-रूपी यज्ञ में हवन कर दे, अर्थात् देश की भलाई में अपने प्राण न्योछावर कर दे, या पसीना ही बहाये, या थोड़ी तकलीफ़ उठाए। अपने मुल्क के लिये प्राण न्योछावर

करना एक तरफ़, पसीना बहाना एक तरफ़, थोड़ी तकलीफ़ उठाना एक तरफ़ रहा, पर हम लोगों से देश की बुराई न हो, तो उतनी ही ग़नीमत है। अभी एक हिन्दुस्तानी लड़का जापान में पढ़ रहा था। एक दिन वह स्कूल-लायब्रेरी (पुस्तकालय) से एक किताब अपने घर पढ़ने को लाया। उस किताब में एक नक़्शा था। जिसका बनाना उसको अत्यंत आवश्यक था। पर उस लड़के ने उस नक़्शे के बनाने की तकलीफ़ उठानी पसंद नहीं की और उस किताब से वह वर्क़, जिस पर नक़्शा बना हुआ था, फाड़कर अपने पास रख लिया। कितने दिन के पश्चात् एक जापानी लड़के ने वह फटा हुआ वर्क़ देख लिया। उसने प्रिंसिपल से रिपोर्ट कर दी। और यह क़ानून पास हो गया कि किसी हिन्दुस्तानी लड़के को लायब्रेरी से कोई किताब घर पर पढ़ने के लिये न दी जाय। अफ़सोस! अपने ज़रा स्वार्थ के लिये या ज़रा अपनी तकलीफ़ को बचाने के लिये, उस हिन्दुस्तानी लड़के ने अपने मुल्क के लिये कितना भारी नुक़सान पहुँचाया है? आप लोगों से भी यह ग़लती होनी संभव थी। अहो! कैसे शोक की बात है कि हम लोग अपने तनिक स्वार्थ के लिये या ज़रा तकलीफ़ से बचने के लिये अपने मुल्क को भारी नुक़सान पहुँचा देते हैं, और फिर आप भी तकलीफ़ उठाते हैं और नुक़सान सहते हैं। देखिये, हांगकांग में अँगरेज़ों की एक मुसलमानी पल्टन थी। उस पल्टन के सिपाहियों की ४५) रु० माहवारी तनख़्वाह थी। दो सिक्ख सिपाहियों ने, जो ६), १०) रुपया माहवारी यहाँ पाते थे, एक अर्ज़ी सरकार को इस मज़मून की दी कि यदि हम लोगों को १५) रु० माहवारी तनख़्वाह की जाय, तो हम लोग ख़ुशी से हांगकांग चले जायेंगे। सरकार का तो इसमें लाभ था ही, सो सरकार ने उनकी

अर्ज़ी मंज़ूर की और मुसलमानी पल्टन को नोटिस दे दिया कि जो सिपाही १५) रु० में रहना चाहें तो रहें, अन्यथा अपना नाम कटा लेवें। उस मुसलमानी पल्टन के किसी सिपाही ने १५) रु० माहवारी में रहना मंज़ूर नहीं किया, और सबने अपने नाम कटा लिये। पश्चात् उन्होंने विलायत तक इस बात की लिखा-पढ़ी की, मगर नतीजा कुछ भी नहीं हुआ। भला सरकार को भारी ख़र्च करने से क्या मतलब था, जब कि थोड़े से ख़र्च में सरकार का काम चल जाता था। मज़बूत और बहादुर सिपाही भी मिल गये, ख़र्च भी कम हुआ, तो सरकार ऐसी बेवक़ूफ़ क्यों बनती, जो उन मुसलमान सिपाहियों की अर्ज़ी पर ध्यान देती? ग़रज़, यहाँ सिक्ख सिपाही भरती हुए और मुसलमान सिपाही सब बर्ख़ास्त हुए। नाउम्मेद (हताश) होकर वे मुसलमान सिपाही आफ़्रिका में मुल्ला के देश में चले गये और उसकी पल्टन में भरती होकर उसको अँगरेज़ों के विरुद्ध भड़काने लगे। मुल्ला उनकी पट्टी में आ गया और उसने अँगरेज़ों के विरुद्ध लड़ाई शुरू कर दी। अँगरेज़ों ने हांगकांग से यही पल्टन सिक्खों की उनके साथ लड़ने के लिये भेजी। उन मुसलमान सिपाहियों को मालूम हो गया कि उनके मुक़ाबले में वही सिक्ख पल्टन आई है, सो पुराना वैर लेने के जोश में, उन्होंने ख़ूब बहादुरी से लड़ना शुरू किया। उस सिक्ख पल्टन के कितने ही सिपाही मारे गये, कितने ही ज़ख़्मी हुए, कितने ही उस रेगिस्तान की गरमी को न सह सकने के कारण मर गये, कितने ही बीमार हुए। मतलब यह कि प्रायः सभी तबाह हुए। प्यारो! देखो, जो जैसा करता है, वैसा फल पाता है। इन सिक्ख सिपाहियों ने अपने ५) रु० के स्वार्थ से उन मुसलमान सिपाहियों का ४५) रु० का नुक़्सान किया था, उसका इनको यह फल मिला कि मारे

गये, मर गये, ज़ख्मी हुए, बीमार हुए और तबाह हुए। उफ़ (हा शोक) ! स्वार्थ कैसी बुरी बला है ! यह (बला) पहले तो दूसरों को नुक़सान पहुँचाती है, और फिर उसका अपना नाश करती है, जो इससे काम लेता है। प्यारो ! जैसे इस शरीर के जीवन के लिये हाथ, पैर, नाक, आँख, कान, दाँत, जिह्वा आदि सभी इंद्रियों की आवश्यकता है, वैसे ही इस संसार के जीवन के लिये भिन्न-भिन्न जाति के सभी मनुष्यों की चाहे वह हिन्दू है, या मुसलमान है या ईसाई है, या यहूदी अथवा पारसी है, आवश्यकता है। तब हम दुःख पहुँचावें, तो किसको पहुँचावें ? नीच समझें, तो किसको समझें ? स्वार्थ करें, तो किससे करें ? देखो, यदि आँख यह कहे कि देखती तो मैं हूँ और लाभ हाथ वग़ैरह का होता है, इसलिये देखना बंद कर दूँ ; हाथ कहे कि काम तो मैं करता हूँ और मज़ा मुँह उठाता है, इसलिये मैं काम करना छोड़ दूँ; पैर यह कहे कि सारे शरीर का बोझ मैं लिये फिरता हूँ, और ये सब मज़े में रहते हैं, इसलिये फिरना छोड़ दूँ; इसी प्रकार अन्य सब इन्द्रियाँ कहें और अपना-अपना काम छोड़ दें, तो कहो, प्यारो ! कैसा ज़ुल्म हो जाय ? क्या तब यह शरीर एक मिनट भी रह सकता है ? कभी नहीं। देखो, अगर आँख यह कहे कि जिस चीज़ को मैं सुन्दर देखती हूँ, उसको मैं अपने ही पास रक्खूँ, और वह अपने ही पास रखने की कोशिश करे, तो क्या होगा ? पहले तो आँख के अन्दर वह समा ही नहीं सकेगी, यदि कोई छोटी चीज़ हुई, तो उससे आँख फूट जायगी। हाथ यह कहे कि जो चीज़ मैं कमाता हूँ, उसको मैं अपने ही पास रहने दूँ और अपने को चीरकर या छेदकर उसमें रख दूँ, तो क्या होगा ? वह पक जायगा, सड़ जायगा, और उसमें कीड़े पड़ जायँगे। इसी प्रकार

और इंद्रियाँ भी तकलीफ़ उठायेंगी। जब यह बात बिलकुल सिद्ध है कि स्वार्थ स्वार्थी को ही कालान्तर में अधिक नुक़्सान पहुँचाता है, तो स्वार्थ से काम क्यों लेना चाहिये? हिन्दुस्तानी लड़के ने स्वार्थ से किताब का वर्क़ (पत्रा) फाड़ा था, उसने ख़ुद नुक़्सान उठाया और अपने मुल्क को नुक़्सान पहुँचाया। सिक्ख पलटन ने अपने स्वार्थ के लिये मुसलमान सिपाहियों को नुक़्सान पहुँचाया था, वे ख़ुद तबाह हुए। कहाँ तक कहें, स्वार्थियों ने अपने स्वार्थ के लिये ख़ुद नुक़्सान उठाया और मुल्क को कितना नुक़्सान पहुँचाया है। इस बात की सैकड़ों मिसालें हिन्दुस्तान के इतिहास में मौजूद हैं। कौरव-पांडवों का सत्यानाशी युद्ध होना, मुसलमानों का हिन्दुस्तान में राज्य होना, शाहजहाँ के लड़कों का आपस में लड़ना, मुसलमानी बादशाहत का नाश होना, अँगरेज़ों का हिन्दुस्तान में राज्य की जड़ जमाना, मरहठों का क्षय, सिक्खों का नाश, अँगरेज़ों का तमाम हिन्दुस्तान का बादशाह होना, इत्यादि इन सब बातों पर यदि नज़र डालोगे, तो मालूम हो जायगा कि हम हिन्दुस्तानी लोगों के स्वार्थ के कारण यह सब कुछ हुआ है। अगर हम लोगों में स्वार्थ न भरा हुआ होता, तो हिन्दुस्तान आज परदेशियों के पाँव पर न लोटता! आह! स्वार्थ ने आपको किस दशा से किस दशा को पहुँचा दिया है? स्वर्ग से आपको रसातल में फेंक दिया, इनसान से आपको हैवान (पशु) बना दिया, शेर से आपको गीदड़ बना दिया है। तो क्या प्यारों! अब भी आप उसको नहीं छोड़ोगे?

हिन्दुस्तान में स्वार्थ का हमेशा से घर नहीं है। यदि आप अपने पूर्व पुरुषों के जीवन-चरित्र पर एक बार दृष्टि डालें, तो मालूम हो जायगा कि जिन ऋषियों की आप औलाद (सन्तान)

हैं, वे कैसे निःस्वार्थी होते थे। दूसरे की भलाई के लिये, दूसरे के उपकार के लिये, वे महात्मा कैसे तन-मन-धन न्योछावर करते थे? और अपनी जान की भी परवाह नहीं करते थे। शरीर का मांस, शरीर की हड्डी तक दूसरों की भलाई के लिये दे देते थे। जब तक हिन्दुस्तान में ऐसे पुरुष होते रहे, तब तक हिन्दुस्तानी लोग चक्रवर्ती राज्य भोगते रहे, तब तक हिन्दुस्तान संसार में शिरोमणि गिना जाता रहा। पर जब से इस स्वार्थरूपी बला ने हिन्दुस्तान को घेरा है, तब से हिन्दुस्तान का पलड़ा उलट गया। सो यदि आप फिर सम्हलना चाहते हैं, तो एक दम से इस स्वार्थ को हिन्दुस्तान से निकाल दीजिए। मरते तो सब हैं, किन्तु हम लोग सिर्फ़ कालवश ही मरते हैं, और प्रकार से हम मरना नहीं जानते। मरना जानते हैं जापानवाले, अमेरिका-वाले और योरोपवाले, सो हम लोगों को भी उनसे मरना सीखना चाहिए। अमेरिका में एक बार साइंस की तरक़्क़ी के लिये आवश्यकता हुई कि एक आदमी जिन्दा चीरा जाय, ताकि यह मालूम हो कि खून की हरकत किस वक़्त किस नस में कैसी होती है। मरे हुए आदमी को चीरने से यह बात मालूम नहीं हो सकती थी, क्योंकि मरे हुए आदमी में खून की हरकत नहीं होती। सो एक आदमी इस बात के लिए तैयार हो गया और वह चीरा गया। एक बार आँख के अन्दर के परदों के विषय में जानने की ज़रूरत हुई, एक आदमी ने अपनी आँख चिरवाई। तो क्या प्यारो! उन लोगों ने अपने फ़ायदे के लिए अपने शरीर व आँख को जिन्दा चिरवाया था? नहीं, सिर्फ़ मुल्क के फ़ायदे के लिये। उनका सिर्फ़ यह उच्च ख्याल था कि हमारा यह नाशवान शरीर मुल्क के काम आयेगा, तो इससे उत्तम सद्गति और क्या हो सकती है? हमारा शरीर व आँख चीरी जायगी, तो ये डॉक्टर लोग इस बात को सीख

जाएँगे, जिसको विना सीखे ये लोग दूसरे के शरीर व आँख को पूरा-पूरा फ़ायदा नहीं पहुँचा सकते हैं, तब ये लोग पूरा-पूरा फ़ायदा पहुँचा सकेंगे, और हमारा शरीर व आँख जिनसे अभी तक केवल हमारा ही फ़ायदा हुआ है, अब से प्रत्येक आदमी के शरीर और आँख के फ़ायदे के लिये होंगे, अर्थात् हमारा शरीर और आँख सबके शरीर और आँख के साथ मिल जाएँगे। अहो! क्या ही उत्तम ज्ञान है। प्यारो! आपको भी यह ज्ञान सीखना चाहिए। जब तक आपको ऐसा ज्ञान नहीं होता, आपकी हरगिज़ तरक़्क़ी नहीं हो सकती।

यह बात भी नहीं है कि वे लोग मनुष्यों से ही प्रेम करते हैं, किन्तु मांसाहारी होने पर भी वे प्राणी-मात्र से प्रेम करते हैं। अमेरिका का प्रेसिडेन्ट (राष्ट्रपति) एक बार दरबार को जाता था। रास्ते में उसने देखा कि एक सुअर कीचड़ में फँसा हुआ है। वह सुअर निकलने की जितनी ही ज़्यादा कोशिश करता था, उतना ही वह अधिक कीचड़ में फँसा जाता था। प्रेसिडेन्ट से न रहा गया, वह दरबारी कपड़ों सहित, जिनको वह पहरे हुए था, कीचड़ में कूद पड़ा और सुअर को निकाल लाया। पश्चात् वह कीचड़ से भरे हुए कपड़ों को पहिने हुए ही दरबार में चला गया। राष्ट्रपति की यह दशा देखकर दरबारियों को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे राष्ट्रपति से नम्रता-पूर्वक इस विषय में दर्याफ़्त करने लगे। राष्ट्रपति ने सारा क़िस्सा बयान किया। दरबारी लोग बड़े ख़ुश हुए और हज़ार मुख से प्रेसिडेन्ट साहब की प्रशंसा करने लगे। कुछ कहने लगे कि हमारे प्रेसिडेन्ट साहब ऐसे मेहरबान (कृपालु) हैं कि सुअर पर भी मेहरबानी (कृपा) करते हैं। और कोई कुछ कहने लगा और कोई कुछ। प्रेसिडेन्ट ने कहा कि मेरी झूठमूठ प्रशंसा क्यों करते हो; मैंने सुअर पर दया नहीं की, किन्तु उसको

कीचड़ में बेतरह फँसा हुआ देखकर मुझे दर्द हुआ था, मैंने उस दर्द को मिटाया है, मैंने सुअर के साथ भलाई नहीं की है, किन्तु अपने साथ भलाई की है। क्योंकि उसके फँसने पर जो दुःख मुझे हुआ था, वह उसको निकालने से निकल गया अर्थात् दूर हो गया। अहा! सच्चे वेदान्त का यह क्या ही जीवित नमूना है कि प्राणी-मात्र के दुःख को अपना दुःख समझना, और प्राणी-मात्र पर दया करने से अपने ऊपर दया होती समझना, और प्राणी-मात्र का दुःख दूर करने से अपना ही दुःख दूर समझना। क्या कोई हिन्दुस्तानी राजा, रईस, अमीर होता, तो वह उस सुअर को कीचड़ से निकालता? कभी नहीं। तो विचार करो कि 'प्राणी-मात्र पर दया करना' जो आपका मुख्य धर्म है, सो आप अपने इस उदार धर्म से कितना भ्रष्ट हुए हो? धर्म-भ्रष्ट तो हुए, पर धर्म-भ्रष्ट होने से जो-जो सजा मिलती है, वह प्यारो! आपको मिल रही है। और तब तक इस सजा से आप छुटकारा नहीं पा सकते, जब तक कि फिर उस उदार धर्म (प्राणी-मात्र पर दया करने) के अनुसार आप अपना आचरण नहीं बनाते।

मुसलमानी बादशाही के ज़माने में अँगरेज़ लोग जब हिन्दुस्तान में केवल सौदागर थे, फ़रुख़सियर बादशाह की लड़की बीमार हुई। हिन्दुस्तानी वैद्य, हकीम इलाज करते-करते थक गये, परन्तु शाहज़ादी को आराम न हुआ। इत्तफ़ाक़ से अँगरेज़ डॉक्टर आया हुआ था, उसने दवा की, और दवाई से वह अच्छी हो गई। बादशाह बड़ा ख़ुश हुआ, और डॉक्टर को बड़ा भारी इनाम, खिलत और जागीर देने लगा। डॉक्टर ने अर्ज़ की कि जहाँपनाह! मैं कुछ नहीं लेना चाहता; मगर हुज़ूर ख़ुश हैं, तो अँगरेज़ सौदागरों के माल पर महसूल मुआफ़ फ़रमाया जाय। ऐसा ही हुआ। अँगरेज़ सौदागरों

के माल पर महसूल मुआफ़ हुआ। अँगरेज़ डॉक्टर ने अपने फ़ायदे पर ख़्याल न किया, किन्तु अपने मुल्क के फ़ायदे पर किया। यदि वह अपने फ़ायदे पर ख़्याल करता और बादशाह के भारी इनाम को ले लेता, तो थोड़े दिनों के लिये वह अमीर हो जाता; पर जब उसने मुल्क को ख़्याल किया, तो उसका सारा मुल्क ही अमीर हो गया। क्या हिन्दुस्तानी भाई से कभी यह उम्मेद हो सकती है? ओह! उन लोगों में कैसा स्वाभाविक वेदान्त है। तब वे लोग तरक़्क़ी न करेंगे, तो कौन करेगा? इधर हिन्दुस्तानियों पर तो ठीक यह मिसाल चरितार्थ होती है कि एक साधु ने किसी मनुष्य को एक वस्तु दी। उस वस्तु का यह गुण था कि वह मनुष्य उस वस्तु से जो कुछ माँगेगा, वह उसको मिल तो अवश्य जायगा, मगर उसके पड़ोसी को उससे दूना मिला करेगा। उस मनुष्य ने धन माँगा, हाथी-घोड़े माँगे, गाय-भैंस माँगी, और जो कुछ माँगा, वह सब उसको मिल गया, मगर उसके पड़ोसी को उससे दूना मिला। पड़ोसी को दूना मिलने पर वह बहुत जलता रहा। एक दिन वह यह बात सोचता रहा कि इस वस्तु से क्या माँगें, जो पड़ोसी को दूना मिलने पर उसका अधिक नुक़्सान हो। सोचते-सोचते उसके ख़्याल में यह बात आई कि अपनी एक आँख फूट जाय, इसलिये यही माँगना चाहिये कि मेरी एक आँख फूट जाय, क्योंकि तब पड़ोसी की दोनों आँखें फूट जायँगी। उसने ऐसा ही किया। उसकी एक आँख और पड़ोसी की दोनों आँखें फूट गईं, फिर उसने अपने एक हाथ और एक पाँव टूटने के लिये उस वस्तु से अर्ज़ की। उसका एक हाथ और पाँव टूट गया और उसके पड़ोसी के दोनों हाथ और पाँव टूट गये। इत्तफ़ाक़ से उसको लक़वा हुआ, और उसके रहे-सहे हाथ-पैर भी टूट गये, और आँख भी फूट गई।

तब उसने उस वस्तु से दोनों हाथ, पैर और आँखें माँगीं, पर यह प्रार्थना अस्वीकार हुई, क्योंकि पड़ोसी को उससे दूना मिलना था, मगर उसके चार हाथ, पाँव और आँखें नहीं थीं। तब उसने लाचार होकर अपनी एक आँख, हाथ, पाँव के अच्छे हो जाने की प्रार्थना की, यह स्वीकार हुई। उसके एक हाथ-पाँव और आँख अच्छी हो गई और पड़ोसी के दोनों। पड़ोसी जैसा का तैसा हो गया, मगर उस कमबख्त (दुर्भागी) की एक आँख फूटी की फूटी रह गई, और एक हाथ-पाँव टूटे के टूटे ही रह गये। सो प्यारो! विचार करो, जो अपने पड़ोसी की बुराई करता है, उसके लिए खुद बुरा होता है। पड़ोसी अपने मुल्कवालों को कहते हैं, सो अपने मुल्क की बुराई नहीं करनी चाहिये। बाइबिल में लिखा है कि अपने पड़ोसी को अपने बराबर प्यार करो, यद्यपि आपके शास्त्रों में और भी उदारता पाई जाती है, क्योंकि उनमें सारे जगत् को अपने बराबर प्यार करना लिखा है। बाइबिल के माननेवाले तो बाइबिल में लिखी हुई बात को अक्षर-अक्षर मानते हैं, और आप लोग अपने शास्त्रों में लिखी हुई इस बात को कि जगत् को अपने बराबर प्यार करो, एक हिस्सा नहीं मानते। यह कितनी लज्जा की बात है? प्यारो! जगत् को अपने बराबर प्यार नहीं कर सकते हो, तो अपने मुल्क को तो अपने बराबर प्यार किया करो। मुल्क को नहीं कर सकते हो, तो अपने कुटुम्ब को तो प्यार करो। यह क्या बात है कि आपने अपने कुटुम्ब ही में भेद कर रक्खा है। अपने कुटुम्ब से भी अगर आप भेद न रखते, तो आप एकदम इतना नीचे न गिरते, और आपकी दशा का चक्र एकाएक ऐसा पलटा न खाता।

भेद-भाव (द्वैत भाव) उन्नति के मार्ग में बड़ा ही अनिवार्य

तीक्ष्ण काँटा है। क्योंकि परमेश्वर ने इस दुनिया में जितने पदार्थ बनाए हैं, उनसे यथार्थ लाभ उठाना ही मनुष्य की पूरी-पूरी उन्नति की अन्तिम सीमा है, परन्तु यह भेद-भाव (द्वैत भाव) का काँटा मार्ग में आ पड़ता है, और उस अन्तिम सीमा तक पहुँचने नहीं देता। यह किसी चीज़ को अग्राह्य, किसी को स्पर्शनीय, किसी को घृणित, किसी को नीच और किसी को श्रेष्ठ समझाता है। पर ऐसा समझना सर्वथा अज्ञान है, क्योंकि ऐसा समझने से उन चीज़ों से हम परहेज़ करने लगते हैं। फिर उनसे कोई न कोई होनेवाला लाभ, जो हमारी उन्नति का सहायक होता, नहीं हो सकता। इसलिये हमारी उन्नति में उतनी कमी पड़ती है, और यह कमी हमको उन्नति की अन्तिम सीमा तक नहीं पहुँचने देती। यह कमी किसी और प्रकार से भी पूर्ण नहीं हो सकती, चाहे उसमें कितना ही सादृश्य हो। गाय के दूध से हमको जो लाभ होता है, वह भैंस या बकरी के दूध से नहीं होता, और बकरी के दूध से जो लाभ होता है, वह गाय के दूध से नहीं होता; अतएव हमको अपनी पूरी-पूरी उन्नति करने के लिये ईश्वर-रचित हरएक पदार्थ की सहायता की अत्यन्त आवश्यकता है। और वह सहायता हम तभी प्राप्त कर सकते हैं, जब भेद-भाव का सर्वथा नाश हो जाय। हिन्दुस्तान में भेद की बड़ी प्रबलता पाई जाती है। अमेरिका, जापान आदि में उतना भेद नहीं पाया जाता। यही कारण है कि हिन्दुस्तान उन्नति में इतना पिछड़ा हुआ है, और अमेरिका, जापान आदि इतना आगे बढ़े हुए हैं। हिन्दुस्तान में जिन चीज़ों की क़दर नहीं होती, जिन चीज़ों से कोई लाभ होने की आशा नहीं समझी जाती, अथवा जिन चीज़ों को छूने तक का इतना परहेज़ होता है कि गंगा-स्नान की ज़रूरत पड़ती है, उन चीज़ों

से अमेरिका आदि मुल्कोंवाले आशातीत लाभ उठाते हैं। गधा और सुअर, जो हिन्दुस्तान की नज़र से बिलकुल घृणित हैं, अमेरिका में बड़े काम आते हैं। मैला, जिसकी तरफ़ नज़र पड़ने से ही क़ै (वमन वा उल्टी) हो जाती है, अमेरिका में अच्छी व्यापारिक चीज़ है। हड्डी, जिसके छू जाने-मात्र से स्नान की ज़रूरत होती है, इतने फ़ायदे की चीज़ है कि सारी दुनिया को लाभ पहुँच रहा है। इसकी खाद जिस खेत में पड़ती है, वहाँ चौगुनी फ़सल पैदा होती है; इससे जो फ़ास्फ़ोरस निकलता है, वह संसार को लाभ पहुँचा रहा है। दियासलाई इसकी बनती है, और पुष्टिकारक उत्तम दवा भी इसी से बनती है। बाल जिसको तुम तुच्छ (नाचीज़) समझकर फेंक देते हो, उससे अमेरिका में ख़ूब पैसा पैदा होता है। इसी प्रकार सब चीज़ें जो हिन्दुस्तान की नज़र से घृणित, अपवित्र और अयोग्य समझी जाती हैं, उनसे दूसरे मुल्कवाले ख़ूब फ़ायदा उठाते हैं, और उनसे ख़ूब कमा लेते हैं। उन मुल्कों में जब ऐसी-ऐसी चीज़ों से भी फ़ायदा उठाते हैं और काम लेते हैं, अफ़सोस, हिन्दुस्तानी तो साधू लोगों से भी काम लेना नहीं जानते! हज़ारों, लाखों साधू पड़े हुए हैं, यदि उनसे काम लेते, अथवा उनसे फ़ायदा उठाने की बुद्धि हिन्दुस्तान को होती, तो हिन्दुस्तान का बड़ा भारी उपकार हो जाता।

एक समय था, जब हिन्दुस्तानी लोग मनुष्यों के अलावा जानवरों से भी मनुष्य का काम ले लेते थे। भगवान् रामचन्द्रजी ने बंदरों की सेना बनाई थी, और ऐसी कामयाबी (सफलता) हासिल की थी कि आजकल के हिन्दुस्तान के मनुष्यों की सेना से भी वह कामयाबी हासिल नहीं होती। यदि रामचन्द्रजी बंदरों को बंदर कहकर ही ख़्याल न करते और उन

से भेद-भाव रखते, तो रामचन्द्रजी को कितनी कठिनता उपस्थित होती। एक बलवान् शत्रु के साथ मुक़ाबला था, जिसकी असंख्य सेना थी, जिसकी धूम सुनकर ही तमाम भू-मंडल कलेजा थामकर रह जाता था। रामचन्द्रजी के साथ सिवा भाई लक्ष्मण के न सेना थी और न ख़ज़ाना था। यदि आदमियों की पलटन भरती करते, तो इतना धन कहाँ से आता? वह तो राज्य-भ्रष्ट और तिस पर वनवासी थे, सेना को तनख़्वाह देनी पड़ती, कमसरियेट का बन्दोबस्त करना पड़ता; तीर, कमान, गोला-बारूद का सामान करना पड़ता। पर प्यारों! इनकी ज़रूरत तो उनके लिए है, जिनकी दृष्टि में भेद है। रामचन्द्रजी को तो सच्ची ब्रह्म-विद्या की प्राप्ति थी, भेद-भाव का सर्वथा अभाव था। उनकी नज़र में मनुष्य और बंदरों में भेद नहीं था। और यह क़ुदरत का क़ानून है कि जिसमें भेद-भाव (द्वैत भावना) का अभाव हो जाता है, उसके साथ सारी क़ुदरत भी भेद नहीं रखती, अर्थात् उसको अपना मित्र समझती है, और हर प्रकार उसकी सहायता करती है। सुतरां बंदर श्रीरामचन्द्र के मित्र हो गए, और बंदरों की एक बड़ी भारी सेना रामचंद्र-जी के लिए मरने-मारने को खड़ी हो गई। उनको न तनख़्वाह की ज़रूरत, न कपड़ों की ज़रूरत, न अन्न की ज़रूरत, न तीर-कमान की ज़रूरत हुई। ऐसी सेना तय्यार करके चढ़ाई कर दी गई, और फ़तेह पाई। ओह! ब्रह्म-विद्या में कैसा जादू का असर है कि पशुओं और पत्थरों से भी वह काम लिया जा सकता है, जो असंभव प्रतीत होता है। अतः आप भी सच्ची ब्रह्म-विद्या के प्राप्त करने का प्रयत्न कीजिये, क्योंकि अपनी पूरी-पूरी उन्नति के लिए हरएक चीज़ की सहायता की आवश्यकता है। और तब तक आप हरएक चीज़ से

सहायता नहीं ले सकते, जब तक कि उनसे भेद रखते हों या प्रेम नहीं करते, अर्थात् उनको अपने ही बराबर नहीं समझते। और तब तक आपका भेद दूर नहीं होगा, उनसे प्रेम नहीं होगा, और उन सबको अपने बराबर समझना संभव नहीं होगा, जब तक कि ब्रह्म-विद्या का प्रकाश आपके हृदय में नहीं होता। सच्ची ब्रह्म-विद्या के प्रकाश होने से ही आप हरएक चीज़ से प्रेम करने लगोगे, और उनमें जो गुण हैं, जिनके विना आपकी उन्नति का मार्ग अगम्य हो रहा है, उनको लेने में संकोच नहीं करोगे, तब आपकी उन्नति बेरोक-टोक होती चली जायगी, आप जो कुछ अपना खो चुके हैं, वह सब कुछ मिल जायगा, और आपकी उस शोचनीय दशा का पलड़ा एकदम पलट जायगा।

हम लोग गुण नहीं देखते, और गुण सबसे लेना चाहिये, चाहे आर्य्यसमाजी हो, हिन्दू हो, मुसलमान हो, ब्राह्म हो, या कोई और हो, क्योंकि गुणों की कमी सबमें है। क्या कोई आर्य्यसमाजी, हिन्दू, मुसलमान, ब्राह्म या कोई और मजहब-वाला यह कह सकता है कि हम सर्वगुण-सम्पन्न हैं? हमको किसी से किसी गुण के सीखने की आवश्यकता नहीं है? यदि कोई ऐसा कहता है, तो वह झूठ कहता है, क्योंकि सब गुण-सम्पन्न जाति कभी भी ऐसी बुरी दशा में नहीं रह सकती है। और आपमें से प्रत्येक व्यक्ति की जैसी बुरी दशा है, वह छिपी हुई नहीं है। सुतरां आपमें एक नहीं, वरन् कितने ही ऐसे बुरे दोष भरे हुए हैं कि जिनसे आपकी उन्नति रुकी हुई है।

हाँ, बिलकुल गुण-रहित जाति भी कोई नहीं होगी, कम से कम कोई न कोई गुण प्रत्येक जाति में ऐसा है कि जो दूसरी जाति को सर्वथा अनुकरणीय है। सो परस्पर एक दूसरे के गुणों को ग्रहण करने में त्रुटि नहीं करनी चाहिये।

उन्नति का सबसे उत्तम तरीक़ा यही है कि गुण सबसे ले ले। अफ़सोस! हिन्दुस्तानी लोग इस तरीक़े को नहीं बरतते, निरर्थक झगड़े-फ़साद और वाद-विवाद में अपना समय खोते हैं। आज शास्त्रार्थ हुआ, आज आर्य्यों की ख़ूब पोल खोली गई, आज मुबाहिसा हुआ, आज हिन्दू-धर्म का पक्का खण्डन हुआ, कल मुसलमानों के ख़ूब धुर्रे उड़ाये गये, आज जैनियों का परदा फ़ाश हुआ। वाह भाई, वाह! कैसी उम्दा दलीलों से अमुक साहब ने आज अमुक मज़हब का खण्डन किया? प्यारो! इन व्यर्थ के वाद-विवादों से क्या फ़ायदा हुआ और होगा, सिवाय इसके कि आपस में रंज पैदा हो, दुश्मनी बढ़े, और लोगों के दिलों पर बुरा असर पैदा हो। ओह! कैसे रंज की बात है कि आप लोग मज़हब को खण्डन करने की नियत से तो उस मज़हब की किताबें ख़ूब ध्यान देकर पढ़ें, ताकि उन किताबों में जो कुछ दोष हों, वे आपको मालूम हो जायँ, और आप उन दोषों को सरे-आम सर्व-साधारण में कहकर उस मज़हबवालों का मज़ाक़ उड़ाने का यत्न करें, पर आप कभी दूसरे मज़हब की किताबें इस नियत से नहीं पढ़ते कि उनमें से जो अच्छी बातें हैं, उनको सीखें और अपनी उन्नति करें। आप लोग जोंक की तरह हो गये हैं, जो स्तनों पर लगा देने पर भी दूध को छोड़ देती है, या कभी नहीं पीती, और हमेशा ख़ून को पिया करती है। यह मज़हबी झगड़ा हिन्दुस्तान में शीघ्रतम बन्द होना चाहिये। यह आपकी उन्नति का बड़ा जबरदस्त दुश्मन है, क्योंकि इन झगड़ों से आपस में रंज पैदा होता है, रंज के होने से दुश्मनी पैदा होती है। जब दुश्मनी हुई, तो आपस में प्रेम कहाँ! और जब प्रेम नहीं, तो प्यारो! आपस में एक दूसरे की सहायता नहीं होती। विना एक दूसरे की सहायता के किसी

की उन्नति न हुई, न होगी। यदि अपनी उन्नति चाहते हो, तो पहले अपना एक दिल करो, अथवा अपना वह दिल बनाओ, जो उन्नति पानेवालों ने बनाया है। यदि लैला पाने की इच्छा रखते हो, तो मजनूँ बनो, अर्थात् मजनूँ का-सा दिल बनाओ। ख़ाली ज़बान से यह कह देना कि मैं मजनूँ हूँ, मुझे लैला मिल जाय, काफ़ी नहीं है। आपको सबूत देना होगा कि आपमें और मजनूँ में कोई फ़र्क़ नहीं है। तात्पर्य यह कि मजनूँ ने लैला के लिये जितनी तकलीफ़ें उठाईं, वे सब तकलीफ़ें उसी के माफ़िक़ आपको उठानी होंगी। लैला का लोभ देकर चाहे आपका शरीर चीरने के लिये कहा जाय, तो आपको ख़ुशी से शरीर चिराना होगा; यदि आपको नदी में डूब मरने को कहा जाय, तो आपको नदी में डूब मरना होगा; यदि आग में जल मरने के लिये कहा जाय, तो आपको आग में जल मरना होगा; आपको लैला के लिये जंगल, पहाड़, रेगिस्तान में घूमने के लिये कहा जाय, या न कहा जाय, घूमना होगा; आपको ऊँच-नीच का विचार न करना होगा; ग़र्ज़ यह है कि जब तक आपको लैला नहीं मिलती, तब तक हज़ारों तकलीफ़ें उठानी पड़ेंगी, और उन तकलीफ़ों पर ध्यान न देना होगा। इसी तरह पर प्यारो! आपको अपने मुल्क की उन्नति के लिये क्या नहीं करना होगा, तकलीफ़ें उठानी पड़ेंगी; दुःख सहना होगा; जंगल-जंगल, पहाड़-पहाड़ में भटकना होगा; ऊँच-नीच का विचार नहीं करना होगा; और अपने शरीर को होम कर देना होगा। जब ऐसा करने के लायक़ आप होंगे, अथवा तैयार होंगे, तब स्वतः ही आपकी उन्नति होगी। आपके मुल्क की उन्नति होगी और सारे संसार की उन्नति होगी, क्योंकि ऐसा करना ही सच्ची ब्रह्म-विद्या है, और सच्ची ब्रह्म-विद्या ही से अपनी और संसार की उन्नति होती है।

जब अपनी जाति का ख्याल दृढ़ हो जाता है, तब किसी बात की कमी नहीं रहती है। यह कहने का मौक़ा नहीं रहता है कि हमारे पास रुपया नहीं है, हम कुछ नहीं कर सकते। जापानवालों ने बिना रुपये खर्च किये ही परदेशों में जाकर इल्म हासिल किया है, और अपने मुल्क की तरक़्क़ी की है। उन लोगों ने यह तरीक़ा अख्त्यार किया है। जब वे दूसरे मुल्कों की विद्या हासिल करने के लिये जाते हैं, तो अपने साथ धन इसलिये नहीं ले जाते कि अपना रुपया परदेश में नहीं जाना चाहिये, अपने मुल्क में ही रहना चाहिये। जब राम जापान से अमेरिका जाने के लिये जहाज़ में सवार हुआ, तो राम ने देखा कि ४० जापानी लड़के भी अमेरिका जाने के लिये जहाज़ में सवार हुए। उन लड़कों के पास न कुछ खर्च था और न जहाज़ का किराया। उन लड़कों में बहुत से तो अमीर घर के थे, और बहुत से ग़रीब घर के। पर खर्च किसी के पास नहीं था। धन्य जापानियो! तुम लोगों में कितना स्वदेशानुराग है? तुम लोगों में कैसी बुद्धि है? 'अपने देश का रुपया परदेश में न जाय', इस बात का तुमको कितना ख्याल रहता है, और इसलिये तुम कितनी तकलीफ़ें उठाते हो। खर्च न ले जाने की वजह से उन लोगों ने जहाज़ की नौकरी कर ली। कोई मशालची हुआ, कोई भिश्ती हुआ, कोई झाड़ू देनेवाला हुआ, कोई कोयला झोंकनेवाला हुआ, ग़र्ज़ सबके सब लड़के जहाज़ में नौकर हो गये, और इस तरह सब लोग जहाज़ के किराये से बच गये। अमेरिका पहुँचकर उन्होंने जहाज़ की नौकरी छोड़ दी, और ४० डालर देकर अमेरिका में रहने का पास ले लिया। अमेरिका में यह दस्तूर है कि ग़ैर मुल्कवाला जो वहाँ उनके देश में जाता है, उसको वह जहाज़ से तब उतरने देते हैं, जब कि उसके पास ४० डालर देख लेते हैं। वे

लड़के वहाँ इल्म सीखने गये थे, पर खर्च तो वे ले ही नहीं गये थे, कॉलेजों में वे किस तरह भरती होते ? सो उन्होंने वहाँ मजदूरी करनी शुरू की। किसी ने हल लगाना शुरू किया, किसी ने और मजदूरी अख़्त्यार की। वहाँ मजदूरों को छः रुपया तक प्रति दिन मजदूरी के मिलते हैं। अतः वे लड़के मजदूरी करके खूब रुपया पैदा करने लगे। अमेरिका में मजदूरों के पढ़ने के लिये रात के स्कूल (night schools) हैं, क्योंकि जो आदमी ग़रीब हैं और दिन के स्कूल में नहीं पढ़ सकते हैं, उन्हीं के उपकार के लिये रात के स्कूल का प्रबन्ध है, ताकि अपने गुज़ारे के लिये दिन में मजदूरी करें, और रात में पढ़ें। बहादुर जापानी लड़के भी उन्हीं रात के स्कूलों में भरती हुए। सो वे रात को इल्म हासिल करने लगे, और दिन में रुपया कमाने लगे। जब उनके पास कुछ रुपया जमा हो गया, और अँगरेजी भी वे बोलने-समझने लगे, तब कॉलेज में भरती हो गये। जापानी लोग जिस मुल्क में जाते हैं, उस मुल्क की भाषा वे उसी मुल्क में जाकर पढ़ते हैं। सो वे मुख़्तलिफ़ क़िस्म के इल्म पढ़ने लगे। पश्चात् पास होकर अपने देश को आए, और इल्म के साथ-साथ रुपया भी पैदा कर लाये। यह देखो, जापानियों की बुद्धि, स्वदेशानुराग और कष्ट-सहिष्णुता कैसी अनुपम है ! स्वदेशानुराग कि अपने देश का धन अपने ही देश में रहे, यहाँ तक कि अपने फ़ायदे के लिये भी यदि दूसरे मुल्क में जाना पड़े, तो भी जहाज़, रेल के किराये में भी अपना रुपया परदेश में न जाय, और कॉलेजों की पढ़ाई का ख़र्च तो अलग रहा, वरन् अपने देश के पैसे से एक किताब तक भी न ख़रीदी जाय ; खाने-पीने में अपना पैसा ख़र्च करना तो अलग रहा, उलटा वहीं से पैदा करके अपने मुल्क को रुपया एकत्र करके लाया जाय ; और अपने मुल्क की

भलाई के लिये सबसे बड़ी बात यह की जाय कि दूसरे मुल्कों से वे 'उत्तम विद्या' सीख कर आयें कि जिसकी अपने मुल्क में निहायत ज़रूरत है, और जिस पर अपने देश की उन्नति निर्भर है। बुद्धि से वे लोग कैसे जल्दी उस तरीक़े को सोच लेते हैं, जिससे उनकी उन्नति हो। किराये से बचने के लिये ही उन्होंने कैसा अनोखा कौशल किया था कि सफ़र भी हो गया, किराया भी न पड़ा, उलटा कुछ रुपया हाथ आ गया! हमको संदेह है कि दुनिया के किसी और मुल्क के आदमियों की ऐसी बुद्धि हो। भला दुनिया में ऐसा कौन मुल्क है, जिसने पचास वर्ष के अंदर ऐसी आशातीत उन्नति की हो, जैसे जापान ने की है? यही उनकी विचित्र बुद्धि का अनुपम दृष्टांत है। यह उनके असली वेदान्ती होने का सुखद, सुधामय, मधुर फल है। ऐसी कष्ट-सहिष्णुता कि अमीरों के लड़के भी झाड़ू वग़ैरा नीच और खेती वग़ैरा मुश्किल काम करने में न शर्मिन्दा हों, और न तकलीफ़ समझें, किन्तु दिन में खेती वग़ैरा की कठिन मेहनत करें और रात में करें गंभीर पढ़ाई, अर्थात् शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के परिश्रम करें, और कभी न थकें! प्यारो! जापान में ऐसा देशानुराग है, ऐसी विचित्र बुद्धि है, ऐसी कष्ट-सहिष्णुता है, तब जापान जैसी और जितनी उन्नति चाहे, वह वैसी और उतनी ही तरक़्क़ी कर सकता है। उधर जब जापान के लोग अपने मुल्क की उन्नति के लिये ऐसे-ऐसे यत्न और विचारों से काम ले रहे हैं, इधर तब हिन्दुस्तान के लोगों को अजब कैफ़ियत है। पहले तो दूसरे मुल्कों को जाना ही हिन्दुस्तान की नज़र में पाप है, तिस पर भी यदि किसी ने हिम्मत की और उसको पाप न भी समझा, तो उसको आला दर्जे का सामान चाहिए। वह

जापानियों की तरह मजदूर होकर कभी दूसरे मुल्क नहीं जायगा। उसके लिये जहाज़ में अव्वल नम्बर का कमरा और सामान चाहिये। वह जापानियों की तरह दिन में खेती करके और रात को पढ़कर इल्म हासिल नहीं करेगा। किन्तु उसके लिये फ़ीस, खाने-पीने के ख़र्च के लिये कम से कम १५ हज़ार रुपया चाहिये। वह जापानियों की तरह उस मुल्क से इल्म के साथ-साथ रुपया पैदा करके तो नहीं लावेगा, किन्तु पहले तो इल्म भी अधूरा लावेगा, अर्थात् उसमें पास नहीं होगा, और १५ हज़ार रुपये के अलावा और कई हज़ार क़र्ज़ करके भी लावेगा। वह जापानियों की तरह उस मुल्क से वह इल्म पढ़कर न लावेगा, जिसकी अपने मुल्क में निहायत ज़रूरत है, जिससे अपने मुल्क के ग़रीब व अमीर को फ़ायदा पहुँचे, किन्तु वह ऐसा इल्म सीख कर आवेगा, जिसकी अपने मुल्क के लिये कोई ज़रूरत नहीं, और जिससे अपने मुल्क के अमीर और ग़रीब सब तबाह हों। अर्थात् वहाँ से बैरिस्टर बनकर आवेगा और ग़रीब-अमीरों को लड़ा कर उनका रुपया ख़ूब उड़ावेगा। उन रुपयों को यदि अपने ही घर में जमा रखता, तो कुछ न कुछ अच्छा ही था; पर वह उन रुपयों को अपने साहिबाना ठाट रखने में ख़र्च करेगा। और साहिबाना ठाट के लिये बिलकुल विलायती चीज़ की ज़रूरत है, कमरा सजाने के लिये विलायती सामान, पहरने के लिये विलायती कपड़ा, खाने के लिये विलायती खाना, बोलने के लिए विलायती भाषा, कहाँ तक कहें, जूता विलायती, कुर्ता विलायती, चाल-चलन विलायती, सो सब रुपया जो वह कमाता है, वह विलायती हो जाता है। इस तरह पर जो हिन्दुस्तानी विलायत गया भी, तो उससे विलायत का ही फ़ायदा होता है, हिन्दुस्तान का तो नुक़सान ही है।

इसके अतिरिक्त वह विलायत से लौटकर जापानवालों की तरह कभी मुल्कवालों को प्यार नहीं करेगा, बल्कि अपने मुल्कवालों को असभ्य, बेवक़ूफ़ और जंगली ख़्याल करेगा और उनके साथ उठने-बैठने व बोलने-चालने में भी शर्म मानेगा; तो कहिये, हिन्दुस्तान की किस तरह तरक़्क़ी हो ?

हिन्दुस्तान की तरक़्क़ी के लिये इस बात की ज़रूरत नहीं है कि हिन्दुस्तान के लोग विलायत में जाकर बैरिस्टरी पास करके आवें, किन्तु इस बात की ज़रूरत है कि वे लोग कृषि-विद्या सीख कर आवें, और हो सके, तो और हुनर भी सीख कर आवें, जिससे अपने मुल्क को फ़ायदा हो, अपने मुल्क का पैसा अपने मुल्क ही में रहे, और दूसरे मुल्क का भी रुपया अपने मुल्क में आवे। दूसरे मुल्क का रुपया इस मुल्क में तभी अधिक आवेगा, जब कृषि-विद्या की तरक़्क़ी होगी। और-और हुनरों में हिन्दुस्तान दूसरे मुल्क की बराबरी नहीं कर सकता, क्योंकि दूसरे मुल्कवाले उन बातों में बहुत बढ़ गये हैं, कृषि-विद्या से हिन्दुस्तान की आमदनी का सिलसिला बढ़ सकता है, सो हिन्दुस्तान के लिये कृषि-विद्या की ओर विशेष ध्यान देने की अत्यंत आवश्यकता है। इस विद्या की तरक़्क़ी के लिये अमेरिका जाना होगा। वहाँ सब विद्या पढ़ाई जाती हैं। इँगलैंड में कृषि-विद्या की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता, क्योंकि वहाँ और-और हुनरों की अधिकता है, और आबादी बढ़ जाने के सबब से खेती भी कम है। हिन्दुस्तान में कृषिविद्या की पाठशाला पहले तो है ही नहीं, अगर कहीं है भी, तो ठीक नहीं है। यहाँ पढ़ाई का कुछ और ही ढंग है, किताबों में जो कुछ पढ़ाया जाता है, वह अमल में नहीं लाया जाता। यहाँ पढ़ाना कुछ और, अमल में कुछ और। वहाँ स्कूल में जो कुछ पढ़ाया जाता है, वह अच्छी तरह अमल में भी लाना सिखाया जाता है।

अमेरिका में सब प्रकार की पढ़ाई का एक विचित्र ढंग है। चाहे किसी कला-कौशल की पाठशाला को देखिये, अमली कार्यवाही उनका मुख्य उद्देश्य होगा, और वीररस का सर्वदा समावेश रहेगा, यहाँ तक कि मज़हबी स्कूलों में भी वीरता भरी शिक्षा दी जाती है। राम का निमन्त्रण एक बार मज़हबी स्कूल में हुआ। जब राम वहाँ गया, तो पहले लड़कों ने 'हुर्रा-हुर्रा' के शब्दों से आदर किया। फिर राम का व्याख्यान आरंभ हुआ। जब व्याख्यान ख़तम हुआ, तो लड़कों ने परेड दिखाई, जो बिलकुल जंगी क़वायद के समान थी। राम को शंका हुई और प्रिंसिपल से दर्याफ़्त किया कि मज़हबी स्कूल में जंगी क़वायद का क्या काम है? उसने जवाब दिया कि मौत का सामना तो सबसे पहिले हमको ही करना पड़ता है। जब हम किसी मुल्क में उपदेश करने के लिये जाते हैं, तो हम लोगों पर ही सबसे पहले मौत का क़हर बरसता है। हम लोगों की जान ही पहले बरबाद होती है। यदि इनके दिलों में वीरता न भरी जाय, तो ये लोग किस तरह दूसरे मुल्क में धर्म्मोपदेश करने के लिये जा सकते हैं। इसलिये इनके दिलों से मौत का खटका निकाल दिया जाता है, जिससे असभ्य (जंगली) मुल्कों में जाने के लिये ये लोग संकोच (पशोपेश) न करें, उनको बहादुरी के साथ धर्म्मोपदेश करें, यदि मारे जायँ, तो परवाह न करें। सच्चे धर्म के प्रचार करने में जान चली जाय, परवा नहीं, परन्तु धर्म का प्रचार सर्वत्र करना चाहिये। प्रिंसिपल साहिब के इस उत्तर से हमको कैसा अच्छा सबक़ मिलता है कि "हमको धर्म-प्रचार करने के लिये अपनी जान का ख़्याल नहीं रखना चाहिये। और सर्वत्र धर्म का प्रचार करना चाहिये।" अफ़सोस! जब दूसरे

मुल्कवाले धर्म के प्रचार करने में जान की बाज़ी लगा रहे हैं, तब हिन्दुस्तानी अपने भाई को भी धर्मोपदेश करने से जी चुराते हैं, तो क्यों न धर्म का ह्रास व ह्रास हो, क्यों न धर्म की हानि हो, क्यों न धर्म की ग्लानि हो ?

इसलिये हिन्दुस्तान धर्म-भ्रष्ट होने से मान-भ्रष्ट भी हुआ है। कैसे रंज की बात है कि हिन्दुस्तान अपने उस सच्चे धर्म (वेदान्त) को भूल गया है, जो संसार की एकता को सिखाता है, जिस धर्म ने उसको उस ऊँचे आसन तक पहुँचा दिया था कि जहाँ तक पहुँचने की बात सुन कर इस ज़माने के पंडित दाँतों तले उँगली दबाते हैं। वह भी समय था, जब हिन्दुस्तान में धर्म का ऐसा प्रभाव था कि विना धर्म-विचार के हिन्दुस्तानी कोई काम ही नहीं करते थे। उनका खाना धर्म के लिये, सोना धर्म के लिये, पहरना धर्म के लिये, उठना-बैठना धर्म के लिये, ब्याह-शादी धर्म के लिये होती थीं, अर्थात् बिना धर्म के हिन्दुस्तानी कोई काम नहीं करते थे। जिस काम का धर्म से वास्ता नहीं, उस काम से हिन्दुस्तानियों को भी वास्ता नहीं होता था। वे लोग धर्म के लिये जंगल-जंगल फिरने, भूखे-प्यासे मरने, पहाड़ों-पहाड़ों में टकराने, गरमी-सर्दी को सहने और भारी-भारी कष्ट उठाने ही में आनन्द समझते थे। धर्म के सिवा वे स्वर्ग के सुख को नरक की सामग्री समझते थे। मछली के जीवन के साथ पानी का जैसा सम्बन्ध है, उनके जीवन के साथ धर्म का भी वैसा ही सम्बन्ध था, अर्थात् धर्म ही उनका जीवन और धर्म ही उनका आधार था, धर्म ही उनका उद्देश्य था! वे धर्म-वीर थे और भीरु थे। धर्म-वीर इसलिये कि वे धर्म के लिये अपने शरीर को भी कुछ नहीं समझते थे, और धर्म-भीरु इसलिये कि सर्वदा प्रत्येक काम के करने

में डरते रहते थे कि कहीं धर्म की हानि न हो। अपने शरीर के साथ वे जैसा बर्ताव करते थे, दूसरे के शरीर के साथ भी उनका वैसा ही बरताव होता था। वे अपने में और दूसरे में भेद नहीं समझते थे। उनकी नज़र में संसार के सभी प्राणी बराबर थे। सबको ही धर्मात्मा होना, सबको ही धर्मोपदेश देना, वे चाहते थे। सब की ही भलाई करना उनका नित्य कर्म था। पर अब ज़माना (समय) पलट गया है। हिन्दुस्तानियों का धर्म अब केवल किताबों में रह गया है। हिन्दुस्तानियों का धर्म अब सिर्फ़ विवाद में काम आता है, हिन्दुस्तानियों का धर्म अब सिर्फ बातूनी जमा-ख़र्च का रह गया।

हिन्दुस्तानी अब न धर्म-वीर रहे, न धर्म-भीरु, क्योंकि धर्म के लिये अपने शरीर की परवा न करना तो एक तरफ़ रहा, जो कोई उनके घर में आकर उनके धर्म की निन्दा करने लगे, तो भी वे कान नहीं हिलाते हैं; और यदि आप स्वयं बड़े-बड़े अनर्थ भी कर बैठें, तो उन्हें डर नहीं होता कि हम कैसे धर्म-हीन हो रहे हैं, हम धर्म पर कैसे लात मार रहे हैं? प्यारे हिन्दुस्तानियों! हिन्दुस्तानी अपने बेनज़ीर शास्त्रों की ओर ध्यान नहीं देते, विचार नहीं करते, मनन नहीं करते। ओह! आपको मालूम नहीं है कि आपके पूर्वजों ने आपके लिए कैसे अक्षय ख़ज़ाने का संग्रह रख छोड़ा है। ऐसे ख़ज़ाने के पास होने पर भी प्यारो! भूखे मत मरो, ठोकरें मत खाओ, इधर-उधर मत भटको। इस ख़ज़ाने का उचित व्यवहार करो, उचित रीति से खर्च करो, देखो और विचारो कि इस दौलत पर सारी दुनिया का हक़ है। आप केवल इस बात के एजेन्ट बनो कि इस ख़ज़ाने की बाबत सारी दुनिया को सूचित कर दो कि हमारे पास हम तुम सबके लिये ख़ज़ाना

सौंपा गया है; आओ, हम सब मिलकर उससे फ़ायदा उठावें, और आप भी उस दौलत से फ़ायदा उठाओ, और दुनिया को भी उठाने दो, किसी से भी उस ख़ज़ाने को मत छिपाओ, नहीं तो विश्वासघात के दोष में पकड़े जाओगे, और ख़ज़ाना भी आपके पास नहीं रहेगा, क्योंकि उस ख़ज़ाने की यही तासीर है कि जो उसको छिपा रखता है, उसके पास से वह निकल जाता है। केवल संदूक़ रह जाता है, माल चला जाता है। शरीर रह जाता है, प्राण चला जाता है। सो आप देख ही रहे हो कि आपके पास सिर्फ़ नक़ल बाक़ी रह गई है और असल का पता नहीं है। आपके धर्म की असलियत जापान, अमेरिका आदि मुल्कों को चली गई है। आपके पास सिर्फ़ नक़ल बाक़ी है। आपके धर्म का वृक्ष खोखला हो गया है। अब भी अगर बहुत जल्दी उसका उपचार नहीं करोगे, उपाय नहीं करोगे, विचार नहीं करोगे, तो जो संदूक़ आपके पास है, वह टूट-फूट जायगा, शरीर भी सड़-गल जायगा, वृक्ष भी गिर जायगा, नक़ल भी उड़ जायगी। और आप मधु-मक्खी की तरह हाथ मलते और सिर पटकते रह जाओगे।

इस ख़ज़ाने को बहुत दिनों छिपाकर आप सैकड़ों तकलीफ़ें सह चुके हो, हज़ारों नुक़्सान उठा चुके हो, अपनी इज़्ज़त और आबरू खो चुके हो, अपनी स्वतंत्रता और राजपाट खो चुके हो, अर्थात् अपना सब कुछ खो चुके हो, तो प्यारो! अब आप और क्या खोना चाहते हो, जो फिर भी इसके छिपाने की कोशिश करते हो? क्या आप यह चाहते हो कि आपका नाम-निशान तक इस दुनिया में न रहे? नाम के लिये आपका नाम किसी क़दर अभी तक है, सो उसका भी मलिया-मेट होना चाहता है, क्योंकि आपने इस

धर्म (ख़ज़ाने) को इस क़दर छिपा रक्खा है कि आप भी उसको नहीं देखना चाहते कि उसमें कैसे-कैसे अमूल्य रत्न भरे पड़े हैं, जिससे आपको अपनी असलियत मालूम होती और आपको अभिमान होता कि हमारा ख़ज़ाना दुनिया के और ख़ज़ानों से बढ़िया है। पर ऐसा न करके आप दूसरों के काँच पर लुभाये चले जाते हो। और अगर आपकी यही हरकत रही, तो आप सब के सब काँच पर लुभाये चले जाओगे, और आपका नामोनिशान दुनिया में नहीं रहेगा। यह भी याद रक्खो कि यह अमूल्य ख़ज़ाना अब छिपाने से भी छिपता नहीं है। लोगों को उसका पता लग चुका है और अमूल्य जवाहिरात को वे लोग निकालने लग गये हैं। आपके ख़ज़ाने के अमूल्य रत्नों में से सत्य, शौच, संयम, विद्या, बुद्धि, धृति, क्षमा नाम के रत्न और सभी रत्नों से बढ़ा हुआ समदर्शिता रूप महारत्न, जिसका दूसरा नाम ब्रह्मविद्या या वेदान्त है और जिसका यहाँ नाम नहीं दिखाई देता है, वे सब के सब रत्न अमेरिका, जापान आदि दूसरे मुल्कों में चले गये हैं, ऐसा ही मालूम होता है। देखो अमेरिका, जापान आदि मुल्कों में जो अद्भुत प्रकाश का सौन्दर्य दिखलाई देता है, ऐसा प्रतीत होता है कि यह उन्हीं महारत्नों की विमला ज्योति वा छटा का प्राकृतिक गुण है, उन्हीं का प्रभाव है और उन्हीं का महत्त्व है। जापान, अमेरिका को देखकर कृष्ण के ज़माने का स्मरण होता है। उस ज़माने में हिन्दुस्तान में जिस दर्जे का धर्म था, उन मुल्कों में इस समय उस दर्जे का धर्म पाया जाता है, तब हिन्दुस्तान की उस ज़माने में जो हालत थी, वह हालत जापान, अमेरिका की इस वक्त हो, तो आश्चर्य ही क्या है।

एक बार अमेरिका में राम को एक धनवान् स्त्री के यहाँ से

न्योता आया, जो विपुल धन की अधिकारिणी थी, जिसने ४५ लाख रुपया अपने मुल्क की उन्नति के लिये ही दान दिये थे। जब राम वहाँ गया, तो वह धनी स्त्री जूता झाड़ने के लिये तैयार थी। राम ने आश्चर्य से पूछा कि आप इतने नौकरों के मौजूद होने पर भी ऐसा काम स्वयं क्यों करना चाहती हो? उसने उत्तर दिया कि इस काम के करने में लज्जा ही क्या है, यह शारीरिक काम करने में हम अपनी इज्ज़त समझते हैं, और उसने अपने ही हाथों से यह काम किया। क्या कोई हिन्दुस्तानी रईस या मामूली आदमी भी ऐसा काम कर सकता था? कभी नहीं। हिन्दुस्तानी आदमी अगर यह सम्भव हो, तो अपनी आँखों से भी देखा नहीं चाहता है। पर कृष्ण के ज़माने में ऐसा अतिथि-सत्कार बड़े आदमी स्वयं करते थे। कृष्ण तथा कृष्ण की पटरानियों ने स्वयं ऐसा अतिथि-सत्कार सुदामा आदि ब्राह्मणों और अतिथियों का किया। युधिष्ठिर के यज्ञ में अर्जुन और कृष्ण ने जूठी पत्तल उठाने और पैर धोने का काम अपने ज़िम्मे लिया था, पर अब अमेरिका में ये बातें पाई जाती हैं, हिन्दुस्तान में नहीं।

कृष्ण के ही ज़माने में हिन्दुस्तान में ब्रह्मचर्य्य की जो अवस्था थी, वह अमेरिका में अब पाई जाती है। वहाँ २० वर्ष तक न कोई विवाह करता है और न किसी को विवाह का ख्याल ही होता है, यहाँ तक कि २० वर्ष तक के लड़के और लड़कियाँ एक ही पाठशाला में पढ़ते हैं, और भाई-बहिन की सी प्रीति रखते हैं। उनके विषय में चाहे कोई कुछ कहे, पर इस बात का हमको दृढ़ विश्वास है कि उनके दिलों में कभी नापाक (अपवित्र) ख्याल पैदा नहीं होता। यह कैसे ग़ज़ब का ब्रह्मचर्य्य है? वे स्त्री और पुरुष को बराबर की शिक्षा देते हैं, उनकी पढ़ाई में वे कुछ भेद नहीं रखते हैं। मर्दों

के बल को बढ़ाने की जैसी आवश्यकता है, स्त्रियों के बल को बढ़ाने की भी वैसी ही आवश्यकता समझते हैं, और है भी। वे लोग स्त्रियों के बल को कम नहीं करते, हम लोग उन्हें बल-हीन कर देते हैं। यही कारण है कि हिन्दुस्तान की स्त्रियाँ बल-हीन होती हैं, निर्बल संतान जनती हैं, और घर के कामों को भी यथारीति सम्पादन नहीं कर सकती हैं। अमेरिका की स्त्रियाँ वीर होती हैं, वीर संतान जनती हैं, और घर के कामों में बड़ी प्रवीण होती हैं। वहाँ की स्त्रियों की वीर कहानी देख कर आश्चर्य्य होता है। जवान स्त्रियों की बात जुदी है, वहाँ लड़कियाँ भी सितम कर जाती हैं। एक बार एक लड़की ने, जिसकी आयु अठारह वर्ष की थी, एक झील को, जिसका वर्ग (दायरा) तीन मील था, तैरने की इच्छा ज़ाहिर की। इसके लिये दिन नियत कर दिया गया, नोटिस बाँटे गये। लड़की की कठिन प्रतिज्ञा सुन कर लोगों को आश्चर्य होता था। मुक़र्रर दिन पर बड़ी भारी भीड़ इकट्ठी हुई। लड़की तैरने की तैयारी करने लगी। दो किश्तियों को उसके दोनों तरफ़ तय्यार रहने की इजाज़त हुई, ताकि लड़की थक जाय, तो किश्ती में बैठा ली जाय और डूबने न पाए। लड़की ने तैरना शुरू किया, किश्ती भी साथ-साथ चलती गई, पर तअज्जुब है कि लड़की उस बड़ी झील को साफ़ तैर गई और थकी नहीं! यहाँ मर्दों से भी यह काम होना संभव नहीं है, ऐसा कठिन काम सिवाय ब्रह्मचर्य के हो नहीं सकता। कृष्ण के ज़माने में स्त्रियाँ ब्रह्मचर्य से रहती थीं, और बड़े-बड़े कठिन काम संपादन करती थीं। सत्यभामा कृष्ण के साथ स्वयं लड़ाई में गई थीं। उस ज़माने में स्त्रियों को ख़ूब शिक्षा दी जाती थी। रुक्मिणी, सत्यभामा आदि ख़ूब लिखी-पढ़ी थीं। द्रौपदी ऐसी

पंडिता थीं कि उसने सभा में जो प्रश्न किये थे, उनका उत्तर देना भीष्मपितामह के लिए भी कठिन हो गया था। अब हिन्दुस्तान में स्त्री-शिक्षा बंद कर दी गई, जिसका फल भी खूब मिल रहा है। अमेरिका आदि मुल्कों में स्त्री-शिक्षा का खूब प्रचार है। एक समय राम अमेरिका के जंगलों में रहता था, एक अमेरिकन लड़की अपने पिता के साथ उपदेश सुनने आई। उपदेश पूरा होने के पश्चात् उस लड़की ने जो कुछ सुना था, वह कविता में लिख डाला। इन सब बातों पर विचार करने से मालूम होता है कि स्त्री और पुरुषों की शिक्षा में पहिले भेद न था, और इसीलिए उनकी दिमाग़ी ताक़त में फ़र्क़ भी न होता था। तब हम कोई कारण नहीं समझते कि स्त्रियों की शिक्षा क्यों बन्द हुई, और उनकी ताक़त क्यों रोक दी गई है। मुल्क की उन्नति के लिए स्त्री-शिक्षा की अत्यंत आवश्यकता है, अर्थात् विना स्त्री-शिक्षा के मुल्कों की उन्नति हो ही नहीं सकती। लड़कपन में बालकों को जो उपदेश दिया जाता है, उसका असर बहुत जल्द होता है, और कभी ख़ाली नहीं जाता है, और बालकों को माता ही के साथ रहने का अवसर मिलता है। सो लड़कपन में बालकों को शिक्षित माता की आवश्यकता होती है। पर यदि स्त्री पढ़ाई ही नहीं जायगी, तो शिक्षित माताएँ कहाँ से होंगी; और जब शिक्षित माताएँ ही नहीं, तो बालकों को सदुपदेश ही कहाँ से दे सकती हैं। और जब बालक बाल्यावस्था ही में सदुपदेश द्वारा सुयोग्य न बना दिये गये, तो मुल्क की कैसे उन्नति हो सकती है। अतः प्यारो! स्त्री-शिक्षा को फैलाओ, आपके पूर्वपुरुष स्त्री-शिक्षा के पक्षपाती थे, आप क्यों विपक्षी बन कर अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारते हो? लड़कों को बाल्यावस्था में यह ज़रूरी है कि उनके नस-नाड़ी में देशोन्नति का ख़्याल

धँसा दिया जाय, ताकि बड़े होने पर वह ख़्याल दृढ़ हो जायँ, और देशोन्नति करना ही उनका मुख्य कर्तव्य हो जाय। तब आपके देश में कोई बाधा उपस्थित नहीं होगी। आप बराबर उन्नति करते जाओगे।

उन्नति के मार्ग में सफलता प्राप्त करने के लिये स्त्री-शिक्षा जैसी परम आवश्यक है, वैसे ही सत्य व्यापार है। विना व्यापार की तरक़्क़ी के देश की तरक़्क़ी नहीं हो सकती। चाहे जिस उन्नत मुल्क की ओर दृष्टि डालो, व्यापार ही उसका मूल-कारण दिखलाई देगा। हिन्दुस्तान में व्यापार बड़ी बुरी दशा में है। हिन्दुस्तानी व्यापार करना ही नहीं जानते। उद्योग और पुरुषार्थ को काम में न लाकर क्षुद्र ब्याज के लोभ से हिन्दुस्तानी अपनी पूँजी लगा देते हैं, और आप सुस्त, आलस्य-ग्रस्त होकर चारपाई पर पड़े-पड़े मक्खी हाँका करते हैं। दूसरे देशवाले अपने उद्योग, पुरुषार्थ और सत्य व्यापार से ग़रीब से धनी और धनी से कुबेर हो रहे हैं। और हिन्दुस्तानी इसके ठीक विपरीत। दूसरे मुल्कवालों के व्यापार के फैलाव को देखकर मन को आश्चर्य होता है। शिकागो में मार्शल फ़ील्ड की एक दुकान है। यह २० मंज़िल ऊँची और एक मील लंबी-चौड़ी है। यहाँ नित्य करोड़ों रुपयों का सौदा होता है। इतनी भारी और आला दर्जे की दुकान होने से इतना तअज्जुब नहीं होता, जितना कि ग्राहकों के साथ इनका सद्व्यवहार देखकर होता है। लाखों रुपयों का माल ख़रीदनेवाले से और एक पैसे की दियासलाई ख़रीदनेवाले से एकसाँ बरताव करते हैं। चाहे कोई कितने ही का ख़रीदार हो, जब वह दुकान के फाटक पर जायगा, तो शीघ्र ही एक दरबान कुछ आगे बढ़कर उसकी अगवानी करेगा, और बड़ी नम्रता से उससे

विनय करेगा कि क्या हुक्म है। जब वह कहेगा कि मुझे फ़लाँ चीज़ दरकार है, या मैं अमुक वस्तु केवल देखना चाहता हूँ, तो वह दरबान उसको उस कमरे में, जहाँ उसके लायक़ सौदा है, या जहाँ-जहाँ वह देखना चाहता है, ले जायगा; पश्चात् फाटक से कुछ दूर तक उसको पहुँचा कर अदब से सलाम करके वापस होगा। यह बराबरी का सलूक, यह सचाई, यह प्रेम ही व्यापार की उन्नति के मुख्य अंश हैं। वे इनका पूर्ण व्यवहार करते हैं, और इसीलिये ही वे व्यापार में इतना बढ़-चढ़े हैं कि उनकी बराबरी करनी मुश्किल जान पड़ती है। यहाँ हिन्दुस्तानियों की अजब कैफ़ियत है। यहाँ ग्राहकों के साथ एकसाँ बरताव नहीं होता। बड़ी दुकानों से थोड़ा सौदा ख़रीदने का किसी को हौसला नहीं होता। इसका कारण यह है कि बड़ी दुकानवाले थोड़ा सौदा ख़रीदनेवाले के साथ अच्छा बरताब नहीं करते। छोटी-छोटी दुकानवाले अक्सर झूठ बोला करते हैं। इन लोगों का यह ख़याल है कि बिना झूठ के व्यापार चल ही नहीं सकता। एक पैसे का सौदा ख़रीदने में घंटों मग़ज़ मारना पड़ता है। मुफ़्त में तक़रार बढ़ती और समय नष्ट होता है। यदि सचाई के साथ व्यवहार किया जाय, तो क्यों न व्यापार में तरक़्क़ी हो?

हिन्दुस्तान में व्यापार की तरक़्क़ी क्यों नहीं होती? इसका एक कारण यह है कि हिन्दुस्तानी लोग, जो लिख-पढ़ सकते हैं, केवल नौकरी किया करते हैं, व्यापार करना वे अपनी बेइज़्ज़ती समझते हैं, या उधर ध्यान ही नहीं देते। चाहे दुकानदारों की ही वे नौकरी करें, पर दुकानदारी कभी नहीं करेंगे। यह क्या ही मज़े की बात है कि जिस पेशे को स्वयं नहीं करना चाहते, उस पेशेवाले की नौकरी तो

बे कर लेंगे, पर इज्ज़त का पेशा न करेंगे। हिन्दुस्तानियों को व्यापार की ओर ध्यान देने की अत्यन्त आवश्यकता है। व्यापार-नीति का रहस्य जानने के लिये सिर-तोड़ परिश्रम तथा अनुभव करने की निहायत ज़रूरत है कि किस प्रकार कौन-से व्यापार से किस देश में कितना लाभ होगा, हमको ग्राहकों के साथ किस प्रकार बरताव करना चाहिये, इन बातों की ओर पूरा-पूरा ध्यान देना चाहिये, इस बात पर दृढ़ विश्वास करना चाहिये कि सचाई के साथ व्यापार करने से जो लाभ होता है, वह कदापि झूठ व्यवहार से नहीं होता। झूठे व्यवहार से एक बार रक़म आनी संभव है, पर पश्चात् वह चलता नहीं। काठ की हाँडी दूसरी बार आग पर नहीं रक्खी जाती, एक बार चाहे उसमें बना भी लो। बरसाती नदी जैसे किनारों को तोड़-फोड़ कीचड़ तथा लकड़ी बहा कर, सनसनाती हुई धूम-धाम के साथ थोड़े दिनों तक अपना प्रवाह रखती है, और फिर उसमें पानी पीने को भी नहीं रहता, इसी प्रकार झूठा व्यवहार थोड़े दिनों तक दुनिया को ठग कर लोगों की नज़र में अपना वैभव दिखाता है, पश्चात् वह स्वयं नष्ट हो जाता है, और साथ ही इज्ज़त और आबरू को भी अपने में लय कर देता है। पर सत्य व्यापार करने से धन की प्राप्ति होती है, प्रतिष्ठा बढ़ती है, धर्म होता है और मुक्ति मिलती है। यह लोक और परलोक दोनों बनते हैं। महात्मा तुलाधार वैश्य का इतिहास किसको मालूम नहीं? सत्य व्यापार करते-करते यह इस दर्जे के धर्मात्मा और ज्ञानी हो गये थे कि बड़े-बड़े तपस्वियों को कितने ही वर्ष तपस्या करने पर भी वह ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ था। एक तपस्वी एक दफ़े महात्मा तुलाधार की धर्म व ज्ञान-कीर्ति सुनकर उनके सत्संग की इच्छा से

उनके पास आया। ज्यों ही उस महात्मा का तुलाधार से मिलना हुआ कि तुलाधार ने उनके आने का कारण ज्यों-का-त्यों कह सुनाया। तपस्वी को बड़ा आश्चर्य्य हुआ कि मुझे जो ज्ञान कितने ही वर्ष तपस्या करने पर भी प्राप्त नहीं हुआ, इस नीच-वृत्ति से इसे कैसे प्राप्त हुआ। दर्याफ़्त करने पर महात्मा तुलाधार ने कहा—"आपको आश्चर्य्य होगा कि इस पेशे के करनेवाले को ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ? पर इसमें आश्चर्य्य की कोई बात नहीं। मैं हमेशा सत्य का व्यवहार करता हूँ। अपने ग्राहकों को ठगने की कभी इच्छा नहीं रहती। मामूली नफ़ा लेकर अपने ग्राहकों को सौदा देता हूँ। मैं कभी कम या ज्यादा किसी को नहीं देता, और न किसी से लेता हूँ। सबके साथ एकसाँ बरताव करता हूँ, सबके साथ सच्चा व्यवहार करता हूँ। सत्य ही सब धर्मों में श्रेष्ठ है, और उसी का मैं सेवन करता हूँ। छल-कपट कभी नहीं करता। यही कारण है कि मुझको यह ज्ञान प्राप्त हुआ है, जिससे आप-जैसे महात्माओं का मुझे घर बैठे दर्शन मिलता रहता है।" अहा! सत्य का कैसा माहात्म्य है! यदि हिन्दुस्तानी वैश्य लोग तुलाधार के इस पवित्र उपाख्यान की ओर दृष्टि दें, यदि वे तुलाधार की तरह सत्य व्यवहार करें, सत्य बोलें, सत्य तोलें, तो उनको तपस्या के लिये जंगल में जाने का क्या प्रयोजन है? सत्संग के लिये महात्माओं के ढूँढ़ने का क्या मतलब है? दुकान पर बैठे हुए धन, धर्म, काम, मोक्ष, सत्संग आदि सब अपने आप चले आते हैं, क्योंकि प्रायः यह देखा गया है कि जो भले आदमी होते हैं, वे बहुधा उसी दुकान से लेन-देन रखते हैं, जहाँ सत्य व्यवहार होता है। भले आदमियों के ही समागम को सत्संग कहते हैं, सत्संग ही से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति होती है, तो

प्यारो ! आप सत्य व्यवहार, प्रेम का बरताव क्यों नहीं करते ? यह देखिये, आजकल ग़ैर मुल्कवाले (विदेशी) तुलाधार की तरह सत्य व्यवहार से कैसे मालामाल हो रहे हैं। यह देखिये, उनका कैसा ऐश्वर्य्य बढ़ रहा है ! यह देखिये, इसी व्यापार की बदौलत सारी दुनिया उनके हस्तगत हो रही है। आप लोग भी सत्य व्यापार करो। व्यापार की वृद्धि करो। क्षुद्र व्याज के लोभ से पूँजी लगा कर आलसी मत बनो। देखो, ग़ैर मुल्कवाले (विदेशी) व्यापार में इतने रुपये लगा रहे हैं कि बुद्धि काम नहीं करती। उतना रुपया आपके पास है ही नहीं। मतलब यह है कि जितना भी रुपया आपके पास है, वह सब व्यापार के लिये बहुत कम है। ब्याजमें न लगाकर उन रुपयों को व्यापार में लगाने से आपको आशातीत लाभ होगा, आपके मुल्क को फ़ायदा पहुँचेगा।

यह पहले कहा जा चुका है कि हिन्दुस्तानी लिखे-पढ़े आदमी व्यापार करना नहीं चाहते, यह बड़े अफ़सोस की बात है, पर इससे भी ज्यादा शोक इस बात पर है कि हिन्दुस्तानी व्यापारी लोग विद्या की ओर ध्यान नहीं देते। विद्या को वे कोई चीज़ नहीं समझते। उनका ख़याल है कि हमको किसी की नौकरी थोड़ी ही करनी है, जो पढ़ने में इतना सिर मारें। यह उन लोगों का बड़ा ही बेहूदा (पोच) ख़याल है। अनपढ़ आदमी जितना रुपया लगाकर जितना नफ़ा उठा सकेगा, लिखा-पढ़ा आदमी उतने ही रुपयों से बीसगुना नफ़ा कर सकता है। व्यापार के लिये धन की जैसी ज़रूरत है, विद्या की भी वैसी ही ज़रूरत है। यह कैसी कठिन समस्या है कि लिखे-पढ़े आदमी तो व्यापार नहीं करते, और व्यापारी लिखना-पढ़ना नहीं चाहते। व्यापार के लिये नित्य नई-नई

तदबीरें सोचनी पड़ती हैं, और नई-नई तदबीरों को सोचने के लिये विद्या चाहिये। पर व्यापारी लोग विद्या ही नहीं पढ़े हैं, तो वे कैसे नई-नई तदबीरें सोच सकते हैं। यही कारण है कि हिन्दुस्तान का व्यापार तरक़्क़ी पर नहीं है। ग़ैर मुल्कवाले नित्य नई-नई तदबीरें सोचकर नया-नया कौशल रचकर व्यापार में आशातीत उन्नति कर रहे हैं।

जब ग़ैर मुल्कवालों की इस उन्नति का सवाल हिन्दुस्तानियों के सामने रक्खा जाता है, तब हिन्दुस्तानी प्रायः यह दलील पेश करते हैं कि उनका मुल्क ठंडा है, और हमारा गरम। गरम मुल्क होने की वजह से हम उनका मुक़ाबला नहीं कर सकते। यह ख़्याल बिलकुल ग़लत है। ठंडा और गरम उन्नति के साधक और बाधक नहीं हैं। यह विलायतवालों की एक पॉलिसी है कि उन्होंने हिन्दुस्तानियों के दिलों में यह ख़्याल जमा दिया है, ताकि हिन्दुस्तानी उनका मुक़ाबला करने की कोशिश न करें। आजकल हिन्दुस्तानी ऐसे सीधे मिज़ाज के हो गये हैं कि विलायतवालों की चटक-मटक पर बिलकुल मोहित हो गये हैं। उनके दिलों में यह ख़्याल हो गया है कि विलायतवाले जैसा कहें व करें, वह ठीक है। राम इस बात को ज़ोर देकर कहता है कि गरमी के सबब हिन्दुस्तान की उन्नति नहीं रुकी हुई है। हिन्दुस्तान की उन्नति अगर रुकी है, तो इसलिये कि हिन्दुस्तानी लोग अपने सच्चे धर्म (वेदान्त अथवा ब्रह्मविद्या) को अमल में लाना भूल गये हैं। तोता जैसे राम राम या और कोई वाक्य सिखाने से सीख जाता है, पर उसको समझ नहीं सकता, या अमल में नहीं लाता, वैसे ही हिन्दुस्तानी लोग ब्रह्मविद्या अर्थात् वेदान्त शब्दों को तो जानते हैं, पर उसको अमल में नहीं लाते हैं। बस, यही अवनति की निशानी है

और इसी से अवनति होती है। अमेरिका, जापान आदि मुल्कों में यद्यपि लोग 'ब्रह्मविद्या' शब्द को नहीं जानते हैं, अर्थात् 'ब्रह्मविद्या' उनकी बुद्धि में नहीं है, परन्तु उनकी नस-नस में और उनके अमल में ब्रह्मविद्या है। यह क़ुदरत का क़ानून है कि कोई भी चीज़ उसके गुण जानने पर भी जब तक अमल में नहीं लाई जाती, अपना गुण नहीं दिखाती है। मिश्री का गुण चाहे कोई भले ही समझता हो, पर जब तक खायगा नहीं, वह कभी अपना गुण नहीं दिखायगी, या अमृत के गुण चाहे कोई भले ही जानता हो कि इसके खाने से आदमी अमर हो जाता है, पर जब तक वह खायगा नहीं, अमर नहीं हो सकता, चाहे वह अमृत उसके हाथ में ही हो। इसी तरह हिन्दुस्तानी ब्रह्मविद्या के गुणों को समझते हैं, उसकी तारीफ़ करते हैं, पर उसको अमल में लाते नहीं हैं, तब कैसे ब्रह्मविद्या उनको अपना गुण दिखावेगी? अमेरिका और जापानवालों ने ब्रह्मविद्या का नाम नहीं सुना, तारीफ़ नहीं सुनी, पर वे उसको बेजाने ही अमल में लाते हैं, तब उन पर वे अपना गुण क्यों न दिखावे? और क्यों न उनकी उन्नति हो? अतः प्यारो! सर्दी और गरमी उन्नति की साधक और बाधक नहीं हैं। अगर सर्दी उन्नति का कारण होती, तो तिब्बत आदि देशों की दशा भी अच्छी रहती। वह ब्रह्म-विद्या है, जिसका अमल में लाना और न लाना उन्नति का साधक तथा बाधक है। अमेरिका आदि मुल्कों के समान जब आप भी शारीरिक परिश्रम करने में अपनी प्रतिष्ठा समझने लगोगे, बीस-पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य धारण करोगे, स्त्रियों को बराबर शिक्षित करोगे, सबके साथ बराबर का बरताव करोगे, सच्चाई से काम लोगे, एक दूसरे से प्रेम करना सीखोगे, तभी आपकी उन्नति निश्चित है, और इसी को असली

वेदान्त कहते हैं। भला, विचार करने की बात है कि जब हिन्दुस्तानी चक्रवर्ती राज्य करते थे, क्या तब हिन्दुस्तान गरम नहीं था? जब हिन्दुस्तानियों ने बड़े-बड़े दर्शन-शास्त्र रचे थे, क्या तब हिन्दुस्तान गरम नहीं था? जब हिन्दुस्तानियों ने विमान आदि भाँति-भाँति की कला निर्माण की थी, क्या तब हिन्दुस्तान गरम नहीं था? जब हिन्दुस्तानियों ने अपनी विद्या, बुद्धि, वीरता से जग को जीत लिया था, क्या तब हिन्दुस्तान गरम नहीं था? यदि कहो कि जी! अब तो कलियुग आ गया है, वे तो सतयुग की बातें हैं, तो क्या अमेरिका-जापान के लिये कलियुग नहीं आया? यह दलील बड़ी पोच है। कलियुग कोई चीज़ नहीं है। कलियुग सिर्फ समय के एक हिस्से का नाम है। यह किसी का हाथ भले कर्म करने से नहीं खींचता है। हाँ, बेशक ब्रह्मविद्या के अमल में न लाने को कलियुग कहा जाय, तो ठीक है; और तब हक़ीक़त में मनुष्य से कुछ भी अच्छा काम नहीं हो सकता, क्योंकि कोई भी अच्छा काम ब्रह्मविद्या से भिन्न नहीं है। पर ऐसा कोई ज़माना ही नहीं, समय ही नहीं, घंटा-पल नहीं कि जब ब्रह्मविद्या से परहेज़ किया जाय, तो कलियुग कहाँ रहा? प्यारो! विचार तो करो, कहाँ आपके पूर्वपुरुष अड़तालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य रखते थे, और कहाँ आप दो-चार वर्ष के लड़के की शादी कर रहे हो। आप विद्या को उपयोग में नहीं लाते, अर्थात् जो कुछ पढ़ते हो, वह अमल में नहीं लाते। रट-रटकर बी० ए०, एम्० ए० पास करते हो, पर उसका व्यवहार नहीं करते। ख़ाली नौकरी कर लेने में अपने इल्म को सार्थक समझ लेते हो। तोता जैसे पढ़ाने से राम-राम पढ़ लेता है, लेकिन समझता कुछ नहीं, यही हाल आजकल हिन्दुस्तानियों का है। हिन्दुस्तानियों की बुद्धि ब्रह्मचर्य्य न रखने से, बल-वीर्य्य

और विद्या का उचित प्रयोग न करने से, कमज़ोर होती चली जा रही है। विलायतवाले कम-से-कम बीस वर्ष तक पूर्ण ब्रह्मचर्य्य रखते हैं, इसलिये वे मज़बूत होते हैं, और जो कुछ पढ़ते हैं, उसको अमल में लाते हैं, और जहाँ तक हो सकता है, एक-न-एक बात नई पैदा करने की फ़िक्र (चिन्ता व विचार) में रहते हैं, इसलिये उनकी बुद्धि रोज़-बरोज़ बढ़ती चली जाती है। ठंड (सर्दी) होने की वजह से उनकी ऐसी उन्नति नहीं हुई। जिस ज़माने में हिन्दुस्तानी उन्नति के ऊँचे शिखर पर चढ़े हुए थे, और विलायतवाले जंगल में रहा करते थे, उस ज़माने में भी तो वहाँ ठंड ही थी।

अतएव ठंड और गरम की दलील बिलकुल बेहूदा (पोच) है, ये कदापि उन्नति और अवनति के साधक व बाधक नहीं हैं। जापान पचास वर्ष पहले यदि गरम था, तो वह अब ठंडा नहीं हो गया। उसने ऐसी क्यों उन्नति की है? प्यारो! गुणों को ग्रहण करने और अवगुणों के त्यागने से और अपनी विद्या-बुद्धि का उचित प्रयोग करने ही से जापान ने ऐसी तरक़्क़ी की है। आप भी ऐसा कर सकते हो। जो पढ़ते हो, उसका अमल में लाना सीखो, यही उन्नति का उपाय है। हिन्दुस्तानी बी० ए०, एम्० ए० पास करके जो बात नहीं सीख सकते, विलायतवाले उस बात को बचपन में सीख जाते हैं। वहाँ बच्चों के लिये किंडर-गार्टन नाम का स्कूल है। इस स्कूल में बच्चे ऐसे प्रेम से सिखाये जाते हैं कि लड़के घर में रहना पसंद नहीं करते। वे घर में अपने मा-बापों का स्कूल में जल्दी भेजने के लिये नाक में दम कर देते हैं। वे हमेशा यह चाहते हैं कि हम स्कूल में जायँ। इसका कारण यही है कि उस्ताद लोग बच्चों के साथ ऐसी गहरी प्रीति करते

हैं कि उनके मा-बाप भी वैसी नहीं करते। बच्चों के साथ वे बिलकुल बच्चे हो जाते हैं। उनके साथ खेलते हैं, कूदते हैं, हँसते हैं, और साथ ही साथ उनको पढ़ाते जाते हैं। यहाँ रेल, ज़हाज़, तार और विविध भाँति की कल बनाने का सब सामान मौजूद रहता है। जब रेल का सबक़ पढ़ाया जाता है, तो उस्ताद लोग बच्चों को उस जगह ले जाते हैं, जहाँ रेल बनाने के कल-पुर्ज़े रक्खे हुए रहते हैं। उस्ताद लोग इंजन बनाना सिखाते हैं, और लड़के बात की बात में हँसते-खेलते इंजन बनाना सीख जाते हैं। जितनी देर में हिन्दुस्तानी बच्चे आर ए आइ एल् रेल, माने धुआँगाड़ी, याद करते हैं, उतनी देर में वे रेल बनाना भी सीख जाते हैं। यहाँ सिर्फ़ नाम-मात्र जानते हैं, वहाँ नाम के साथ रेल बनाना भी सीख जाते हैं। हिन्दुस्तानी शब्द-समूह को दिमाग़ में भरते हैं, विलायतवाले दिमाग़ से निकालते हैं, अर्थात् उनको अच्छी तरह समझते हैं। यहाँ रटन करते हैं, वहाँ मनन करते हैं। वहाँ अक़्ल से किसी बात को सोचते हैं, दिल में उसको करने की इच्छा करते हैं, और हाथों से उसको करके दिखलाते हैं; यहाँ कुछ भी नहीं। खाली किताबें रट-रटकर पंडित कहलाते हैं। यहाँ की विद्या पुस्तकों में है, वहाँ की विद्या हरएक के हस्तगत है। वहाँ कभी किसी विद्यार्थी को तब तक प्रमोशन (Promotion, तरक़्क़ी) नहीं मिलती, जब तक कि उसको उस दर्जे के लायक़, जिसमें कि वह पढ़ता है, विचार करने तथा मनन करने की शक्ति नहीं होती। यहाँ इस बात पर विचार ही नहीं किया जाता। किताबें मुखाग्र करके अबोध बालक बड़ा दर्जा पास कर सकता है, कोई उसकी लियाक़त की ओर ध्यान नहीं देता। वहाँ सिर्फ़ लियाक़त देखते हैं। एक बार एक लड़की ने मेरा लेक्चर सुना। उसने उसको

अपने तौर पर लिखा और अपने प्रिंसिपल को दिखाया। प्रिंसिपल बड़ा खुश हुआ, और उसने उस लड़की को छःमास का प्रमोशन दिया। इसी प्रकार जब तक कि हिन्दुस्तान में भी लड़कों की लियाक़त तथा विचार-शक्ति पर ध्यान नहीं दिया जायगा, तब तक हिन्दुस्तानियों का आला दर्जा पास कर लेना भी किसी काम का नहीं। यहाँ भी किंडर-गार्टन होने चाहियें, जिसमें बच्चे प्रैक्टिकल (व्यावहारिक) इल्म हासिल करें, उनकी विचार-शक्ति बढ़े, अर्थात् युवा होने पर वे किसी काम के हों, और अपने मुल्क को फ़ायदा पहुँचा सकें। समय चला जा रहा है। एक-एक लम्हा (पल) बहुमूल्य गुज़र रहा है। बहुत कुछ सो चुके, बहुत कुछ आराम ले चुके, बहुत कुछ समय नष्ट कर चुके, बहुत कुछ खो चुके। प्यारो! अब अपने कर्तव्य की ओर ध्यान दो। वह उपाय करो, जिससे आपका मनुष्य-जन्म सार्थक हो। असभ्यता का जामा उतार दो। थोड़ी देर के लिये इस बात पर विचार करो कि आप क्या थे और अब क्या हो गये। अपने कर्तव्य की ओर ध्यान न देने से अब आप धीरे-धीरे रोटियों के भी मुहताज होते चले जा रहे हो। यदि इसी प्रकार कुछ दिनों तक ऐसी ग़फ़लत की नींद में सोते हुए रहोगे, तो प्यारो! आपकी जैसी दशा होगी, वह आप स्वयं विचार लो। कहने से दुःख होता है। सावधान! सावधान!! बहुत जल्द सावधान होना चाहिये।

अपनी उन्नति करने के लिये हिन्दुस्तानियों को ग़ैर मुल्क-वालों (विदेशियों) से बहुत कुछ सीखना है। सबसे पहली बात, जो उनसे सीखनी है, यह है कि वे लोग बच्चों को किस प्रकार शिक्षा देते हैं। क्योंकि बच्चों की शिक्षा पर ही देश की उन्नति, अवनति का दारोमदार है। बच्चों को जिस प्रकार की शिक्षा दी जायगी, उसी प्रकार का उनका आचरण,

स्वभाव और ख़्याल होगा। जापान में जब लड़का पहले-पहल स्कूल में भरती होता है, तो मास्टर उससे सवाल करता है "तुम्हारा शरीर काहे से जीवित है?" लड़का कहता है "अन्न से।" मास्टर पूछता है "कहाँ के अन्न से?" लड़का जवाब देता है "जापान के अन्न से।" मास्टर फिर कहता है, "तब यदि जापान में अन्न न होगा, तो तुम्हारा शरीर जीवित (ज़िन्दा) नहीं रह सकता?" लड़का जवाब देता है "नहीं, नहीं रह सकता।" तब मास्टर कहता है "जब तुम्हारा शरीर जापानी अन्न से बना है, तो क्या जापान को इख़्तियार है कि जब उसको ज़रूरत हो, तब वह तुम्हारा शरीर ले ले?" लड़का बहादुरी से जवाब देता है "हाँ, जापान को इख़्तियार है, जब चाहे हमारे शरीर को ले सकता है।" इस प्रकार अपने देश के लिये हर वक़्त प्राण देने को तय्यार रहने की जापानी बालकों को पहिले ही शिक्षा दी जाती है। यह उसी शिक्षा का फल है कि जापान ने रूस जैसे प्रबल राज्य को ऐसी भारी हार दी है। हिन्दुस्तानियों को भी अपने बालकों को पहिले ही से ऐसी शिक्षा देनी चाहिये जिससे उनका देशानुराग, उनकी देश-भक्ति, ऐसी प्रबल हो जाय कि समय पड़ने पर वे अपने देश के लिये प्राण देने को तय्यार रहें। शिक्षा का यही पहिला सबक़ पहले-पहल बालकों को देना चाहिये।

पहिले अपने देशवालों के साथ प्रेम तथा शान्ति-पूर्वक बरताव करना, यह उनकी दूसरी शिक्षा होनी चाहिये। स्कूलों ही में ऐसी शिक्षा देने का प्रबन्ध करना चाहिये। यदि स्कूलों में लड़के आपस में नहीं लड़ना सीखेंगे और प्रेम से रहेंगे, तो जवान होने पर वे एकाएक अपने देशवालों से नहीं लड़ेंगे, और प्रेम-पूर्वक बरताव करेंगे। अमेरिका में इस प्रकार की शिक्षा का बड़ा अच्छा प्रबन्ध है। अमेरिका में एक बार एक स्कूल के लड़कों में आपस में

लड़ाई हुई। बहुत कुछ मार-पीट हुई। उसी वक्त प्रिंसिपल को ख़बर दी गई। प्रिंसिपल आये। उन्होंने न किसी लड़के का बयान लिया और न किसी को धमकाया। उन्होंने आते ही बाजे बजवाने शुरू किये, शांति के गीत गवाये। पश्चात् लड़कों को बुलाया, और झगड़े का कारण पूछा और यह भी दर्याफ़्त किया कि किसकी शरारत से यह झगड़ा पैदा हुआ। लेकिन आश्चर्य (तअज्जुब) है, जिन लड़कों में थोड़ी देर पहिले लट्ठ चले थे, उनकी ज़बान से अब किसी की भी शिकायत नहीं निकली। इसका कारण क्या था? प्यारो! इसका कारण वह बाजा और शान्ति के गीत थे। उनको जो पहिले क्रोध हुआ था, वह बाजा और गीत सुनकर शान्त हो गया। यदि प्रिंसिपल आते ही उनके बयान लेने शुरू करते, तो इस लड़ाई का नतीजा शांति में ख़तम न होता। एक लड़का दूसरे को क़सूरवार ठहराता, और अवश्य ही कुछ लड़के क़सूरवार निकलते। और, संभव था कि इसका नतीजा यह होता कि कुछ लड़के स्कूल से निकाल दिये जाते, और जो लड़के स्कूल से निकाल दिये जाते, वे उन लड़कों के हमेशा जानी दुश्मन (घोर शत्रु) हो जाते, उनके विरुद्ध गवाही देते। ख़्याल करने से इसका नतीजा बहुत बुरा पैदा हो सकता है। यहाँ तक कि देश में अशांति फैल सकती है।

तीसरी बात लड़कों को डराना-धमकाना नहीं चाहिए, लड़कों को डराना और धमकाना बड़ी बुरी बात है। इससे लड़के डरपोक और कमज़ोर हो जाते हैं। हिन्दुस्तान में डराना-धमकाना बुरे लड़कों को नेक बनाने की चेष्टा है, परन्तु ऐसा करना ठीक नहीं है। लड़कों को नेक बनाने के लिये सबसे उम्दा मार्ग यह है कि उनकी नज़रों से कोई बुरी बात नहीं गुज़रने देनी चाहिये। और वीर तथा पुष्ट

बनाने के लिये उनको पूरी स्वतंत्रता देनी चाहिये। जापान में बालकों को ऐसी स्वतंत्रता है कि वैसी स्वतंत्रता कहीं नहीं देखी गई। वहाँ बालकों को कहीं खेलने के लिये मुक़र्रर जगह नहीं है। जहाँ उनकी ख़ुशी होती है, वहाँ वे बेरोक-टोक खेलते हैं। चाहे वह आम जगह हो, या ख़ास; बाज़ार हो, या गली, जहाँ उनकी मरज़ी हो, वहाँ उनको कोई नहीं रोक सकता है। यहाँ तक कि यदि वे बाज़ार में खेलते हों और कारणवशात् वहाँ के बादशाह की गाड़ी उधर होके निकलनेवाली हो, तो मजाल नहीं है कि कोई उनसे कह दे कि "खेल बन्द करो, बादशाह आते हैं।" जब तक वे स्वयं अपना खेल बंद नहीं करते, तब तक मिकाडो भी अपनी गाड़ी खड़ी रक्खेंगे। यही कारण है कि जापानियों के दिलों में भय का नाम-निशान भी नहीं है।

चौथी बात यह है कि बालकों को जो कुछ पढ़ाया जाय, वह अमल में भी लाना सिखलाया जाय। हिन्दुस्तान में इस बात की बड़ी कमी है। हिन्दुस्तानी स्कूलों में जो कुछ पढ़ाया जाता है, वह अमल में लाना नहीं सिखाया जाता है। इसलिये हिन्दुस्तानी बालक युवा होने पर बातूनी जमा-ख़र्च तो बहुत कर देते हैं, पर अमली कार्यवाही कुछ नहीं कर सकते।

पाँचवीं बात यह है कि जिस विषय की ओर बालक प्रवृत्त हो, वही विषय उसको विशेष रूप से पढ़ाया जाय, क्योंकि ऐसा करने से वह अधिक उन्नति कर सकेगा। हिन्दुस्तान में इस मुख्य प्रयोजनीय बात की ओर कोई ध्यान नहीं देता। यदि किसी बालक को वकालत प्रिय है, तो उसके मा-बाप उसको इंजीनियरिंग पढ़ने का अनुरोध करेंगे; यदि गणित-शास्त्र की ओर उसकी रुचि है, तो उसको इतिहास पढ़ने के लिये कहेंगे, और यदि उसकी चित्त-वृत्ति साइंस की ओर है, तो उसे साहित्य पढ़ावेंगे।

अब यह विचार करने की बात है कि जिस विषय की ओर बालक की रुचि ही नहीं, उस विषय में वह क्योंकर तरक़्क़ी कर सकता है। सुतरां बालकों की शिक्षा पर विशेष ध्यान देना चाहिये। बालकों पर ही देश की भावी भलाई का भरोसा है।

एक बात, जो, केवल हिन्दुस्तानियों में दूसरे देशों से बढ़ कर अभी तक पाई जाती है, वह योग-विद्या है। पर अब अमेरिका आदि देश इसमें ख़ूब उन्नति कर रहे हैं, और हिन्दुस्तानी भूल रहे हैं। अमेरिका में एफ़० ऐमरसन साहब ने, जो जंगलों में रहता था, योग-विद्या में इतनी उन्नति की है कि आश्चर्य्य होता है। वह मोहन को बदल कर गोपाल कर सकता है, स्थल को जल; ये सब करामातें वह योग-विद्या से करता है, जादू से नहीं। और अब आशा है कि वे लोग योग-विद्या में भी हिन्दुस्तानियों से बढ़ जायँगे। सो प्यारे हिन्दुस्तानियों! आपको सँभलना चाहिये। पहलेपहल विद्यारूपी सूर्य का प्रकाश यहीं हुआ था। बाद को यहाँ से अरब, मिस्र, रूम, यूनान होता हुआ इँगलैंड पहुँचा था। वहाँ से अमेरिका होता हुआ जापान पहुँच गया। अब जापान से उसकी किरणें इधर झुकती हुई दिखलाई देती हैं। अब आप सचेत हो जाओ। ऐसा न हो, यह सूर्य पश्चिम को ढलक जाय और आप सोये के सोये ही रह जायँ। उठो, और उठाने का प्रयत्न करो। सब अपने-अपने कर्त्तव्यों पर लगो, और अपने देश-वासियों को कर्त्तव्य बतलाओ। सूर्योदय के पूर्व ही अपने देशोन्नति रूपी कर्त्तव्यों को स्थिर कर लो। एक क्षण, एक पल भी व्यर्थ न खोओ। यदि सोच-विचार में ही पड़े रहोगे, तो सूर्य पश्चिम को चला जायगा, फिर आपसे कुछ करते-धरते नहीं बनेगा।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

उन्नति का मार्ग

(ता० २४ सितम्बर सन् १९०५ को दिया हुआ व्याख्यान)

व्याख्यान आरंभ करने से पहले राम आपको यह बताना चाहता है कि आत्म-पूजा (सेल्फ़-रेस्पेक्ट, Self-respect) और आत्म-सम्मान इन शब्दों के क्या अर्थ हैं। लोगों ने इनको ग़लत समझ रक्खा है। यदि आप आत्म (सेल्फ़, Self) के अर्थ परिच्छिन्नात्मा समझते हैं और उसको केवल अपना शरीर मानते हैं, तो आत्म-पूजा (सेल्फ़-रेस्पेक्ट) के अर्थ तुच्छ अहंकार और अभिमान के होंगे, जो पाप है। यदि सेल्फ़ का तात्पर्य ईश्वर का स्वरूप समझा जाय, तो सेल्फ़-रेस्पेक्ट से बढ़कर कोई पुण्य ही नहीं हो सकता। राम आप लोगों से चाहता है कि व्याख्यान आरंभ होने से पहले आप अपने विचारों को एकत्र कीजिए, अर्थात् एकाग्रता से काम लीजिए, और ख़ूब ध्यान से सुनिए। आप भगवत्-स्वरूप हैं, और जब कि आप अनंत स्वरूप हैं, तो आपमें परिच्छिन्न सांसारिक विचारों का होना भी ग़लत है।

एक राजा का पुत्र किसी बुरे काम में प्रवृत्त है। अपने नौकरों में बैठता है, अथवा किसी को गंदी गालियाँ देता है, और उससे यह कहा जाता है कि तुम क्या कर रहे हो, तुमको यह शोभा नहीं देता, तुम राजा के पुत्र होकर इन नीच लोगों में बैठते हो और ऐसी गालियाँ अपनी जिह्वा पर लाते हो; वह तत्काल अपनी असली अवस्था को जानकर अपने कर्म पर लज्जित होता है। इसी प्रकार आप अपने स्वरूप का ध्यान कीजिए। आपका स्वरूप तो

परमेश्वर है, वह स्वरूप तो त्रिलोकी को आनंद देनेवाला है, सूर्य को सोना और चंद्रमा को चाँदी देनेवाला है, अतः आप ठीक उस बालक की तरह अपने कर्मों पर लज्जित हूजिए, और सांसारिक वस्तुओं में अपने को इतना आसक्त न होने दीजिए। अपने स्वरूप को जानिए और समझिए। देखो, आपको गायत्री मंत्र क्या सिखाता है। राम उस मंत्र को नहीं पढ़ता, केवल उस का आशय (उद्देश्य) बतलाएगा। वह यह है, मेरी बुद्धि प्रकाशित हो, क्योंकि वह जो सूर्य, चंद्र और तारों को प्रकाश देनेवाला है, वह मेरा आत्मा है। जब यह बात है, तो राम कहता है कि वे लोग जो अभेदवादी हैं, वे अपनी अभेद-दृष्टि को सम्मुख रखकर, और वे जो भेदवादी हैं, वे अपनी भेद-दृष्टि को धारण करके उस ज्योतिःस्वरूप का ध्यान करें। वह ध्यान क्या है? वह यह है कि वह जो बाह्य प्रकाश का स्रोत है और जो भीतरी ज्ञान-ज्योति का स्रोत है, वह मेरे हृदय में है, मेरे हृदय में वह दीपक जल रहा है, मेरे हृदय में वह ज्योति प्रकाशमान है।

अब राम आज के विषय पर आता है। वह विषय यह है।

उन्नति का मार्ग

यह विषय अत्यंत विस्तृत है। इसलिये इसमें से केवल एकआध आवश्यक भागों को राम लेगा। आम तौर से लोग यह प्रश्न करते हैं कि ये उन्नति-उन्नति पुकारनेवाले लोग कहाँ से आ गये? अरे भाई! अपने घर रहने और आमोद-प्रमोद से जीवन व्यतीत करने में सुख है, या उन्नति-उन्नति की सिर-पीड़ा मोल लेने में? लोगों की जिह्वा पर यही है कि हमको यहीं रहने दो, हम आगे नहीं जाना चाहते, और इसी पर वे आचरण भी करते हैं, और उनका कथन है।

बक़द्रे-हरसकूँ राहत बुवद बनिगर तफ़ावत रा;
दवीदन रफ़्तन एस्तादन निशस्तन ख़ुफ़्तनो-मुर्दन।

अर्थ—इस कहावत के प्रमाण में कि प्रत्येक स्थिति (ठहराव) में कितना आनंद होता है, तुम्हें दौड़ने, चलने, खड़े होने, बैठने, सोने और मरने की स्थिति के अन्तर पर विचार करना उचित है।

किंतु यह आनंद क्या वस्तु है? यह तो क्षण-भंगुर है। यह कोई अवस्था स्थिर नहीं रह सकती। कभी तो ख़ुफ़्तन (स्वप्न) की दशा ख़त्म होगी, फिर उसके बाद राहत (आराम) का अन्त है। सबसे अधिक आनन्द तो तब होगा कि जब ऐसी मृत्यु आवे कि फिर मरने की नौबत न आवे। ऐसे आलस्योपासक महात्माओं को राम एक प्रकृति का नियम बतलाता है। विकासवाद का इतिहास (History of Evolution) हमको यह उपदेश देता है कि "move or die" आगे बढ़ो, या मरो। जो कोई आगे बढ़ने से इनकार करेगा, वह कुचला जायगा। इसके सिवाय और कोई वश वा इलाज नहीं है। संसार में जितने प्राणी हैं, सबकी दशाओं पर ध्यान करने से यही नियम मालूम होता है कि आगे बढ़ो। जड़, चेतन, वनस्पति सभी स्थान पर इसी नियम का सिक्का (आतंक वा राज्य) है। असभ्य जातियों और पशुओं की दशाओं को पढ़ने से भी यही मालूम होता है कि उनके ख़ून के प्रत्येक बूँद पर लिख दिया गया है कि आगे बढ़ो। कहा गया है और सच कहा गया है कि उन्नति (Evolution) जंगोजदल (पुरुषार्थ) से, परिश्रम से, और कष्ट उठाने से होती है। जो व्यक्ति परिश्रम और प्रयत्न न करेगा, वह नष्ट होगा और कुचला जायगा। जिस तरह एक गाड़ी में घोड़ा जोता जाता है, उसका

काम है कि गाड़ी को खींचकर आगे ले जाय। यदि वह न चले और रुक जाय, तो कोचवान उस पर चाबुक-पर-चाबुक मारता है। यही दशा व्यक्तियों और जातियों की है।

जो व्यक्ति या जाति आगे चलने से इनकार करती है, उसको दैव या प्रकृति (Providence) के नियम चाबुक मारते हैं। यह नियम अटल है। इसके बरतने में कभी रिआयत नहीं हो सकती। परमेश्वर को किसी जाति या संप्रदाय का पक्ष नहीं है। जो कोई उसके नियम के अनुसार चलता है, वह उसका प्यारा है, वह बचता है; किंतु जो उसके नियम को तोड़ता है, वह उसका शत्रु है, वह मरता है और नष्ट होता है। ज़रा देखो तो, यदि तुम सांसारिक गवर्नमेंट के नियमों के विरुद्ध चलो, तो तत्काल दंड पा जाते हो, किसी तरह बच नहीं सकते। जब सांसारिक गवर्नमेंट के नियमों के विरुद्ध चलने का यह हाल है, तो भला परमेश्वर के नियमों के विरुद्ध चलना और बचने की आशा करना बिलकुल मूर्खता है या नहीं। धर्मशास्त्र के अनुसार भी आगे बढ़ने से इनकार करने का ही नाम पाप है। इसको तमोगुण कहते हैं। भौतिक विज्ञान-शास्त्र हमको सिखाता है कि गति के नियमों में से एक नियम का नाम है जड़ता का नियम (Law of Inertia)। अपनी दशा बदलने से इनकार करने को जड़ता कहते हैं। प्रत्येक वस्तु में यह भाव या स्वभाव है कि वह अपनी दशा बदलना नहीं चाहती। यही सुस्ती, शिथिलता या जड़ता है। हमारे शास्त्रों में श्रम या शक्ति से शून्य होने को तमोगुण कहते हैं। यह नियम विस्तार के साथ इन शब्दों में वर्णन किया जा सकता है कि यदि एक वस्तु को स्थिर अवस्था में रक्खा जाय, तो वह सदैव उसी अवस्था में रहेगी और जब तक कोई चेतन

वस्तु उस पर कार्य न करे, उस समय तक वह अपनी दशा नहीं बदलेगी। इसी प्रकार यदि एक वस्तु को गति की दशा में रक्खा जाय, तो वह बराबर उसी दशा में रहेगी, और जब तक कोई चेतन वस्तु उस पर कार्य न करे, उस समय तक वह उस दशा को परिवर्तित नहीं करेगी। इसको स्थिरता का नियम भी कहते हैं। अतः आगे न बढ़ना, या यों कहिए कि अपनी दशा को परिवर्तित न करना, जड़ता है, तमोगुण है, अर्थात् पाप है। एक दूसरा नियम (Law of Acceleration) वर्धमानता या गत्यन्तर का नियम है। इससे रजोगुण प्रकट होता है। अर्थात् यह वह दशा है कि जब जड़ता के ऊपर अपना वश वा शासन प्राप्त हो जाता है। और आगे बढ़ने या दशा परिवर्तन करने का विचार और उसकी शक्ति आ जाती है।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि मनुष्य तो अनन्त-स्वरूप है। उसमें यह पाप कहाँ से आया। इसका उत्तर कुछ लोग यों देते हैं कि प्रथम पाप हज़रत आदम ने किया था और उसमें से हमको यह बपौती मिली। राम इस प्रश्न पर इस ढंग से बहस नहीं करेगा। राम आपको बतलाएगा कि ज़रा हिन्दू-शास्त्र (Hindu Philosophy) की ओर ध्यान दो और देखो कि उसने क्या सिखाया है। यहाँ पर पुनर्जन्म का प्रश्न आ जाता है, जो सच है, और जो स्वतः एक स्वतंत्र व्याख्यान का विषय है। राम इस समय उस पर कुछ नहीं बोलेगा। हमको हिन्दू-शास्त्र यह सिखाता है कि मनुष्य चौरासी लाख योनियों में से फिर कर आया है। विज्ञान का भी यह एक निर्णीत सिद्धान्त है कि मनुष्य सबके पश्चात् उत्पन्न हुआ है। इतिहास-चिह्न-विद्या (Archeology) और भूगर्भ-विद्या (Geology) आदि से

इसका पूरा प्रमाण मिलता है। गर्भ-शास्त्र (Embryology) भी इसको सिद्ध करता है। यह नवीन विद्या है, जिसका हेकल (Haeckel) ने आविष्कार किया है। इस विद्या के प्रत्यक्ष अनुभवों से भली भाँति सिद्ध होता है कि मनुष्य सब से बाद को आया। राम स्वयं एक अद्भुतालय (अजायबघर) में गया। उसमें देखा कि गर्भ के भीतर के एक दिन, दो दिन, तीन दिन, पाँच दिन, इसी क्रम से महीने, दो महीने तक के भ्रूण (बच्चे) शीशियों के भीतर स्पिरिट में रक्खे हुए थे। उनसे ज्ञात होता था कि माता के पेट में चेतन की क्या अवस्था होती है। वह भिन्न-भिन्न रूप धारण करता है—अर्थात् मछली, मेंढक, कुत्ता, बन्दर आदि दशाओं में से होकर उसके बाद मनुष्य की अवस्था धारण करता है। अतः स्पष्ट सिद्ध है कि मनुष्य संसार में सबसे बाद को आया। और क्योंकि वह पाशविक अवस्थाओं को छोड़कर आया है, इसलिये उसमें अभी तमोगुण (Animal passion) शेष है, इसीलिये उसमें पाप पाये जाते हैं। पाप या पुण्य, ये सापेक्षक शब्द (Relative terms) हैं। जो वस्तु एक दशा में पाप है, वह दूसरी दशा में पुण्य है। बच्चे के लिये जो पाप नहीं है, वह बूढ़े के लिये पाप है। चौथी श्रेणी का एक बालक अपनी कक्षा की पुस्तकों को पढ़ता है, वह उसके लिये पुण्य है, किन्तु यदि एम्० ए० क्लास का एक विद्यार्थी अपनी पुस्तकें छोड़कर चौथी श्रेणी की पुस्तकें पढ़े, तो उसके लिये पाप है। एफ़० ए० क्लास से उन्नति पाकर बी० ए० में पढ़ना पुण्य है, किन्तु बी० ए० में फ़ेल होकर पुनः-पुनः बी० ए० में पढ़ना पाप है। इससे स्पष्ट होता है कि पाप की जड़-मूल यह है कि एक अवस्था से उन्नति न करना।

इसी प्रकार जो बातें पशुओं में मौजूद थीं और उनमें पाप न थीं, परन्तु मनुष्य की अवस्था में आने से पाप में परिवर्तित हो गईं। पशुओं की दशा छोड़ने के पश्चात् मनुष्य मनुष्य की दशा में आता है, किन्तु उसमें तमोगुण (Animal passion) शेष रहता है। यदि इस समय वह उस बुद्धि से, जो उसको पशुओं से पहचान करने के लिये दी गई है, काम न ले और इस बात पर विचार न करे कि क्या उसके लिये पुण्य है और क्या उसके लिये पाप है, तो वह जड़ता के नियम (Law of Inertia) के अनुसार जड़ है, क्योंकि वह अपनी अवस्था परिवर्तन करना नहीं चाहता है। वह उन बातों को, जो उसमें पशुता की अभी शेष हैं, ज्यों की त्यों रहने देना चाहता है, और बुद्धि के प्रकाश से लाभान्वित होकर आगे नहीं बढ़ना चाहता है।

अतः जो व्यक्ति आगे बढ़ने के लिये तैयार नहीं है, वह पाप करता है। यही पाप का तत्त्व है, और यही है सम्बन्ध कि जिस के कारण पाप मनुष्य में आता है।

आपकी बाइसिकिल का पहिया घूम रहा है, और आपका कुत्ता उसके आगे-आगे दौड़ता चला जा रहा है। यदि वह बराबर चला जायगा, तो उसको कोई सदमा (चोट) आपकी बाइसिकिल के पहिए से नहीं पहुँचेगा, किन्तु यदि वह रुक जाय या आपकी बाइसिकिल की चाल की अपेक्षा अपनी चाल कम कर दे, तो वह अवश्य पहिए के नीचे दब जायगा। हाँ, एक उपाय उसके बचाने का यह भी है कि आप स्वयं अपनी बाइसिकिल को रोक दें। इसी तरह पर काल का पहिया चक्कर लगा रहा है। उसके साथ-साथ दौड़ो तो कुशल है, नहीं तो उसके नीचे दबकर मरना आवश्यक है। यहाँ एक कठिनता और भी है कि परमेश्वर अपने पहिए को नहीं

रोकेगा। उसके नियम अटल हैं, वे सदैव प्रचलित हैं। वहाँ किसी का पक्षपात नहीं है।

अतः उन्नति करो, नहीं तो कुचले जाओगे, पिस जाओगे और नष्ट हो जाओगे। वे ही जातियाँ नष्ट होती हैं, जो आगे नहीं चलती हैं, या जो सदैव पीछे ही को पग हटाती हैं, जो नवता (originality) और नूतन मार्ग प्रवर्तन (innovation) को पाप समझती हैं। राम इन शब्दों की व्याख्या नहीं करेगा। इनका तात्पर्य तो आप अपने आप समझ गये होंगे। इससे यह परिणाम निकला कि उन्नति के अर्थ प्रयत्न और पुरुषार्थ के हैं।

इस पर यह प्रश्न होता है कि यह तो सत्य है कि उन्नति के अर्थ प्रयत्न के हैं; किन्तु प्रयत्न से क्या होता है, प्रत्येक वस्तु प्रारब्ध के अधीन है, अर्थात् भाग्य पर निर्भर है। यह विषय स्वयं ऐसा है कि इस पर एक स्वतंत्र व्याख्यान दिया जाय, किंतु संक्षेपतः उत्तर यह है:—

तत्त्व तो यह है कि जो लोग कहते हैं कि प्रत्येक काम भाग्य से होता है, वे भी सच कहते हैं। वे इस सिद्धान्त को लागू करने में भूल करते हैं। दृष्टान्त रूप से, जैसी ऋतु होगी, वैसा स्वभाव हो जायगा। जाड़े की ऋतु में गरम कपड़े पहनोगे, घर के भीतर रहोगे, आग जलाओगे, आदि-आदि। गरमी की ऋतु में मैदान में रहोगे, ठण्ढे कपड़े पहनोगे, ठण्ढा पानी पियोगे, आदि-आदि।

अब ऋतु का बदलना दैव-इच्छा वा भाग्य या प्रारब्ध है, अर्थात् वह एक नियत नियम है। और यह प्रारब्ध सारे देश पर प्रभुत्व स्थापन किये हुए है, किंतु ऋतु के अनुसार कपड़े पहनना और उसके अनुसार स्वभावों को बनाना अपने ही पुरुषार्थ पर निर्भर है। परिवर्तित ऋतु की दशा

इसमें कुछ नहीं कर सकती। चोर चोरी करता है, विद्यार्थी पढ़ता है, जज मुक़द्दमे फ़ैसल करता है, ये सब लोग अपने-अपने काम सूर्य की सहायता से करते हैं। इन लोगों में काम करने की शक्ति अन्न खाने से आती है, अन्न सूर्य के प्रकाश और शक्ति को खा जाता है। इस प्रकार वही सूर्य का तेज इन लोगों में आकर काम करता है। दीपक के प्रकाश में भी वह ज्योति है, जो उसने सूर्य से उधार ली है। अतः स्पष्ट है कि वस्तुतः इन सबके कामों का करने-वाला सूर्य है। किंतु क्या बात है कि सूर्य को कोई चोरी का लांछन नहीं लगाता है। उसको क्यों नहीं अपराधी निश्चित किया जाता? कारण यह है कि सूर्य सामान्य अवयव (Common factor) है, क्योंकि उसने वकील, मुद्दई और जज को भी उसी तरह पर शक्ति दी है, जिस तरह पर कि चोर को। व्यवहार में सामान्य अवयव (Common factor) निकाल दिया जाता है। जिस तरह अवयव तुलना में अ–ब = ज–ब के अर्थ अ = ज हैं, अर्थात् ब जो सामान्य अवयव (Common factor) था, ख़ारिज कर दिया गया, और इस समानता में कोई अन्तर भी नहीं आया। इसी तरह पर कल्पना करो कि एक मनुष्य दूसरे के धक्के से गिर पड़ा, तो वस्तुतः इसके गिरने का कारण गुरुत्वाकर्षण का नियम (Law of gravitation) है, किंतु वह उस नियम से नहीं लड़ेगा। वह तो उस धक्का देनेवाले को पकड़ेगा। अतः प्रत्येक मनुष्य में कुछ भाग अस्थिर (Variable) है, और कुछ भाग स्थिर (Invariable) है। स्थिर भाग तो प्रारब्ध है, और अस्थिर भाग पुरुषार्थ है। अब यह देखना है कि इन दोनो में कोई सम्बन्ध भी है या एक दूसरे से वे बिलकुल सम्बन्ध-रहित और निष्प्रयोजन हैं। राम इसको

व्यावहारिक दृष्टि से आपके समक्ष उपस्थित कर रहा है। इनमें एक विशेष सम्बन्ध है। आपकी प्रारब्ध आप ही की बनाई हुई है। यदि पुरुषार्थ कोई वस्तु ही नहीं है, तो धार्मिक पुस्तकों में विधि और निषेध क्यों सिखाया गया है? इसी के लिये कहा है—

दर्मियाने - कारे - दरिया तख़्ताबंदम करदई ;
बाज़ मी गोई कि दामन तर मकुन हुशियार बाश।

अर्थ—नदी के भारी वेग में तो हाथ-पाँव बाँधकर मुझे डाल दिया, और फिर यह तू कहता है कि होशियार हो। पल्ला मत भीगने दो, अर्थात् लिपायमान मत हो।

धार्मिक पुस्तकों के देखने से, चाहे वह मुसलमान, हिंदू या ईसाई-धर्म को हों, यह स्पष्ट विदित होता है कि उन्होंने आपके भीतर पुरुषार्थ का एक अंश पाया है।

अब राम दोनों का सम्बन्ध दिखाता है। रेलगाड़ी पटरी को छोड़कर इधर या उधर नहीं जा सकती है। पटरी उसकी भाग्य है, किंतु चलने में वह स्वतन्त्र है, यह उसका पुरुषार्थ है। किंतु रेल जारी होने से पहले पटरी भी रेलवालों के अधिकार में थी। इसी प्रकार एक व्यक्ति एक ग़रीब के यहाँ उत्पन्न होता है, जहाँ उसके माता-पिता खाने तक को मुहताज हैं। वे उसकी सामान्य परिपालना भी नहीं कर सकते। एक दूसरा व्यक्ति किसी अमीर के यहाँ उत्पन्न होता है, और दूसरा किसी घोर मूर्ख के यहाँ जन्म लेता है। यह तो रेल की पटरी की तरह उसकी प्रारब्ध है, किंतु इसमें पुरुषार्थ का भी भाग है, जिसके कारण वह अपनी दशा को सँभाल सकता है। विदित रहे कि यह भाग्य की पटरी उन्हीं के पुरुषार्थ के अनुसार बनाई जाती है। देखो, मकड़ी अपने मुँह से तार निकालती है, और उसके बाद उसी पर चलती है। अब वह

किसी दूसरी ओर नहीं जा सकती, यदि वह किसी दूसरी ओर 'जाना चाहे, तो फिर वह अपने मुँह से तार निकाले और उसको उसी ओर ले जावे, तब उस ओर भी जा सकती है। तार निकलने से पहले वह तार निकालने का काम उसका पुरुषार्थ था, किंतु निकलने के बाद वह उसकी प्रारब्ध बन गया। अब उसको उस पर चलने के सिवाय और कोई उपाय नहीं है।

यह विदित है कि तार निकालने से पहले उसके अधिकार में था कि किसी ओर इसको ले जावे, अर्थात् अपनी प्रारब्ध का बनाना उसके अधिकार में था। किंतु जब एक बेर वह बन गई फिर उसके बदलने के लिये पुनः-पुनः वही कल की कार्रवाई करनी पड़ती है, जो एक बेर कर चुकी है। रेशम के कीड़े की दशा से भी यही सिद्ध होता है। एक और उदाहरण लीजिए। कल्पना कीजिए कि एक मनुष्य दस्तावेज़ लिखना चाहता है, अर्थात् कुछ पुरुषार्थ करना चाहता है। अब इस पुरुषार्थ के समय उसको अधिकार है कि करे या न करे (अर्थात् दस्तावेज़ लिखे या न लिखे), अथवा जो शर्तें चाहे लिखे। किंतु जब एक बेर लिख चुका, तो फिर पाबंद हो गया। वह उसकी प्रारब्ध बन गई। अब सिवाय शर्तों की पाबंदी के और कोई इलाज नहीं है। यथा—

यारे-मन ख़ुद कर्दा रा इलाजे नेस्त ;
कर्दनी ख़्वेश व आमदनी पेश।

अर्थ—मेरे प्यारे! अपने किये हुए पुरुषार्थ का और कोई इलाज नहीं, सिवाय इसके कि जो कुछ किया है, वह भोगने को सामने आवे।

हैं ख़ते-तक़दीर से यह ख़ते-पेशानियाँ ;
पेश आती हैं यही जो हैं पेश-आनियाँ।

योगवाशिष्ठ में लिखा है कि पुरुषार्थ ही से कार्य की सिद्धि

होती है। सारे बुद्धिमान् लोगों के काम पुरुषार्थ ही से होते हैं। प्रारब्ध का शब्द तो केवल उन लोगों के आँसू पोंछने के वास्ते बनाया गया था, जो कोमल-चित्त हैं, और जिन पर कोई विपत्ति आ पड़ी है, नहीं तो नित्यप्रति जीवन के कुल काम पुरुषार्थ ही से हो सकते हैं। मनुष्य भोजन भी पुरुषार्थ ही से खाता है, पानी भी पुरुषार्थ ही से पीता है, नौकरी भी पुरुषार्थ ही से करता है, कोई सार्वजनिक काम भी पुरुषार्थ ही से करता है।

इस भूमिका के पश्चात् ज़रूरी उन्नति को, सफलता के साथ करने के उपाय को राम बताता है। उद्योगों में कृतकार्यता प्राप्त करने के लिये इन बातों का ध्यान रखना चाहिए।

(१) सांसारिक काम-धंधों के निमित्त सबसे पहली वस्तु प्रकाश है। कैसा ही निर्मल और स्वच्छ घर क्यों न हो, यदि अँधेरे में जाओगे, तो कहीं कुरसी की चोट लगेगी, कहीं दीवार से सिर टकरायगा, कहीं लैम्प से ठोकर लगेगी, और वह टूट जायगा; निदान, पग-पग पर दुःख ही दुःख होगा। फिर बिना प्रकाश के कोई वस्तु उग नहीं सकती। एक पौदा अँधेरे में बोया जाय और दूसरा प्रकाश में, और दोनों का सींचना एक ही प्रकार किया जाय। परिणाम क्या होगा? स्पष्ट है कि अँधेरे में बोया हुआ पौदा सूख जायगा और प्रकाशवाला ख़ूब हरा-भरा होता चला जायगा। फिर जब विना प्रकाश के वृक्ष नहीं उन्नति कर सकते हैं, तो मनुष्य का उन्नति करना तो एक किनारे ही रहा। अब प्रकाश से प्रयोजन क्या है? वही ध्यान, जिसका उल्लेख राम भाषण के आरंभ में कर आया है। वही तेजों का तेज, ज्योतिः स्वरूप आत्मदेव, उसका न भूलना इसी का नाम प्रकाश है। अब इस पर कदाचित्

कहो कि यह क्या बेहूदगी है। संसार में सहस्रों नास्तिक हुए हैं, क्या उन्होंने कोई उन्नति नहीं की है। राम का उत्तर यह है कि ये सुप्रसिद्ध लोग, जिनको आप नास्तिक कहते हैं और जो बड़े-बड़े काम कर गये हैं, जैसे हरबर्ट स्पेंसर, स्पाइनोज़ा और हक्सले (Herbert Spencer, Spinoza और Huxley) आदि। मान भी लीजिए कि ये लोग नास्तिक थे ; किंतु व्यावहारिक रीति पर अर्थात् प्रत्यक्ष रूप से इनकी उन्नति का कारण उनकी ईश्वर प्रमुखता और उनकी ईश्वरोपासना है। इन लोगों के जीवन-चरित्रों को पढ़िए। इससे ज्ञात होगा कि यद्यपि ये लोग हमारे माने हुए ईश्वर को नहीं मानते थे, किंतु वे ईश्वर के भाव (Spirit) को अपनी नस-नस में रखते थे। एक राजा के यहाँ दो नौकर हैं। इनमें से एक तो राजा की ख़ूब ख़ुशामद करता है, किंतु काम कुछ नहीं करता है ; दूसरा राजा की ख़ुशामद (चाटूक्ति) से कुछ प्रयोजन नहीं रखता, केवल अपना धार्मिक कर्त्तव्य अत्यंत सुन्दरता के साथ पालन करता है। अब प्रश्न यह है कि राजा किससे प्रसन्न होगा ? स्पष्ट विदित है कि वह काम करनेवाले से प्रसन्न होगा। काम प्यारा है ; चाम नहीं प्यारा है। बस, यही दशा उन नास्तिकों की है। उन्होंने माला नहीं जपी, उन्होंने माथा नहीं रगड़ा, किंतु उन्होंने अपने आचरण से ईश्वर की उपासना की, उनका प्रत्येक काम माला का एक दाना था, और उनकी जीवनी एक माला थी। राम आपसे यह नहीं कहता कि आप नास्तिक हो जाइए। आप ईश्वर-दर्शन भी कीजिए और काम भी कीजिए ; किंतु नास्तिकों की भाँति प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्म नहीं कर सकता। कोरे ज्ञान-योग से भी उन्नति नहीं कर सकता, सहारे की आवश्यकता है।

कोरे सगुण ईश्वर (Personal God) का मानना तो इस सहारे की आवश्यकता के कारण से है। अतः उन लोगों को, जो विना सहारे के नहीं चल सकते, यह चाहिए कि नित्यप्रति बिला नागा आध्यात्मिक भोजन खायँ। इससे उनको बड़ी सहायता मिलेगी। वह आध्यात्मिक भोजन क्या है? ध्यान, भजन, उपासना। क्रामवेल (Cromwell) और महाराजा रणजीतसिंह इत्यादि के विषय में लिखा है कि जब ये कोई युद्ध आरंभ करते थे, तो अपने तन, मन और धन को परमात्मा के अर्पण करके प्रार्थना के साथ काम का आरंभ करते थे और कृतकार्य होते थे। ऐसे ही लोगों के लिये कहा है कि—

दौलत ग़ुलामे-मन शुदो इक़बाल चाकरम।

अर्थ—दौलत मेरी ग़ुलाम है और इक़बाल है चाकर।

अथवा—बाँधे हुए हाथों को बउम्मेदे-इजाज़त;

हैं रहते खड़े सैकड़ों भज़मूँ मेरे आगे।

किन्तु प्रार्थना में दो अंश हैं—एक माँगना, दूसरा अर्पण करना। माँगने का अंश स्वार्थपरता है; अर्पण करना ही प्रार्थना का सच्चा अंश है, और यही ईश्वर-संग, ईश्वर-संभाषण (Communion with God) है। इसका मतलब यह है कि जो कर्म किया जाता है, वह ईश्वर के लिये किया जाता है। समर्पण का अर्थ हृदय में प्रकाश का रखना है, और यही सच्ची प्रार्थना है। जो व्यक्ति अपने हृदय को ऋणात्मक (Negative) दशा में रखता है, अर्थात् जो सदैव इच्छाओं का दास बना रहता है, उसके कामों में बड़ी हानि होती है, और ऐसे लोग कभी सफल नहीं होते। सफल वे ही होते हैं, जो सदैव नत-मस्तक और हँसमुख रहते हैं। शोकातुर लोगों की उन्नति नहीं हो सकती। जैसी आपके भीतर की दशा होगी, वैसी

ही आपकी सफलतायें भी होंगी। यह प्रसिद्ध उक्ति है—

"घर से जाओ खा के, बाहर मिलें पका के,
घर से जाओ भूखे, बाहर मिलें धक्के।"

यदि आप धन या सन्तान की कामना से परमेश्वर की भक्ति करते हैं, तो वह परमेश्वर की भक्ति नहीं है, वरन् वह तो अपनी स्वार्थपरता की भक्ति है। आप वास्तव में परमेश्वर की भक्ति नहीं करते, वरन् उनको अपना खानसामा बनाते हैं कि वह हर समय आपकी सेवा को उपस्थित रहे, और जब जिस वस्तु की आपको आवश्यकता हो, उसको वह तत्काल आपके सम्मुख लाता रहे।

अहा! यह तो उलटी गंगा बहाना है। प्यारे! परमेश्वर को अपनी विषय-कामनाओं के लिये मत नचाओ। आपको चाहिए कि प्रत्येक काम को हिम्मत और शांति के साथ करो। यही सफलता का साधन है। अगर आपके पास कोई व्यक्ति भीख माँगने आए, तो आप उससे आँख चुराते हो, इसी तरह जब आप परमेश्वर के पास भिखारी बनकर जाओगे, तो वह भी आपसे आँख चुराएगा। परमेश्वर से हृदय की शुद्धता और भक्ति के साथ मिलो। यदि आपके यहाँ कोई बड़ा आदमी आवे, तो आप उसको बड़े आदर से बिठा लेते हैं, किंतु एक थका और दीन मनुष्य आपके पास आकर बैठना चाहे, तो आप उससे घृणा करते हैं। याद रक्खो कि यह आत्मा कमज़ोर से नहीं मिलना चाहता। दुर्बल की परमेश्वर के घर में दाल नहीं गलती।

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।"

यथा—हर दीदा जलवागाहे-आँ माह पारा नेस्त।

अर्थ—प्रत्येक चक्षु से उस (प्रिय स्वरूप परमात्मा) का प्रकाश समान रूप से ज्ञात नहीं होता है।

आप इसकी चिंता न करो कि आपकी आवश्यकतायें कहाँ से पूरी होंगी। राम आपको प्रकृति का वह नियम बतलाता है, जिससे प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता का पदार्थ उसके पास अपने आप पहुँच जाता है। Law of affiinity जिसको रसायन-शास्त्र में प्रीति-नियम कहते हैं, यह प्रकृति का नियम है, जिसके अनुसार जलते हुए दीपक को ऑक्सीजन वायु-मंडल से प्राप्त हो जाता है। अतः यदि आप अपने शरीर को प्रत्येक के लिये जला रहे हैं, तो आपके पास आपका भोजन अपने आप खिंचकर आ जायगा। आपके पास वे वस्तुएँ जिनकी आपको आवश्यकता है, अपने आप आयेंगी। देखो, प्रकृति ने अपने विचित्र खेल का क्या प्रबन्ध कर रक्खा है। जब दीपक जैसी निर्जीव वस्तु के लिये प्रकृति ने उसके भोजन का प्रबन्ध कर दिया है, तो क्या मनुष्य ही वंचित रहेगा ? नहीं, कदापि नहीं। किंतु शर्त यह है कि अपने में भी पिघलाहट चाहिए।

असर है जज़्बे-उल्फ़त में तो खिंचकर आ ही जायेंगे ;
हमें परवा नहीं उनसे अगर वे तन के बैठे हैं।

आप नाना वस्तुओं को रंगदार देखते हैं, किंतु ये रंग वस्तुओं के निजी नहीं हैं। पत्ते का रंग हरा दिखाई देता है, किंतु यह हरा रंग पत्ते का नहीं है। रंग सब सूर्य के हैं; वस्तुओं के नहीं हैं। यदि रंग वस्तुतः चीज़ों के होते और सूर्य के न होते, तो उनको अँधेरे में देखने से भी वे दिखाई देते। यदि आप एक पत्ते को अँधेरे में देखें, तो आप उसके अन्य सब अंगों को अनुभव करेंगे, किंतु रंग का अनुभव नहीं करेंगे। कारण यह है कि यह रंग तो रंगवाले का है, हरे पत्तों में एक मसाला है—क्लोरोफ़ाइल (Chlorophyl), इसमें यह गुण है कि वह सूर्य की किरण के और सब रंग खा लेता है, किंतु

हरे रंग को लौटा देता है। अर्थात् यह कि जो रंग इस पत्ते में बिलकुल नहीं है, वही हम कहते हैं कि पत्ते का रंग है। काली वस्तुएँ वे हैं, जो सूर्य के उन सब सातों रंगों को खाती हैं। सफ़ेद वस्तुएँ वे हैं, जो उन सातों में से एक को भी नहीं खातीं, सबको लौटा देती हैं। यह प्रकृति का नियम प्रत्यक्ष जगत् में मालूम होता है, किंतु नियम प्रत्येक स्थान पर एक ही है। वही नियम बाह्य जगत् में है, और वही आभ्यन्तर जगत् में भी है। आभ्यन्तर जगत् में इस नियम को देखो। जिस प्रकार सूर्य में ये सात रंग हैं भी और नहीं भी हैं, उसी प्रकार परमेश्वर में भी सब गुण हैं भी और नहीं भी हैं। इसी का नाम माया है। जिस बात की हम पूर्ण रूप से व्याख्या न कर सकें, उसी का नाम माया है। संसार के लोगों को जो गुण दिये जाते हैं, वे वस्तुतः उनके नहीं हैं। वे परमात्मा के हैं। किंतु मनुष्य के गुण वे इस कारण कहलाते हैं कि मनुष्य इनके साथ काम करता है, अर्थात् उनको वास्तविक स्रोत की ओर लौटाता है। धनवाला धन को व्यय करने के कारण धनी बना है, बुद्धिमान् बुद्धि को व्यय करने से बुद्धिमान् बना है। दायाँ हाथ बाएँ से अधिक बलवान् क्यों है? क्योंकि वह शक्ति का प्रयोग करता रहता है, अर्थात् क्लोरोफ़ाइल (Chlorophyl) के समान ये सब सदैव काम किया करते हैं। प्रकृति का एक नियम यह है कि जितना व्यय करोगे, उतना पाओगे। काले मनुष्य वे होते हैं, जो कहते हैं "यह भी मेरा है, वह भी मेरा है।" सफ़ेद वे होते हैं, जो प्रत्येक वस्तु को परमेश्वर के समर्पण करते चले जाते हैं, अर्थात् जो परोपकार करते हैं, अथवा जो अपने प्रत्येक काम को परमेश्वर के लिये करते हैं। मतलब यह कि वे यह नहीं कहते कि अमुक काम में हमने यों सफलता प्राप्त की, वरन्

वे इस सबको परमेश्वर के कारण से कहते हैं। शाह महमूद ग़ज़नवी का एक सच्चा मित्र आयाज़ नामक था, जो वास्तव में घसियारा था, किंतु बादशाह की मित्रता के कारण इसका यहाँ तक उत्कर्ष हुआ कि वह मंत्री के पद पर नियुक्त किया गया। जब उसका उत्कर्ष हुआ, तो कई ईर्ष्या-युक्त पुरुषों, डाहियों को बुरा मालूम हुआ। और ये इस चिंता में लगे कि इसको किसी प्रकार नीचा दिखायें; अतः उन्होंने महमूद से शिकायत की कि आयाज़ प्रति-दिन खज़ाने में जाता है और वहाँ से रत्न निकाल ले जाता है। महमूद ने चाहा कि उसको अपनी आँख से देखें। एक दिन जब आयाज़ अपने नियत समय पर ख़ज़ाने में गया, तो लोगों ने बादशाह को सूचना दी। महमूद उन लोगों के साथ वहाँ गया और झरोखों के द्वारा देखने लगा। वहाँ क्या देखता है कि आयाज़ ने अपने मंत्री-वेष के सब वस्त्र उतार कर एक ओर रख दिए और अपने खुरपे को अपने सामने रख लिया, और कंबल बिछाकर उस पर नमाज़ पढ़ रहा है, और यह स्मरण कर रहा है कि हे भगवन्! यह मंत्रित्व मेरा नहीं है, यह तेरा है; यह मंत्रियों के वस्त्रादि मेरे नहीं हैं, तेरे हैं; यह शरीर में शक्ति तेरी है; यह आँख में ज्योति तेरी है; यह बाहुओं में बल तेरा है—अर्थात् वह अपने समस्त रंगों को जो जहाँ से आए थे, वहाँ को वापस लौटा रहा था और प्रेम से तार-तार रोता था। जब आयाज़ इससे निवृत्त होकर जाने का संकल्प करने लगा, तो महमूद तत्काल वहाँ पहुँच गया और आयाज़ से कहने लगा कि तुम मेरे गुरु हो, तुमने मुझको बचा लिया, नहीं तो मैं तो संसार के उन प्रलोभनों में डूब चुका था। अतः सफलता की पहली शर्त यह है कि हृदयों में प्रकाश भर जाय। प्रकाश अर्पण से भर जाता है। कर्म करने का तुमको अधिकार है, किन्तु

कर्म करने के साथ जो स्वार्थपरता लगी हुई है, उसको छोड़ दो। जिन लोगों और जिन जातियों को सफलता हुई है, उनको इसी प्रकार व्यवहार करने से हुई है। यदि किसी इतिहास या जीवन-चरित्र में इसके विरुद्ध लिखा है कि कोई व्यक्ति या कोई जाति स्वार्थपरता के साथ काम करके कृतकार्य हुई है, तो उसके सम्बन्ध में राम अत्यन्त ज़ोर के साथ कहता है कि वह ग़लत है और सरासर झूठ है। आर्थर हेल्प्स (Arther Helps) ने ऐसे ही अवसरों पर कहा है कि मुझको इतिहास मत दिखाओ, क्योंकि वह अवश्य मिथ्या होगा। जितना ही आप संसार के पीछे पड़ोगे, उतना ही वह आपसे दूर रहेगा।

भागती फिरती थी दुनिया, जब तलब करते थे हम ;
अब जो नफ़रत हमने की, वह बेक़रार आने को है।

निदान जब तक आप अपने मन को हाय-हाय, वाय-वाय में रखते हैं, उस समय तक आपका प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। परमेश्वर आनन्दस्वरूप है। जो मनुष्य आनन्द में रहता है, वह परमेश्वर में रहता है, और परमेश्वर उसमें रहता है। परमेश्वर का ध्यान करने की विधि यह है कि जो वस्तु आपके पास मौजूद हो, उस पर संतोष करके उससे लाभान्वित हो। अतः इस समय जितना प्रकाश या ईश्वरीय ज्योति आपके पास मौजूद है, उसको बर्ताव में लाओ। उसके पश्चात् आपको आगे मार्ग मिलेगा। इस रीति पर व्यवहार करने से धार्मिक लड़ाई-झगड़े तत्काल बन्द हो सकते हैं। आप प्रश्न करेंगे कि यह कैसे सम्भव है? इसका उत्तर स्पष्ट है। आप अपने धार्मिक नियमों को व्यवहार में लाइये, फिर देखिये कि धार्मिक लड़ाई-झगड़े बन्द होते हैं या नहीं। लड़ाई-झगड़े तो उस मार्ग को छोड़ देने से उत्पन्न होते हैं। आपके पास एक लालटैन है, जो दो सौ क़दम तक आपको आपका रास्ता दिखला सकती

है। अब यदि आप इस प्रकाश के सहारे दो सौ पग तक चले जाओ, तो वहाँ से वही (लालटैन) दो सौ क़दम और आगे तक आपको ले जा सकेगी। इसी तरह पर उस लालटैन के सहारे से, जिसमें केवल दो सौ क़दम तक प्रकाश डालने की शक्ति है, आप कोसों तक पहुँच सकते हैं; किन्तु यदि आप पहले ही से अपनी कोसों की मंज़िल का ख़याल करने लगें, तो परिणाम क्या होगा? स्पष्ट है कि लड़ाई-झगड़ा उत्पन्न होगा। यही दशा आपके धार्मिक सिद्धान्तों की है। यदि आप उन पर अमल करते जाओगे, तो कभी लड़ाई-झगड़े की दशा न आवेगी। यदि आप उनके प्रकाश को पृथक् रखकर पहले तर्क-वितर्क करने लगोगे, तो झगड़ा होना आवश्यक है। धार्मिक युद्ध केवल वे ही लोग करते हैं, जो अपने भीतर के प्रकाश को व्यवहार में नहीं लाते हैं—

सद जाँ फ़िदाए-आँकि ज़ुबानो दिलश यकेस्त।

अर्थ—जिनका दिल और वाणी एक हैं, उन पर सैकड़ों जानें नौछावर (क़ुरबान) हैं।

कदाचित् इस पर यह आपत्ति हो कि हम तो भूमि पर रहते हैं, हमसे भूमि की बातें कहना चाहिये, ये अलौकिक बातें हमारे किस काम की। प्यारे! इसका यही उत्तर है कि यहाँ धरती पर भी ऐसा ही आचरण करना चाहिये—अर्थात् हाथ रहे काम में और मन रहे राम में। जब क़ुमरी (घुग्घी) सरो (वृक्ष) की शाखा पर बैठती है, उसकी जिह्वा से मीठे-मीठे राग और स्वर अपने आप ही निकलने लगते हैं। इसी तरह जब आपका मन उस ईश्वरीय प्रकाश से भर जाता है, तो आपके मन से भी वे प्यारे-प्यारे राग आप ही निकलने आरम्भ हो जाते हैं। यह लैम्प जो रक्खा हुआ है, इससे प्रकाश क्यों निकलता है। कारण यह है कि इसकी चिमनी, जो इसका

बाह्य शरीर है, स्वच्छ और निर्मल है। इस कारण इसके भीतर का प्रकाश विना रोक बाहर चला आता है। अब स्वच्छ होने से क्या प्रयोजन है। उसका प्रयोजन यह है कि इसने अपने मन की कालिमा और द्वेष-भाव को निकाल दिया है। इसी प्रकार यदि आप भी अपने मन की कालिमा और अहंकार के भाव को निकाल दें, तो आपके भीतर का प्रकाश भी अपने आप बाहर निकल आएगा। यथा—

कब लिबासे-दुनयवी में छिपते हैं रौशन ज़मीर ;
जामए-फ़ानूस में भी शोला उरयाँ ही रहा।
कब सुबुकदोश रहे क़ैदिये - ज़िंदाने - वतन ;
बूए-गुल फाँदती है बाग़ की दीवारों को।

कदाचित् यह कहा जाय कि हम अपने धार्मिक सिद्धांतों की पाबन्दी करते हैं, और धार्मिक सिद्धान्त चाहते हैं कि झगड़ा किया जाय। इसका उत्तर यह है कि धार्मिक सिद्धान्तों का उद्देश कदापि लड़ाई-झगड़ा करना नहीं हो सकता। प्रत्येक धर्म का पहला सिद्धांत यह है कि ईश्वर को जानो और मानो। क्या इस पर आप आचरण करते हैं? कदापि नहीं। यदि आप इस पर चलते होते, तो क्या आप परमेश्वर की इतनी भी परवाह और इज्ज़त न करते कि जितनी आप अपने ज़िले के कलेक्टर की करते हैं। यदि इस समय इस जलसे (समारोह) में कलेक्टर साहब आ जायँ, तो सबकी साँस बन्द हो जायगी। प्रत्येक समय इस बात का ध्यान करेंगे कि कोई भद्दा वाक्य मुख से न निकल जाय, अथवा कोई निर्लज्ज चेष्टा न हो जाय। आप कभी कलेक्टर साहब के सामने चोरी न करेंगे, कभी उनके सामने किसी स्त्री को कुदृष्टि से न देखेंगे, और न उनके सामने कोई ख़राब वार्ता करेंगे।

बबीं तफ़ावत रा अज़ कुजास्त ता बकुजा !

अर्थः—देखिये, एक से दूसरे में अन्तर कितना है।

आपका धर्म सिखाता है कि परमेश्वर सर्वत्र विराजमान है। किन्तु शोक है और रोना आता है कि आप इस बात को जानकर भी हर प्रकार की पूर्वोक्त बातें करते हैं, और आपके मन में तनिक भी ईश्वर का भय नहीं आता है। यदि हम लोग परमेश्वर के अस्तित्व को मानते और जानते होते, तो उसकी उपस्थिति में स्त्रियों की ओर तकते हुए आँखें फूट न जातीं, झूठ बोलते समय ज़बान न निकल पड़ती? ब्रह्मश्रोत्रिय को ब्रह्मनिष्ठ होना चाहिये। यदि आचरण न हुआ, तो विद्या व्यर्थ है, वरन् हानिकारक है। मस्तिष्क की नसें जो ज्ञान को ग्रहण करती हैं, उनको ज्ञानेंद्रिय कहते हैं, और जो नसें भीतर के ज्ञान को बाहर व्यवहार में लाती हैं, उनको कर्मेंद्रिय कहते हैं, और स्वास्थ्य की दशा स्थिर रखने के लिये समस्त इंद्रियों को काम में लाना ज़रूरी है, अन्यथा परिणाम अच्छा न होगा। जो ब्रह्मश्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ नहीं होते, उनकी यह दशा होती है कि वे विद्या को भीतर ठूँसते जाते हैं, किन्तु उसको बाहर नहीं निकालते हैं, अर्थात् एक प्रकार की इन्द्रियों से काम लेते हैं, और दूसरे प्रकार की इन्द्रियों को बेकार रखते हैं। इनको आध्यात्मिक क़ब्ज़ और बुद्धि का अजीर्ण हो जाता है। इसी के कारण वे लड़ाई-झगड़े में पड़ते रहते हैं। अतः शर्त यह हुई कि संसार में सफलता होने के वास्ते हमको चाहिये कि जितनी बुद्धि हमारे पास है, उसको केवल अक़ली (तर्कवाली) ही न रक्खें, वरन् उसको व्यावहारिक भी बनावें। सफलता की शर्त दूसरी यह है कि ब्रह्मचर्य पालन करना चाहिये, चाहे आप नई रौशनी (विचार) के हों, या पुरानी रौशनी के; चाहे आपकी पुस्तकों ने उस पर ज़ोर दिया

हो अथवा न दिया हो, कुछ परवाह नहीं है। राम आपसे यह कहता है कि सफलता के लिये पवित्रता और ब्रह्मचर्य की अत्यन्त आवश्यकता है। यदि भारतवासी बचे रहना चाहते हैं, तो वीर्य को सुरक्षित रक्खें, अन्यथा कुचले जायँगे। यह दीपक आपके सामने जल रहा है, यह क्यों जलता है? इसके बीच के भाग में तेल भरा हुआ है। वह तेल बत्ती के द्वारा ऊपर चढ़ता है, और ऊपर आकर प्रकाश-रूप में परिवर्तित हो जाता है। यदि इसके तेलवाले भाग में कोई छिद्र हो जाय, तो उसका तेल धीरे-धीरे बह जायगा, और फिर इससे प्रकाश न निकल सकेगा। यही दशा आपकी है। यदि आपके भीतर का वीर्य नीचे न गिरेगा, तो यह ऊपर चढ़कर मस्तिष्क में जाकर आत्मिक ज्योति बन जायगा। किन्तु यदि आप इसके विरुद्ध करेंगे, अर्थात् अपने वीर्य को गिरायेंगे, तो आपकी वही दीपक की सी दशा होगी। जिन लोगों के शरीर से कोई अपवित्र कर्म नहीं होता, या जिनके मन में कोई अपवित्र विचार उत्पन्न नहीं होता, उनका वीर्य ऊपर चढ़कर बुद्धि में परिवर्तित हो जाता है। ऐसी ही अवस्था को इंगलैंड के प्रसिद्ध कवि ने यों वर्णन किया है—

My strength is as the strength of ten
Because my heart is pure. (Tennyson)

मेरी शक्ति है दसगुणी किसलिये
कि मेरा हृदय शुद्ध है, इसलिये।
दस ज्वानों की मुझमें है हिम्मत;
क्योंकि मुझमें है इफ़्फ़तो-अस्मत।

हनुमान् सबसे बड़ा वीर किसलिये था? क्योंकि वह यती था। कहते हैं कि मेघनाद बड़ा योद्धा था। उसको वही व्यक्ति

मार सकता था, जिसके हृदय में १२ वर्ष तक कोई अपवित्र विचार न आया हो। यह कौन व्यक्ति था? यह श्री लक्ष्मण जी थे। भीष्म का नाम भीष्म इसी कारण से पड़ा कि वह जितेंद्रिय थे। सर आइज़क न्यूटन जैसा प्रसिद्ध तत्त्वान्वेषक, जिसके ऊपर आज इँगलैंड को इतना अभिमान है, सत्तासी वर्ष तक जीवित रहा। मरते समय तक उसके होश-हवास बहुत ही ठीक थे, क्योंकि वह जितेंद्रिय था, और अत्यंत पवित्र था। जिस तत्त्ववेत्ता ने संसार के तत्त्वज्ञान को पल्टा दिया, वह कौन था? वह कैंट (Kant) था। यह बड़ा भारी यती था। इसके मन में कभी अपवित्र विचार तक नहीं आया। अमेरिका के हेनरी डेविड थोरो (Henry David Thoreau) और जर्मनी के प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता हर्बर्ट स्पेंसर (Herbert Spencer) दोनों बड़े जितेन्द्रिय थे। इस समय अमेरिका, इँगलैंड, जापान आदि देश उन्नति कर रहे हैं, इसका क्या कारण है? कारण यह है कि इनके यहाँ के गृहस्थ भी आपके यहाँ के जितेंद्रियों से अच्छे हैं। प्रथम तो उनके विवाह बीस वर्ष के पश्चात् होते हैं, फिर उनकी स्त्रियाँ कैसी शिक्षिता होती हैं कि जब पुरुष और स्त्री मिलते हैं, तो उत्तमोत्तम विषयों पर वार्तालाप करते हैं, एक दूसरे के सत्संग से लाभ उठाते हैं, कभी अपवित्र विचारों का अवसर नहीं आने पाता। इसके विरुद्ध आपके यहाँ की स्त्रियाँ शिक्षित नहीं होतीं। आपके यहाँ पुरुष और स्त्री की भेंट के अर्थ ही अपवित्र विचार हैं। और ठीक भी है। जब वह कुछ जानती ही नहीं, तो आप उससे क्या बातें करेंगे, सिवाय उन अपवित्र बातों के। अपने नित्यप्रति के जीवन में देखो कि पवित्रता का आपके कामों और संकल्पों पर क्या प्रभाव होता है। यदि आप पवित्र हैं, अर्थात् यदि आप अपने

वीर्य (Sex energy) को सुरक्षित रक्खे हुए हैं, तो आप बहुत शीघ्र कृतकार्य होंगे। राम जब प्रोफ़ेसर था, उसका निजी अनुभव क्या था? और जिस समय राम सफल या असफल विद्यार्थियों की सूची बनाता था और उनसे पूछा करता था कि परीक्षा से कुछ दिन पहले उनकी क्या अवस्था थी? तो राम ने इससे भी परिणाम निकाला था कि जो विद्यार्थी परीक्षा से पहले उत्तम और पवित्र विचार रखते थे, वे कृतकार्य होते थे, और जो अपवित्र विचार रखते थे और सदैव भयभीत रहते थे कि कहीं असफल न हों, वे अनुत्तीर्ण हो रहते थे। अतः सिद्ध है कि जैसे जिसके विचार हृदय के भीतर होते हैं, वैसा ही उसको परिणाम प्रकट होता है। इस बात का प्रमाण इतिहास से भली भाँति मिल सकता है। प्रसिद्ध योद्धा पृथ्वीराज, जो कई एक युद्धों में मुसलमानों को पराजित कर चुका था, अंत में भोग-विलास में डूब गया, और आपको आश्चर्य होगा कि अंतिम बार जब वह युद्धक्षेत्र को गया, तो उसकी कमर उसकी रानी ने कसी थी। परिणाम क्या हुआ? युद्धक्षेत्र से मुँह काला करके असफल लौट आया। नैपोलियन, जिसके साहस और वीरता की धाक सारे संसार में जम गई थी, जब वाटरलू के समरांगण को जाने लगा, तो उसके पहले शाम को वह अपने आपको एक अपवित्र चाह में गिरा चुका था। परिणाम स्पष्ट है कि बड़ी विकट हार हुई। अभिमन्यु, कुरुक्षेत्र के युद्ध का प्रसिद्ध योद्धा, जिस दिन मारा गया, उससे पहले सायंकाल को वह अपनी नवीन प्रिय पत्नी के पास गया था, और वहाँ वीर्य गिरा कर आया था। स्मरण रक्खो, अपवित्र वस्तु में कुछ आनंद नहीं है। जिस प्रकार गुलाब का फूल कैसा सुगंधित होता है, किंतु उसमें शहद की मक्खी भी रहती है। जब आपने

उसको नाक में लगाया, उसने नाक की नोक पर डसा। इस प्रकार संसार की कान्ति और कटाक्ष तथा सांसारिक वस्तुएँ बड़ी चित्ताकर्षक होती हैं और बहुत ही भली जान पड़ती हैं, और वे आपके मनों को लुभाती हैं। किंतु चखकर देख लो कि इनमें एक आध्यात्मिक विष है, जो आपको उन्नति करने से वंचित रक्खेगा। ये अनुचित अनुराग, ये अनुचित कामप्रियता, ये अनुचित सतीत्व का भंग करना, ये सब उस गुलाब के फूल के तद्वत् हैं, जिनमें शहद की मक्खी है और जो आपके नाक की नोक पर काट लेती है। अतः नियम यह है कि यदि आपको ये सांसारिक बातें नहीं हिला सकतीं, तो आप संसार को अवश्य हिला सकते हैं।

तीसरी शर्त सफलता की एक आध्यात्मिक शर्त है। एक बादशाह की कथा है कि उसने एक कमरे में एक सींग लटका रक्खा था और उस सींग की खोल में पानी भरा था। बादशाह ने यह विज्ञापन दे रक्खा था कि जो कोई इस सींग का सब पानी पी ले और सींग खाली कर दे, तो उसको वह अपना समस्त राज्य दे देगा। बहुत से लोग आये और उन्होंने पानी पिया, किन्तु कोई भी उसको ख़ाली न कर सका। वह सींग देखने में तो ज़रा सा जान पड़ता था, किन्तु उसका सम्बन्ध समुद्र से था और यही कारण था कि वह ख़ाली नहीं होता था। इस तरह पर यद्यपि आपके शरीर ज़रा-ज़रा से हैं, किन्तु उनका गुप्त सम्बन्ध उन समुद्रों के समुद्र ईश्वर स्वरूप के साथ है। जो व्यक्ति इस सम्बन्ध को जगाए रखता है, और इसको स्थिर रखता है, उसकी शक्ति अनन्त है। आप सिवाय इसके और कुछ नहीं हो। जब यह मामला है, तो परमेश्वर तो सत्यकाम और सत्यसंकल्प है, अतः आपके अन्तर्हृदय की तह में जो ख़याल है, वह सत्य होना चाहिए, और उस ख़याल की सदैव विजय है। यथाः—

दौलत गुलामे-मन शुदो, इक़बाल चाकरम ।

अर्थ—दौलत मेरी ग़ुलाम और इक़बाल (विभूति) मेरी सेविका हो गई है।

अब राम कुछ उदाहरण इतिहास से देगा, जिससे सिद्ध होगा कि यह सिद्धान्त बिलकुल ठीक है। सिंहविक्रम महाराजा रणजीतसिंह अपनी सेना लिए हुए अटक नदी के निकट पड़ा हुआ था। उस पार शत्रु की सेना थी। रात का समय था। अन्धकार छाया हुआ था, न वहाँ पर कोई नाव थी जिसके द्वारा पार उतरा जाय, और न वहाँ कोई दूसरा साधन मालूम होता था। अब बड़ी कठिनता थी कि क्या किया जाय। सिपाहियों ने रणजीतसिंहजी से जाकर अपनी कठिनाइयाँ वर्णन कीं। वह तो जैसा श्रीकृष्णजी ने कहा है—

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥

अर्थ—"हे अर्जुन, तू सुख और दुःख तथा हानि और लाभ को सम करके एवं हार जीत का विचार न करके युद्ध के लिये खड़ा हो। ऐसा करने से तू पाप को प्राप्त नहीं होगा।" यदि तू युद्ध नहीं करेगा, तो महापाप का भागी होगा। इस विचार में मग्न था। उसको न विजय की प्रसन्नता थी और न पराजय का शोक था। वह तो इस ख़्याल में मस्त होकर अपना धर्म पालन करता था। उसने अपने सिपाहियों से कहा:—

जाके मन में अटक है, वाको अटक यहाँ ;
जाके मन में अटक ना, वाको अटक कहाँ ?

यह सुनते ही सेना फाँद पड़ी और उस पार पहुँच गई। उसको देखकर शत्रु का साहस टूट गया कि जब ऐसे विशाल अगम नद से ये लोग विना किसी नौका आदि के आन की

आन में पार उतर आए हैं, तो इनका सामना करना असंभव है, शत्रु भाग खड़े हुए, और क्षेत्र रणजीतसिंहजी के हाथ में रहा।

इसी तरह एक बेर हज़रत मोहम्मद साहब एक मुहिम (युद्ध) पर जाने के लिये बड़ी तैयारी कर रहे थे। किसी ने कहा कि आप इतनी तैयारी तो कर रहे हैं, किंतु यदि आप की हार हुई, तो कितनी लज्जा होगी और इसके साथ ही आप का साहस भी टूट जायगा। इस पर वह खिलखिलाकर हँस पड़े और कहने लगे—"परिश्रम करना मेरा काम है, न कि सफलता चाहना। मैं तो अल्लाह के हुक्म से काम कर रहा हूँ, अपना फ़र्ज़ अदा कर रहा हूँ. इससे अधिक मुझको कुछ संबंध नहीं है।" फ़्रांस और जर्मनी की लड़ाई में महाराज .फ़ैडरिक की बिलकुल हार हो गई थी। शत्रु के सिपाही उसके दुर्ग में घुस गये थे, और रंगरलियाँ मचा रहे थे; किंतु .फ़ैडरिक को अपने पक्ष में भगवान् के होने का निश्चय था। अतः उसने साहस को हाथ से न दिया। उसने अपने लोगों को जमा किया और उनमें से कुछ को एक ओर भेज दिया कि तुम टीले पर जाकर खड़े हो, कुछ को दूसरी ओर भेज दिया, इसी प्रकार चारों ओर भेज दिया। इसके बाद स्वयं साहस पूर्ण हुए बेधड़क दुर्ग के भीतर घुस गया और सिपाहियों से बोला कि तुम लोग हथियार रख दो। उन्होंने प्रश्न किया कि क्यों? उसने कहा, तुम नहीं देखते हो कि मेरी सेना सब ओर से आ रही है और तुम घेरे गए हो। यह देखकर वे लोग भयभीत हो गये। और सब हथियार उसके सामने रख दिये। यदि आपका हृदय ईमान से भरा है, तो एक शत्रु क्या, सारा संसार आपके सम्मुख हथियार डाल देगा। यही हृदय का उत्साह है, जिसने विकट हार को पूर्ण विजय में परिवर्त्तित कर दिया।

सारी ख़ुदाई इक तरफ़, फ़ज़्ले-इलाही इक तरफ़ ;
न महँगे पर न सस्ते पर, नहीं मौक़ूफ़ ग़ल्ले पर ;
फ़तेह तो बस उसी की है, ख़ुदा है जिसके पल्ले पर ।

हाथी और सिंह की देह में कितना अन्तर है। किंतु देखो, सिंह के उत्साह और साहस के कारण हाथी को अपने शरीर के भारी होने पर भी सामना करना कठिन हो जाता है। हाथी को अपनी शक्ति पर बिलकुल भरोसा नहीं होता। वह सदैव झुंडों में रहता है, क्योंकि उसको संदेह रहता है कि अकेला पाकर कोई उसको खा न जाय। सिंह यद्यपि तन में उससे छोटा है, किंतु साहस उसमें भरा हुआ है। यही कारण है कि हाथी उसके सामने खड़ा नहीं हो सकता। सिंह अपने भीतरवाले ईश्वर अर्थात् आत्मा को मार नहीं रहा है, वरन् उसको व्यावहारिक रूप से स्पष्ट करता है।

चीन में एक लड़का था। उसके मा-बाप अत्यन्त दरिद्र थे। वह यहाँ तक दरिद्र था कि पढ़ने के लिये उसे तेल तक नहीं मिलता था, किंतु उसको पढ़ने का शौक़ था। वह बहुत से जुगुनुओं को एकत्र करके एक कपड़े में बाँधता था और जब वे चमकते थे, उनके प्रकाश से पढ़ लेता था। लोगों ने उससे कहा कि तुम यह क्या भद्दी चेष्टा करते हो, ऐसा परिश्रम किसलिये करते हो, क्या बादशाह के वज़ीर तुम्हीं होगे? अहाहा! उसने क्या उत्तर दिया, जिसको सुनकर सबका चित्त प्रसन्न हो गया। कहता है, मेरे हृदय में ऐसी उमंगें उठती हैं, जिससे आशा बँधती है कि मैं वज़ीर बनूँगा। अन्त में वह लड़का चीन का वज़ीर हो ही गया।

प्रायः लोग कहते हैं कि हम अमुक काम क्योंकर करें? अरे भाई, आत्महत्या या ईश्वर-हत्या क्यों कर रहा है। तू

शरीर नहीं है, तू स्वयं ही अनंत है, फिर किस प्रकार क्या पूछता है। तुमको क्या ज्ञात नहीं कि जलस्थित विद्या (Hyd ro Statics) का एक सिद्धान्त है, जिससे समस्त सागर के पानी को एक ज़रा सा पानी रोक सकता है। इस प्रकार एक मनुष्य सारे संसार को रोक सकता है, यदि वह अपने भीतर के ईश्वरत्व पर खड़ा हो जाय। कारणों का कारण तो तू ही है, फिर सामान या साधन क्या ढूँढ़ता है।

स्काटलैंड का एक बच्चा वहाँ के अनाथालय से भागकर लंडन चला आया। लंडन में संयोग से वह लॉर्ड मेयर के बाग़ में पहुँच गया और वहाँ खेलने लगा। संयोग से उधर से एक बिल्ली निकली। बच्चे ने उसकी दुम पकड़ ली और उससे बातें करने लगा। इतने में निकट से घंटे की ध्वनि सुनाई दी, जो लगातार बज रहा था। बस, अब वह बच्चा बिल्ली से बात करने लगा और कहने लगाः—

What does the mad bell say?
Ton! Ton!! Ton !!! Whittington, Whittington,
Lord Mayor of London!

अर्थः— यह पगली घंटी क्या कहती है? टन! टन!! टन!!! ह्विट्टिङ्गटन, ह्विट्टिङ्गटन, लॉर्ड मेयर आफ़ लंडन!

वह अपनी इसी बातचीत में था कि संयोग से लॉर्ड मेयर उधर से आ निकला। उसने सुना कि कोई व्यक्ति बात कर रहा है। वहाँ आकर यह हाल देखा। उसने लड़के से पूछा कि तू क्या कर रहा है? उसने उत्तर दिया, लॉर्ड मेयर आफ़ लंडन। लॉर्ड मेयर बहुत प्रसन्न हुए। उसको अपने यहाँ ले गये, और उसको शिक्षा के लिये स्कूल में भेजा। वहाँ उसने अत्यन्त परिश्रम के साथ पढ़ा, और ख़ूब विद्या प्राप्त की। धीरे-धीरे वह एक दिन लॉर्ड मेयर आफ़ लंडन हो ही गया।

. एक कवि था। अपनी विद्या में प्रवीण था। उसने बहुत से पद्य कहे और बादशाह के सम्मुख ले गया। बादशाह उनको सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ, और खूब पारितोषिक दिया। बेगमों ने भी उसकी वाणी को पसंद किया, और जब बादशाह महल में आया, उनसे इच्छा प्रकट की कि कवि कहीं महल के निकट ही रक्खा जाय। दूसरे दिन बादशाह ने कवि से पूछा—"कहाँ रहते हो?" वह मतलब समझ गया, और बादशाह से बोला "मैं तो अंधा हूँ।" यह सुनकर बादशाह ने कहा—"जब यह अंधा है, तो कोई हर्ज नहीं है, इसको महल के निकट एक कमरे में ठहरा दिया जाय।" निदान, ऐसा ही किया गया। अब वह वहाँ रहने लगा, और नौकरों-चाकरों को दिक़ करने लगा। एक दिन लौंडी से कहा कि लोटा उठा दो, हमको आवश्यकता है। उसने कहा, यहाँ लोटा कहाँ है? कहने लगा—उठा दो। उसने फिर वही उत्तर दिया। निदान, बहुत कहा-सुनी के बाद बोल उठा, अरी! वह क्या पड़ा है, क्यों नहीं उठा देती? बस लौंडी दौड़ी हुई महलों में गई और बेगमात से कहा—"यह मुआ तो देखता है, अंधा नहीं है। यह मुआ हम सबको बराबर घूरता है।" तत्काल बादशाह को खबर की गई। परिणाम यह हुआ कि दरबार से निकाला गया, और फिर वह सचमुच अंधा भी हो गया।

आप कहते हैं, सामान नहीं हैं, कैसे काम करें? यह सब संकल्प का खेल है। जब आपके भीतर निश्चय की शक्ति आ जायगी, तो सब सामान अपने आप आपके सामने आ जायँगे। देवता (प्रकृति की शक्तियाँ) आपके लिये अपना स्वभाव बदल देंगे। ऊपर जो उदाहरण वर्णन किये गये हैं, उनसे स्पष्ट सिद्ध है कि अच्छे खयालवाले अच्छे होंगे,

किंतु बुरे मनोरथ माँगनेवाले बुरे होंगे। जैसा ख़याल करोगे, वैसे ही हो जाओगे।

> गर दरे-दिल तो गुल गुज़रद गुल बाशी ;
> वर बुलबुले-बेक़रार बुलबुल बाशी ;
> सौदाये-बला रंजो-बला मी आरद ;
> अंदेशा-ए कुल पेशा कुनी कुल बाशी।

अर्थः—यदि तेरे चित्त में पुष्प (प्यारे) का ख़याल होगा, तो तू पुष्प (प्यारा) हो जायगा, और यदि चंचल बुलबुल का, तो व्याकुल बुलबुल हो जायगा। स्मरण रहे कि दुःखों का ख़याल करनेवाला दुःख और कष्ट अपने ऊपर ले आता है, और सबका शुभचिन्तक स्वयं सब हो जाता है।

प्रत्येक प्रार्थना सुनी जाती है। जो प्रार्थना दिल से निकलती है, वही स्वीकृत होती है। इसका यह तात्पर्य है कि जैसा आपका संकल्प होगा, उसको आपके भीतर का सच्चा बल पूरा कर देगा। आपमें वह शक्ति विद्यमान है, जिससे आप देवताओं की बराबरी कर सकते हैं। देवता के अर्थ प्रकृति की शक्तियों के हैं। यदि आप वेद के अनुसार चलें, तो आप देवताओं तक पहुँच सकते हैं। आप अपने विश्वास और निश्चय के बल से प्रकृति की शक्तियों को खींचकर ला सकते हैं, और उनसे बराबरी कर सकते हैं। किंतु आपने उन साधनों को भुला दिया है। जब तक उन साधनों को आचरण में लाते थे, तब तक उस प्रकार के विचार हृदय में खचित थे, उस समय वैसे ही परिणाम निकलते थे। किंतु जब से उन उपायों को छोड़ा, और ख़राब विचारों ने दिल में जगह पकड़ी, रंगत भी बदल गई। जब हिन्दुओं में यह विचार उत्पन्न हुआः—

"हमको नौकर राखो जी, हमको नौकर राखो जी।

मैं गुलाम, मैं गुलाम, मैं गुलाम तेरा ;
तू दीवाने, तू दीवान, तू दीवान मेरा।"

और हिन्दुओं में एक गुण विशेष यह है कि वे सदैव सच्चे होते हैं। अतः उनकी वह स्वाभाविक सचाई उक्त विचार पर लगाई गई, और उनका क्योंकि यह हार्दिक विचार था, इसलिये उनकी यह मनोकामना पूरी हुई। और वे इस तरह से विदेशियों के गुलाम (दास) हो गये। स्पष्ट है कि जैसा ख्याल करोगे, वैसा पाओगे। हमें अपने ख्यालों को सुधारना चाहिए। बुद्ध भगवान ने भी यही सिखाया है। अतः न अपने संबंध में और न किसी अन्य के संबंध में अपने हृदय में मलीन विचारों को आने दो। भीतर और बाहर ईश्वर ही ईश्वर को देखो। मोहम्मद साहब के हृदय में यह बात समा गई थी, इस कारण उन्होंने सिखाया था कि (ला इलाह इल्लिल्ला) "नहीं है कुछ सिवाय परमेश्वर के।" हज़रत ईसा मसीह की नस-नस में भी यही विचार दौड़ रहा था। अतः उन्होंने भी यही कहा कि "मैं और मेरा बाप (ईश्वर) एक ही है (I and my father are one.)।" अब उसको लोग समझें या न समझें; मगर असल बात यही है। जब हज़रत मोहम्मद साहब के दिल में यक़ीन आ गया, तो उन्होंने कहा कि अगर सूर्य मेरी दाईं ओर और चाँद मेरी बाईं ओर आ आकर धमकाने लगें कि पीछे हट जाओ, तब भी मैं पीछे न हटूँगा। एक आदमी जो जंगलों का रहनेवाला था, उसके हृदय में इस विश्वास की आग भड़क उठी, और उसने अरब के मरुस्थल में इसके काले रेत के दानों को भड़काया। वह ज़र्रे बारूद के छर्रे बन गए, और योरप वा अफ़रीका के पश्चिमी सिरे से लेकर एशिया के पूर्वी सिरे तक एक शताब्दी के भीतर फैल गये। यह शक्ति है आत्मबल की, यह शक्ति है विश्वास की, यह

शक्ति है निश्चय (यक़ीन) की। इस पर भी कहते हो कि सामान की आवश्यकता है? सामानों के सामान आप स्वयं हो। इस विचार को ब्रह्मविद्या कहते हैं।

जिस प्रकार एक सुन्दर बालक चेचक के रोग से बिलकुल कुरूप हो जाता है, और उसकी जान पर बन आती है, और उसको कुछ लाभ गाय के थन के लिंफ़ (lymph) का टीका लगाने से होता है; इसी तरह हिंदू जाति को अविद्या की चेचक निकली है, और वह कुरूप होती जाती है, उसका अंत भी निकट जान पड़ता है, अतः उसको भी टीका लगाने की आवश्यकता है। इस टीके के लिये लिंफ़ कहाँ से आवेगा? वह भी गौ के थन से लिया जायगा। गौ के अर्थ उपनिषद् के हैं। और वह लिंफ़ गौ रूपी उपनिषद् से लिया जायगा। मतलब यह है कि ब्रह्मविद्या को उपनिषदों से सीखो, और उस पर आचरण करो, तो यह अविद्या की चेचक तत्काल अच्छी हो जायगी।

लोग कहते हैं कि इतिहास पढ़ने से ज्ञात होता है कि जो जाति एक बेर उन्नति करके अवनति को प्राप्त हुई, फिर वह दुबारा उन्नति नहीं करती। यह ख़याल तुच्छ है। आपका इतिहास क्या है? वही एक हज़ार वर्ष का इतिहास, और उस पर यह अभिमान। अरे भाई! वह तो एक युग का भी पूर्ण इतिहास नहीं है। प्राकृतिक विकास का इतिहास देखने से ज्ञात होता है कि कोई वस्तु नष्ट नहीं होती, किसी न किसी रूप में वह विद्यमान रहती है। कहते हैं कि:—

"हर शाख़ रंग आमेज़ी दर फ़स्ले-ख़िज़ाँ अंदाख़्ता।"

अर्थः—प्रत्येक शाख़ (टहनी) पतझड़ की ऋतु में फली-फूली है। कैसा आश्चर्य है।

फिर देखो, प्रकृति आपको बताती है कि तारे पूर्व से पश्चिम को जाते हैं, और फिर वहाँ से पूर्व को लौट आते हैं। यही

दौर या चक्र है। इसी प्रकार सौभाग्य का तारा पूर्व से पश्चिम को गया, और फिर वहाँ से पूर्व को लौटा आ रहा है। इतिहास इसकी साक्षी देता है। देखो, एक युग था, जब भारतवर्ष का तारा अभ्युदय पर था, वहाँ से पश्चिम को चला, फ़ारस में आया। उसके पश्चात् आस्ट्रिया आदि की बारी आई। वहाँ से यूनान पहुँचा। यूनान को छोड़कर रूम गया। रूम के बाद स्पेन आदि की बारी आई। फिर इँगलैंड पर कृपादृष्टि हुई। वहाँ से अमेरिका गया। इस समय अमेरिका का पश्चिमी भाग कैलीफ़ोर्निया अत्यंत उन्नति पर है। वहाँ से जापान में आया। फिर अब कैसे कह सकते हैं कि भारतवर्ष वंचित रहेगा, इसकी बारी नहीं आएगी? अवश्य आएगी, अवश्य आएगी।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

आनन्द! आनन्द!! आनन्द!!!

सुधार

[जनवरी १९०२ ई० में भारत-धर्म-महामण्डल भवन, मथुरा में स्वामी राम का व्याख्यान, श्रीनारायण स्वामी द्वारा लिखित नोटों से ।]

आजकल संसार में परोपकार का बड़ा कोलाहल सुनाई देता है। यह शब्द प्रत्येक कान में सुनाई देते ही हृदय में सहानुभूति का जोश उत्पन्न करता है, और सुननेवालों के मन में सुधार करने का विचार उत्पन्न कर देता है। किन्तु आश्चर्य की बात है कि परोपकार के यथार्थ अर्थ से तो लोग जानकारी नहीं प्राप्त करते, केवल बाह्य 'हाहा-हूहू' की लेक्चरबाजी में लग जाते हैं। इसीलिए परोपकार के वास्तविक अर्थ न समझने से और उस पर आचरण (अमल) न करने से सुधारक महाशय से न तो संसार का पूरा-पूरा उद्धार होता है, और न उसे स्वयं कुछ लाभ प्राप्त होता है। अतः औरों का सुधार करने से पहले सुधार के इच्छुक को सुधार के अर्थ और साधनों से जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। अँगरेजों के यहाँ आजकल यह उक्ति रिवाज पकड़ती जाती है कि "पहले अपने को किसी चीज के अधिकारी बनाओ, फिर उसके प्राप्त करने की इच्छा करो (First deserve & then desire)।" किंतु वेदांत का इस विषय से सम्बन्ध नहीं। वेदांत में तो यह सिद्धांत अनादि काल से चला आता है कि "अपने को किसी वस्तु के अधिकारी तो निस्सन्देह बनाओ, किंतु उसकी प्राप्ति की इच्छा न करो (Deserve only & need not desire)।" क्योंकि वेदांत पुकार-पुकारकर कहता है कि जिन वस्तुओं का आपने अपने को अधिकारी बनाया है, अधिकार प्राप्त करने के पश्चात् वे वस्तुएँ आपके पास विना

किसी प्रकार की इच्छा के किसी न किसी द्वारा अवश्य चली आयेंगी। अधिकारी बनने या होने से कोई और अभिप्राय नहीं है, वरन् इस प्रबंध का स्पष्ट तात्पर्य और उद्देश्य यह है कि जिस प्रकार से एक मनुष्य छोटे-छोटे पदों से उन्नति पाता हुआ एक उच्च पद पर पहुँच कर राजा का पद पा लेता है, तो उस समय वह अपने राज्य की समस्त सम्पत्ति, महल और धन-धरती के पाने का अधिकारी हो जाता है। अब वह इन वस्तुओं के पाने की इच्छा प्रकट करे या न करे, उसके सिंहासनासीन होने पर वस्तुएँ उसकी सेवा करने को अपने आप उसके पास चली आती हैं, वरन् उस समय उसका इच्छा करना अपने आपको छोटा बनाना है, और अपने को धब्बा लगाना है। यह एक कहानी है कि एक महात्मा इस बात के अधिकारी हो गए थे कि उनके निकट सांसारिक पदार्थ आनकर उनकी नित्यप्रति सेवा करें, किंतु एक अवसर पर एक व्यक्ति जब उनके लिये बताशों का थाल लाया, तो महात्माजी ने बताशे लेने की इच्छा करके अपने मुखारविन्द से यह उच्चारण किया कि दो बताशे हमको दे दो। इस पर थाल लानेवाले ने दो बताशे तो महात्माजी को दे दिए, किंतु शेष बताशों को उन्हें लालची समझने के कारण वहाँ रखना उचित न समझकर वह व्यक्ति थाल लौटा ले गया। इस प्रकार महात्माजी शेष बताशों से भी वंचित रहे, और इच्छा प्रकट करने के कारण थाल लानेवाले की दृष्टि में भी कम उतरे। इसी तरह अधिकारी होने पर भी अधिकार-योग्य वस्तु की इच्छा प्रकट करना अपने अधिकारों को खोना और अपनी इच्छा को बट्टा लगाना होता है। भगवन् ! यदि आप अपने आपको समस्त वस्तुओं का मालिक और अधिकारी बनाना चाहते हैं, तो उठो, अपने स्वरूप में झण्डे गाड़ो, अपने असली स्वरूप में लीन हो जाओ,

और अपने असली स्वरूप में मस्त होकर सारे संसार के ईश्वर और मालिक बन जाओ। आपका अपने स्वरूप में लीन होना ही आपको सारे संसार का सम्राट बना देगा। यह सम्राट्-पद केवल इस संसार का ही नहीं प्राप्त होगा, वरन् आपका अपने स्वरूप में निवास करना आपको समस्त लोक और परलोक का सम्राट् बना देगा। अपने इस वास्तविक साम्राज्य का सिंहासन सँभालने पर आप समस्त धरती और आकाश अर्थात् लोक और परलोक की वस्तुओं के स्वामी और अधिकारी हो जाओगे। केवल असली साम्राज्य पाने की आवश्यकता है। संसार के पदार्थ आदि तो अपने आप आपकी सेवा करने को तत्पर हो जायँगे। आपको उस समय इच्छा करने की भी आवश्यकता न होगी। उठो! उठो!! उठो!!! अपने स्वरूप में डेरे लगाओ, और विराट् स्वरूप के सिंहासन पर आरूढ़ हो, फिर आपके केवल एक संकेत (کن) से भी सारे संसार के काम पूरे होते चले जायँगे। परोपकार का उपाय केवल 'हाहा-हूहू' नहीं, वरन सर्वोत्तम परोपकार अपने आत्मा में लीन होना ही है। जैसे विज्ञान के मतानुसार वायु हल्की होकर जब ऊपर को उठती है और अपना प्रथम स्थान छोड़ देती है, तो इधर-उधर की चारों ओर की भारी और ठंढी हवा हल्की हवा की खाली जगह घेर लेती है, अर्थात् चहुँ ओर की हवा पहली हवा के हल्का होकर उड़ जाने पर एक-एक श्रेणी अपने आप उन्नति करती जाती है, इसी प्रकार एक महात्मा के ब्रह्मनिष्ठ होने अर्थात् अपने असली स्वरूप में लीन हो जाने पर उपरि वर्णित वायु की भाँति शेष चारों वर्णों के लोग बिना किसी प्रकार की इच्छा और प्रयत्न के महात्मा की खाली की हुई जगह को घेरने के लिये अपने-अपने दर्जों से एक-एक दर्जा अपने आप उन्नति कर जाते

हैं। अतएव अपने आपको अपने स्वरूप में लीन करना अर्थात् निज स्वरूप में निमग्न होना ही परोपकार करना है। तात्पर्य यह कि आपके मन का अपने सूर्य रूपी आत्मा की किरणों के द्वारा अहंकार रूपी भारी बोझ से शून्य और हल्का होकर अपने स्वरूप में उड़ जाना, अर्थात् लीन हो जाना, ही संसार के और पुरुषों का सुधारना है, नहीं तो सुधारक महाशय या सुधार के इच्छुक जितना ही अपने वास्तविक स्वरूप से नीचे रहेंगे, उतना ही शेष मनुष्य निचले दर्जों पर रहेंगे और परोपकार करने के अर्थों का मिथ्या वरन् उल्टा व्यवहार करते रहेंगे; क्योंकि अपने स्वरूप में अवस्थान न करना ही दूसरों का परोपकार न करना है, वरन् अपने आपको नीचे गिराए रखना है। इसलिये ऐ सुधार के इच्छुको! और ऐ संसार का उद्धार करनेवालो! यदि संसार का उद्धार करना चाहते हो, तो उठो, अपने स्वरूप में लीन हो जाओ, शेष सब लोग अपने आप उन्नति कर लेंगे, या यों कहो कि शेष सब लोगों का विना आपकी इच्छा और प्रयत्न के अपने आप भला हो जायगा; और आपमें भी जब अपने स्वरूप में निष्ठा होगी, तो सारे संसार को हिला देने की शक्ति आ जायगी, अर्थात् अनन्त स्वरूप से अभेद होने के कारण अनन्त शक्ति भी आपमें भर जायगी। इस प्रकार आपका केवल राजगद्दी सँभालना ही सारे काम-धन्धे को ठीक कर देता है, क्योंकि विना असली साम्राज्य के सिंहासन पर स्थित हुए साम्राज्य के काम पूरे नहीं होते, अतः अपने स्वरूप में लीन होना परोपकार के लिये मुख्य उपाय समझना चाहिए, अपने अनन्त स्वरूप से मन को अभेद करने से ही अनन्त शक्तियाँ प्राप्त होंगी। जैसे एक नमक की डली यदि खाली गिलास में डाली जाय, तो एक परिच्छिन्न स्थान घेरती है, और जब पानी से भरे हुए गिलास में डाली

जाय, तो पानी में घुल जाने से (अर्थात् जल के साथ मिल जाने से) वह डली अपनी परिच्छिन्न जगह छोड़कर गिलास के समस्त पानी में फैल जाती है और समस्त जल में नमकीन स्वाद देने की शक्ति रखती है, या यों कहा जाय कि जितना ही नमक की डली अपने परिच्छिन्न स्थान, नाम और रूप को छोड़ती जाती है, और पानी में समाती जाती है, उसमें उतना ही स्वाद फैलाने की शक्ति बढ़ती जाती है; इसी प्रकार मन यद्यपि परिच्छिन्न शक्ति का खंड माना गया है, किंतु जितना ही वह अपने परिच्छिन्न स्थान, नाम और रूप को छोड़कर अपने स्वरूप के अनन्त सागर से अभेद होता है, उतना ही उसकी अनन्त (अपरिच्छिन्न) शक्तियाँ फैलती भी दिखाई देती हैं, अर्थात् उतना ही मन अपरिच्छिन्न शक्तियाँ प्रकट करने का बल भी उत्पन्न करता चला जाता है। इसी प्रकार से, भगवन्! यदि आप अपनी अनन्त (अपरिच्छिन्न) शक्तियाँ प्रकट किया चाहते हैं, और उन अपरिच्छिन्न शक्तियों से संसार का उद्धार किया चाहते हैं, तो मन को कैवल्य-स्वरूप में इस प्रकार लीन कर दो कि जैसे मजनूँ के प्रेम के सम्बन्ध में एक कवि ने कहा है—

ख़ूँ रगे-मजनूँ से निकला फ़स्द लैला की जो ली;
इश्क़ में तासीर है पर जज़्बे-कामिल चाहिए।

अर्थात् मजनूँ लैला के साथ ऐसा अभेद हुआ था कि लैला और मजनूँ में बिलकुल अंतर न रहा, वरन् लैला की फ़स्द लेने पर भी ख़ून मजनूँ की नस से निकला। जितना ही आप अपने को परिच्छिन्न करते जाओगे, अर्थात् नमक की डली की भाँति परिमित शरीर में मन को घेरे रक्खोगे, उतना ही आप अपने को असमर्थ और शक्ति-हीन बनाते जाओगे। अतः मन को शरीर के ख़याल से दूर हटाकर आनंदघन रूपी समुद्र में लीन

करना ही समस्त अनंत शक्तियाँ प्राप्त कर लेना है। जब इसी प्रकार से व्यावहारिक रीति पर मनुष्य तन्मय (यूयं वयं, वयं यूयं) हो जाता है, अर्थात् जिस समय वेदांत-रूप हो जाता है, तो पूर्व संकल्प नमक की डली की तरह परिमित स्थान को छोड़कर अपने अनंत स्वरूप में समा जाते हैं, और इस प्रकार सबके साथ अभेद और प्रेममय होने पर समस्त मनोकामनायें विना इच्छा और प्रयत्न के पूरी हो जाती हैं। अपने आत्मा में लीन होने के लिये सुधारक महाशय को पहली आवश्यकता हृदय-रूपी पर्दे को ज्ञान-रूपी तेल से तर करने और स्वच्छ बनाने की है। जैसे कागज़ की तह यदि लैम्प की लाट के आगे रक्खी जाय, तो लाट इतना प्रकाश नहीं करती, जितना तेल से भिगोई हुई कागज़ की तह कर सकती है। (अर्थात् कागज़ की तह विना तेल से भिगोने के अच्छी तरह दीपक का प्रकाश प्रकट नहीं कर सकती, क्योंकि तेल के साथ भिगोने से इसकी तह स्वच्छ और हलकी हो जाती है)। इसी तरह हृदय को ज्ञान-रूपी तेल से भिगोये विना आत्म-रूपी ज्योति का प्रकाश बाहर भली भाँति प्रकट नहीं हो सकता। अतः ज्योति के प्रकट करने के निमित्त हृदय-रूपी पर्दे को ज्ञान-रूपी तेल से तर करने और उससे उसको स्वच्छ बनाने की अत्यंत आवश्यकता है।

विकासवाद की दृष्टि से भी मनुष्य को समस्त सृष्टि पर श्रेष्ठता दी गई है। इसका अधिकांश कारण केवल यही है कि वह चेतन-शक्ति, जो वेदान्त में ज्योति के नाम से पुकारी जाती है, जड़ जगत् में प्रकट होना चाहती है, किंतु जड़ जगत् में पर्दा अत्यंत मोटा होने से उस (ज्योति) का प्रकाश वहाँ इतना प्रकट नहीं होता, जितना कि वनस्पति जगत् में से होता है। इसलिये वनस्पति जगत् की श्रेणी जड़ जगत् से ऊँची प्रानी

गई है। और वनस्पति में भी जब वह चेतन-शक्ति अपने आपको प्रकट किया चाहती है, तो यद्यपि जड़ जगत् की अपेक्षा पर्दा वहाँ जरा कम स्थूल होता है, तो भी कुछ स्थूल होने के कारण वहाँ वह इतना प्रकट नहीं होती, जितना कि प्राणी (चेतन) जगत् में होती है, इसीलिये प्राणियों की श्रेणी जड़ और वनस्पति से बढ़कर मानी गई है। फिर पशुओं में जब वह प्रकाशस्वरूप आत्मा अपना प्रकाश बाहर फैलाना चाहता है, यद्यपि उनमें जड़ और वनस्पति की अपेक्षा पर्दा और भी कम स्थूल होता है, तथापि स्थूल होने के कारण उनमें से ज्योतिर्मय सूर्य का प्रकाश उतना भासमान नहीं होता, जितना कि मनुष्य में हो सकता है, अतः मनुष्यों का दर्जा अन्य समस्त सृष्टि अर्थात् जड़, वनस्पति और प्राणि-सृष्टि से उत्तम माना गया है। किन्तु विकासवाद केवल यहाँ तक ही अन्त नहीं करता, बरन् मनुष्यों में भी आगे बहुत-सी श्रेणियाँ हैं; विशेषतः दो दर्जे मनुष्यों के बतलाए जाते हैं। इन दर्जों के आगे कोई और दर्जा विकासवाद ने आज तक न तो बताया, न स्थिर किया है। मनुष्य को दो बड़ी श्रेणियों में विभक्त किया गया है—एक ज्ञानी की, दूसरी अज्ञानी की। ज्ञानी वह जिसका अन्तःकरण रूपी पर्दा अत्यन्त सूक्ष्म और स्वच्छ है, और अज्ञानी वह जिसका अन्तःकरण रूपी पर्दा स्थूल और मलिन है। जैसे ग्लोबदार लैम्प में दो चिमनियाँ होती हैं—एक अत्यन्त निर्मल, स्वच्छ और पतली होती है कि जिसके भीतर से लैम्प का प्रकाश निकलकर समस्त मनुष्यों की आँखें चौंधिया देता है, दूसरी निर्मल और अल्प स्वच्छ तो होती है, मगर पहली की अपेक्षा थोड़ी मोटी और धुँधली होती है, जिसमें से लैम्प का प्रकाश बाहर प्रकट तो होता है, मगर पहले की अपेक्षा बहुत ही हलका होता है। इस तरह ज्ञानी का अन्तःकरण उस

अत्यन्त महीन, निर्मल और स्वच्छ चिमनी के समान होता है, जिसके भीतर से आत्मदेव की ज्योति ऐसे वेग से बाहर प्रकाशित होती है कि बीच में अन्तःकरण रूपी पर्दा देखने में ही नहीं आता, बरन् असली ज्योति ही आँखें मारती मालूम देती है; मगर अज्ञानी का अन्तःकरण उस ग्लोब के समान होता है कि जिसके भीतर तो प्रकाश उसी प्रकार ज़ोर का होता है, जैसा पहली चिमनी के भीतर था, मगर बाहर इस ज़ोर से प्रकट नहीं होता. जैसे पहली चिमनी से फूट-फूटकर निकलता था। अर्थात् जिसमें से पहले की अपेक्षा प्रकाश हलका और धुँधला-सा निकलता है, और ज्योति रूपी लाट भी धुँधला पर्दा होने के कारण आँखें मारती कम दिखाई देती है। इस तरह से, हे भगवन्! उस सूर्यों के सूर्य के तेज को बाहर प्रकट करने के लिये सिवाय अन्तःकरण को शुद्ध करने के और कोई साधन वा उपाय नहीं है। अन्तः-करण जब शुद्ध हो जायगा, तो फिर चाहे आत्म-ज्योति प्रकाश को बाहर प्रकट करने का प्रयत्न करे अथवा न करे, ज्योति बिना आपके प्रयत्न के आपके भीतर से फूट-फूटकर बाहर निकलेगी। इस स्वच्छ अन्तःकरण में से प्रकाश निकल कर अन्य अज्ञानी मनुष्यों के अन्तःकरणों को भी, जो चिमनी के ऊपर के ग्लोब के समान है, प्रकाशमान कर देगा। इसलिये आपका काम केवल अपने अन्तःकरण को ही अति पतली चिमनी के समान साफ़ और स्वच्छ बना देना है। जब अन्तःकरण खूब निर्मल हो जायगा, तो उससे प्रकाश निकल कर अन्य अज्ञानी पुरुषों के मनों को भी प्रकाशित कर देगा। इसीलिये हे भगवन्! पहले अपने अन्तःकरण को पतली और निर्मल, स्वच्छ चिमनी के समान बनाइए। इस प्रकार आपका अपना हृदय शुद्ध करना ही दूसरों का उपकार करना है। जिस समय

अन्तःकरण बिल्लौर के समान स्वच्छ हो जायगा, तो ज्ञान-रूपी प्रकाश विना आपके प्रयत्न और खोज के भीतर से प्रज्वलित होता हुआ औरों के हृदयों को प्रकाशित करेगा, तब विकासवाद के नियम के अनुकूल भी आपका दर्जा समस्त ज़ातियों से उत्तम होगा। क्योंकि जब वह ज्योति मनुष्य के अन्तःकरण से निकलती हुई अपना पूरा-पूरा तेज बाहर दिखला देती है, तो उस समय विकासवाद के तत्त्व-वेत्ता भी उस मनुष्य को समस्त अन्य मनुष्यों पर विशेषता देते हैं, अर्थात् उसका दर्जा सारे संसार की सृष्टि से बढ़कर मानते हैं; मगर हिन्दुओं के यहाँ तो वह अवतार ही समझा जाता है। अतः यदि मनों में संसार के उद्धार करने का आवेश उठता है, तो ऐ सहानुभूति करनेवालो! पहले अपने आपका सुधार करो, और इस प्रकार से आपका अपने हृदय को शुद्ध करना और अपने आत्मा में निष्ठा करना ही अपने आपका सुधार करना होगा। जब इस रीति से अपना सुधार हो जायगा, तो यह अवश्य समझ लेना कि दूसरों का भी अपने आप सुधार हो जायगा; वरन् सबको निश्चय करना चाहिये कि इस नियम के विरुद्ध सुधार कभी भी संसार में न हुआ और न होगा। इस विषय में आपको अपना अनुभव गवाही देगा।

अन्तःकरण को शुद्ध करने का साधनः—पहले वर्णन कर आए हैं कि सुधार के इच्छुक या सुधारक महाशय के लिये शुद्ध अन्तःकरण रहना अत्यन्तावश्यक है। अतः अन्तःकरण के स्वच्छ रखने का उपाय भी शास्त्र और तत्त्व-ज्ञान के अनुसार बता देना आवश्यक समझकर स्पष्ट किया जाता है। इससे पहले कि अन्तःकरण के स्वच्छ करने की रीति वर्णन की जाय, पहले प्रत्येक का ध्यान प्रकृति की ओर खींचा जाता है कि उसने सांसारिक पदार्थों को निर्मल और स्वच्छ या

मलिन और स्थूल करने का कौन सा ढङ्ग वा नियम अंगीकार किया है। क्योंकि जो रीति प्रकृति ने सांसारिक पदार्थों को स्वच्छ और निर्मल करने के लिये अंगीकार की हुई है, वही ढङ्ग या नियम यदि मनुष्य स्वीकार करेंगे, तो निश्चयतः आशा की जा सकती है कि अन्तःकरण बहुत शीघ्र स्वच्छ और निर्मल हो जायगा, यद्यपि मलिन तो वह पहले से है ही। विज्ञान के मत से सूर्य का प्रकाश सप्त रङ्गों का समुदाय होता है, और जो रङ्ग संसार में मौजूद हैं, वे केवल सूर्य के ही हैं।

अब प्रत्येक व्यक्ति जो विज्ञानविद् नहीं है, यह सुन कर बड़ा चकित होगा और यों कहेगा कि जब हम नीला कमल कहते हैं, तो उससे स्पष्ट पाया जाता है कि कमल का रङ्ग नीला है, फिर किस प्रकार कहा जा सकता है कि रङ्ग केवल सूर्य का है? नीला रङ्ग कमल का न होने में विज्ञान यह प्रमाण देता है कि रात को अँधेरे में हम कमल की पंखड़ियाँ और आकार, गोलाई और वज़न आदि वैसा ही पाते हैं, जैसे कि दिन में प्रकाश के समय पाते थे, मगर नीला रङ्ग जो सवेरे प्रकाश में कमल का देखते थे, अब अँधेरे में कमल के साथ बिलकुल दिखाई नहीं देता। यदि कमल की पत्तियाँ, आकार और गोलाई आदि की तरह नीला रंग भी कमल का अपना होता, तो कमल के शेष सब अंगों के समान वह भी सदैव कमल के साथ ही बना रहता।

परन्तु अँधेरे में शेष सब अंग तो कमल के साथ बने रहते हैं और भान भी होते हैं, किन्तु केवल रङ्ग ही नहीं रहता और न दिखाई ही देता है। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि रङ्ग कमल का नहीं, वरन् उस प्रकाश का है, जिसमें या जिसके कारण नीला रंग दिखाई देता था और लगातार नज़र आता था। इसमें अब फिर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि यद्यपि यह सिद्ध हो गया

कि रंग कमल का न था, किन्तु यह किस प्रकार कहा जा सकता है कि जो रंग किसी वस्तु का प्रकाश में देखा जाय, वह केवल प्रकाश का होता है ? इस विषय में सविस्तर उत्तर तो प्रत्येक महाशय को नेबुलरथियूरी (नीहारिका-सिद्धान्त) के पढ़ने से मिल सकता है, किंतु यहाँ केवल संक्षेपतः वर्णन किया जा सकता है। इसी विषय में विज्ञान यों कहता है कि जो रंग नीला या पीला आदि वस्तुओं का दिखाई देता है, उसका कारण केवल यह है कि जो सात रंग (लाल, नारंगी, नीला, आसमानी, पीला, हरा और बनफ़शी) विज्ञान ने सूर्य के प्रकाश के वर्णन किये हैं, उनमें से छ रंग तो वस्तुएँ शोषण कर जाती हैं, और शेष एक रंग सूर्य की ओर वापस लौटा देती हैं। जो रंग वस्तुएँ नहीं शोषण करतीं, बल्कि सूर्य की ओर ही वापस लौटाती रहती हैं, वही रंग दिखाई देता है। यद्यपि दृष्टि में तो ऐसा ही आता है कि रंग वस्तु का है, किंतु वास्तव में वह रंग केवल उसी सूर्य का होता है कि जिस (स्रोत) से पहले निकलकर वह वस्तुओं में शोषित होने के लिये वस्तुओं की ओर आया था, और शोषित न किये जाने पर फिर अपने स्रोत (सूर्य) की ओर ही गमन करता है। इस तरह से प्रत्येक रंग, जो वस्तुओं का दिखाई देता है, वास्तव में सूर्य का ही होता है।

अब यहाँ एक और प्रश्न उत्पन्न होता है कि प्रकाश के सात रंगों में काला और सफ़ेद गिने नहीं गए, इसलिए हम किस प्रकार से कह सकते हैं कि ये दो रंग सूर्य के प्रकाश के ही हैं ? और यदि सूर्य के प्रकाश के नहीं हैं, तो ये दोनों रंग कहाँ से उत्पन्न हो आए ? इसके उत्तर में विज्ञान का यह कहना है कि यदि आप इन रंगों का भी स्रोत मालूम किया चाहें, तो पहले इन दोनों रंगों के प्रकट होने का कारण आपको जानना चाहिए। जब इनके प्रकट होने का कारण मालूम हो जायगा, तो फिर

इनके स्रोत का हाल भी अपने आप मालूम हो जायगा। वस्तुओं का काला रंग उस समय होता है, जब वस्तुएँ प्रकाश के सातों रंगों को अपने में शोषण (जज़्ब) कर लेती हैं; और सफ़ेद रंग उस समय होता है, जब वस्तुएँ प्रकाश के सातों रंगों में से एक को भी अपने में शोषित (जज़्ब) नहीं करतीं, वरन् सातों के सातों रंगों को प्रकाश के स्वामी सूर्य की ओर वापस लौटा देती हैं, या दूसरे शब्दों में यों कहो कि वापस लौटाती रहती हैं। अतः ये दोनों रंग कहीं बाहर से किसी और वस्तु के द्वारा उत्पन्न नहीं हुए, वरन् वस्तुओं का ये दोनों रंग प्रकट करना केवल सूर्य के प्रकाश के सातों रंगों को अपने में शोषित करने या अपने से बाहर निकालकर सूर्य की ओर वापस लौटाने के कारण से है। इसलिये इन दोनों रंगों के प्रकट होने का कारण भी सूर्य का प्रकाश ही हुआ। किंतु यहाँ पर कर्म और कर्त्ता या सूर्य और प्रकाश में कुछ अंतर ही नहीं है, क्योंकि अपरिमित प्रकाश के स्रोत को विज्ञानविद् सूर्य मानते हैं, अतः इन दोनों रंगों का कर्त्ता अर्थात् इन दोनों का उत्पन्न करनेवाला सूर्य ही हुआ। अतएव ये दोनों रंग भी सूर्य से हैं। अस्तु, यहाँ पर और लंबे तर्क की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इतने लंबे प्रमाण से केवल तात्पर्य यह था कि संसार की समस्त वस्तुओं के काले और श्वेत हो जाने का कारण स्पष्ट किया जाय, और यह सिद्धान्त आपकी समझ में आ जाय कि संसार की समस्त वस्तुएँ केवल त्याग से अर्थात् सूर्य के प्रकाश के रंगों को अपने में प्रविष्ट न करने से, या उनके त्याग करने से ही श्वेत होती हैं। अतः जिस प्रकार त्याग से अर्थात् प्रकाश के रंगों को अपने स्वामी की ओर वापस लौटा देने से समस्त वस्तुएँ श्वेत रंग की हो जाती हैं, वैसे ही प्राणियों के अन्तःकरण भी यदि यह शैली ग्रहण करें, अर्थात् भाँति-भाँति के सांसारिक

पदार्थों को अपने में शोषित न करें, वरन् उनके स्वामी परमात्मा की ओर लौटा दें, तो वे भी श्वेत वस्तुओं की भाँति श्वेत, स्वच्छ और शुद्ध-चित्त हो सकते हैं। और जब चित्त उस पतली और स्वच्छ चिमनी के समान, जिसका उल्लेख पहले हो चुका है, स्वच्छ और निर्मल हो जायँगे, तो उनमें से आत्मा का प्रकाश फूट-फूटकर बाहर स्वतः निकलेगा, वरन् स्वयं आत्मरूपी ज्योति स्वच्छ पर्दे में से आँखें मारती हुई दिखाई देगी। विरुद्ध इसके जब समस्त सांसारिक पदार्थों का प्रवेश अंतःकरण में हो जायगा, अर्थात् जब मन समस्त भाँति-भाँति के पदार्थों की कामना करके उनको अपने में शोषित करेगा, तो वह (मन) काली वस्तुओं की भाँति मलीन और काला हो जायगा। इसलिये यदि आप स्वच्छ-हृदय होना चाहते हैं, तो प्यारो! स्वच्छ वस्तुओं की तरह आप सब पदार्थों का त्याग स्वीकार कीजिये। संसार में समस्त काली वस्तुएँ आपको यही उपदेश कर रही हैं कि यदि सांसारिक पदार्थों को (इस तुच्छ अहंकार के वश में आकर) अन्तःकरण में शोषित करते जाओगे, तो उनकी भाँति आपका अन्तःकरण या आप स्वयं, काले हो जाओगे, और इस तुच्छ स्वार्थपरता के फंदे में फँसना ही आत्म-हनन करना है। इसलिये भगवन्! स्वच्छ या शुद्ध अन्तःकरणवाला बनने के लिए यह आवश्यक है कि आप श्वेत वस्तुओं के समान मन को समस्त सांसारिक पदार्थों का पीछा करने से हटा दें और मन में उनका लेश-मात्र भी प्रवेश न होने दें। जब इस प्रकार से आप आचरण करेंगे, तो फिर आपके रोम-रोम से यह आवाज़ प्रत्येक को सुनाई देगी कि त्याग ही अन्तःकरण की शुद्धि का एकमात्र साधन है।

किंतु स्मरण रहे कि उक्त अमृत उसी समय प्राप्त होगा,

जब आप मन को पदार्थों से विरक्त करेंगे, अर्थात् मन को त्याग सिखाएँगे, क्योंकि इस अमृत को पाने के लिये श्रुति भगवती यह सिखलाती है—

धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति। (केनोपनिषद्)

अर्थात् धैर्यवान् पुरुष इस जगत् से मुँह मोड़कर अमृत को प्राप्त होते हैं। वैसे भगवन्! यदि आप अमृत चाहते हैं, तो मोड़ो मुँह जगत् के पदार्थों से, वापस लौटाओ मन को अपने मालिक सूर्य की ओर, देखो प्रत्येक पदार्थ में अपने सूर्य-रूपी आत्मदेव को ही, जिससे पदार्थ-भाव मन से गर्दभ-शृंगवत् उड़ जाय, जैसे नामदेव के मन से उड़ गया था कि जो कुत्ते को रोटी ले जाते देखकर अपने हाथ में साग लेकर यह कहने लगा—"रूखी न खाइयो मेरे स्वामीजी, अपना बाँटा ले जाइयो", और उसके पीछे हो लिया था। अर्थात् लोगों की दृष्टि में तो कुत्ता रोटी ले जा रहा था, मगर नामदेवजी के विचार में तो उनका स्वामी परमात्मा ही उनके हाथ से छीनकर ले जा रहा था।

इसी प्रकार प्यारो! मन को यदि पदार्थों से लौटाकर अपने सूर्य-रूपी आत्मदेव में लगाओगे, तो पदार्थ देखने के स्थान पर आपको वहाँ भी अपना आत्मदेव ही दिखाई देगा, वरन् पदार्थ-भाव बिलकुल ही उड़ जायगा। जगत् के चित्र-विचित्र पदार्थों को मन में न शोषित (जज़्ब) करने का तात्पर्य यही है कि उनसे मन का मुँह ऐसा मुड़ जाय कि तनिक पदार्थ-भाव मन में न रहे, वरन् उसकी द्वैत-दृष्टि भी उड़ जाय, और परमात्मा ही परमात्मा दिखाई दे। किंतु ऐ सुधार के इच्छुको! ऐ संसार पर सहानुभूति प्रकट करनेवालो! यह स्मरण रहे कि पदार्थ-भाव मन से कभी न मिटेगा, जब तक मन को आत्मा में लीन न करोगे। क्योंकि मन का केवल पदार्थों की ओर जाने से रोकना ही पदार्थ-भाव को दूर करने

के लिये काफ़ी न होगा, वरन् मन का पदार्थों से हटकर अपने आत्मा में निष्ठा करना पदार्थ-भाव को दूर करेगा। ऐसे ही भगवन्! यदि आप• पदार्थों का विचार अंतःकरण से उड़ाना चाहते हैं, तो उठो! उठो! मन को आत्मा में स्थित करो, क्योंकि आपके मन का आत्मा में स्थित होना ही हलका होकर ऊपर उड़ जाना है। ब्रह्मनिष्ठ होने के बाद आपको सुधार करने की चिंता भी न करनी होगी, वरन् विना प्रयत्न किए संसार का भला स्वाभाविक होता जायगा, चाहे उस समय आप निर्जन वन में बैठो, चाहे संसार में प्रकट रूप से उपदेश दो, स्वाभाविक ही संसार का कल्याण होगा। इसलिये प्यारो! इसके पहले कि कोई और साधन सुधार का ग्रहण करो, यही रीति जो अपने आपको सुधार करने की पुकार-पुकारकर बतलाई गई है, और जिससे संसार का श्रेष्ठ उपकार हो सकता है, उसको आप हृदयंगम करो।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

कर्म

(ता० ४ जनवरी, १६०२ के दिन सोशल ऐसोसिएशन, मथुरा में दिया हुआ स्वामी राम का व्याख्यान)*

कुछ लोग कहते हैं कि सारे काम ईश्वर की इच्छा से होते हैं; कुछ कहते हैं नहीं, मनुष्य के प्रयत्न वा पुरुषार्थ से होते हैं।

पूर्व-कथित महाशय इस मामले को इस तरह माने बैठे हैं कि जो कुछ काम होता है, वह सब ईश्वर ही करता है, और उसकी इच्छा से ही होता है, हमारा इसमें बिलकुल कर्तृत्व नहीं है। और पश्चात्कथित महाशय इस झगड़े को इस तरह तय किए बैठे हैं कि जो काम होता है, मनुष्य के पुरुषार्थ से होता है, ईश्वर का इसमें कुछ भी कर्तृत्व नहीं है। क्योंकि इतिहास में स्पष्ट रूप से देखने में आता है कि नेपोलियन बोनापार्ट ने संपूर्ण योरप को अपने ही साहस, पुरुषार्थ और दृढ़ता से छिन्न-भिन्न कर दिया था, नादिरशाह और महमूद ग़ज़नवी आदि का हाल भी इसी तरह का है। अगर ये साहस-भरे वीर पुरुष साहस, दृढ़ता और पुरुषार्थ को एक किनारे रखकर केवल घर में ईश्वर पर भरोसा किए बैठे रहते, तो सारे योरप और भारतवर्ष में अपना सिक्का कभी न जमा

* इस व्याख्यान के संक्षिप्त नोट श्री आर० एस० नारायण स्वामी ने, जो उन दिनों ब्रह्मचारी थे और श्रीस्वामी राम की सेवा में रहते थे, लिए थे और तत्पश्चात् आर्टिकिल के रूप में वे छपाये गये थे। कर्म और प्रारब्ध के विषय पर कुछ समय सभा के सभासदों में शास्त्रार्थ होता रहा, तत्पश्चात् स्वामीजी का व्याख्यान आरम्भ हुआ था।

सकते। अतः साहस और दृढ़ता अर्थात् पुरुषार्थ ही आवश्यक है, ईश्वर पर भरोसा करके बैठे रहना अपने आपको आलसी और कायर बनाना है।

इसके सम्बन्ध में वेदांत यों कहता है कि यदि दूरदर्शिता-पूर्वक देखा जाय, अर्थात् यदि इस झगड़े की सत्यता पर दृष्टि डाली जाय, तो विदित होगा कि इन दोनों बातों में—अर्थात् ईश्वर सब कुछ करता है, वा पुरुषार्थ से सब कुछ होता है—कुछ भी अंतर नहीं है, बल्कि अंतर केवल दृष्टियों में है, जो वास्तविकता तक नहीं पहुँचतीं। वेदांत तो उन सब लोगों की सेवा में, जो कहते हैं कि ईश्वर ही सब कुछ करता है, यह प्रश्न उपस्थित करता है कि पहले केवल इतना बता दो कि आप ईश्वर का स्वरूप क्या माने बैठे हैं? आया वह निराकार अर्थात् रूप-रहित है या साकार अर्थात् रूप-रेखवाला है; आया वह शरीर के स्वामी की भाँति कर्त्ता पुरुष है, या केवल अकर्त्ता; वह सम्बन्ध-सहित वा संगवाला है या निस्संबंध वा असंग है? जब आप हमारे इन प्रश्नों का उत्तर सविस्तर और ठीक-ठीक रीति से दे देंगे या सुन लेंगे, तो आप पर इस ग्रंथि का भेद आप ही आप खुल जायगा। फिर उन महाशयों को—जो केवल साहस और दृढ़ता को ही मानते हैं, और ईश्वर की इच्छा आदि को एक कोने रखते हैं, तथा प्रमाण में इतिहास आदि की साक्षियाँ दे-देकर पुरुषार्थ को सिद्ध किया चाहते हैं, मगर अपनी बुद्धि को ज़रा और आगे नहीं दौड़ाते—वेदांत अपना आत्मा समझकर यह उपदेश देता है कि प्यारो! यदि इतिहास की सत्यता को ख़ूब समझकर पढ़ते, तो यह परिणाम न निकालते। यदि अब भी इतिहास को दुबारा ग़ौर से पढ़ोगे, तो ऐसा परिणाम कभी भी आपको प्राप्त न होगा। बल्कि इससे बढ़कर सफलता के उत्तमोत्तम कारण आपको

दिखाई देंगे, क्योंकि इतिहास में प्रायः भ्रांति भी हो जाती है। एक तत्त्ववेत्ता ने क्या ही अच्छा कहा है—

"Don't read history to me, for I know it must be false. (मुझे इतिहास पढ़कर न सुनाओ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि इतिहास अवश्य झूठा होता है।)"

यह पढ़कर सारे इतिहासकार और इतिहासज्ञ बड़े आश्चर्यित होंगे। बल्कि ये प्रश्न उपस्थित करेंगे—

(१) क्या इतिहास बिलकुल झूठे ही होते हैं?

(२) क्या ऐसे-ऐसे सुयोग्य इतिहासकारों ने केवल झूठ को ही उन्नति देने के लिये अपना बहुमूल्य समय व्यय किया था?

इस तरह के उल्टे-पुल्टे आक्रमण करने को तैयार हो जायँगे।

इसमें राम का यह कहना है कि यद्यपि इतिहास बिलकुल ही झूठा नहीं होता, मगर प्यारो! इस तत्त्ववेत्ता का कथन भी अनुचित नहीं है, बल्कि कुछ सत्यता रखता है। यद्यपि वह देखने में व्यर्थ दिखाई देता है, मगर उसमें भी कुछ रहस्य है। क्योंकि हम नित्य देखते हैं कि मनुष्य जब अपने नित्य के रोजनामचे (दिनचर्या) लिखने में बहुत सी भूलें कर जाता है, तो सोचिये कि औरों के हाल लिखने में कितनी भूलें करता होगा। फिर आजकल लोग उन मनुष्यों के इतिहास लिख रहे हैं, जिनको उनके बाप-दादे ने भी नहीं देखा था। केवल ऐतिहासिकों के झूठे-सच्चे वृत्तांतों को लेकर उसमें से कुछ उद्धृत करके वे अपने इतिहासों में अंकित कर रहे हैं। इससे स्पष्ट विदित होता है कि उनमें लाखों ही भ्रांतियाँ होती होंगी, और केवल औरों की नक़ल करके अत्युक्ति से ही किताबें भरी जाती होंगी। क्योंकि यह प्रत्यक्ष देखा जाता है कि एक मनुष्य अपना आँखों-देखा हाल अपने रोजनामचे में लिखते समय बीसों भूलें कर जाता है, तो फिर क्या यह बात असंभव है कि

वह उन लोगों के हाल लिखने में अगणित भूलें न करता होगा कि जिनको उसने स्वयं तो क्या, बल्कि उसके बाप-दादे ने भी नहीं देखा है? इसलिये इतिहास की इबारत को समझने के लिये भी ऐसे मस्तिष्कवान् मनुष्य का होना आवश्यक है, जो पढ़ते समय इन समस्त भ्रांतियों पर दृष्टि रक्खे; अन्यथा इबारत की शब्दावली पर ही लट्टू होनेवाले लोग न तो नेपोलियन के साहस और दृढ़ता (पुरुषार्थ) को सत्यता समझेंगे, और न कोई और अच्छा परिणाम ही निकाल सकेंगे। मगर ख़ैर, ऐसे महाशयों से भी, जो केवल इतिहास के प्रमाण ही सामने रखना चाहते हैं और स्वयं कुछ नहीं विचारते, वेदान्त बड़े प्रेम और स्नेह से यह पूछता है कि हमारे ही लिये अपनी दशा पर विचार कर बताओ कि किस समय आपको सफलता प्राप्त होती है? या दूसरे शब्दों में यह कि जिस समय आपको सफलता प्राप्त होनेवाली होती है, तो उस समय आपकी भीतरी दशा क्या होती है? (क्योंकि जब आपको अपनी सफलता का तत्त्व विदित हो जायगा, तो औरों की सफलता के विषय में अपने आप ठीक परिणाम अवश्य निकाल लोगे।) इसके उत्तर में प्रत्येक के अंतःकरण से यह ध्वनि निकलेगी कि हर काम में केवल उस समय सफलता होती है, जब साहस भी अपूर्व हो और चित्त में अहंकार की गंध तक न हो। जो लोग नेपोलियन बोनापार्ट के साहस आदि का हवाला देते रहते हैं, अगर वे उसके जीवन-चरित्र को ग़ौर से पढ़ेंगे, तो अवश्य यह बात पाएँगे कि जिस समय नेपोलियन बोनापार्ट सफलता प्राप्त कर रहा था, उस समय उसके हृदय में कभी यह विचार उत्पन्न न होता था कि मैं काम कर रहा हूँ; बल्कि मस्ती के जोश से बेख़बर होकर वह हमेशा लड़ता था, इससे उसे सफलता प्राप्त होती थी। जब कोई अहंकार को साथ लेकर लड़ा है, उसी समय उसने हार खाई, और बंदी

हुआ है। क्योंकि यही प्रकृति का नियम है कि जहाँ अहंकार होता है, वहाँ कभी भी सफलता प्राप्त नहीं होती। इस विषय में हरएक का अनुभव साक्षी है। क्योंकि प्रकृति का यह नियम कि "अहंकार से अलग होने पर ही सदैव सफलता होती है," केवल एक व्यक्ति पर लागू नहीं है, बल्कि सब पर इसका शासन है।

शंका—जब अहंकार का भाव सफलता प्राप्त करते समय बिलकुल उड़ा हुआ था, तो उस समय नेपोलियन के हाथ से जो काम हुआ, वह किस गणना में होगा—किस नाम से पुकारा जायगा ?

उत्तर—वेदांत यहाँ यह कहता है कि जिस वक़्त मनुष्य के भीतर से काम करते समय अहंकार दूर हो जाता है, तो उसके भीतर वह शक्ति काम करती है, जो अहंकार से रहित अर्थात् स्वार्थ से दूर है। इसी शक्ति को, जो स्वार्थ और अहंकार की सीमा से परे है, वेदांत में ईश्वर कहते हैं। अतः सफलता प्राप्त होते समय केवल ईश्वर ही स्वयं काम करता होता है। यद्यपि उस समय सफलता प्राप्त करता नेपोलियन दिखाई देता था, और सफलता उसके नाम से भी पुकारी जाती थी, परंतु वास्तव में उस समय स्वयं ईश्वर वा शक्ति ही काम करती थी। (या यों कहो कि उस समय ईश्वर ही सब काम करता था)। जैसे समुद्र का भाग जब बंगाल के नीचे होता है, तो उसका नाम बंगाल की खाड़ी होता है, जब अरब के नीचे है, तो अरब का समुद्र कहलाता है, और जब योरप के नीचे है, तो रोम के सागर के नाम से प्रसिद्ध होता है, इत्यादि-इत्यादि। परंतु वास्तव में एक समुद्र के ही नाम भिन्न-भिन्न स्थानों के कारण भिन्न-भिन्न पड़ जाते हैं। इसी तरह एक सर्वव्यापी, सब पर आवृत, शक्ति-स्वरूप जब नेपोलियन के द्वारा काम करता है, तो वह साहस के नाम से अभिहित होता है, और जब पेड़

के पत्तों आदि में काम करता है, तो उसका नाम विकास होता है, अर्थात् यह कि पेड़ बढ़ रहा है। बात इतनी है कि एक रूप में उसकी नेपोलियन के साहस से पहचान हो सकती है, और दूसरे रूप में वृक्ष के विकास से। मगर सबमें वही एक शक्ति है, अर्थात् सारे काम वही शक्ति करती है। अतएव लोगों का यह कथन कि नेपोलियन ने विजय की, बिलकुल निरर्थक है, और विजय की सत्यता को न जानना सिद्ध करता है।

अब उन महाशयों को लीजिए, जो यह मानते हैं कि सारे काम ईश्वर की इच्छा से होते हैं, मगर ईश्वर की इच्छा से उनका अभिप्राय प्रारब्ध होता है। अर्थात् जो कुछ होता है, वह ईश्वर की बनाई हुई प्रारब्ध से होता है, और कर्म वा पुरुषार्थ से कुछ नहीं होता। इससे यह सिद्ध होता है कि वे इन शब्दों—अर्थात् कर्म और प्रारब्ध—के अर्थ नहीं जानते। उनको भी वेदांत यों समझाता है कि प्यारो! अगर आपने इन दोनों की सत्यता को समझा होता, तो भ्रांति से लोगों के साथ झगड़ा करने में समय न बिताते, बल्कि अपने सुधार में अपना समय देते। अस्तु, अब आप इस विषय के निर्णय को ध्यान से पढ़कर इसका परिणाम हृदयंगम कीजिए।

वेदांत इस विषय का यों निपटारा करता है कि जैसे गणित में एक ही वाक्य में दो प्रकार की राशि होती हैं, एक राशि अस्थिर और दूसरी राशि स्थिर, जैसे—

$$३ अ^{५} ल + ६४ अ^{४} ल — अ^{२} ल + अल — अल$$

इनमें अ अस्थिर है और ल स्थिर। इसी तरह मनुष्य में भी दो शक्तियाँ मौजूद हैं—एक स्वतंत्र, स्वाधीन अर्थात् कर्म करने की शक्ति, और दूसरी परतंत्र या पराधीन। तात्पर्य यह है कि प्रारब्ध स्वाधीन नहीं है, स्वतंत्र नहीं है।

अब यह देखना चाहिए कि मनुष्य कहाँ तक स्वाधीन है और

कहाँ तक पराधीन। कहाँ तक मनुष्य में स्वतंत्रता अर्थात् कर्म करने का अंश है, और कहाँ तक उसमें पराधीनता अर्थात् प्रारब्ध का अंश है।

इससे पहले कि इस विषय को और प्रकार हल किया जाय, गणित का ही उदाहरण लेकर तय किया जाता है। क्योंकि यद्यपि हम लोगों को नित्यप्रति नदी में तैरते देखते हैं, मगर तैरने की विधि का समझना या समझाना ज़रा कठिन बात है, विधि किए ही से समझ में आती है, और तरह नहीं। इसी तरह यद्यपि हम नित्यप्रति इन दोनों वस्तुओं को मनुष्यों में देखते हैं, फिर भी उदाहरणों के विना इनका समझना या समझाना बहुत कठिन होता है। इसलिये यदि इस प्रश्न को हल करने के लिये गणित आदि के उदाहरण उपस्थित किए जायँ, तो कुछ अनुचित न होगा।

द्रव्य-शास्त्र (इल्म-मायात) में द्रव्य की गति पहले एक बूँद की गति के द्वारा निश्चित की जाती है, और फिर कभी-कभी समवाय-रूप से अर्थात् संपूर्ण जल के प्रवाह की गति के द्वारा मालूम की जाती है। इसी तरह कर्म और प्रारब्ध के इस मामले में भी दो प्रकार से विवेचना की जायगी, एक व्यष्टि रूप से, दूसरे समष्टि रूप से। इन्हीं को संस्कृत में व्यष्टि और समष्टि भाव कहते हैं।

यदि मनुष्य की दृष्टि से अर्थात् व्यष्टि रूप से विचार किया जाय, तो मालूम होगा कि इसमें एक ऐसा अंश है, जिसको स्वतंत्र या स्वाधीन कर्म के नाम से अभिहित करते हैं, और एक ऐसा है, जिसको पराधीन, परतंत्र या प्रारब्ध (भाग्य) के नाम से प्रसिद्ध करते हैं। जैसे रेशम के कीड़े का हाल है कि जब तक उसने अपने भीतर से रेशम नहीं निकाला, तब तक वह स्वतंत्र है और तभी तक वह स्वाधीन वा स्वेच्छाचारी कहा जाता है;

मगर जब रेशम निकाल चुकता है, तो फँस जाता है, अर्थात् परतंत्र कहलाता है। इसी तरह जो कर्म मनुष्य से हो चुका है, उसके कारण वह उसके फल भोगने को परतंत्र या पराधीन है; मगर जो कर्म अभी तक किया ही नहीं, उसके कारण वह स्वाधीन है, और उसके करने का अधिकार रखने के कारण स्वतंत्र तथा स्वेच्छाचारी कहा जाता है। जैसे मकड़ी जाला बनाने के बाद परतंत्र या पराधीन है और उससे पहले स्वतंत्र या स्वाधीन थी, या जैसे रेलगाड़ी जब तक सड़क नहीं बनी, हर ओर चलने के लिये स्वाधीन है, और जब सड़क बन गई, तो उस पर चलने के लिये विवश है—अर्थात् सड़क बनने के बाद रेलगाड़ी उस पर चलने के बंधन में आ जाती है—इसी तरह मनुष्य भी एक कर्म के करने से पहले उसके फल आदि से स्वतंत्र है, और कर्म करने के पश्चात् उसके फल भोगने में परतंत्र है। अतः मनुष्य में इन दो वर्तमान अंशों का नाम स्वतंत्रता और परतंत्रता या कर्म (पुरुषार्थ) और प्रारब्ध (भाग्य) है। यद्यपि कुछ लोग कर्म और भाग्य को एक ही गिरोह में गिनते हैं, अर्थात् इन दोनों के एक ही अर्थ करते हैं; मगर वेदांत में भाग्य से तात्पर्य है परतंत्र, पराधीन वा जकड़ा हुआ—अर्थात् मनुष्य में वह अंश जो कर्मों के फल भोगने में परतंत्र वा विवश है—और कर्म से तात्पर्य है स्वतंत्र वा स्वाधीन, अर्थात् मनुष्य में वह अंश जो अभी फल आदि के बंधन से मुक्त है, और स्वतंत्र वा स्वेच्छाधीन है। अँगरेज़ी में एक कहावत है कि 'मनुष्य अपनी प्रारब्ध बनाने का आप अधिकार रखता है', अर्थात् 'मनुष्य अपना भाग्य अपने हाथों बनाता है।' इसमें हमारे शास्त्र का भी यही सिद्धांत है कि 'जैसा करोगे, वैसा भरोगे।' इसके अर्थ यही हैं कि जैसे कर्म या कामना करोगे, वैसे उनके फल दूसरे जन्म में या इसी जन्म में भाग्य के रूप में प्रकट हो जायँगे।

लोग इस बात पर दिन-रात रोते रहते हैं—"हाय! हमारी कामनाएँ पूरी नहीं होतीं।" मगर वेदांत इसमें यों कहता है—"प्यारों! अगर आपको रोना ही स्वीकार है, तो धाड़ मारकर रोओ इस बात पर कि आपकी कामनाएँ अपना फल दिए विना नहीं रहेंगी।" यह सुनकर हरएक अनजान के मन में यह शंका उठती है कि यदि मान भी लिया जाय कि हमारी सारी कामनाएँ पूरी होती हैं, तो ये क्यों पूरी होती हैं? इसके उत्तर में वेदांत यह बताता है कि मन जिसमें संकल्प अर्थात् कामनाएँ उठती हैं, उसका मूल केवल आत्मदेव है, जो सत्यकाम और सत्यसंकल्प है, अर्थात् इसका प्रत्येक विचार और कामना सच्ची हुए विना नहीं रहती। इस (आत्मदेव) को ही शक्ति या ईश्वर के नाम से अभिहित करते हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि इसकी सारी कामनाएँ पूरी हों, जब कि वह अपना मूल सत्यकाम और सत्यसंकल्प रखता है।

शंका—अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि वेदांत का जब यह सिद्धांत है कि मन की कामनाएँ पूरी होती हैं, तो वे पूरी होती हुई दिखाई क्यों नहीं देतीं? क्योंकि किसी को भी अपनी कामनाएँ हर समय पूरी होती दिखाई नहीं देती हैं। अतएव उपर्युक्त शास्त्र का सिद्धांत बिलकुल मिथ्या और अशुद्ध है।

उत्तर—वेदांत इसका कारण यों बताता है कि जैसे बड़ी अदालत (chief court) और छोटी अदालत (small Cause Court) दो अलग-अलग अदालतें होती हैं। बड़ी अदालत में तो मुक़द्दमे अति लंबे-लंबे और अधिक होते हैं, इसलिये उनकी पेशी की तारीख़ ५ वर्ष या उससे कुछ न्यूनाधिक रक्खी जाती है। इतने समय में संभव है कि मुद्दई मर जाय, या जज साहब ही बदल जायँ, या वकील साहब आदि न रहें, मगर मुक़द्दमे की पेशी अवश्य होती है। और किसी न किसी

तरह का फ़ैसला भी अवश्य होता है। चाहे पहली पेशी में, चाहे चार या पाँच पेशियों के बाद—अर्थात् यदि बहुत शीघ्र प्रयत्न किया जाय, तो १० या १५ वर्ष में मुक़द्दमा फ़ैसल होता है; और दूसरी अदालत ख़फ़ीफ़ा में मुक़द्दमे छोटे-छोटे और बहुत थोड़े होते हैं, इसलिये पेशी की तारीख़ भी उसी दिन या एक-दो दिन के बाद रक्खी जाती है, और पहिले तो वह मुक़द्दमा कच्ची पेशी ही में तय हो जाता है, अगर देर भी लग जाय, तो भी एक सप्ताह के भीतर-भीतर फ़ैसल हो जाता है, अर्थात् मुक़द्दमे बहुत थोड़े और छोटे होने के कारण बहुत शीघ्र फ़ैसल हो जाते हैं। ऐसे ही मनुष्य भी दो प्रकार के मनवाले होते हैं—एक ऐसा मन रखते हैं कि जिसके भीतर बड़े-बड़े भारी और असंख्य संकल्प-कामनाएँ उत्पन्न होती रहती हैं, और अधिक एवं भारी होने के कारण चीफ़कोर्ट की भाँति, जहाँ मुक़द्दमे शीघ्र फ़ैसल होने नहीं पाते और जहाँ यह भी संभव है कि वे मुक़द्दमे (संकल्प, कामना आदि) फ़ैसल होने के लिये अगर उस जज साहब (ऐसे मनवाले मनुष्य) की दो-तीन पेशियाँ (दो-तीन जन्म) भी ले लें, तो बड़ी बात नहीं है। इसलिये ऐसे मन रखनेवाले महाशयों को, जो लगभग सब संसारी ही होते हैं, चीफ़कोर्ट अर्थात् बड़ी अदालत के जजों की पंक्ति में गिनना चाहिए। और दूसरे लोग ऐसा मन रखते हैं, जिसके भीतर कामनाएँ बहुत कम और बहुत छोटी-छोटी उठती हैं, अर्थात् जहाँ मुक़द्दमे बहुत थोड़े और छोटे-छोटे होते हैं; इस हेतु वे पहले तो एकदम में ही, नहीं तो एक दो घंटे या दिनों के भीतर-भीतर पूरे (फ़ैसल) हो जाते हैं। ऐसे मन रखनेवाले महाशय, जो प्रायः ज्ञानी या ऋषि लोग होते हैं, हिंदुओं के यहाँ अदालत ख़फ़ीफ़ा के जज माने जाते हैं। यद्यपि

नाम या अदालत के विचार से ये छोटे दिखाई देते हैं, परन्तु पद में इनको हमारे शास्त्र औलिया या पैगंबर (सिद्ध या अवतार) की श्रेणी में गिनते हैं। मगर यह याद रहे कि कामनाएँ अर्थात् मुक़द्दमे इन दोनों महाशयों के फ़ैसल अवश्य होंगे—अर्थात् वास्तव में ये दोनों महाशय सत्यकाम और सत्यसंकल्प अवश्य कहे जायँगे; केवल अंतर इतना रहेगा कि एक के मुक़द्दमे (कामनाएँ) बहुत देर में और मुद्दत के बाद फ़ैसल होंगे, और कामनाओं के देर में पूरी होने के कारण वे महाशय सत्यकाम और सत्यसंकल्प देखने में नहीं मालूम होंगे, और दूसरों के मुक़द्दमे (संकल्प) बड़ी जल्दी बल्कि तत्काल पूर्ण होते दिखाई देंगे, और कामनाओं के शीघ्र पूरा होने के कारण वे सत्यकाम और सत्यसंकल्प दिखाई देंगे। मगर इन दोनों व्यक्तियों के संकल्पों अर्थात् मुक़द्दमों के पूरा होने में तनिक भी संशय नहीं है। अतएव ऐसे महाशय जो इस बात की शिकायत करते हैं कि हमारी कामनाएँ पूरी होती नहीं दिखाई देतीं, इसमें केवल उनकी अपनी कमी है। यदि वे अपनी कामनाओं को पूरा होते देखना चाहते हैं, तो अदालत ख़फ़ीफ़ा के जज (ज्ञानी, सिद्ध, अवतार) की भाँति अपनी अवस्था बनाएँ—अर्थात् उनकी भाँति मन में कामनाएँ (संकल्प-मुक़द्दमे) छोटी-छोटी और बहुत थोड़ी होने दें। स्वयं उनका अपना अनुभव अपने आप उनको साक्षी देगा, वरन् उनको फिर कहने की भी आवश्यकता न रहेगी।

शंका—यदि स्वयं हमारी ही कामनाएँ पूरी होती हैं, तो फिर भाग्य के, जिसकी चर्चा शास्त्रों में प्रायः आती है, क्या अर्थ हैं ?

उत्तर—केवल जो कामनाएँ असंख्य होने के कारण एक

जन्म में मरण-पर्यंत पूरी नहीं हुईं, उनका अवशिष्ट समुदाय, पूरा होने के लिये, अपनी शक्ति के अनुसार, दुबारा जन्म दिलाता है और वे ही, न पूरी हुई कामनाएँ, जिन्होंने मरने के पश्चात् अपना-अपना फल देने के लिये दुबारा जन्म दिलाया है, अब (दूसरे जन्म में) भाग्य कहलाती हैं, और इसीलिये हमारे शास्त्रों में लिखा है कि संकल्पों या कामनाओं के अनुसार लोगों का दूसरा जन्म होता है।

शंका—हिंदुओं के यहाँ यह कहावत प्रसिद्ध है कि 'अंत मत सोई गत' अर्थात् जैसी मरने के समय कामनाएँ होती हैं, उन्हीं के अनुसार दूसरा जन्म होता है। मगर आप बतला रहे हैं कि जो कामनाएँ पूरी हुए बिना पहले जन्म से बची रहती हैं, उनका फल जन्म होता है। इसमें फ़र्क़ क्यों है ?

उत्तर—वेदांत भी इस बात का अनुमोदन करता है कि जो विचार अंत में अर्थात् मरने के समय होते हैं, उन्हीं के अनुसार दुबारा जन्म होता है। मगर साथ इसके वेदांत इस बात पर भी बड़ा ज़ोर देता है कि मरते समय विचार और कामनाएँ भी वे ही मन में आती हैं, जो जीवन में मनुष्य के चित्त पर सवार रहती थीं। क्योंकि परीक्षा के कमरे में प्रश्नों के उत्तर उसी बालक के मन से निकलते हैं, जो वर्ष भर पहले पढ़ता रहता है; और जो सारी आयु में पढ़ा ही नहीं, वह कभी संभव ही नहीं है कि परीक्षा में जाकर पर्चा लिख आवे या परीक्षा उत्तीर्ण कर सके। अलबत्ता वही व्यक्ति परीक्षा पास कर सकता है, जो परीक्षा के समय से पहले सारी आयु पढ़ता रहा हो। इसी तरह जो व्यक्ति सारी आयु भर बुरे विचार या बुरी कामनाएँ करता रहता है, तो संभव नहीं है कि मरने के समय अच्छी कामनाएँ उसके मन में उत्पन्न हों; और न यह संभव हो सकता है कि जो व्यक्ति सारी आयु अच्छी

कामनाएँ या अच्छे काम करता रहा हो, मरने के समय बुरे विचार या बुरी कामनाएँ उसके मन में प्रवेश करें, बल्कि जो विचार सारी आयु भर में पहले उठते रहे हैं और अभी तक पूरे नहीं हुए, वे ही विचार मृत्यु के समय उसके मन में आयेंगे या उन्हीं का समवाय शरीर धारण करके मृत्यु के समय उसके सामने आएगा, और उनके अनुसार वह मरने के पश्चात् दुबारा जन्म लेगा।

अतः यह सिद्ध हुआ कि एक जन्म की अवशिष्ट कामनाओं का फल प्राप्त करना ही दूसरे जन्म की आवश्यकता उत्पन्न करना है। वह व्यक्ति जिसके मन में मरने से पहले ही (जीवन-काल में) विचारों का उठना बंद हो गया है, उसके मन में मरने के समय भी कोई अच्छा या बुरा विचार उत्पन्न नहीं हो सकता। इसीलिये उसका कोई और जन्म भी नहीं होता। मगर ऐसी अवस्था प्रायः ज्ञानी या जीवन्मुक्त पुरुषों की होती है। अतः जब यह सिद्ध हुआ कि जो कामना (संकल्प) या कर्म मनुष्य कर चुका है, उनका फल अवश्यमेव उसको विवश होकर भोगना पड़ता है, और पहले कर्मों या संकल्पों का ही फल दूसरे जन्म में भाग्य कहलाता है, तो इससे स्पष्ट प्रकट है कि भाग्य के कारण मनुष्य परतंत्र वा बद्ध है और दूसरा अंश मनुष्य में स्वतंत्रता का, अर्थात् कर्म करने का है, जिस कर्म या कामना के करने से उसका आगामी भाग्य बनता है, और जिसके करने में वह बिलकुल स्वतंत्र है, चाहे उसको करे, चाहे न करे, और इसी कारण तत्त्ववेत्ताओं ने भी यह कहा है कि मनुष्य अपना भाग्य अपने हाथों बनाता है, क्योंकि यद्यपि मकड़ी में जाला तनने की शक्ति है, मगर जब तक उसने अपने मुँह से तार बाहर नहीं निकाले हैं, वह बिलकुल स्वतंत्र है, मगर जब वह निकाल दे, तो फिर उसमें बद्ध है। इसी तरह कर्म

करने से पहले मनुष्य स्वतंत्र है, और जब कर दिया, तो उसके फल अर्थात् भाग्य को भोगने के लिये परतंत्र या बद्ध है। यह तो कुछ थोड़ा-सा एक व्यक्ति रूप से वा व्यष्टि भाव से स्पष्ट किया है, मगर जब समुच्चय रूप से या समष्टि भाव से देखा जाता है, तो और ही बात दिखाई देती है। हरबर्ट स्पेंसर साहब कहते हैं कि देश की अवस्था भी स्वयं अपने अनुकूल मनुष्य उत्पन्न कर लिया करता है।

यह बात ठीक है, क्योंकि जब थोड़ा विचारपूर्वक इन सब बातों पर समुच्चय रूप से दृष्टि डाली जाय, तो मालूम होता है कि वह नेपोलियन बोनापार्ट जो व्यष्टि रूप से स्वतंत्रतापूर्वक काम करता दिखाई देता था, उस व्यक्ति की भी ऐसे समय पर, ऐसे ज़माने में, आने की निस्संदेह आवश्यकता थी! इसलिये जब समष्टि रूप से देखा जाता है, तो मालूम होता है कि कोई दैवी शक्ति प्रत्येक में छिपी हुई (निहित) है, उसकी बदौलत मनुष्यों का जन्म सदैव वहाँ होता है, जहाँ उनकी पहले आवश्यकता होती है, और उसी शक्ति की बदौलत सारे संसार में पुरुषों और स्त्रियों की संख्या भी एकसाँ रहती है। जिस प्रकार एक वस्तु में स्थिर (positive) और चंचल (negative) दोनों प्रकार की बिजली एकत्र होती है, इसी तरह वह नियम जो इधर इच्छावाले उत्पन्न करता है, उधर उनकी इच्छाओं को पूरा करनेवाला भी उत्पन्न करता है। इस तरह से दोनों पलड़े बराबर तुले रहते हैं। इस नियम से सिद्ध होता है कि वह नेपोलियन बोनापार्ट, जिसको आप स्वतंत्र कह रहे हैं, इसी नियम की बदौलत जन्म लेकर आया है, अर्थात् जिसको स्वतंत्र कहा जाता था, वह भी एक शक्ति के अधीन होकर जन्म लेता है। इस प्रकार व्यष्टि रूप से तो यद्यपि वह स्वतंत्र दिखाई देता है, मगर समष्टि रूप से यदि देखा जाय, तो वह भी वैसा ही परतंत्र

और बद्ध है जैसा कि व्यष्टि रूप से एक मनुष्य भाग्य की दृष्टि से परतंत्र या बद्ध कहलाता था, अथवा दिखाई देता था।

प्रश्न—अतः समष्टि रूप से जब यह सिद्ध है कि सब काम एक ही शक्ति (चेतन) के द्वारा होते हैं, अर्थात् एक ही चेतन सब कुछ करनेवाला है, तो फिर क्यों हरएक के मन में यह विचार उठता है कि "मैं स्वतंत्र हूँ?" साथ ही आप किस प्रकार कहते हैं कि मनुष्य स्वतंत्र और परतंत्र दोनों है?

दरमियाने-क़ारे-दरिया तख़्ता-बंदम करदई;
बाज़ मी गोई कि दामन तर मकुन हुशियार बाश।

तात्पर्य—ऐ प्रभो! गहरे दरिया में तूने स्वयं तो मुझे बाँधकर फेंक दिया है, और फिर ऐसे कहते हो कि कपड़ा मत भिगो (अर्थात् लिपायमान मत हो), और होशियार रह।

उत्तर—यद्यपि द्वैत अर्थात् नानात्व के माननेवाले भी अभी तक इस प्रश्न का पूर्ण रूप से उत्तर नहीं दे सके, मगर वेदांत बड़े ज़ोर से गरजकर प्रेम-पूर्वक प्रत्येक को यह उत्तर देता है कि प्यारो! यह भेद वा रहस्य, जो संसार-भर के दर्शनों और धर्मों से स्पष्ट नहीं हुआ और जिसका उत्तर देने में भेदवादियों की आँखें नीची हो जाती हैं, बताता है कि हाँ, वही परम स्वतंत्र, जो प्रत्येक के भीतर बोल रहा है कि 'मैं स्वतंत्र हूँ" और जो सबका अंतर्यामी है, और जिसके फुरने-मात्र से ही यह संपूर्ण जगत् बना हुआ है, वही सारे का सारा मनुष्य के भीतर मौजूद है, और वही मनुष्य का अंतरात्मा है, वही बाहर है। जैसे श्रुति कहती है—

"यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह। मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति"॥ (क० अ० २, मं० १०)

अर्थात्—जो यहाँ है, निःसंदेह वही वहाँ है, और जो वहाँ है, वही यहाँ है। इस स्थान पर जो भेद देखता है, वह निःसंदेह एक मृत्यु से दूसरी मृत्यु के मुँह में जाता है।

और यही भेद इस बात को और श्रुतियों के द्वारा स्पष्ट रीति से पुकार कर प्रकट कर रहा है कि जो बाहर है, वही आपके भीतर है। यथा:

"तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ;

तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।" (ई० मं० ५)

अभिप्राय—हम चल हैं, हम चल हैं नाहिं, हम नेड़े हम दूर ;

हम ही सबके अंदर चानन, हम ही बाहिर नूर।

और बहुत-सी श्रुतियाँ हैं, जो इस रहस्य को स्पष्ट रूप से खोलकर दर्शाती हैं। पर उन सबके लिखने से ग्रन्थ-के-ग्रन्थ भर जायँगे, इसलिये इस समय केवल इतना ही समझा देना काफ़ी है।

अब जो वेदांत ने पहले बताया है कि मनुष्य में एक अंश स्वतंत्र और एक अंश परतंत्र है, उसके अर्थ केवल यही हैं कि उस परम स्वतंत्र स्वरूप आत्मा की दृष्टि से जो आपके भीतर सारे-का-सारा मौजूद है, आप स्वतंत्र हैं; और शरीर की दृष्टि से आप बिलकुल परतंत्र वा बद्ध हैं। शरीर को यदि कहो कि स्वतंत्र है, तो कदापि नहीं हो सकता, क्योंकि शरीर की दृष्टि से उस पर कोई-न-कोई अधिकार रखनेवाला अवश्य रहता है। और फिर यह शरीर रोगादि व्याधियों के भी वश में रहता है, और पहले कर्मों के फल भोगने को भी विवश है, इसलिये शरीर किसी भाँति स्वतंत्र नहीं हो सकता, और न परिवर्तनशील होने के कारण स्वतंत्र कहा जा सकता है। हाँ, अगर आप स्वतंत्र कहे जा सकते हैं, तो उस परम स्वतंत्र स्वरूप के कारण से कहे जा सकते हैं, जो आपके भीतर उच्च स्वर से बोल रहा है कि "मैं स्वतंत्र हूँ, मैं स्वतंत्र हूँ," और यही परम स्वतंत्र आत्मदेव, जो आपके भीतर से बोल रहा है, वही है, जो सब वस्तुओं में समा रहा है। इस समय वार्तालाप यद्यपि द्वैतवाली दिखाई देती है, मगर स्मरण रहे कि ऐसा बोलने का प्रयोजन केवल

आपको ऊपर की ओर अर्थात् अद्वैत में लाने का है। पहले रहस्यों को समझाने के लिये, केवल द्वैत जाननेवालों के लिये, उन्हीं की बोली ग्रहण करनी पड़ती है, जैसे अध्यापक बच्चे को जब आरंभ से पढ़ाता है, तो उसे बच्चे के लिये केवल अलिफ़ को अफ़ल ही कहना पड़ता है। यद्यपि अध्यापक अलिफ़ की जगह अफ़ल केवल बच्चे के लिये बोल देता है, मगर अध्यापक का प्रयोजन लड़के को अलिफ़ कहलाने का होता है। इसी तरह अगर यहाँ एक आत्मा और एक शरीर या भीतर और बाहर अलग-अलग करके द्वैत बोली में बताया गया है, तो भी वेदांत का प्रयोजन आपको द्वैत में डालने का नहीं, बल्कि उसके द्वारा आपको ऊपर चढ़ाकर अद्वैत में ले जाने का है। तत्पश्चात् आपको भेद भी स्पष्ट खोला जा सकता है। मगर अभी आपको यहाँ तक समझ लेना आवश्यक है कि वह परम स्वतंत्र सबका अंतर्यामी आत्मदेव, जो आपके भीतर बोल रहा है कि "मैं स्वतंत्र हूँ", वही देव बाह्य वस्तुओं में व्यापक है। जैसे जिस व्यक्ति के शरीर के किसी भाग में खुजली होती है, तो उसी व्यक्ति का हाथ अपने आप ठीक स्थान पर जाकर खुजला लेता है, मगर अन्य व्यक्ति का हाथ अपने आप कभी भी ठीक जगह पर नहीं खुजला सकता। इसका क्या कारण है? इसका कारण यही है कि सारे शरीर में यही 'मैं' (आत्मदेव) भरपूर है, मेरी ही शक्ति सारे शरीर में फैली हुई है, क्योंकि जहाँ खुजली हुई थी, वहाँ भी 'मैं' ही था, और मेरी चेतन-शक्ति ही वहाँ मौजूद थी। यद्यपि वार्तालाप में भी यही आता है कि 'मुझे खुजली हुई' और जब हाथ के द्वारा दूर की गई, तो उसमें भी 'मैं' ही आत्मदेव मौजूद था और उसमें मेरी ही शक्ति व्याप रही थी, जब कि यह कहा जाता है कि मेरे हाथ ने खुजली दूर की। अतः इन शब्दों से कि 'मुझे खुजली हुई' और 'मेरे ही हाथ ने दूर की,' सारे

कथन का अभिप्राय यह है कि ख़ुजली की जगह और उसके दूर करनेवाले हाथ में शब्द 'मैं' (आत्मदेव) दोनों स्थानों में एक है। इससे स्पष्ट हुआ कि वही एक आत्मदेव शरीर के सारे भागों में फैल रहा है। यह व्यष्टिरूप से सिद्ध हुआ कि एक ही आत्मा शरीर के भीतर और बाहर या ऊपर और नीचे फैल रहा है। अब समष्टिरूप से बताया जाता है कि जिस समय आप रात को सो जाते हैं और सवेरे के समय जागने लगते हैं, तो उस समय आँखें कुछ देखना चाहती हैं, अर्थात् उस समय आँखों को प्रकाश अनुभव करने के लिये खुजली होती है। मगर जब इधर आँखों को प्रकाश का अनुभव करने के लिये ख़ुजली होती है, तो उधर से झट ठीक स्थान पर खुजली को दूर करने के लिये सूर्य-रूपी हाथ आ जाता है। जैसे पहले बतलाया गया है कि जिसके बदन पर इधर खुजली होती है, उधर उसका ही हाथ उसको दूर करने के लिये भागता है, ऐसे ही इन दोनों का एक ही अवसर पर प्रकट होना सिद्ध करता है कि इन दोनों आँख (ख़ुजली का स्थान) और सूर्य (ख़ुजली दूर करनेवाला हाथ) के बीच में एक ही चेतन है। यह बात प्रत्येक को अपने-अपने अनुभव से सिद्ध हो जायगी कि जो लोग भीतर और बाहर एक ही आत्मदेव (अर्थात् एक मैं ही हूँ) के देखने का अभ्यास करते रहते हैं, उनमें व्यावहारिक रूप से अद्वैत या प्रेम आ जाता है, बल्कि उनकी ऐसी अवस्था हो जाती है—

ख़ूँ रगे-मजनूँ से निकला फ़स्द लैला की जो ली ;
इश्क़ में तासीर है पर जज़्बे-कामिल चाहिये।

बल्कि जो व्यक्ति ऐसा अभ्यास बराबर करता रहेगा कि "मैं शरीर नहीं हूँ", "मैं परिच्छिन्न मन, बुद्धि, अहंकार आदि नहीं हूँ, किन्तु संपूर्ण शरीरों का स्वामी हूँ, और सब शरीरों में मैं ही फैला हुआ हूँ," तो उसको इसका अनुभव इस बात के

प्रमाण में स्वयं साक्षी देगा कि हाँ, भीतर बाहर सब वस्तुओं में केवल एक ही चेतन आत्मदेव काम कर रहा है, और एक ही आत्मा (जो वास्तव में 'मैं' है) संपूर्ण जगत् में फैला हुआ है।

पहले वर्णन हो चुका है कि विशेष साहस और दृढ़ता जहाँ पर बड़े जोर से होते हैं, वहाँ स्वार्थपरता की गंध नहीं होती, वहाँ कार्य अवश्य-अवश्य पूरे होते हैं। और जहाँ साहस और प्रयत्न कम होते हैं और स्वार्थ संग होता है, वहाँ सदैव असफलता रहती है। इस भेद के न समझने से कुछ महाशयों के चित्त में यह संदेह प्रायः उठता है कि निःस्वार्थ कार्य में क्यों सफलता होती है, और स्वार्थ-पूर्ण कार्य में क्यों नहीं होती? इसका कारण वेदांत यह बतलाता है कि साहसी और स्थिर पुरुष नर-केसरी होता है और इसी कारण से वह मस्ती के मंदिर में रहता है, इसलिये वह एक अवस्था में ब्रह्मनिष्ठ होता है और बेख़बरी से व्यावहारिक रूप से उसका अपने स्वरूप में, जो मन से परे है, निवास होता है। और यही कारण है कि उसको सफलता प्राप्त होती है, क्योंकि उस अवस्था में केवल सत्यकाम और सत्यसंकल्पस्वरूप (आत्मदेव) से ही काम होते हैं। और जो हमारे शास्त्रों में लिखा हुआ है कि कर्मकांड से मन की शुद्धि होती है, इसका तात्पर्य भी केवल यही है कि जो व्यक्ति अपने कर्तव्य को भली भाँति निभा रहा है, वह कर्मकांड को निभा रहा है। पहले समय में और कोई काम इतना फैला हुआ न था, केवल यज्ञादि करने का काम जारी था। इसलिये उन दिनों सब लोगों के लिये नित्यप्रति यज्ञ करना ही हरएक का कर्तव्य था। मगर आजकल ऋषियों ने इस युग के अनुसार इन्हीं पहली वस्तुओं को संक्षिप्त रूप में उपासना, भक्ति और घर-बार के कामों के रूप में बदलकर आजकल के लोगों का कर्तव्य

बना दिया है। इसलिये आजकल जो इन विधानों को ही अपने व्यवहार में लाता रहता है, वह कर्तव्य को पूरा कर रहा है, और इस तरह कर्मकांड को भली भाँति निभा रहा है; और जो व्यक्ति व्यावहारिक रूप में अपने कर्तव्य को पूरा करने के लिये उद्यत है, वह व्यावहारिक रूप में संसार-क्षेत्र से परे जा रहा है, और उसका निवास मन से परे होता जाता है। इस प्रकार से ज्यों-ज्यों वह बेख़बरी से मन से परे होता अपने स्वरूप में लीन होता जाता है, उतना ही उसके मन की गति भी आत्मा की ओर होती जाती है, और उधर प्रवृत्त रहने से वह मन भी शुद्ध होता जाता है, और फिर वह ज्ञान का अधिकारी होता जाता है।

शंका—अगर ईश्वर अलग न होता, तो हमारी प्रार्थनाएँ, जो प्रायः स्वीकृत होती हैं, कदापि स्वीकृत न होतीं। और जब कि यह बात हम अपनी आँखों देखते रहते हैं कि हमारी प्रार्थनाएँ स्वीकार होती हैं, हम किस तरह आपके सिद्धांत को मान सकते हैं; जो कि हमारे निजी अनुभव के साफ़ विरुद्ध है?

उत्तर—राम का यहाँ कहना है कि प्रथम तो संपूर्ण मनुष्यों की प्रार्थनाएँ स्वीकार नहीं होतीं; हाँ, कुछ मनुष्यों की स्वीकार होती हैं; उनकी भी यदि इस बात में साक्षी ली जाय कि प्रार्थनाएँ किस समय और क्यों स्वीकार होती हैं, तो उनसे साफ़-साफ़ वेदांत के अनुसार यही उत्तर मिलेगा कि हाँ किसी व्यक्ति की प्रार्थना उस समय स्वीकार होती है, जब एक इष्टदेव को सामने रखकर प्रार्थना करनेवाले पर, संयोग से या बेख़बरी से, ऐसी अवस्था आ जाती है, जिसकी प्रशंसा में एक कवि यों कहता है—

तू को इतना मिटा कि तू न रहे, और तुझमें दुई की बू न रहे;
जुस्तजू भी हिजाबे-हसनी है, जुस्तजू है कि जुस्तजू न रहे।
आरज़ू भी विसाले-परदा है, आरज़ू है कि आरज़ू न रहे।

या जिस समय कि उसका मन अपने स्वरूप (आत्मा) में डूबा हुआ होता है और जिस समय उसमें 'मैं हूँ' और 'तू है' यह विचार दूर हुए होते हैं, अर्थात् जिस समय 'तू' 'मैं' से परे गया हुआ होता है, और ऐसे स्थान में पहुँचा हुआ होता है कि जहाँ पर बुद्धि का भी यह हाल हुआ होता है—

अगर यक सरे-मूए बरतर परम ;
फ़रोग़े-तजल्ली बसोज़द परम ।

अभिप्राय—अगर मैं एक बाल के सिरे के बराबर भी और बढ़ूँ, तो उसके तेज से मेरे पर जल जायँ ।

उस समय प्रार्थना स्वीकार होती है, क्योंकि उस समय प्रार्थना करनेवाला अपने स्वरूप में डेरे लगाए हुए होता है, जो सत्यकाम और सत्यसंकल्प है, जहाँ विचार उठते ही पूरा हो जाता है अर्थात् उस समय उस छोटी 'मैं' या स्वार्थ से रहित होकर प्रार्थना होती है। दूसरे अर्थों में यह कि उस समय अपने यथार्थ स्वरूप सत्यकाम और सत्यसंकल्प से प्रार्थना निकलती है और उठते ही तत्काल पूरी होती है। न कहीं अलग शरीरधारी ईश्वर उसको सुनकर स्वीकार करता है, और न कोई इष्टदेव उपस्थित होकर स्वीकृति की आज्ञा प्रदान करता है, बल्कि आप ही 'एकमेवाद्वितीयम्' उस समय करते कराते हो।

उन ऊपर लिखे हुए उदाहरणों से प्रकट हुआ कि अपना ही स्वरूप 'एकमेवाद्वितीयम्' जो संपूर्ण अन्य शरीरों का भी अन्तरात्मा है, और जो सत्यकाम और सत्यसंकल्प है, उससे सारे संसार की प्रार्थनाएँ, कामनाएँ और संकल्प आदि पूरे होते हैं। किंतु आश्चर्य की बात केवल यही है कि जिसकी बदौलत यह सब सफलता हो रही है, उसके पाने की या उसके जानने की बिलकुल इच्छा या प्रयत्न नहीं किया जाता।

एक कहानी है कि किसी राजा के असंख्य रानियाँ थीं। जो हर प्रकार से अपने राजा को प्रसन्न रखनें में प्रयत्नशील रहती थीं। एक दिन राजा ने इन सब रानियों को बुलाकर कहा कि मैं तुमसे बड़ा प्रसन्न हुआ हूँ, इसलिये मेरी राजधानी में जो वस्तु माँगो, मैं देंने को तैयार हूँ। इस पर किसी ने मोतियों का हार माँगा, किसी ने असंख्य आभूषण माँगे, किसी ने राजधानी का कुछ भाग माँगा, किसी ने लाल पन्ने आदि माँगे; मगर केवल एक ने राजा की बाँह पकड़कर कहा कि मैं आपको माँगती हूँ, जिस पर वह सब रानियों से बढ़ गई, क्योंकि स्वयं राजा को माँगने से उसने सारे राज्य के स्वामी को अपना बना लिया था। इसी प्रकार वह आत्मदेव जिसकी शक्ति से सम्पूर्ण संसार स्थिर है और जिसकी शक्ति से सम्पूर्ण कामनाएँ पूरी होती हैं, उसको कोई बिरले ही माँगते हैं, और शेष सब संसारी वस्तुओं को, जो बिलकुल तुच्छ, हीन और वास्तव में अवस्तु हैं, माँगते रहते हैं।

सिंध विषे रंचक सम देखें; आज नहीं पर्वत सम पेखें।

अब प्रश्न यह होता है कि वह आत्मा जो सबको घेरे हुए है, उसके पाने की इच्छा न करने का कारण क्या है?

उत्तर—इसका कारण यह है कि वह आत्मा कोई अन्य नहीं, वरन् सबका अपना आप है, इसलिये इच्छा नहीं होती। यदि कोई अन्य होता, तो उसके पाने की इच्छा भी होती। मगर यहाँ पर भी एक बात हरएक की समझ में नहीं आती कि शास्त्रों में जो आत्मानंद के प्राप्त करने की चर्चा बहुत जगह आई है, उसका तात्पर्य यह नहीं है कि जैसे बाहर के पदार्थों को अलग समझकर उनके पाने का प्रयत्न किया जाता है, वैसे ही आत्मा के आनंद को भी कहीं किसी बाह्य वस्तु में समझकर उसके प्राप्त करने की जिज्ञासा की जावे, बल्कि वहाँ

शास्त्रों का यह प्रयोजन है कि आत्मानंद तो आपका सच्चा अपना आप है ही, मगर अज्ञान के कारण भाँति-भाँति की कामनाओं और संकल्पों ने इसको तीक्ष्ण-स्वभाव बना दिया है। केवल इस तीक्ष्णता को ही दूर करना है। जैसे सिकंजबीन में भी मिठास होती है, पर सिरके की खटाई मिलने से मिठास ज़रा कम मालूम होती है। इसलिये खाँड की मिठास को अपनी असली हालत पर लाने के लिये केवल यह आवश्यक होता है कि उसमें से वह सिरके की खटाई दूर की जावे। ऐसे ही आत्मानंद तो आनंदघन है ही, मगर पदार्थों की कामना को भीतर प्रविष्ट करने के कारण ज़रा तीक्ष्ण-स्वभाव हो रहा है। केवल इसी तीक्ष्णता को, इच्छाओं के बंद करने से, निकाल देना आवश्यक है, जिसमें वह शुद्ध खाँड की भाँति आनंदघन अनुभूत होने लगे। इस आनंद के अनुभव करने की शैली यही है कि भविष्य में बाह्य पदार्थों की कामनाएँ बंद कर दी जावें और निज शरीर से जो प्रेम और मोह है, उसको दूर कर दिया जावे, क्योंकि शरीर के साथ संबंध रखने ही से उसके पालने-पोसने के लिये और पदार्थों के प्राप्त करने की कामनाएँ उठती रहती हैं। अतः शरीर के साथ बिलकुल संबंध न रखना और "मैं आत्मा ही हूँ, शरीर नहीं हूँ," ऐसा दिन-रात अभ्यास करना ही अपने आत्मानंद को उसकी आनंदघन अवस्था में लाना है; और यही अभ्यास या पुरुषार्थ आनन्द के प्राप्त करने का ठीक प्रयत्न है। इस प्रकार अपने आत्मा अर्थात् अपने ही स्वरूप के घन आनंद का अनुभव करना ही आत्मा को पाना होता है, कोई बाहर से प्राप्त करना नहीं होता। किन्तु आश्चर्य और शोक का स्थान केवल यही है कि जिस शरीर-संबंधी कामों के पूरा करने का विचार तक नहीं आना चाहिए था, बल्कि उन कामों को भाग्य पर छोड़ देना चाहिये था, अब उनके पूरा करने

के लिये प्रयत्न किया जाता है और इस प्रकार शारीरिक भ्रांति बढ़ाई जाती है; और जिस आत्मिक आनंद के पाने के लिये पुरुषार्थ करना था और शारीरिक भ्रांति दूर करना था, उसको केवल भाग्य पर छोड़ा जाता है। इस ढंग से उन्नति के स्थान पर अवनति होती है। उदाहरण में एक कहानी है।

एक मनुष्य को दो रोग थे, एक आँख (नेत्र) का, दूसरा पेट (उदर) का। रोगी अस्पताल में गया और डाक्टर साहब को आँख और पेट दोनों दिखलाये। डाक्टर साहब से आँख के रोग को दूर करने के लिये सुरमा और पेट के रोग को दूर करने के लिये पाचन-चूर्ण लेकर लौट आया, मगर दुर्भाग्य से दोनों पुड़ियों को भूल से उलट-पलट कर दिया। दवाई खाने के समय सुरमे की पुड़िया तो खा डाली और चूर्ण आँख में लगा लिया, जिससे दोनों रोगों की दशा भयंकर हो गई। इसी तरह यहाँ भी इस विषय में सारे काम उलटे हो रहे हैं। क्योंकि जिस शरीर को केवल भाग्य पर छोड़ना था, उसके लिये पुरुषार्थ किया जाता है, अर्थात् आँख की दवा पेट में डाली जा रही है; और जिस आत्मानंद के पाने के लिये पुरुषार्थ करना चाहिए था, उसको केवल भाग्य पर छोड़ा जाता है, अर्थात् पेट की औषध आँख में डाली जा रही है। इस तरह से उन्नति के स्थान पर अवनति हो रही है। ऐसी दशा में क्योंकर आशा की जा सकती है कि आत्मिक आनंद हरएक को प्राप्त हो। प्यारो! यदि आनंद को प्राप्त किया चाहते हो, तो उसके पाने के वास्ते अनंत पुरुषार्थ करो, अर्थात् कामना करना बंद करो और शरीर-सम्बन्धी कामों को केवल भाग्य पर छोड़ दो, क्योंकि शरीर-संबंधी काम तो भाग्य के अनुसार अपने आप हो ही जावेंगे। काम अगर है तो केवल यही है कि अपने आत्मा में लीन हो जाओ, अपने

स्वरूप में झंडे गाड़ दो, और अपने आत्मारूपी आनंद में मस्त होकर अपनी ईश्वरता की गद्दी को सँभाल लो। केवल आपके अपने स्वरूप को राजराजेश्वर के सिंहासन पर आसन जमाने की आवश्यकता है, तब सारे काम विना आपके संकेत के ही होते हुए दिखाई देंगे। जैसे जज साहब जब अपनी कचेहरी में आते हैं, तो उनका काम केवल कुरसी पर बैठ जाना और संसार के मुक़द्दमों को फ़ैसल करना होता है, शेष सब काम (कमरे का साफ़ करना, मेज़ पर दावात-क़लम रखना और वकील साहब तथा मुद्दई आदि को बुलवाना इत्यादि) अपने आप जज साहब के हाथ हिलाए विना ही होते रहते हैं। इसी तरह ब्रह्मनिष्ठ होने पर अर्थात् संपूर्ण विश्व के सम्राट् के सिंहासन पर इजलास करने के बाद मुक्त पुरुषों का काम केवल अपने स्वरूप के आनंद में मग्न रहना ही होता है, शेष संसारी काम मारे डर के प्रकृति अपने आप विना संकेत के करती रहती है। मगर भगवन्! यह अवस्था तब ही होगी जब औषध अर्थात् पुरुषार्थ का उचित व्यवहार करोगे, अर्थात् शरीर को भाग्य पर और आत्मिक उन्नति को पुरुषार्थ पर छोड़ोगे।

एक बार रोम के लोगों ने ईसा से प्रश्न किया कि क्या हमें बादशाह को कर (ख़िराज) देना चाहिए या नहीं? प्रश्न इस हेतु से था कि यदि महाराज ईसा यह आज्ञा देंगे कि ख़िराज नहीं देना चाहिए, तो झट रोम के बादशाह को ख़बर देंगे कि हज़रत ईसा लोगों को राजद्रोही बनाते हैं, और यदि वह अपने श्रीमुख से यह आज्ञा देंगे कि ख़िराज दे देना चाहिए, तो उनके इस वचन को, "मैं बादशाहों का बादशाह हूँ", या "मुझ पर ईमान लाओ", झूठा सिद्ध करेंगे। मगर महाराज ईसा ने इसके उत्तर में एक रुपया हाथ पर रखकर उन प्रश्न करनेवालों

से पूछा कि प्यारो ! पहले यह बताओ कि इस रुपये पर मुहर किसकी लगी हुई है ? लोगों ने उत्तर दिया कि क़ैसर की। अतः महाराज ने आज्ञा दी कि—

Render unto Caesar that belongs to Caesar,
Render unto God that belongs to God.

वे वस्तुएँ, जिन पर क़ैसर अर्थात् रोम के बादशाह की मुहर लगी हुई है, क़ैसर के हवाले कर दो; और जिन पर ईश्वर की मुहर लगी हुई है, वह ईश्वर के हवाले कर दो। ऐसे ही भगवन् ! पुरुषार्थ को कि जिस पर आत्मा की मुहर लगी हुई है, आत्मा के हवाले कर दो; और वह, जिसके ऊपर भाग्य की मुहर लगी हुई है, उस शरीर रूपी नक़दी को भाग्य के हवाले कर दो। जब एक मनुष्य उत्तम श्रेणी का काम करता है, तो उसकी अनुपस्थिति में निम्न श्रेणी के सब काम होते जाते हैं। इसी प्रकार ज्यों-ज्यों पुरुष अपने पुरुषार्थ से अपने स्वरूप की ओर पग बढ़ाए जाता है, अर्थात् उत्तम श्रेणी का काम करता जाता है, संसारी शरीर-सम्बन्धी काम अर्थात् निम्न श्रेणी के काम अपने आप उत्तम रीति से पूरे होते जाते हैं।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

राम-उपदेश

(रायबहादुर लाला बैजनाथ द्वारा प्रकाशित उर्दू राम-उपदेश से उद्धृत)

यदि उन्नति चाहते हो, तो बाह्य वस्तुओं तथा काम-काज में भिन्नता और विचार तथा संकल्प में अभिन्नता करो। हिन्दुओं में वर्ण-व्यवस्था वास्तव में इसलिए है कि काम तो भिन्न-भिन्न हों, परन्तु हृदय एक हों। किन्तु धीरे-धीरे यह असली कारण लौकिक व्यवहार में गुम व लुप्त हो गया, और आत्म-उन्नति के स्थान पर आत्म-अवनति आ गई। मेरे प्यरों! याद रक्खो कि शास्त्र व स्मृति आपके लिए हैं, आप शास्त्र व स्मृति के लिए नहीं। भारतवर्ष की नदियों का प्रवाह पलट गया। पहाड़ों से हिमरेखा (glaciers) हट गईं; वन कट गए, नगर बस गए, देश की दशा बदल गई, राजसत्ता पलट गई, लोगों के रंग और के और हो गए; परंतु आप इस क्षण-भंगुर संसार में, जो प्रतिक्षण बदलता रहता है, पुराने रस्म व रिवाजों को, जिनमें कुछ जान बाक़ी नहीं है, क़ायम रखना चाहते हैं। हाय! वह मनुष्य, जो आगे को तो चले और पीछे को देखे, कैसा बुद्धि-हीन होगा? मेरे प्यारे! आप ऋषियों की सन्तान हो, परन्तु उनके समय में नहीं रहते हो।

रेल, तार, बिजली, स्टीमर सब आपके पीछे पड़े हुए हैं। आपका मुक़ाबला तो बीसवीं शताब्दी के यूरोप तथा अमेरिका के विज्ञान-वेत्ताओं और शिल्पकारों की बुद्धि से है। याद रक्खो कि या तो अपने को वर्तमान युग में रहने के योग्य

बनाओ, अथवा पितृलोक में पधारो। आपको हमारा सलाम, प्रणाम है।

२—यदि मातृभूमि के हित (स्वदेश-प्रेम) का दावा है, तो सारे देश और उसके निवासियों के प्रति ऐसी एकदिली (हृदय की एकता) करो कि द्वैतभाव का बुलबुले के समान भी आपके और उनके बीच आवरण न रहे। यदि मैं अनुभव कर लूँ कि "मैं ही हिन्दुस्तान हूँ, भारतवर्ष की समस्त भूमि मेरा शरीर है, मेरा आत्मा समस्त भारत का आत्मा है, यदि मैं चलता हूँ, तो सारा भारतवर्ष चलता है, यदि मैं दम लेता हूँ, तो सारा भारतवर्ष दम लेता है, मैं ही शङ्कर हूँ, मैं ही शिव हूँ," तो यही असली वेदान्त है। यही सच्चा मातृभूमि का हित है।

३—संसार को सच्चा मानकर उसमें कूदते हो, याद रक्खो कि फूस की आग में पच-पच मरते हो, अपने शुद्ध सच्चिदानन्द-स्वरूप को भूल कर नाम व रूप की क़ैद में फँसते हो। सत्य को जवाब देकर (छोड़कर) असत्य (अज्ञान) में धक्के खाते हो। याद रक्खो, अगर चोट पर चोट न लगे, तो मेरा नाम राम नहीं। अजगर ने समझा कि मैं कृष्ण को खा गया, पर कृष्ण को पचा न सका। यही दशा आपकी है। इसी विधान को जीते जी क्यों नहीं समझते। मरने पर "राम राम सत्य है," ऐसा लोग कहते हैं। जब पहले ही समझ जाओगे कि "राम सत्य है," तो मरोगे ही नहीं। मरते समय गीता आपके क्या काम आएगी, अपने जीवन को ही भगवत् का गीत क्यों नहीं बनाते ?

४—माता छोटे बच्चे को आम चूसने को देती है। बालक आम चूसने लगता है, चूसते-चूसते फल फूट पड़ा और बच्चे के हाथ पर, मुँह और कपड़ों पर रस ही रस फैल गया। अब तो न कपड़ों की सुध है, न मा की, न हाथ-मुँह

का होश है। रस ही रस है। इसी प्रकार यदि श्रुति भगवती का दिया हुआ यह महावाक्य रूपी रस आपके अन्दर फूट पड़े, तो फिर रस ही रस (ब्रह्म) हो जाओगे। मन को देव के पास ऐसे बिठाओ कि रोम-रोम में राम रच जाए, मन अमृत में भीग जाए, चित्त आनन्द में डूब जाए, इसी का नाम उपासना है। जैसे पत्थर की शिला का गंगा में शीतल हो जाना, कपड़े की गुड़िया का अन्दर बाहर से जल में निचुड़ने लगना और मिश्री की डली का गंगा-रूप से एक हो जाना, यही तीन दर्जे उपासना के हैं।

५—धीरे-धीरे दैवी विधान चल रहा है, परन्तु मनुष्य उससे अनभिज्ञ है। इन्द्रियों की परिच्छिन्नता में बन्द होकर नाम-रूप की बालू की बुनियाद पर हवेली बनाकर मनुष्य उसमें रहता है, परन्तु अन्त में उसी के साथ बैठ जाता है। असली हवेली, जो पर्वत के शिखर पर सुदृढ़ बनी है, वह उस ज्ञानी की है, जो इस नाम-रूप को झूठा और ईश्वर के नियम को जीवित जानता है। यदि इस नियम पर कि "जो सत् है वह ब्रह्म है" इतनी अपेक्षा करो, जितना सांसारिक मनुष्यों की राज़ी-नाराज़ी की करते हो, तो कोई विपत्ति आपके सिर पर नहीं आ सकती। वेद कहता है "आपकी ख़ातिर हे प्रभो! मो मन है तन बीच।" वेदों के समय कँवारी कन्याएँ अग्नि की परिक्रमा देती हुई यह राग गाती थीं, "हम उस एक सर्वदर्शी अपने पति के साथ एक हो जाएँ, इस अपने बाप के घर (क्षणभंगुर संसार) को ऐसे छोड़ दें, जैसे दाना भूसे को। और मालिक के घर में दाख़िल होकर वहाँ से कभी न निकलें।" यही राग राम के भीतर से बराबर निकल रहा है। यह शरीर फट जाये, यह सिर टूट जाय, हृदय विदीर्ण हो जाय, परन्तु तेरे अतिरिक्त अन्य कोई विचार हृदय

में न उठे। यही राम का कहना है। जब कभी सांसारिक मित्रों, प्रियजनों तथा कुटुंबियों पर विश्वास करके वह प्रेम, जो ईश्वर के लिए होना चाहिये, आप उनसे करते हो, तो अवश्य धोखा खाओगे। मुसलमान कहते हैं "ला इलाह इल्लिल्लाह" (एकमेवाद्वितीयम्), अर्थात् एक ईश्वर के अतिरिक्त दूसरा ईश्वर नहीं। हज़रत ईसा और श्रीबुद्ध भगवान् और हमारे ऋषियों का भी किसी न किसी रूप में यही कथन है। परन्तु यदि उस कथन का प्रत्युत्तर उनके सुननेवालों से उस समय में और तत्पश्चात् सारी दुनिया के तत्त्वज्ञानियों से हर समय व हर बार न मिलता रहता, तो वह कथन (उपदेश) सदा क़ायम ही न रहता। यही कथन दैवी विधान है। यही हमारा आत्मा है। यही राम है। यही ब्रह्म है। यही सच्चा त्याग है। कोई जाति उसे छोड़ नहीं सकती है। यही अति कठोर है। परन्तु अमर जीवन की प्राप्ति का द्वार है। जो कोई इसके अतिरिक्त और कहीं मन लगावेगा, धोखा खावेगा, दग़ा उठावेगा, छोड़ा (त्यागा) जावेगा, मारा जावेगा। चाहे राम के निश्चय को भोले-भाले चित्त का अन्धविश्वास कहो, परन्तु उसने तो यह दृढ़ विश्वास कर लिया है, जिसने तत्त्व का साक्षात्कार कर लिया, वह न मृत्यु को देखता है, न रोग को। वह सबका आत्मा हुआ सब जगह मौजूद है। मेरे प्यारे! इस संसार पर विश्वास करना ही मौत (मृत्यु) है। तेरा असली आत्मा तो आनन्दस्वरूप (राम) है।

(१) देखा न शब जो यार को, नूरे-ज़िया से कार क्या?
मुर्दा की क़ब्र-तार को आबो गया से ग़ैर क्या?
(२) चाहे कोई भला कहे, ख़्वाह पड़ा बुरा कहे,
पल्ला छुटा जो जिस्म से, बीमोरज़ा से कार क्या?

(३) नेकी बदी ख़ुशी-ग़मी, ज़ीना थी बामे-यार का,
ज़ीना जला दो अब यहाँ पाई-बया से कार क्या ?
(४) अहमके-कोर ही को है उल्फ़त मा-सिवाये—हक़,
काबा-ए-दिल में यह ज़िना, बूए-वफ़ा से कार क्या ?
(५) इतना लिहाज़ कर लिया, दुनिया तेरा परे भी हट,
नाचूँ हूँ साथ राम के, शर्मो हया से कार क्या ?

भावार्थ—(१) (अज्ञान की) रात्रि में यदि अपने प्यारे को हमने नहीं देखा, तो दिन की रोशनी से हमारा क्या प्रयोजन ? अँधेरे में मृतक की समाधि पर पानी और घास से क्या प्रयोजन ?

(२) चाहे कोई भला कहे, चाहे कोई बुरा कहे, जब इस शरीर से पल्ला (मोह) छूट गया, तो भय और आशा से क्या प्रयोजन ?

(३) पुण्य-पाप और हर्ष-शोक प्यारे के कोठे पर चढ़ने (ईश्वर-प्राप्ति) का सोपान है । पर हम तो अपने प्यारे स्वरूप को प्राप्त हो चुके, इसलिये इस सोपान (सीढ़ी) को अब जला दो, हमें इन पगवाली सीढ़ियों से क्या प्रयोजन ?

(४) अन्धे पुरुष को ही ईश्वर से अतिरिक्त वस्तु के साथ प्रीति भाती है। दिल के मन्दिर में यह व्यभिचार ? ऐसी दशा में विश्वास की गन्ध से प्रयोजन क्या ?

(५) ऐ दुनिया ! तेरा इतना लिहाज़ तो कर लिया, अब परे भी हट, अब तो मैं शुद्ध स्वरूप राम के साथ नाच रहा हूँ। सांसारिक लज्जा और प्रेम से मुझे क्या प्रयोजन ?

प्यारे ! सुनो, वेदान्त केवल लफ़्ज़ी जमा-ख़र्च (शब्द-आडम्बर) नहीं, बल्कि यह संसार भी कोई वस्तु नहीं। जो इसे सच्चा मानता है, वही मरता है। एक आत्म-तत्त्व ही अमर है, वह ही सत् है, हाँ हाँ हाँ, वही सत् है

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

वार्त्तालाप

(नीचे लिखी बातचीत प्रश्नोत्तर के रूप में लालभवन, फ़ैज़ाबाद में, तारीख़ १२ सितंबर, सन् १९०५ ई०, मंगलवार को सवेरे ६ बजे श्रीरामतीर्थ भगवान् ने श्रीमान् कुंदनलाल डिप्टी-कलेक्टर, पांडेय शांति-प्रकाश, पं० शिवानंद तथा अन्य कतिपय जिज्ञासुओं की उपस्थिति में की। स्वामी राम ने इन महानुभावों के प्रश्नों के जो उत्तर दिये, उनके संक्षिप्त नोट जो श्रीमान् शांतिप्रकाश, मंत्री साधारण धर्मसभा, फ़ैज़ाबाद ने लिये थे, वे अविकल रूप से उद्धृत किए जाते हैं।)

प्रश्न—अब दिनोंदिन, जैसा कि पुराणों में लिखा है, भारत-वर्ष की अवस्था ख़राब होनी चाहिये, क्या यह ठीक है ?

उत्तर—अब भारतवर्ष सँभले विना न रहेगा। अब इसके अच्छे दिन आ रहे हैं। अधोगति की रात्रि बीती जा रही है। एक समय था, जब भारतवर्ष स्वर्गोपम कहलाता था, उसके सौभाग्य का सूर्य मध्याह्न-काल पर था। फिर दिन ढलना आरंभ हुआ। वह सूर्य मिस्र में पहुँचा। मिस्र से यूनान और रोम होता हुआ स्पेन आदि योरप के देशों में जा चमका। फिर इँगलैंड की बारी आई। और, इँगलैंड से अमेरिका जा पहुँचा, जिसने सारे संसार को चकाचौंध में डाल दिया। सो वही सौभाग्य-सूर्य आज जापान पर चमक रहा है। यही कारण है कि जापान उन्नति पर उन्नति किए चला जाता है। जापान के बाद चीन और चीन के बाद हमारा देश भारतवर्ष इस विश्वद्योतक सूर्य से प्रकाशित होगा। कोई शक्ति नहीं, जो इसको रोक सके। There is no power human or divine that can stand in the way—कोई ऐसी शक्ति नहीं, जो इस सौभाग्य-

सूर्य को इस चक्कर काटने से रोके रख सके। भगवन्! इस मुर्दापन को दूर करो और प्रफुल्लता को हृदय में स्थान दो। फिर कौन-सी ऐसी शक्ति है, जो आपको आनंद के भोगने से वंचित रख सके। आओ, और आनंद का आस्वादन करो। देखो, यह अमी-रस कैसा मीठा और प्यारा है। ॐ आनंद! आनंद!!

फिर पुराणों की सत्यता के विषय में स्वामीजी ने यों कहा:—

वेदों का कर्मकांड अब कहाँ रहा? वे राजसूय यज्ञ आदि अब कहाँ गये? साँप निकल गया और लकीर रह गई, और आप लोग लकीर के फ़क़ीर लकीर पीटे चले जाते हो। यज्ञोपवीत तो रह गया, मगर यज्ञ कहाँ गये? ख़ाली शिखा रह गई, मगर वह बात कहाँ गई, जिसके लिये शिखा रक्खी जाती थी? अब तो विवाह और मृत्यु के यज्ञों का भी केवल नाम-मात्र रह गया है।

महाभारत के बाद वेदों का संस्कार नहीं रहा। पहले तो युद्ध में कितने ही योद्धा काम आये, और फिर जो कुछ बचे-खुचे क्षत्रिय रह गये थे, उनमें से बहुत-से अश्वमेध-यज्ञ की भेंट हो गये। अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु मरने को जाते समय क्षत्रिय-वंश का बीज बो गया था, नहीं तो इस घरेलू लड़ाई ने क्षत्रियों का बीज ही संसार से नाश कर दिया था। हाँ, इन क्षत्रियों के बाद भारतवर्ष में खत्री आ गये, कायस्थ आ गये—मगर भाइयों! बुरा न मानना, वे (मूल) क्षत्रिय ही नहीं रहे। इस महान् युद्ध के अंत होने पर स्त्रियाँ-ही-स्त्रियाँ रह गईं; अब विना पुरुषों के वे कर्मकांड कैसे करें? यह दशा तो क्षत्रियों की थी, बेचारे ब्राह्मण भी क्या करें? क्या विना क्षत्रियों की सहायता के ब्राह्मण अपना निर्वाह कर सकते हैं? कदापि नहीं। (देखो, महाराज विश्वामित्र को महाराजा रामचंद्र से सहायता लेने की आवश्यकता ही पड़ी।) फिर युद्ध के पश्चात् जंगली जातियों ने

उस समय ऐसे शिर उठाया कि महाभारत का वीर अर्जुन जो यादवों की स्त्रियाँ लिये जा रहा था, मार्ग में भीलों के हाथ से लुट गया। जिस समय देश की ऐसी दशा थी, तो बेचारे ब्राह्मण भला कैसे अपना यज्ञ पूर्ण कर सकते थे? परिणाम यह हुआ कि वैदिक यज्ञों का अंत हो गया। तो क्या उसके साथ धर्म का भी अंत हो गया? कदापि नहीं! कदापि नहीं!! यह नहीं हो सकता। समय की आवश्यकता के अनुसार वेदों का कर्मकांड बदलता रहता है, और बदलता रहेगा; मगर वेदों का प्राण अर्थात् सत्-ज्ञान न कभी बदला है और न बदलेगा। जिस प्रकार मनुष्यों की आत्मा भिन्न-भिन्न शरीरों में आया-जाया करती है, मगर ज्यों-की-त्यों रहती है, उसी प्रकार वेदों का ज्ञान भिन्न-भिन्न रूपान्तरों में आया-जाया करता है, किंतु वस्तुतः वह स्वयं ज्यों-का-त्यों रहता है।

अब ब्राह्मणों ने धर्म का अंश स्थिर रखने के लिये वैदिक कर्मकांडों को पौराणिक कर्मकांड में परिणत कर दिया, अर्थात् जो कर्मकांड एकादशी से पूर्णमासी तक हुआ करते थे, उनकी जगह अब केवल एकादशी और पूर्णमासी का व्रत रख दिया। स्तंभ-पूजन से लिंग-पूजन रह गया। वेदों की कथाओं को पुराणों में सुनाया। अब उन कथाओं की यदि वास्तविकता देखो, तो मालूम होगा कि उनके भीतर कैसी फ़िलॉसफ़ी कूट-कूटकर भरी है। पराशर और भस्मासुर आदि की कथाओं में गूढ़ तत्त्वों का किस सुंदरता के साथ निरूपण किया है!

और देवता के अर्थ क्या हैं? व्यष्टि रूप से जिसको इंद्रिय कहते हैं, समष्टि रूप से उसी का नाम देवता है। उपनिषद् और तैत्तिरीय ब्राह्मण में सिवाय इंद्रियों के देवता का और कुछ अर्थ नहीं है। देवताओं ने पहले गौ के शरीर में प्रवेश किया, फिर घोड़े के, अंत में मनुष्य के शरीर में। पैरों का देवता विष्णु है जो पैरों में रहता है, इसी से चरण धोने का काम, राजसूय

'यज्ञ में, श्रीकृष्ण को दिया गया था। ३३ कोटि देवताओं से ३३ करोड़ देवतों का अभिप्राय नहीं है, जैसा कि सर्व-साधारण समझते हैं, वरन् 'कोटि' के अर्थ 'प्रकार' के* हैं, इसलिये ३३ कोटि से प्रयोजन ३३ प्रकार के देवताओं से है। यह सीधी-सादी बात थी, मगर टेढ़ी हो गई। व्याकरण और ज्योतिष ही से सब बातें सिद्ध नहीं होतीं।

जर्मन-भाषा राम ने आठ दिनों में सीखी। जिस जहाज़ में राम अमेरिका गया था, उसमें पाँच-छः सौ जर्मन लोग थे। राम अपने कमरे (कैबिन) से बाहर आकर बहुधा जहाज़ के डेक पर घूमा करता था। मगर वहाँ से कुछ जर्मन लोग उसको अपने कमरों में ले आया करते थे, और उससे बातचीत करते थे। राम ने जर्मनी ज़बान इसी तरह आठ दिन में सीख ली, जैसे बच्चा कोई भाषा सीखता है। इसी तरह संस्कृत के सीखने के लिये व्याकरण और कोष में सारी आयु नष्ट न करो। पुस्तकें पढ़ना आरंभ कर दो। केवल रटंत से समझ नहीं खुलेगी। महाराज! यह तो बताओ कि 'निरभौ' भी कोई शब्द है? पर हाँ, गुरु नानकजी के कारण गुरुमुखी-भाषा में यह एक उत्तम शब्द हो गया है। गुरु नानकजी के कारण गुरुमुखी एक भाषा हो गई—साहित्य बन गया। प्यारो! आप कविता के अनुप्रास (क़ाफ़िया) रदीफ़ और बहरें पड़े मिलाया करो; पर जो वाक्य आत्मनिष्ठ पुरुषों से निकलते हैं, वहाँ इनकी क्या आवश्यकता। कविता की भूमि से उठकर कविता के आकाश पर आओ। गुरु नानक की कविता को देखो, उसमें कहाँ

* स्वामीजी का अभिप्राय यहाँ उन मुख्य ३३ देवताओं से है, जिनका उपनिषदों में ऐसा वर्णन है:—(क) आठ वसु (ख) ग्यारह रुद्र (ग) बारह आदित्य (घ) एक इंद्र और (ङ) एक प्रजापति।

अनुप्रास और कहाँ छंद ? मगर एक पारलौकिक कविता होने के कारण उसने जो गौरव पाया है, वह सूर्य की तरह प्रकाशित है। छंदःशास्त्र के विचार से गीता भी त्रुटियों से रहित नहीं है, तथापि उसको ईश्वरीय गान अर्थात् भगवद्गीता कहते हैं। इसका प्रकाश युगों के परदों को भेदकर आज तक बराबर छनता चला आता है। उपनिषदों में भी व्याकरण के नियम भंग किये गये हैं। व्याकरण बदल दो। जीवात्मा के साथ शरीर चलता है, न कि शरीर के साथ जीवात्मा।

स्मरण रहे कि वेदों की आत्मा (जान) सत्-ज्ञान है। उसको नहीं बदला ; वेदों के केवल शरीर अर्थात् कर्मकांड को बदल दिया। आत्मा नहीं बदल सकता है, शरीर ही बदला करते हैं। कई ज़गह यही घटित होता है। स्वामी दयानंद सरस्वती से पहले भी वेदों का ज्ञान तो मौजूद था, हाँ वेदों के कर्मकांड का बेशक प्रचार न था। उपनिषद् थे और चाव से पढ़े जाते थे। संहिता छपी हुई मौजूद न थी और न सामान्य रूप से किसी के पढ़ने में आई थी। वर्तमान संहिता के प्रकाशन का इतिहास इस तरह है कि जब ईस्ट-इंडिया-कंपनी भारतवर्ष में आई, तब अँगरेज़ों ने वेदों की संहिता को इकट्ठा करना शुरू कर दिया— किसी एक पुस्तक वा घर से नहीं, वरन् अनेक ब्राह्मण-घरानों से। क्योंकि प्रत्येक ब्राह्मण-घराने में कोई-न-कोई वेद की शाखा मौजूद थी। कोई-सी एक शाखा पढ़ लो, बाक़ी सब वही हैं। अग्नि आदि का ज़िक्र सभी में तो आ जाता है। विष्णु केवल एक स्थान पर आया है। बात वही है, भेद केवल शब्दों का है। जैनियों और बौद्धों के मत से ब्राह्मणों का धर्म गया। ब्राह्मणों के मारे जाने से उनकी शाखा लुप्त हो गई। निदान जो कुछ शाखाएँ मिलीं, उनको ईस्ट-इंडिया-कंपनी ने इकट्ठा कराया और प्रोफ़ेसर मैक्समूलर ने यथानियम संपादित किया। फिर

वे पुस्तक के आकार में छपीं। स्वामी दयानंद सरस्वतीजी ने उन वेदों को पढ़ा। यद्यपि पुराणों में वेदों की आत्मा स्थित रक्खी गई है, मगर बौद्ध-धर्म का प्रभाव कहीं-कहीं रह गया। बुद्ध का मुख्य मत शुद्ध उपनिषदों से निकला है। उनके शिष्यों ने बौद्ध-धर्म की मट्टी पलीद की। बौद्ध-मत तो क्या, वरन् चार्वाक-मत भी उपनिषदों से निकला है। चार्वाकों का मत वेदों से सिद्ध होता है। सारांश यह है कि वेद तो मोम की नाक है, सचाई तो हमारे भीतर होनी चाहिये। रामानुज, माधवाचार्य आदि सभी तो अपने-अपने मत को वेदों से सिद्ध करते हैं। यह सब इसी प्रकार है, जैसे एक मुसलमान पियक्कड़ (शराबी) ने क़ुरान से शराब पीना सिद्ध कर दिया। बात क्या थी कि क़ुरान में कहीं आया है कि "खाओ तुम कबाब और पियो तुम शराब, जाओगे तुम जहन्नुम को।" इसका अंतिम वाक्यांश उड़ाकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर लिया। इसी तरह वेदों से सब लोग अपना-अपना स्वार्थ सिद्ध कर लेते हैं। सत्य तो यों है कि उपनिषदों से शंकराचार्य का मत निकलता है। रामानुजजी का काम सामाजिक सुधार का था, जो हरएक को अवश्य स्वीकार करना चाहिये। प्रत्येक मनुष्य सब वस्तुओं को नहीं जानता। स्वामी दयानंदजी बड़े व्याकरणी थे। चूँकि वह व्याकरण, कोष, काव्य और वेदों की संहिताओं को जानते थे, मगर वह तत्त्व-ज्ञान में अधिक जानकारी न रखते थे। अद्वैत के विरुद्ध जो कुछ उन्होंने कहा है, वह रामानुज और माधवाचार्य से लिया है और मूर्ति-पूजन के विरुद्ध जो कुछ कहा है, वह मुसलमानों और ईसाइयों से लिया है। स्वामी दयानंदजी में कोई नई बात नहीं थी। जो कुछ कहा है, औरों से लिया है। इस पर पंडित शिवानंदजी ने प्रश्न किया कि यदि खंडनात्मक भाग दयानंद-मत से निकाल दिया जाय, तो बाक़ी कुछ न रहेगा ?

स्वामीजी ने उत्तर दिया—भगवन्! ऐसा मत कहो। उसमें बहुत कुछ ग्रहण करने योग्य शेष रह जाता है। स्वामी दयानंद के खंडन और गाली-गलौज को छोड़कर आप उनके जोश-खरोश और निर्भयता को क्यों नहीं लेते? आपको चाहिये कि हंस की तरह दूध को पी लो और पानी को छोड़ दो। जहाँ कहीं अच्छी बात मिले—चाहे दयानंदजी से मिले, चाहे मोहम्मद साहब से, चाहे मूसा से, चाहे ईसा से—उसे आप तत्काल ग्रहण कर लो। प्रायः लोग गुण की ओर दृष्टि नहीं देते, दोषों को ही देखा करते हैं। इस प्रकार के भद्दे कटाक्ष (Sweeping remarks) करना छोड़ दो, और युक्ति का परित्याग मत करो।

बुद्ध ने वेदों के ज्ञान-कांड को ले लिया; मगर पुराणों ने वेदों के कर्म-कांड को भी नहीं छोड़ा। बुद्ध के बाद उनके मत के चार संप्रदाय भारतवर्ष में हो गये और वे सब जापान के उत्तरीय और दक्षिणीय भाग में हैं। बुद्ध भगवान् का जीवन अत्यंत पवित्र था। बुद्ध भगवान् ने वर्णाश्रम को बिल्कुल उड़ा दिया। कुछ तो आर्य्य लोग और कुछ यहाँ के मूल-निवासी शैल, भील, गोंड आदि कुछ दिनों बाद सर्पों, नदियों और पत्थरों की पूजा करने लगे। भंगी लोग लूत पैग़ंबर की संतति से हैं, जिनका उल्लेख बाइबिल में है। राम ने, अर्सा हुआ, इस विषय का अध्ययन किया था।

वाम-मार्ग (तंत्रिज्म) बौद्धों में फैल गया, और अब भी अमेरिका, चीन और जापान में तांत्रिक लोग मौजूद हैं। बौद्ध-मत के पश्चात् कुमारिल भट्ट ने वेदों का प्रकाश किया। मंडन मिश्र कुमारिल भट्ट का शिष्य था, किंतु जिसने वेदों की आत्मा अर्थात् ज्ञान-कांड का प्रकाश किया, वह शंकर था। भारतवर्ष क्या, सारे संसार में यह सबसे महान् पुरुष हुआ है। राम और कृष्ण की बात दूर गई, किंतु वर्तमान काल में शंकर से बढ़कर

दूसरा मनुष्य जगत् में उत्पन्न नहीं हुआ। उसने द्वारकाजी से जगन्नाथजी अर्थात् अटक से कटक तक पैदल कई भ्रमण किये। कन्याकुमारी अंतरीप से बद्रीनाथ तक उसने पृथ्वी को नापा। शंकराचार्य के तत्त्वज्ञान ने योरप के तत्त्वज्ञान में जीवन डाल दिया। जर्मन तत्त्ववेत्ता कैंट (Kant) आदि ने इसके ग्रंथों का अध्ययन किया था। अब ऐसे ही जाग्रदात्मा पुरुष, जो परमात्मा के अस्तित्व के आगे जगत् के अस्तित्व तक को कुछ नहीं मानते, दूसरों को जगा सकते हैं, नहीं तो—

"ख़ुफ़्ता रा ख़ुफ़्ता कै कुनद बेदार" अर्थात् "सोते को सोता भला क्योंकर जगा सके।"

इस महापुरुष शंकर ने भारतवर्ष को जगा दिया। ओ हो! इसने भारतवर्ष में सजीव मेधा शक्तियाँ उत्पन्न कर दीं, उसने दस प्रकार के संन्यासी बना दिए, और प्रत्येक का एक-एक नाम रख दिया। चार मठ स्थापित कर दिए। यह दशनामी संन्यासी उन मठों में रहकर ईश्वरीय शिक्षा का संग्रह करते थे।

"Great men are always found in caves"—

"महान् पुरुष सदैव कंदराओं में पाए जाते हैं।"

ज्योतिर्मठ, शारदामठ, शृंगरीमठ, गोवर्धनमठ सब इन्हीं के स्थापित किए हुए हैं। राम भी द्वारका के शारदा मठ से संबंध रखता है।

जब नीच जातियाँ बौद्ध बन गईं, तो कुछ दिनों बाद वाम-मार्ग आदि के रूप में प्रकट होकर अत्याचार करने लगीं। इस महापुरुष शंकर ने इन अत्याचारों को दूर किया, और शंकराचार्य के पश्चात् हिंदू-धर्म फैल गया। पिता तो है आर्य्य-धर्म और माता है बौद्ध-धर्म।

इँगलैंड में Hood (एक प्रकार का टोप) और Gown (साफ़ा) अभी तक ग्रेजुएट को दिया जाता है। ये क्या हैं?

फ़क़ीरों के जुब्बा (एक तरह का लंबा बेबाहों का कुर्ता) और कासा (कटोरा) की नक़ल है। जिस तरह knight (शूरवीर) बनने से पहले page (सेवक) होना पड़ता है, उसी तरह से पहले ब्रह्मचर्य, फिर संन्यास। संन्यास देने का अधिकार गुरु को उस समय तक नहीं है, जब तक संन्यास की वृत्ति भीतर से फूट-फूटकर बाहर न निकल आवे। इसी प्रकार से ये संन्यासी बनाए गए थे। ये चलती-फिरती युनिवर्सिटियाँ थीं। श्रीशंकराचार्य के कारण हिंदू-धर्म फैल गया। अब नामों की सनदों से काम होने लगा। लोग तो लेबुलों के मातहत काम करते हैं। अगर एक आर्य्य-समाजी ने कोई बुरा काम किया, तो क्या सब आर्य्य-समाजी बुरे हो गए ? इस तरह के भद्दे विचारों को छोड़ दो। शंकराचार्य के बाद पुराने फल उड़ गये, नये फल आ गए। शंकर के बाद बहुत सी ऐसी पुस्तकें लिखी गईं, जिनमें तन्त्रवाद आदि का सब उल्लेख है।

जिस प्रकार वेदों के कर्मकांड को बदल दिया, उसी प्रकार अब पुराणों के कर्मकांड को बदल दो। जिस तरह गरमी आने पर जाड़े के गरम कपड़ों को आप बदल देते हो, उसी तरह अब भी उपस्थित वर्तमान समय के अनुसार पौराणिक कर्मकांड को बदल दो, मगर पुरानी वैदिक आत्मा को स्थिर रक्खो, अर्थात् श्रुति को रख लो—

"मन ज़े क़ुरआन मग़ज़ रा बर्दाश्तम ;
उस्तख़्वाँ रा पेशे - सगाँ अंदाख़्तम।"

अर्थात्—मैंने क़ुरान से गूदे (मग़ज़) को निकाल लिया है, और उसका छिलका (हड्डियाँ) कुत्तों के आगे डाल दिया है। अगर राम कोई चीज़ कहता है, तो इस वजह से नहीं कहता कि अमुक पुरुष ने कहा है, या अमुक ग्रंथ में लिखा है, वरन् इसी हेतु से कहता है कि हमको इसकी आज अत्यंत आवश्यकता है।

बाबू जयदयालजी ने प्रश्न किया—महाराज ! शाक्त-मत कैसा है ?

स्वामीजी ने उत्तर दिया—जिस शाक्त-मत ने स्वामी रामकृष्ण परमहंस को पैदा कर दिया, उसको कौन बुरा कह सकता है ? ओ३म् ! ओ३म् !! ओ३म् !!!

जिस वस्तु की चर्चा करते हुए आप नीचे गिरते हो, उसे उड़ा दो।

बाबू कुन्दनलाल ने प्रश्न किया—महाराज ! हमको किस बात का अभ्यास करना चाहिए ?

उत्तर—जो पढ़ते हैं, उसी का अभ्यास करना चाहिये। यही सत्यता है। जिसका मन और वाणी एक है, वही उन्नति कर सकता है।

बच्चा मा का दूध पीते-पीते (अपनाकाम करते हुए) दाँत निकाल लेगा। इसी तरह हम लोग अपने कोमल-से-कोमल धर्म पर चलते हुए 'दासोऽहम्' से 'शिवोऽहम्' पर पहुँच जाते हैं। जो पलड़ा भारी हो, उसी ओर भार का केंद्र (Centre of gravity) होगा। यदि आपका संसारी पलड़ा भारी है, तो बंदा (दास) ही रहोगे। मंज़िलें अनेक हैं—

(१) 'तस्यैवाहम्'=मैं उसी का हूँ। वह कहीं अलग दूर है, अन्य पुरुष (3rd person) है।

(२) 'तवैवाहम्'=मैं तेरा हूँ। तू सामने मौजूद है, मध्यम पुरुष (2nd person) है।

(३) 'त्वमेवाहम्'=मैं तू ही हूँ। जुदाई दूर। उत्तम पुरुष (1st person) है। मनुष्यों और जातियों को इन्हीं मंज़िलों में से होकर गुज़रना पड़ता है। राम ने भी इन मंज़िलों को पार किया है। बच्चा गोद में रहते-रहते और दूध पीते-पीते कहता है कि मैं बाहर खेलने जाता हूँ।

धर्म वह है, जो भीतर से स्वतः निकले; न कि वह जो बाहर से भीतर ठूँसा जाये। सूर्य चमकता है कि चीजें उत्पन्न हों। नक़ल से काम नहीं निकलता। सवार बुद्धिमान् पशु (Rational animal) है, घोड़ा बिल्कुल पशु है। घोड़े को सवार की रानों के नीचे से मत खींचो। जब्र से काम नहीं चलता, प्रेम से चलता है।

(१) जिसकी स्थिति "दासोऽहम्" पर है, वह उसी प्रकार की पुस्तकों को पढ़े, जैसे इंजील, भक्तमाल, भागवत पुराण आदि। इसी से उस मनुष्य को ढाढ़स होगा। मनोविज्ञान (Psychology) अर्थात् अन्तःकरण शास्त्र को पढ़ने से बड़ा लाभ होता है।

(२) जिसकी स्थिति 'तवैवाहम्' में है। अर्थात् मैं तेरा हूँ, उसको विनयपत्रिका, सूरश्यामवाले पद, गीतगोविंद, नारद के भक्तिसूत्र और कई प्रकार के भजन, रामायण के कोई-कोई अंश, जैसे रामायण का वह अंश, जहाँ राम वन जाते समय लक्ष्मण और सीता से विलग होते हैं, पढ़ना चाहिए।

(३) तीसरी श्रेणीवालों अर्थात् 'त्वमेवाहम्' की स्थितिवालों के लिये बुल्लाशाह और गोपालसिंह की वाणियों के पढ़ने से भी बड़ा लाभ होता है। ये दो पंजाबी हैं। मगर गोपालसिंह की वाणी ने अभी अधिक प्रसिद्धि नहीं पाई है। इन वाणियों को पढ़ते पढ़ते मारे प्रेम के आँखें बंद हो जाती हैं। गुरु ग्रंथसाहब में दोनों श्रेणी की अपार वाणियाँ हैं, तीसरी श्रेणी की बहुत कम। पाठ करते हुए जहाँ देखा कि चित्त एकाग्र हो गया, किताब को छोड़ दो। घोड़े पर आप सवार हो, न कि घोड़ा आप पर सवार हो। पाठ किसके लिये है? भीतर के आनंद के लिये। लोग पढ़ते हैं, मगर पागुर (जुगाली) नहीं करते। अगर आप पागुर न करोगे, तो मानसिक अजीर्ण (Mental dyspepsia) हो जायगा। राम जब योगवासिष्ठ पढ़ता था, तो उसका नियम था कि उसने थोड़ा-सा पढ़ा और फिर किताब को बंद कर दिया

और उसका मनन करना आरंभ कर दिया। यदि इसी तरह से पढ़ा जाय तो क्या बात है, जो भीतर घर न कर ले। मनसरोग-शास्त्री लोग (Pathologist) यह दिखलाते हैं कि जब हम बुद्धि की सीमा (level) को छोड़कर निष्ठा की सीमा (level) को जाते है, तो अच्छे हो जाने के समान बन जाते हैं।

यदि आप चाहते हैं कि अद्वैत या वेदांत को हम पढ़ें, तो पहले बौद्धिक संशय और फिर निर्णायक संशय दोनों को उड़ा देना चाहिये। बुद्धि-विषयक संशय को दूर करने के लिये राम एक पुस्तक* लिखेगा, और यह किताब उस समय लिखी जायगी, जब राम दो वर्ष एकांत में रहेगा। निर्णायक संशय भी फिर उड़ जायगा। इन संशयों को दूर करने के लिये उपनिषदों, भगवद्गीता और शंकर के शारीरिक भाष्य को पढ़िये। रिसाला† अलिफ़, ‡थंडरिंग डान (नून) आदि भी इसी प्रकार के रिसाले हैं। छांदोग्योपनिषद् के पाठ से राम का मन तीसरी श्रेणी पर आया। जिस समय राम दूसरी श्रेणी में था, तो वाल्मीकि रामायण के उस भाग को, जहाँ राम को वनवास हुआ है, प्रायः पढ़ा करता और रोया करता था।

राम का मन एक बार बिगड़ गया। लाहौर में अपने कोठे पर चढ़ा था। वहाँ से उसने किसी स्त्री को नग्न देखा, जिससे उसका मन बिगड़ा। मगर मन की इस अवस्था को देखकर वह

---

* शोक है कि विना उक्त पुस्तक लिखे राम हमको छोड़कर चल दिये, जिससे यह पुस्तक प्रकाशित न हो सकी।

† यह रिसाला स्वामी राम ने उर्दू-भाषा में निकाला था, जब कि वह गृहस्थाश्रम में थे। इसका संग्रह कुल्यात-राम के नाम से छप चुका है।

‡ यह अँगरेजी मासिक पत्रिका स्वामी राम की आज्ञा से उनके परम भक्त मि० पूर्णसिंह निकालते थे।

तत्काल छाती कूटने और रोने लगा, और उस दिन से इस बात का पक्का इरादा कर लिया कि या तो हम मरेंगे या मन को मारेंगे। राम बचपन में बड़ा हठी था। जिस बात के करने की हठ करता था, उसको करके छोड़ता था। गणित के प्रश्न हल करने लगा, तो उसमें जी-जान से लग गया, खाना-पीना, खेलना-कूदना सब बंद। एक बार ऐसा हुआ कि कुछ प्रश्न उसने हल करने का इरादा किया। रात-भर हल करता रहा, मगर सब सवाल हल न हुए। बस, सवेरा होते ही कोठे पर चढ़ गया, और ऊपर से गिरकर मरने लगा। मगर ख़याल आया कि मरूँ तो क्योंकर? सवाल तो अभी पूरे हल नहीं हुए। तात्पर्य यह कि इसी प्रकार से प्रायः हठ किया करता था। और यही हठ बाद को दृढ़ता के रूप में परिवर्तित हो गया। संन्यास लेने से प्रथम राम एक बार कश्मीर को चला गया था। फिर वहाँ से आकर कुछ दिन घर पर रहा। मगर बकरे की मा कब तक ख़ैर मनाएगी, दूसरी बार फिर निकल पड़ा। वर्ग (क्लास) में जब पढ़ाता था, तब प्रायः गणित-शास्त्र का व्याख्यान भक्ति के विषय में परिणत हो जाता था। अंत में उसको सांसारिक संबंध छोड़ने ही पड़े। हरिद्वार में पहुँचा। हरिद्वार से हृषिकेश के मार्ग से सत्यनारायण के मंदिर पर पहुँचा। अपने रेशमी वस्त्र और सोने की ज़ंजीर और घड़ी आदि सब इधर-उधर फेंक दिये। तीन सौ रुपए घर से और मँगवाये। वह भी ख़र्च कर डाले। फ़क़ीरों, साधुओं से मिला। वार्तालाप हुई। सबसे शास्त्रार्थ हुए। तब राम ने यह देखा कि ज़बानी ज्ञान छाँटने में किसी से कम नहीं हूँ। मगर हाय! शांति फिर भी नहीं है। अब इस शांति की खोज में घूमता फिरता है। एक दिन प्रातःकाल सत्यनारायण के मंदिर से जहाँ वह ठहरा था, सब साथियों को छोड़कर अकेला भाग निकला। मगर एक संस्कृत का

विद्यार्थी उसके साथ हो लिया, क्योंकि संस्कृत के विद्यार्थी प्रायः बड़े सवेरे उठते हैं। संयोग से एक मस्त अद्वैत मूर्ति महात्मा से इसकी आँखें दो-चार हुईं। उनके पास केवल एक लँगोटी थी और कुछ न था। वह लँगोटी भी कुछ फटी हुई थी। एक सेठ बदरीनाथ को जा रहा था। इस मस्त महात्मा ने उस सेठ से अपनी लँगोटी की ओर, जो कुछ खुली थी, संकेत करके कहा—"अरे! बदरीनाथ तू यह देख ले।" इन महात्मा का नाम बद्रीदेव था। इनसे जब राम की आँखें दो-चार हुईं, दोनों हँस पड़े। वार्तालाप हुई। दशा पलट गई। वहाँ से पहाड़ पर चला, जहाँ जंगल के किनारे एक ब्रह्म-पुरी नाम का अरण्य है। राम ने वहाँ उपनिषदों को पढ़ा। छांदोग्य उपनिषद् शांकर भाष्य सहित पढ़ा जा रहा था। फिर तो ऐसी समाधि लगी कि कुछ न पूछो। अगर राम चट्टान पर लेटा है, तो कोई पत्थर का टुकड़ा पड़ा है। अगर धूप में बैठा है, तो ख़ुद धूप हो रहा है। ऐसी दशा में वह लड़का भी, जो राम के साथ हरिद्वार से भाग निकला था, राम से अलग रहता था। कभी नीचे से कुछ लाकर राम को खिला जाया करता था। उस समय राम की ऐसी दशा हो गई कि यदि वह वायु को आज्ञा दे कि चल, तो वायु तत्काल चल पड़ती थी। पंचमहाभूत उसकी आज्ञा का पालन करते थे। यदि उसको किसी ग्रंथ की आवश्यकता होती थी, तो कोई व्यक्ति वही किताब लिए उसके पास चला आता है। तात्पर्य यह कि यह अवस्था निरंतर छः महीने तक रही और यह स्थिति केवल इसी प्रकार के मनुष्य की नहीं हो सकती, वरन् प्रत्येक व्यक्ति को यह स्थिति प्राप्त हो सकती है। जब अनुभव प्रत्यक्ष होता जाय, तब तर्क और दलीलों को उड़ाते जाओ। जो पुस्तक आपके

चित्त पर प्रभाव डाले, साथ रख लो। मगर जब वह वस्तु भी मिल जाय, तो पुस्तक को भी फेंक दो।

(१) पहली चोट (क) पहला साधन—पढ़ना गुली-डंडे की पहली चोट है। फिर दूसरी चोट अभ्यास की है। पहला दर्जा पाठ, दूसरा दर्जा जप।

(ख) दूसरा साधन—अभ्यास, संयम और आकर्षण से अपने शरीरों को उड़ा ले जाओ। क्यों न हम प्रकृति के दृश्य से आकाश तक उड़ते चले जायँ। प्रातःकाल के समय नदियों, और बाग़ों में सूर्य के सामने आ जायँ कि जिससे मन उच्च हो। महात्माओं के सत्संग से भी मन महान् हो जाता है। यह गुलीडंडे की पहली चोट है।

(२) दूसरी चोट—"चुनाँ पुर शुद फ़िज़ाए-सीना अज़ दोस्त ;
ख़याले ख़्वेश गुम शुद अज़ ज़मीरम।"

अर्थात् मेरे हृदय की भूमि मेरे मित्र से ऐसी भरी हुई है कि मेरे दिल से अपने अस्तित्व का ज्ञान ही नष्ट हो गया। वातावरण (atmosphere) में जब भराव (saturation) आ जाता है, तब किताब को उठाकर ताक़ में रख दो। जब छैल-छबीले की मूर्ति से आँख लड़ी, तब ज्योति में ज्योति समा गई। जब इन मनोहर दृश्यों से चित्त में उमंग भर आवे, तब ओ३म्, ओ३म् का गाना शुरू कर दो। यह ओ३म् का गाना ब्रह्मांड का संगीत अर्थात् ब्रह्मध्वनि (Music of the Sphere) है। जिसको महात्माओं ने सुना है, और सुनाते हैं, और जो सुनना चाहे, वह सुन सकता है—

नग़मे सुरीले ओ३म् के हैं इससे आ रहे ;
नदियाँ परिंदे याद में हैं सुर मिला रहे।

(३) अनुराग को न कुचलो। ऐसे अनुराग को रोक देना मानो महात्मा यूसुफ़ को कुएँ में डाल देना है। जब वह दशा

आ जाय, तो उसको स्थिर रक्खो। कृष्ण की वंशी का नाद सुन-कर गोपियाँ बिहाल हो जाया करती थीं। इस आंतरिक राग के सामने प्रत्येक वस्तु को न्यौछावर कर दो। क्योंकि ईश्वर भीतर बैठा है। संसार का काम कभी नहीं बिगड़ेगा। इस अवसर पर यदि आपसे कुछ पद निकलें, तो निकलने दो। अन्तर्ध्वनि के अनुसार चलो, तब आनंदमग्न होगे, अन्यथा नष्ट हो जाओगे। वेदांत-शास्त्र (आत्मज्ञान) के व्याख्यान पढ़ने से एकांत में अधिक सुख होता है।

साँस-साँस पर सुमिरो हरि नाम। जिह्वा से नाम लेने पर मन पर भी प्रभाव पड़ता है। जप—(१) वाणी से, (२) मन से, (३) संपूर्ण शरीर से होना चाहिये। नाम की महिमा अद्भुत है।

ओ३म् केवल वेद में नहीं, क़ुरान में भी मौजूद है—

अलिफ़ + लाम + मीम=उम=ओ३म्

(क़ुरान की बहुतेरी आयतों के आरंभ में ا ل م (अ, ल, म) जो आया है, वह यह ओ३म् ही है। ال (अल) जो प्रायः शब्दों के आरंभ में आता है, उसका ل लकार 'पेश' अर्थात् उकार में परिवर्तित हो जाता है, जैसे करीम-उल-दीन पढ़ने में करीमुद्दीन हो जाता है। और 'पेश' अर्थात् ह्रस्व उकार 'वाव' अर्थात् वकार का संक्षिप्त रूप है। अतएव क़ुरान का अ + ल + म = अ + उ + म = ॐ के समान है।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

आनन्द ! आनन्द !! आनन्द !!!